अनुक्रमणिका/Index

01. अनुक्रमणिका /Index 01

02. क्षेत्रीय सम्पादक मण्डल/सम्पादकीय सलाहकार मण्डल 05/06

03. निर्णायक मण्डल 07

04. प्रवक्ता साथी 09

(Science / विज्ञान)

05. Impact Of Fly Ash On Vegetation In Umaria District (M.P.) (Nand Kishor Bhagat) 11

06. Study Of Copper Plated Mild Steel With Special Reference To Corrosion Resistance Property (Dr. Bindu Gandhi) 16

07. Cultivation Of Medicinal Plants - An Eco-Friendly Approach (Archana Nigam, R.S. Nigam) 18

08. Zooplankton Density And Physico-Chemical Characteristics In Sitapat Pond At Dhar Town (M.P.) India (Dr. Darasingh Waskel) 20

09. Assessment Of Phytodiversity In Alirajpur College Campus, Madhya Pradesh, India (Jeetendra Pachaya, Jeetendra Sainkhediya) 25

10. Semiconductor (Dr. Neeraj Dubey) 29

11. Child Labour - An Analysis Of Census 2011 In Reference To Shahdol Division (Dr. Pramod Kumar Pandey, Dr. Ashish Tiwari) 31

(Home Science / गृह विज्ञान)

12. Body Mass Index As An Indicator For Assessing Affluent School Going Children Belonging To 6 To 15 Years Of Children Of Jabalpur City (Smita Pathak, Meera Vaidya, Richa Jauhari) 35

13. गोंड जनजाति में परिवार एवं उनकी आर्थिक व्यवस्था – एक अध्ययन (बैतूल जिले के विशेष संदर्भ में) (डॉ. मधुबाला वर्मा, रश्मि सोनी) 37

14. कानपुर शहर के विद्यालयों में अध्ययनरत मध्यान्ह भोजन व्यवस्था (म.भो.व्य.) से लाभान्वित एवं अलाभान्वित विद्यार्थियों के दंत स्वास्थ्य स्तर का तुलनात्मक अध्ययन (पूनम रानी, डॉ. मंजू दुबे) 39

15. शासकीय विद्यालयों में अध्ययनरत विद्यार्थियों में कुपोषण स्तर का अध्ययन (ग्वालियर शहर के संदर्भ में) (अंजुमन बानो, डॉ. मंजू दुबे) 42

(Commerce & Management / वाणिज्य एवं प्रबंध)

16. Lending In Deprived Sector And CSR Action In Nepalese Banking Sector (Dr. Kapil Dev Sharma, Jagat Bahadur Singh Rawal) 44

17. Performance Evaluation Of Regional Rural Banks In India (Reena Nayak) 48

18. Consumer Satisfaction Towards Public Distribution System (Dr. J.C. Porwal, Tabassum Patel) 51

19. Impact of Information Technology on Hotel Industry performances : An Indian Market Prospective (Vijay Choudhary, Prof. N. S. Rao) 55

20. Comparative study on the asset-liability management between public and private sector bank (Dr. Rajeev Kumar Jhalani, Jyotsana Verma) 59

21. **Non Performing Assests In India (Dr. Vandana K. Mishra)** 64

22. **Role Of Human Resource Management & Occupational Health Safety System To Control Construction Hazards (Vikram Singh, Dr. Kapil Dev Sharma)** 67

23. **Impact Of Indian Service Sector (Dr. Devendra Singh Rathore)** 70

24. **Entrepreneurial Development Programmes (EDPs) In India (Deepika Shrivastava)** 73

25. **Tourism Entrepreneurship in India: erspective & Prospects (Dr. Rakhi Saxena)** 75

26. **Value Added Tax (VAT) In India (Shivali Dubey)** 77

27. **Research Methodology And Project Management - Minor And Major : Types Of Research, Importance And All About Project (Pallavi Mane, Dr. Rajeshri Desai)** 81

28. भारतीय खाद्य निगम एवं खाद्य सुरक्षा (डॉ. इफ्फत खान) 84

29. बैंक इंश्योरेन्स : सफलता की नई राह (डॉ. आर. के. विपट, प्रो. अर्चना मुजमेर) 86

30. प्राचीन भारतीय न्याय व्यवस्था एवं वर्तमान भारत में उसकी प्रासंगिकता (डॉ. सारिका मिश्रा) 88

31. उज्जैन जिले में विभिन्न बैंकों द्वारा किसान क्रेडिट कार्ड के निर्गमन की प्रक्रिया (डॉ. एम. एस. मन्सूरी, डॉ. मोईन खान) 91

32. अधिकार प्राप्ति का ब्रह्मास्त्र-सूचना का अधिकार अधिनियम-2005(डॉ. केशव मणि शर्मा) 92

33. एक श्रेष्ठ शोध-प्रतिवेदन निर्माण के सामान्य सिद्धान्त (डॉ. राजू रैदास) 96

34. भारत में महिलाओं का आर्थिक सशक्तिकरण (ऊँकार सिंह रावत) 98

35. भारत में ग्रामीण विकास – समस्याऐं एवं नियोजन (फूलचन्द किराड़े) 100

36. भारत में काले धन की उत्पत्ति एवं समाधान (शीतल सोलंकी) 102

37. आजीविका मिशन के सफल क्रियान्वयन में ग्राम सभाओं की भूमिका (सुनीता सोलंकी, संतोष सिंह मालवीय) 103

(Economics / अर्थशास्त्र)

38. कृषि विकास में जल प्रबन्धन का प्रभाव (म.प्र.के धार जिले में राजीव गांधी जल प्रबन्धन मिशन के विशेष संदर्भ में) (मिसर नरगावें, प्रो. बंशीलाल डावर) 105

39. जन-धन योजना का विस्तार तथा चुनौतियॉ (डॉ. आशा साखी गुप्ता) 108

40. आर्थिक सुधारों के परिप्रेक्ष्य में दलितों की शैक्षणिक स्थिति (डॉ. अंजना जैन) 110

41. कृषि वानिकी में ग्रामीण महिलाओं की कार्य सहभागिता (प्रेमलता एक्का) 112

42. भारत में उपयुक्त कृषि पद्धतियाँ (डॉ. रीतू राजपूत) 114

(Political Seience / राजनीति विज्ञान)

43. **Challenges In The Effective Implementation Of Righ To Information Act (Mushtaq Ahmad Wani, Dr. Sulekha Mishra)** 116

44. **Religious Harmony In India (Dr. O.P. Chack)** 119

45. भारतीय कृषि का स्वरूप एवं राजनैतिक व्यवस्थाऐं(डॉ. अलका भार्गव) 121

46. केन्द्रीय अभिकर्ता एवं राज्य का संवैधानिक प्रधान राज्यपाल (डॉ. अनिल कुमार जैन) 123

47. महिला अधिकार आन्दोलन में महिला अधिकारों की स्थिति (डॉ. रजनी दुबे) 125

48. विष्यमता में समावेशी लोकतंत्र कैसे संभव हैं (सुनीता सोलंकी) 127

(Sociology / समाजशास्त्र)

49. वैयक्तिक अध्ययन एवं सहभागी अवलोकन जमीनी स्तर पर सामाजिक रुपांतरण एवं ज्ञान प्राप्ति की महती शोध प्रविधियाँ 130
(डॉ. संजय जोशी)

50. स्व सहायता समूह (डॉ. सुमित्रा वर्मा) 132

51. शिक्षा का अधिकार कानून एवं सामाजिक दायित्व (डॉ. निशा जैन) 134

52. सामाजिक परिवर्तन एवं विस्थापिता आदिवासी परिवार (पुनर्वासित ग्राम पंचायत सिंगाजी के संदर्भ में) (अनिल कुमार) 136

53. लैंगिक अपराधों से बालकों का संरक्षण – एक विमर्श (डॉ. उषा सिंह) 139

54. नैतिक मूल्यो के गिरावट में परिवार एवं समाज की भूमिका (अजेन्द्र नाथ प्रजापति) 141

(Psychology / मनोविज्ञान)

55. Influence of Gender & Level of Education on Moral Values (कमलेश उपाध्याय) 143

56. खिलाड़ी एवं गैर खिलाड़ी किशोरों के मानसिक स्वास्थ्य का तुलनात्मक अध्ययन (ज्योत्सना झारिया) 146

(History / इतिहास)

57. प्राचीन भारत में स्त्री समाज (डॉ. प्रज्ञा आचार्य) 148

58. नारी के उत्थान में डॉ. अम्बेड़कर की भूमिका (डॉ. जितेन्द्र चांवरे) 150

59. भारत में महिला साक्षरता एवं शैक्षणिक प्रगति – प्राचीनकाल से वर्तमान तक 'शिक्षा में महिलाओं की स्थिति' 152
(राजेश कुमार मौर्य)

60. निमाड़ के फारुकी राजवंश के प्रमुख शासक (अंतिम मौर्य, शताब्दी अगल्चा) 154

(Hindi Literature / हिन्दी साहित्य)

61. जनवादी विचारधारा और कथा साहित्य (डॉ. विमला मिंज) 156

62. ईसुरी की फागों में होली के रंग (डॉ. गायत्री वाजपेयी) 160

63. माँ ! मुझे दुनिया में आने दो (डॉ. वन्दना जैन) 162

64. प्रेमचंद उत्कर्ष काल की सर्वोत्कृष्ट प्रमुख कहानियां (कथानक)(डॉ. गुलाब सोलंकी, प्रो. वीणा बरडे) 164

65. साहित्य – भाषा की पृष्ठभूमि : लोकभाषा (डॉ. सुभाष शर्मा) 166

66. जितना तुम्हारा सच है, उतना ही कहो (डॉ. रत्नेश विष्वक्सेन) 168

(English Literature / अंग्रेजी साहित्य)

67. Themes of identity crisis in Kamala Markandaya's Nowhere Man and The two Virgins 170
(Rajni Aseri)

68. History To Modernety- Treatment Of Myth, Mythology And Folk Vore In Hayavardana 175
And Nagamandala (Aparna Ray)

69. Indian Woman's Inner World As Presented In Anita Desai's Cry the Peacock 178
(Dr. Seema Sharma)

(Sanskrit / संस्कृत)

70. संस्कृत गद्य कवि परम्परा के भास्वर नक्षत्र महाकवि सुबन्धु, बाणभट्ट एवं दण्डी - एक समीक्षण 181
(पं. श्रेयस श्रीधर शास्त्री कोरान्ने)
71. रघुवंश महाकाव्य एवं पञ्चमहायज्ञ (धर्मशास्त्रीय अनुशीलन) (डॉ. गोपालकृष्ण शुक्ल) 184

(Drawing / चित्रकला)

72. कला-शिक्षा और उसमें भावी संभावनायें (चित्रकला के परिपेक्ष्य में) (डॉ. यतीन्द्र महोबे) 186
73. सामाजिक चेतना के सजग प्रहरी अवधेश मिश्र (सपना नीरज) 187
74. वर्तमान समय में 'बाल-कला' का स्वरूप (प्रो. किरन सरना, प्रगति तिवारी) 190

(Law / विधि)

75. Online Arbitration (Prachi Tyagi) 193

(Education / शिक्षा)

76. A Comparative Study of Academic Achievement and Educational Awareness 198
of the Students of Government Primary and Private Primary Schools of Amroha District
(Dr. Dharmendra Singh, Preyanka Sharma)
77. E-Learning And Hybrid Teaching - A Global Revolution (Bhawna Verma, Kumud Dikshit) 202
78. Developmental Trends In Metacognition: A Literature Review (Mathur Rini) 204

(Others / अन्य)

79. Conservation of Wild Life and Constitutional Provisions (Dr. R. C. Gupta) 207
80. ग्रामीण भारत में शिक्षा तथा रोजगार के अवसर एवं चुनौतियां (डॉ. आलोक कुमार यादव) 209
81. उच्च शिक्षा का निजीकरण - वरदान या अभिशाप (डॉ. सुरभि सिंघल) 212
82. वेदिक साहित्य मे पर्यावरण की भूमिका (दुर्गेश लता भगत) 215
83. जीवन का सार-शिक्षा एवं संस्कार (डॉ. सोनम शर्मा) 217
84. राजस्थान की हिन्दी-कहानी : विकास यात्रा भाग - 2 (डॉ. राजकुमार चौधरी) 219
85. अभिज्ञानशाकुन्तलम् में राजधर्म (डॉ. आशा उपाध्याय) 222
86. राव चांद सिंह जी का स्मारक (डॉ. अमित मेहता) 224
87. Urdu Language Through the Ages & Periods of History (Dr. Arshad Siraj) 226
88. Study of Hadoop (Rajesh Soni) 230
89. रामकिंकर बैज का कला संसार (डॉ. राजीव शर्मा) 232
90. भारतीय मानवाकृतियों का अद्‌भुत सौंदर्यीकरण- 'अजंता' (डॉ. रेखा पंचोली) 236

****

क्षेत्रीय सम्पादक मण्डल अन्तर्राष्ट्रीय एवं राष्ट्रीय (Regional Editor Board- International & National) मानद्

(01) डॉ. मनीषा ठाकुर .... फुल्टन कॉलेज, एरिजोना स्टेट यूनिवर्सिटी, अमेरिका
(02) श्री अशोककुमार .... एम्प्लॉयब्लिटी ऑपरेशन्स मैनेजर, एक्शन ट्रेनिंग सेन्टर लि. लन्दन, यूनाईटेड किंगडम
(03) प्रो. डॉ. सिलव्यू बिस्यू .... वाईस डीन (वाणिज्य एवं प्रबन्ध) कृषि एवं ग्रामीण विकास महाविद्यालय, बूचारेस्ट, रोमानिया
(04) श्री खगेन्द्रप्रसाद सुबेदी .... सीनियर सॉयकोलॉजिस्ट, पब्लिक सर्विस कमीशन, सेन्ट्रल ऑफिस, अनामनगर, काठमाँडू, नेपाल
(05) प्रो. डॉ. ज्ञानचंद खिमेसरा .... प्राचार्य, शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, मंदसौर (म.प्र.) भारत
(06) प्रो. डॉ. प्रमोद कुमार राघव .... शोध निदेशक, ज्योति विद्यापीठ महिला विश्व विद्यालय, जयपुर (राज.) भारत
(07) प्रो. डॉ. एन.एस.राव. .... संचालक, जनार्दनराय नागर राजस्थान विद्यापीठ विश्वविद्यालय, उदयपुर (राज.) भारत
(08) प्रो. डॉ. अनूप व्यास. .... (पूर्व) संकायाध्यक्ष, वाणिज्य, देवी अहिल्या विश्व विद्यालय, इंदौर (म.प्र.) भारत
(09) प्रो. डॉ. पी.पी. पाण्डे .... संकायाध्यक्ष, वाणिज्य (डीन), अवधेश प्रतापसिंह विश्वविद्यालय, रीवा (म.प्र.) भारत
(10) प्रो. डॉ. संजय भयानी. .... अध्यक्ष, व्यवसाय प्रबंध विभाग, सौराष्ट्र विश्व विद्यालय, राजकोट (गुजरात) भारत
(11) प्रो. डॉ. प्रताप राव कदम .... अध्यक्ष, वाणिज्य, शासकीय कन्या स्नातकोत्तर महाविद्यालय, खण्डवा (म.प्र.) भारत
(12) प्रो. डॉ. बी.एस. झरे . ... प्राध्यापक वाणिज्य विभाग, श्री शिवाजी महाविद्यालय, आकोला (महाराष्ट्र) भारत
(13) प्रो. डॉ. राकेश शर्मा .... अध्यक्ष, अर्थशास्त्र विभाग, राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, गुड़गांव (हरियाणा) भारत
(14) प्रो. डॉ. संजय खरे .... प्राध्यापक, समाजशास्त्र विभाग, शास. स्वशासी कन्या स्नात. उत्कृष्टता महा., सागर (म.प्र.) भारत
(15) प्रो. डॉ. आर.पी. उपाध्याय .... परीक्षा नियंत्रक, शासकीय कमलाराजे कन्या स्वशासी स्नातकोत्तर महा., ग्वालियर (म.प्र.) भारत
(16) प्रो. डॉ. प्रदीप कुमार शर्मा .... प्राध्यापक, वाणिज्य विभाग, शासकीय हमीदिया कला एवं वाणिज्य महा., भोपाल (म.प्र.) भारत
(17) प्रो. अखिलेश जाधव .... प्राध्यापक, भौतिकी, शासकीय जे. योगानन्दम् छत्तीसगढ़ महाविद्यालय, रायपुर (छत्तीसगढ़) भारत
(18) प्रो. डॉ. कमल जैन .... प्राध्यापक, वाणिज्य, शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, खरगोन (म.प्र.) भारत
(19) प्रो. डॉ.डी.एन. खड़से .... प्राध्यापक, वाणिज्य, धनवते नेशनल कॉलेज, नागपुर (महाराष्ट्र) भारत
(20) प्रो.डॉ. वन्दना जैन .... प्राध्यापक, हिन्दी, शासकीय कालिदास कन्या महाविद्यालय, उज्जैन (म.प्र.) भारत
(21) प्रो. डॉ. हरदयाल अहिरवार .... प्राध्यापक, अर्थशास्त्र, शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, शहडोल (म.प्र.) भारत
(22) प्रो. डॉ. शारदा त्रिवेदी .... सेवानिवृत्त प्राध्यापक, गृहविज्ञान, इंदौर (म.प्र.) भारत
(23) प्रो. डॉ. उषा श्रीवास्तव .... अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, आचार्य इंस्टीट्यूट ऑफ ग्रेच्यूट स्टडी. सोलदेवानली, बैंगलुरू (कर्ना.) भारत
(24) प्रो. डॉ. गणेशप्रसाद दावरे .... प्राध्यापक, वाणिज्य, शासकीय महाविद्यालय, बड़वाह (म.प्र.) भारत
(25) प्रो. डॉ. एच.के. चौरसिया .... प्राध्यापक, वनस्पति, टी.एन.वी. महाविद्यालय, भागलपुर (बिहार) भारत
(26) प्रो. डॉ. विवेक पटेल .... प्राध्यापक, वाणिज्य, शासकीय महाविद्यालय, कोतमा, जिला अनूपपुर (म.प्र.) भारत
(27) प्रो. डॉ. दिनेशकुमार चौधरी .... प्राध्यापक, वाणिज्य, राजमाता सिन्धिया शासकीय कन्या महविद्यालय, छिन्दवाड़ा (म.प्र.) भारत
(28) प्रो. डॉ. आर.के. गौतम............ प्राध्यापक ,वाणिज्य, शासकीय मानकुंवर बाई कला एवं वाणिज्य महाविद्यालय, जबलपुर (म.प्र.) भारत
(29) प्रो. डॉ. जितेन्द्र के. शर्मा........... प्राध्यापक, वाणिज्य एवं प्रबंध, महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय केन्द्र, पालवाल (हरियाणा) भारत
(30) प्रो. डॉ. आर.पी. सहारिया......... प्राध्यापक, अर्थशास्त्र, शासकीय जे.एम.पी. महाविद्यालय तख्तपुर जिला,बिलासपुर (छ.ग.) भारत
(31) प्रो. डॉ. गायत्री वाजपेयी........... प्राध्यापक, हिन्दी, शासकीय महाराजा स्वशासी स्नातकोत्तर महाविद्यालय, छतरपुर (म.प्र.) भारत
(32) प्रो. डॉ. अविनाश शेन्द्रे............ विभागाध्यक्ष, अर्थशास्त्र, प्रगति कला एवं वाणिज्य महाविद्यालय, डोम्बीवली, मुम्बई (महाराष्ट्र) भारत
(33) प्रो. डॉ. जी.सी. मेहता .... अध्यक्ष, अध्ययन मण्डल वाणिज्य, देवी अहिल्या विश्वविद्याय, इंदौर (म.प्र.) भारत
(34) प्रो.डॉ. बी.एस. मक्कड़ .... अध्यक्ष, अध्ययन मण्डल वाणिज्य, विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन (म.प्र.) भारत
(35) प्रो.डॉ. पी.पी. मिश्रा .... विभागाध्यक्ष, गणित, छत्रसाल शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, पन्ना, (म.प्र.) भारत
(36) प्रो.डॉ. सुनील कुमार सिकरवार.... प्राध्यापक, रसायन, शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, झाबुआ (म.प्र.) भारत
(37) प्रो.डॉ. के.एल. साहू................ प्राध्यापक, इतिहास, शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, नरसिंहपुर (म.प्र.) भारत
(38) प्रो.डॉ. मालिनी जॉनसन .... प्राध्यापक, वनस्पति, शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, महू (म.प्र.) भारत
(39) प्रो.डॉ. विशाल पुरोहित .... एम.एल.बी. शासकीय कन्या स्नातकोत्तर महाविद्यालय, किला मैदान, इन्दौर (म.प्र.) भारत

सम्पादकीय सलाहकार मण्डल (Editorial Advisory Board, INDIA) मानद्

(01) प्रो. डॉ. नरेन्द्र श्रीवास्तव..........प्रसिद्ध वैज्ञानिक 'इसरो' बैंगलुरू (कर्नाटक) भारत

(02) प्रो. डॉ. आदित्य लूनावत ....निदेशक, स्वामी विवेकानंद कॅरियर मार्गदर्शन प्रकोष्ठ उच्च शिक्षा विभाग, म.प्र. शासन, इंदौर (म.प्र.) भारत

(03) प्रो. डॉ. संजय जैन ....सहायक नियंत्रक, म.प्र. व्यावसायिक परीक्षा मंडल भोपाल (म.प्र.) भारत

(04) प्रो. डॉ.एस.के. जोशी ....प्राचार्य, शासकीय कला एवं वाणिज्य महाविद्यालय रतलाम (म.प्र.) भारत

(05) प्रो. डॉ. जे.पी.एन. पाण्डेय........प्राचार्य, शासकीय स्वशासी कन्या स्नातकोत्तर उत्कृष्ता महाविद्यालय, सागर (म.प्र.) भारत

(06) प्रो. डॉ. सुमित्रा वास्केल ....प्राचार्य, शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, खरगोन (म.प्र.) भारत

(07) प्रो. डॉ. पी.आर. चन्देलकर ......प्राचार्य, शासकीय स्वशासी स्नातकोत्तर महाविद्यालय, छिन्दवाड़ा (म.प्र.) भारत

(08) प्रो. डॉ. मंगल मिश्र ....प्राचार्य, श्री क्लॉथ मार्केट, कन्या वाणिज्य महाविद्यालय, इन्दौर (म.प्र.) भारत

(09) प्रो. डॉ.आर.के. भट्ट ....प्राचार्य, शासकीय महिला महाविद्यालय, नरसिंहपुर (म.प्र.) भारत

(10) प्रो. डॉ. अशोक वर्मा ....प्राचार्य एवं संकायाध्यक्ष, वाणिज्य (डीन) शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, सेंधवा (म.प्र.) भारत

(11) प्रो. डॉ. टी.एम. खान ....प्राचार्य, शासकीय महाविद्यालय, धामनोद, जिला-धार (म.प्र.) भारत

(12) प्रो. डॉ. राकेश ढण्ड ....संकायाध्यक्ष, विद्यार्थी कल्याण विभाग विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन (म.प्र.) भारत

(13) प्रो. डॉ. अनिल शिवानी...........अध्यक्ष, वाणिज्य एवं प्रबंध विभाग श्री अटल बिहारी वाजपेयी हिंदी विश्वविद्यालय भोपाल (म.प्र.) भारत

(14) प्रो. डॉ. पद्मसिंह पटेल ....अध्यक्ष, वाणिज्य विभाग शासकीय महाविद्यालय महिदपुर (म.प्र.) भारत

(15) प्रो. डॉ. मंजु दुबे....................संकायाध्यक्ष (डीन), गृह विज्ञान संकाय, जीवाजी विश्वविद्यालय ग्वालियर (म.प्र.) भारत

(16) प्रो. डॉ.ए.के. चौधरी ....प्राध्यापक, मनोविज्ञान, राजकीय मीरा कन्या महाविद्यालय, उदयपुर (राज.) भारत

(17) प्रो. डॉ. के.एल. जाट..............प्राध्यापक एवं अध्यक्ष, भौतिकी विभाग शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, नीमच (म.प्र.) भारत

(18) प्रो. डॉ. प्रदीप सिंह राव ....प्राध्यापक एवं अध्यक्ष, राजनीति विभाग शासकीय महाविद्यालय, सैलाना, जिला-रतलाम (म.प्र.) भारत

****

निर्णायक मण्डल (Referee Board) मानद्

*** विज्ञान संकाय ***

गणितः- .... (1) **प्रो. डॉ.वी.के. गुप्ता,** संचालक वैदिक गणित एवं शोध संस्थान, उज्जैन (म.प्र.)

भौतिकीः-....................... (1) **प्रो. डॉ. आर.सी. दीक्षित**, शासकीय होल्कर विज्ञान महाविद्यालय, इन्दौर (म.प्र.)
(2) **प्रो.डॉ. रवि कटारे,** शासकीय आदर्श विज्ञान महाविद्यालय, जबलपुर (म.प्र.)

कम्प्यूटर विज्ञानः- .... (1) **प्रो. डॉ. उमेश कुमार सिंह** अध्यक्ष कम्प्यूटर अध्ययनशाला, विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन (म.प्र.)

रसायनः-....................... (1) **प्रो. डॉ. मनमीत कौर मक्कड़,** शासकीय कालिदास कन्या महाविद्यालय, उज्जैन (म.प्र.)

वनस्पतिः- .... (1) **प्रो. डॉ. सुचिता जैन,** राजकीय महिला स्नातकोत्तर महाविद्यालय, कोटा (राज.)
(2) **प्रो.डॉ. अखिलेश आयाची,** शासकीय आदर्श विज्ञान महाविद्यालय, जबलपुर (म.प्र.)

प्राणिकीः- .... (1) **प्रो.डॉ. मंजुलता शर्मा,** एम.एस.जे., राजकीय महाविद्यालय, भरतपुर (राज.)
(2) **प्रो. डॉ. अमृता खत्री,** माता जीजाबाई शासकीय कन्या स्नातकोत्तर महाविद्यालय, मोती तबेला, इन्दौर (म.प्र.)

सांख्यिकीः- .... (1) **प्रो. डॉ. रमेश पण्ड्या,** शासकीय कला एवं विज्ञान महाविद्यालय, रतलाम (म.प्र.)

सैन्य विज्ञानः- .... (1) **प्रो. डॉ. कैलाश त्यागी,** शासकीय मोतीलाल विज्ञान महाविद्यालय, भोपाल (म.प्र.)

जीव रसायनः-................. (1) **डॉ. कंचन डींगरा,** शासकीय एम.एच. गृह विज्ञान महाविद्यालय, जबलपुर (म.प्र.)

भूगर्भ शास्त्रः- .... (1) **प्रो. डॉ. आर.एस. रघुवंशी,** शासकीय मोतीलाल विज्ञान महाविद्यालय, भोपाल (म.प्र.)
(2) **प्रो. डॉ. सुयश कुमार,** शासकीय आदर्श महाविद्यालय, ग्वालियर (म.प्र.)

चिकित्सा विज्ञानः-............ (1) **डॉ. एच.जी. वरूधकर,** आर.डी. गारड़ी मेडिकल महाविद्यालय, उज्जैन (म.प्र.)

*** वाणिज्य संकाय ***

वाणिज्य :- .... (1) **प्रो. डॉ. पी.के. जैन,** शासकीय हमीदिया महाविद्यालय, भोपाल (म.प्र.)
(2) **प्रो. डॉ. शैलेन्द्र भारल ,** शासकीय कालिदास कन्या महाविद्यालय, उज्जैन (म.प्र.)
(3) **प्रो. डॉ. लक्ष्मण परवाल,** शासकीय वाणिज्य महाविद्यालय, रतलाम (म.प्र.)
(4) **प्रो. डॉ. सीता चतुर्वेदी,** शा. महारानी लक्ष्मी बाई कन्या स्नातकोत्तर (स्वशासी)महाविद्यालय, भोपाल (म.प्र.)

*** प्रबंध एवं व्यवसाय प्रशासन संकाय ***

प्रबंध :- .... (1) **प्रो. डॉ. रामेश्वर सोनी**, अध्यक्ष अध्ययन शाला, विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन (म.प्र.)
(2) **प्रो. डॉ. आनन्द तिवारी ,** शासकीय स्वशासी स्नातकोत्तर कन्या उत्कृष्टता महाविद्यालय, सागर (म.प्र.)

मानव संसाधनः- .... (1) **प्रो. डॉ. हरविन्दर सोनी**, पैसेफिक बिजनेस स्कूल, उदयपुर (राज.)

व्यवसाय प्रशासनः- .... (1) **प्रो. डॉ. कपिलदेव शर्मा ,** राजकीय महिला स्नातकोत्तर महाविद्यालय, कोटा (राज.)

*** विधि संकाय ***

विधिः- .... (1) **प्रो. डॉ. एस.एन. शर्मा,** प्राचार्य, शासकीय माधव विधि महाविद्यालय, उज्जैन (म.प्र.)
(2) **प्रो. डॉ. नरेन्द्र कुमार जैन,** प्राचार्य श्री जवाहरलाल नेहरू स्नातकोत्तर विधि महाविद्यालय, मंदसौर (म.प्र.)

*** कला संकाय ***

अर्थशास्त्रः-..................... (1) **प्रो. डॉ. पी.सी. रांका,** श्री सीताराम जाजू शासकीय कन्या महाविद्यालय, नीमच (म.प्र.)
(2) **प्रो. डॉ. जे.पी. मिश्रा,** शासकीय महाराजा स्वशासी स्नातकोत्तर महाविद्यालय, छतरपुर (म.प्र.)
(3) **प्रो. डॉ. अंजना जैन,** एम.एल.बी. शासकीय कन्या स्नातकोत्तर महाविद्यालय, किला मैदान, इन्दौर (म.प्र.)

राजनीतिः- .... (1) **प्रो. डॉ. रवींद्र सोहोनी,** शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, मंदसौर (म.प्र.)
(2) **प्रो. डॉ. अनिल जैन,** शासकीय कन्या महाविद्यालय, रतलाम (म.प्र.)
(3) **प्रो. डॉ. सुलेखा मिश्रा,** मानकुंवर बाई शासकीय कला एवं वाणिज्य महाविद्यालय, जबलपुर (म.प्र.)

दर्शनशास्त्रः- .... (1) **प्रो. डॉ. हेमन्त नामदेव,** शासकीय माधव कला-वाणिज्य-विधि महाविद्यालय, उज्जैन (म.प्र.)

समाजशास्त्र:- .... (1) **प्रो. डॉ. आशुतोष व्यास,** राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, चित्तौड़गढ़ (राज.)
(2) **प्रो. डॉ. एच.एल. फुलवरे,** शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, धार (म.प्र.)
(3) **प्रो. डॉ. इन्दिरा बर्मन ,** शासकीय गृह विज्ञान महाविद्यालय, होशंगाबाद (म.प्र.)
(4) **प्रो. डॉ. उमा लवानिया ,** शासकीय कन्या महाविद्यालय, बीना, जिला-सागर (म.प्र.)

हिन्दी:- .... (1) **प्रो. डॉ. चन्दा तलेरा जैन,** अध्यक्ष अध्ययन मण्डल, देवी अहिल्या विश्वविद्यालय, इन्दौर (म.प्र)
(2) **प्रो. डॉ. जया प्रियदर्शनी शुक्ला,** वनस्थली विद्यापीठ (राज.)
(3) **प्रो. डॉ. कला जोशी,** श्री अटल बिहारी वाजपेयी शासकीय कला एवं वाणिज्य महाविद्यालय, इन्दौर (म.प्र.)
(4) **प्रो. डॉ. रमेश टण्डन,** महात्मा गाँधी शासकीय महाविद्यालय, खरसिया, जिला - रायगढ़ (छ.ग.)

अंग्रेजी:- .... (1) **प्रो. डॉ. प्रशांत मिश्रा**, शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, नीमच (म.प्र.)
(2) **प्रो. डॉ. अजय भार्गव,** शासकीय महाविद्यालय, बड़नगर (म.प्र.)
(3) **प्रो. डॉ. मंजरी अग्निहोत्री,** शासकीय कन्या महाविद्यालय, सीहोर (म.प्र.)

संस्कृत:- .... (1) **प्रो. डॉ. भावना श्रीवास्तव,** शासकीय स्वशासी महारानी लक्ष्मीबाई कन्या स्नातकोत्तर महाविद्यालय, भोपाल (म.प्र.)
(2) **प्रो. डॉ. बालकृष्ण प्रजापति,** शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, गंजबासौदा जिला विदिशा (म.प्र.)

इतिहास:- .... (1) **प्रो. डॉ. नवीन गिडियन,** शासकीय स्वशासी कन्या स्नातकोत्तर उत्कृष्टता महाविद्यालय, सागर (म.प्र.)

भूगोल:- .... (1) **प्रो. डॉ. राजेन्द्र श्रीवास्तव** शासकीय महाविद्यालय, पिपलियामण्डी, जिला मंदसौर (म.प्र.)
(2) **प्रो. डॉ. अर्चना भार्गव,** शासकीय स्वशासी स्नातकोत्तर महाविद्यालय, छिन्दवाड़ा (म.प्र.)

मनोविज्ञान:- .... (1) **प्रो. डॉ. कामना वर्मा,** प्राचार्य, शासकीय राजमाता सिंधिया कन्या स्नातकोत्तर महाविद्यालय, छिन्दवाड़ा (म.प्र.)
(2) **प्रो. डॉ. सरोज कोठारी,** शासकीय महारानी लक्ष्मीबाई कन्या स्नातकोत्तर महाविद्यालय, इंदौर (म.प्र.)

चित्रकला:- .... (1) **प्रो. डॉ. अल्पना उपाध्याय,** शासकीय माधव कला-वाणिज्य-विधि महाविद्यालय उज्जैन (म.प्र.)
(2) **प्रो. डॉ. रेखा श्रीवास्तव,** महारानी लक्ष्मीबाई शासकीय कन्या स्नातकोत्तर महाविद्यालय, भोपाल (म.प्र.)

संगीत:- .... (1) **प्रो. डॉ. भावना ग्रोवर (कथक),** सुभारती विश्व विद्यालय मेरठ (उ.प्र.)
(2) **प्रो. डॉ. श्रीपाद अरोणकर,** राजमाता सिन्धिया शासकीय कन्या महाविद्यालय, छिन्दवाडा (म.प्र.)

****** गृह विज्ञान संकाय ******

आहार एवं पोषण विज्ञान:- .... (1) **प्रो.डॉ. प्रगति देसाई,** शासकीय महारानी लक्ष्मीबाई कन्या स्नातकोत्तर महाविद्यालय, इंदौर (म.प्र.)
(2) **प्रो. डॉ. मधु गोयल,** स्वामी केशवानन्द गृह विज्ञान महाविद्यालय, बीकानेर (राज.)
(3) **प्रो. डॉ. संध्या वर्मा,** शासकीय कला एवं वाणिज्य महाविद्यालय, रायपुर (छ.ग.)

मानव विकास:-................. (1) **प्रो. डॉ. मीनाक्षी माथुर,** अध्यक्ष, जयनारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर (राज.)
(2) **प्रो. डॉ. आभा तिवारी,** अध्यक्ष अध्ययन मण्डल रानी दुर्गावती विश्वविद्यालय, जबलपुर (म.प्र.)

पारिवारिक संसाधन प्रबंध:- ... (1) **प्रो. डॉ. मंजु शर्मा,** माता जीजाबाई शासकीय कन्या स्नातकोत्तर महाविद्यालय, मोती तबेला, इंदौर (म.प्र.)
(2) **प्रो. डॉ. नम्रता अरोरा,** वनस्थली विद्यापीठ (राज.)

****** शिक्षा संकाय ******

शिक्षा .... (1) **प्रो. डॉ. मनोरमा माथुर,** प्राचार्य, अरावली शिक्षा महाविद्यालय, फरीदाबाद (हरियाणा)
(2) **प्रो. डॉ. एन.एम.जी. माथुर,** प्राचार्य एवं डीन पेसेफिक शिक्षा महाविद्यालय, उदयपुर (राज.)
(3) **प्रो. डॉ. अर्चना श्रीवास्तव,** बी.सी.जी. शिक्षा महाविद्यालय, देवास (म.प्र.)

****** शारीरिक शिक्षा संकाय ******

शारीरिक शिक्षा .... (1) **प्रो. डॉ. अक्षयकुमार शुक्ला,** अध्यक्ष शारीरिक शिक्षा पेसेफिक विश्वविद्यालय, उदयपुर (राज.)

****** ग्रन्थालय विज्ञान संकाय ******

ग्रन्थालय विज्ञान .... (1) **डॉ. अनिल सिरौठिया,** शासकीय महाराजा महाविद्यालय, छतरपुर (म.प्र.)

प्रवक्ता साथी (मानद्)

(01) प्रो. डॉ. आर.के. गुजेटिया .... शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, नीमच (म.प्र.)
(02) प्रो. श्रीमती विजया वधवा .... शासकीय कन्या महाविद्यालय, नीमच (म.प्र.)
(03) डॉ. सुरेंद्र शक्तावत .... ज्ञानोदय इंस्टीट्यूट ऑफ मेनेजमेंट एंड टेक्नोलॉजी, नीमच (म.प्र.)
(04) प्रो. डॉ. देवीलाल अहीर .... शासकीय महाविद्यालय, जावद, जिला नीमच (म.प्र.)
(05) श्री आशीष द्विवेदी .... शासकीय महाविद्यालय, मनासा, जिला नीमच (म.प्र.)
(06) प्रो. डॉ. मनोज महाजन .... शासकीय महाविद्यालय, सोनकच्छ, जिला देवास (म.प्र.)
(07) श्री उमेश शर्मा .... कृष्णा शिक्षा महाविद्यालय, जावी, जिला- नीमच (म.प्र.)
(08) प्रो. डॉ. एस.पी. पंवार .... शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, मंदसौर (म.प्र.)
(09) प्रो. डॉ. पूरालाल पाटीदार .... शासकीय कन्या महाविद्यालय, मंदसौर (म.प्र.)
(10) प्रो. डॉ. क्षितिज पुरोहित .... जैन कला-वाणिज्य-विज्ञान महाविद्यालय, मंदसौर (म.प्र.)
(11) प्रो. डॉ.एन.के. पाटीदार .... शासकीय महाविद्यालय, पिपलियामंडी, जिला मन्दसौर (म.प्र.)
(12) प्रो. डॉ. वाय.के. मिश्रा .... शासकीय कला एवं विज्ञान महाविद्यालय, रतलाम (म.प्र.)
(13) प्रो. डॉ. सुरेश कटारिया .... शासकीय कन्या महाविद्यालय, रतलाम (म.प्र.)
(14) प्रो. डॉ. अभय पाठक .... शासकीय वाणिज्य महाविद्यालय, रतलाम (म.प्र.)
(15) प्रो. डॉ. मालसिंह चौहान .... शासकीय महाविद्यालय, सैलाना, जिला रतलाम (म.प्र.)
(16) प्रो. डॉ. गेंदालाल चौहान .... शासकीय विक्रम महाविद्यालय, खाचरौद, जिला उज्जैन (म.प्र.)
(17) प्रो. डॉ. प्रभाकर मिश्र .... शासकीय महाविद्यालय, महिदपुर, जिला उज्जैन (म.प्र.)
(18) प्रो. डॉ. प्रकाश कुमार जैन .... शासकीय माधव कला वाणिज्य विधि महाविद्यालय, उज्जैन (म.प्र.)
(19) प्रो. डॉ. कमला चौहान .... शासकीय कालिदास कन्या महाविद्यालय, उज्जैन (म.प्र.)
(20) प्रो. डॉ.आभा दीक्षित .... शासकीय कन्या स्नातकोत्तर महाविद्यालय, उज्जैन (म.प्र.)
(21) प्रो. डॉ. पंकज माहेश्वरी .... शासकीय महाविद्यालय, तराना, जिला उज्जैन (म.प्र.)
(22) प्रो. डॉ. डी.सी. राठी .... स्वामी विवेकानंद कॅरियर मार्गदर्शन प्रकोष्ठ, उच्च शिक्षा विभाग, म.प्र. शासन, इंदौर
(23) प्रो. डॉ. अनिता गगराड़े .... शासकीय होलकर विज्ञान महाविद्यालय, इन्दौर (म.प्र.)
(24) प्रो. डॉ. संजय पंडित .... शासकीय एम.जे.बी. कन्या स्नातकोत्तर महाविद्यालय, मोती तबेला, इन्दौर (म.प्र.)
(25) प्रो. डॉ. रामबाबू गुप्ता .... शासकीय कला एवं वाणिज्य महाविद्यालय, इन्दौर (म.प्र.)
(26) प्रो. डॉ. अंजना सक्सैना .... शासकीय महारानी लक्ष्मीबाई कन्या स्नातकोत्तर महाविद्यालय, इंदौर (म.प्र.)
(27) प्रो. डॉ. सोनाली नरगुन्दे .... पत्रकारिता एवं जनसंचार अध्ययनशाला देवी अहिल्या विश्वविद्यालय, इंदौर (म.प्र.)
(28) प्रो. डॉ. भारती जोशी .... अजीवन शिक्षण विभाग देवी अहिल्या विश्वविद्यालय, इन्दौर (म.प्र.)
(29) प्रो. डॉ. एम.डी. सोमानी .... शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, महू, जिला इन्दौर (म.प्र.)
(30) प्रो. डॉ. प्रीति भट्ट .... शासकीस एन.एस.पी. विज्ञान महाविद्यालय, इन्दौर (म.प्र.)
(31) प्रो. डॉ. संजय प्रसाद .... शासकीय महाविद्यालय, सांवेर, जिला इन्दौर (म.प्र.)
(32) प्रो. डॉ. मीना मटकर .... सुगनीदेवी कन्या महाविद्यालय, इन्दौर (म.प्र.)
(33) प्रो. मोहन वास्केल .... शासकीय महाविद्यालय, थांदला, जिला - झाबुआ (म.प्र.)
(34) प्रो. डॉ. नितिन सहारिया .... शासकीय महाविद्यालय, कोतमा, जिला अनूपपुर (म.प्र.)
(35) प्रो. डॉ. मंजु राजोरिया .... शासकीय कन्या महाविद्यालय, देवास (म.प्र.)
(36) प्रो. डॉ. शहजाद कुरैशी .... शासकीय नवीन कला एवं विज्ञान महाविद्यालय, मूंदी, जिला खण्डवा (म.प्र.)
(37) प्रो. डॉ. शैल वाला गाँधी .... महारानी लक्ष्मीबाई शासकीय कन्या स्नातकोत्तर महाविद्यालय, भोपाल (म.प्र.)
(38) प्रो. डॉ. प्रवीण ओझा .... श्री भगवत सहाय शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, ग्वालियर (म.प्र.)
(39) प्रो. डॉ.ओमप्रकाश शर्मा .... शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, श्योपुर (म.प्र.)
(40) प्रो. डॉ. एस.के. श्रीवास्तव .... शासकीय विजया राजे कन्या स्नातकोत्तर महाविद्यालय, ग्वालियर (म.प्र.)
(41) प्रो. डॉ. अनूप मोघे .... शासकीय कमलाराजे कन्या स्नातकोत्तर महाविद्यालय, ग्वालियर (म.प्र.)
(42) प्रो. डॉ. हेमलता चौहान .... शासकीय महाविद्यालय, बड़नगर (म.प्र.)
(43) प्रो. डॉ. महेशचन्द्र गुप्ता .... शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, खरगोन (म.प्र.)
(44) प्रो. डॉ. मंगला ठाकुर .... शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, बड़वाह, जिला खरगोन (म.प्र.)
(45) प्रो. डॉ. के.आर. कुम्हेकर .... शासकीय महाविद्यालय, सनावद, जिला खरगोन (म.प्र.)
(46) प्रो. डॉ. आर.के. यादव .... शासकीय कन्या महाविद्यालय, खरगोन (म.प्र.)
(47) प्रो. डॉ. आशा साखी गुप्ता .... शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, बड़वानी (म.प्र.)

(48) प्रो. डॉ. हेमसिंह मण्डलोई ....शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, धार (म.प्र.)
(49) प्रो. डॉ. प्रभा पाण्डेय ....शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, मैहर, जिला- सतना (म.प्र.)
(50) डॉ. राजेश कुमार ....शासकीय महाविद्यालय अमरपाटन, जिला-सतना (म.प्र.)
(51) प्रो. डॉ. रावेन्द्रसिंह पटेल ....शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, सतना (म.प्र.)
(52) प्रो. डॉ. मनोहरलाल गुप्ता ....शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, राजगढ़ ब्यावरा (म.प्र.)
(53) प्रो. डॉ. मधुसुदन प्रकाश ....शासकीय महाविद्यालय, गंजबासोदा, जिला-विदिशा (म.प्र.)
(54) प्रो. युवराज श्रीवास्तव ....सी.वी. रमन विश्वविद्यालय, कोटा-बिलासपुर (छ.ग.)
(55) प्रो. डॉ. सुनील वाजपेयी ....शासकीय तिलक स्नातकोत्तर महाविद्यालय, कटनी (म.प्र.)
(56) प्रो. डॉ. ए.के. पाण्डे ....शासकीय कन्या महाविद्यालय, सतना (म.प्र.)
(57) प्रो. डॉ. यतीन्द्र महोबे.................................शासकीय महिला महाविद्यालय, नरसिंहपुर (म.प्र.)
(58) प्रो. डॉ. शशि प्रभा जैन ....शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, आगर-मालवा (म.प्र.)
(59) प्रो. डॉ. नियाज अंसारी ....शासकीय महाविद्यालय,सिंहावल, जिला सीधी (म.प्र.)
(60) प्रो. डॉ. अर्जुनसिंह बघेल.............................शासकीय महाविद्यालय, हरदा (म.प्र.)
(61) डॉ. सुरेश कुमार विमल...............................शासकीय महाविद्यालय, भैंसादेही, जिला बैतूल (म.प्र.)
(62) प्रो. डॉ. अमरचन्द्र जैन ....शासकीय कला एवं वाणिज्य महाविद्यालय, सागर (म.प्र.)
(63) प्रो. डॉ. रश्मि दुबे ....शासकीय स्वशासी कन्या स्नातकोत्तर उत्कृष्टता महाविद्यालय, सागर (म.प्र.)
(64) प्रो. डॉ. ए.के. जैन ....शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, बीना, जिला- सागर (म.प्र.)
(65) प्रो. डॉ. संध्या टिकेकर ....शासकीय कन्या महाविद्यालय, बीना, जिला- सागर (म.प्र.)
(66) प्रो. डॉ. राजीव शर्मा...................................शासकीय नर्मदा स्नातकोत्तर महाविद्यालय, होशंगाबाद (म.प्र.)
(67) प्रो. डॉ. रश्मि श्रीवास्तव ....शासकीय गृह विज्ञान महाविद्यालय, होशंगाबाद (म.प्र.)
(68) प्रो. डॉ. लक्ष्मीकांत चंदेला ....शासकीय स्वशासी स्नातकोत्तर महाविद्यालय, छिंदवाड़ा (म.प्र.)
(69) प्रो. डॉ. बलराम सिंगोतिया ....शासकीय महाविद्यालय सौंसर, जिला-छिन्दवाड़ा (म.प्र.)
(70) प्रो.डॉ. विम्मी बहल ....शासकीय महाविद्यालय, काला पीपल, जिला - शाजापुर (म.प्र.)
(71) प्रो. डॉ. अमित शुक्ल...................................शासकीय ठाकुर रणमतसिंह महाविद्यालय, रीवा (म.प्र.)
(72) प्रो. डॉ. मीनू गजाला खान ....शासकीय महाविद्यालय, मक्सी, जिला-शाजापुर (म.प्र.)
(73) प्रो. डॉ. पल्लवी मिश्रा.................................शासकीय महाविद्यालय, नई गढ़ी, जिला- रीवा (म.प्र.)
(74) प्रो. डॉ. एम.पी. शर्मा ....शासकीय महाविद्यालय, दतिया (म.प्र.)
(75) प्रो. डॉ. जया शर्मा ....शासकीय कन्या महाविद्यालय, सीहोर (म.प्र.)
(76) प्रो. डॉ. सुशील सोमवंशी ....शासकीय महाविद्यालय, नेपानगर, जिला बुरहानपुर (म.प्र.)
(77) प्रो. डॉ. इशरत खान ....शासकीय महाविद्यालय, रायसेन (म.प्र.)
(78) प्रो. डॉ. कमलेशसिंह नेगी ....शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, सीहोर (म.प्र.)
(79) प्रो. डॉ. भावना ठाकुर ....शासकीय महाविद्यालय रेहटी, जिला सीहोर (म.प्र.)
(80) प्रो. डॉ. केशवमणि शर्मा ....पंडित बालकृष्ण शर्मा नवीन शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, शाजापुर (म.प्र.)
(81) प्रो. डॉ. रेणु राजेश ....शासकीय नेहरु अग्रणी महाविद्यालय, अशोक नगर (म.प्र.)
(82) प्रो. डॉ. अविनाश दुबे.................................शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, खण्डवा (म.प्र.)
(83) प्रो. डॉ. वी.के. दीक्षित................................छत्रसाल शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, पन्ना (म.प्र.)
(84) प्रो. डॉ. राम अवेधश शर्मा ....एम.जे.एस. शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, भिण्ड (म.प्र.)
(85) प्रो. डॉ. मनोज कुमार अग्निहोत्री ....सरोजिनी नायडू शासकीय कन्या स्नातकोत्तर महाविद्यालय, भोपाल (म.प्र.)
(86) प्रो. डॉ. समीर कुमार शुक्ला ....शासकीय चन्द्र विजय महाविद्यालय, डिण्डोरी (म.प्र.)
(87) प्रो. डॉ. आर.सी. पान्टेल.............................शासकीय महाविद्यालय, धामनोद, जिला-धार (म.प्र.)
(88) प्रो. डॉ. अनूप परसाई.................................शासकीय जे. योगानन्दन छत्तीसगढ़ स्नातकोत्तर महाविद्यालय, रायपुर (छत्तीसगढ़)
(89) प्रो. डॉ. अनिलकुमार जैन............................इन्दिरा गाँधी खुला विश्वविद्यालय, कोटा (राज.)
(90) प्रो. डॉ. अर्चना वशिष्ठ ....राजकीय राजऋषि महाविद्यालय अलवर (राज.)
(91) प्रो. डॉ. कल्पना पारीख ....एस.एस.जी. पारीख पी.जी. कॉलेज, जयपुर (राज.)
(92) प्रो. डॉ. गजेन्द्र सिरोहा..............................पेसिफिक विश्वविद्यालय, उदयपुर (राज.)
(93) प्रो. डॉ. कृष्णा पैन्सिया..............................हरिश आंजना महाविद्यालय, छोटीसादड़ी, जिला- प्रतापगढ़ (राज.)
(94) प्रो. डॉ. प्रदीप सिंह ....केंद्रीय विश्व विद्यालय हरियाणा, महेंद्रगढ़ (हरियाणा)
(95) प्रो. डॉ. स्मृति अग्रवाल ....शोध सलाहकार, नई दिल्ली

Impact Of Fly Ash On Vegetation In Umaria District (M.P.)

Nand Kishor Bhagat *

Introduction - Fly ash is chemically heterogeneous in nature on account of being composed of a large number of trace and heavy metals in variable proportions. Field and greenhouse studies have shown that fly ash can help in growing agricultural crops and forestry species. The presence of relatively large concentrations of elements like K, Mg, Fe, Zn, and Ca in available form can alleviate deficiencies of these elements (Ciravolo and Adriano. 1979). Fly ash addition generally has shown positive impact on plant biomass production and nutrient uptake (Ciravolo and Adriano, 1979: Elfving et al., 1981). But it is all depends on control manner otherwise uncontrolled production of fly ash can show negative impact on agricultural field and forest land.

Material and methodology - The fly ash collected from Sanjay Gandhi Thermal Power Station Pali which is situated in Umaria district. Healthy seeds of each vegetable crop namely Onion, Mustard, Maize, Barbati and Tomato were obtained from an authorized supplier of seed from Shahdol (MP). All the seed was sterilized with 0.1% mercury chloride for five minutes to avoid fungal contamination and washed with distilled water for three times and soaked in water for five hours. The soaked seeds were evenly sown in a pot, filled with the concentration of fly ash in soil as 10%, 30%, 50%, 70%, and 100%. 15 different seeds and 15 saplings (control) were planted in each pot of different concentration. The plants were irrigated with tap water at regular routine avoiding over saturation of soil and subsequent seepage of water from the pots. Pots were lined with polythene sheet to avoid leaching.

The 15, 30, and 45 days of Plant Growth Studies and Estimation of Moisture, Carbohydrate, Chlorophyll, Calcium, Phosphorus, and Iron at Different Stages of fly ash.

The estimation of organic and inorganic components will be conducted by Atomic Absorption Spectroscopy, Spectrophotometer and amount of fibers will be determined by gravimetric estimation.

Results - The results of analysis for moisture, chlorophyll, carbohydrate, calcium, phosphorus and iron contents of plants of *Allium cepa*, *Brassica nigra*, *Zea mays*, *Vigna sinensis*, and *Lycopersicum esculentum* when treated with different percentage concentrations of Fly ash. (Table no 1 to 15)

Analysis of 15, 30 and 45 days old pants of all the species treated with lower percentage of Fly ash (either 10% or up to 30%) the percentage of moisture, chlorophyll, carbohydrate, calcium, phosphorus and iron showed promotary character, when compared with control. Where as, in the case of plants treated with higher concentration of Fly ash (From 50% to 100%) shows the decreasing order. From 10% to 100% fly ash, the concentration of fiber shows increasing order when compared with control.

Discussion - In higher doses of fly ash the growth of plants and seedlings retorted. From the above analysis it is very clear that in higher concentration of fly ash the chlorophyll content decreases in all plants, may be due to the osmotic pressure of fly ash and the presence of some ions in excess, which are not taken up by plants during their growth. The concentration of heavy metals increases with the increasing concentration of fly ash. Kabata- Pendias and Adriano (1995), ATSDR 2006. The concentration of calcium, phosphorous and iron found to be decreasing in higher concentration of fly ash, because at high pH medium becomes too much alkaline. In excess alkaline medium and high saline medium, these elements could not absorb by the plants. Excess amount of fly ash or fly ash alone, due to the pozzolanic effect of fly ash the reduction of air in capillary of soil occurs, some enzyme activities such as dehydrogenase and catalase decreased. This is due to increament in pH and dilution effect on the organic substances. Lai et al. (1999). Excess amount of fly ash disturbs the biological properties of soil because they are very sensitive to the factor which disturbs the biological balance of the soil. Page et al (1979), said the fly ash also contain high amount of toxic heavy metal which can hinder the normal metabolic process when add to soil at higher concentration. The plant water stress reduces photosynthesis along with the reduction of leaf area because of the higher concentration of toxic metal present in fly ash. In higher concentration of fly ash, the plant growth retarded because of increasing concentration of salts and minerals which tend to slow down or stop root elongation and hasten maturation. Hayward and Blair (1942), White and Rass (1969) observed that root length is seriously reduced due to the excessively high concentration of salts.

*Asst. Professor (Chemistry) Govt. P.G. College, Satna (M.P.) INDIA

Conclusion - Lower dose of fly ash (up to 30%) improves the fertility of soil, soil texture, Reduces bulk density of soil. Improves water holding capacity, porosity, and Optimize pH value. Provides micronutrients like Fe, Zn, Cu, Mo, B, Mn etc and macronutrients like K, P, Ca, Mg, S, etc. Increases percentage of moisture, carbohydrate and chlorophyll calcium, phosphorus, and iron. Works as a liming agent, Helps in early maturity of crops. Improves the nutritional quality of fruit crops, Reduces pest incidence, Conserves plant nutrients.

References :-

1. Adriano, D.C., Page, A.L., Elseewi, A.A., Chang, A.C., Straugham, I., 1980. Utilization and disposal of fly-ash and coal residues in terrestrial ecosystem: a review Journal of Environmental Quality 9, 333–344.
2. Hodgson. D.R., Holliday, R., 1966. The agronomic properties of pulverized fuel ash. Chem. Ind. 20, 785-790.
3. Martens, D.C., 1971. Availability of plant nutrients in fly ash. Compost Sci 12, 15- 19.
4. Martens, D.C., Beahm, B.R., 1976. Growth of plants in fly ash amended soils. pp 657-664. In J.H. Laber et al., (Ed.). Proc. Int. Ash Utilization Symposium. St. Louis MO, March 24-25, 1976 MERC SP 76/4 FRDA Morgantown Energy ResCentre. Morgantown. WV.
5. Molliner, A.M., Street. J.J., 1982. Effect of fly ash and lime on growth and composition of corn (*Zea mays L.*) on acid sandy soils. Proc. Soil Crop Sci. Soc., Florida, 41, 217-220.
6. Plank, C.O., Martens, D.C., 1974. Boron availability as influenced by application of fly ash to soil. Soil Science Society of America Proceedings 39, 974–977
7. Wong M.H. and Wong J.W.C. (1986). Effect of fly ash and soil microbial activity. Envi. Pollut 40; 127-144.
8. Wong M.H. and Wong J.W.C. (1986). Germination and seedling growth of vegetables, crops in fly ash amended soils .Agric. Ecosyt. Envi. 26;23-

TABLE 1

ANALYSIS OF 15 DAYS OLD *ALLIUM CEPA* PLANT AT DIFFERENT PERCENTAGE OF FLY ASH

S.No.	Conc. Of Fly Ash	Moisture In %	Chlorophyll mg/g	Carbohydrate gm	Fiber gm	Calcium gm	Phosphorus gm	Iron mg
1	Cont.	80.98	1.135	9.76	4.38	0.25	0.072	8.34
2	10%	81.55	1.153	9.88	4.41	0.26	0.082	8.33
3	30%	81	1.12	9.82	4.54	0.24	0.074	8.32
4	50%	78.4	1.07	9.7	4.63	0.21	0.05	8.3
5	70%	77.3	1.04	9.68	4.71	0.18	0.03	8.28
6	100%	76.6	0.95	9.09	4.88	0.17	0.01	8.26

TABLE 2

ANALYSIS OF 15 DAYS OLD *BRASSICA NIGRA* PLANT AT DIFFERENT PERCENTAGE OF FLY ASH

S.No.	Conc. Of Fly Ash	Moisture In %	Chlorophyll mg/	Carbohydrate gm	Fiber gm	Calcium gm	Phosphorus gm	Iron mg
1	Cont.	80.67	1.8	32.78	6.22	0.28	0.54	4.67
2	10%	80.98	1.85	33.56	6.33	0.29	0.56	4.74
3	30%	80.88	1.83	33.23	6.41	0.28	0.55	4.67
4	50%	80.54	1.78	32.49	6.55	0.27	0.49	4.53
5	70%	80.48	1.69	32.17	6.63	0.26	0.48	4.52
6	100%	80.32	1.58	31.55	6.71	0.24	0.46	4.47

TABLE 3

ANALYSIS OF 15 DAYS OLD *ZEA MAYS* PLANT AT DIFFERENT PERCENTAGE OF FLY ASH

S.No.	Conc. Of Fly Ash	Moisture In %	Chlorophyll mg/	Carbohydrate gm	Fiber gm	Calcium gm	Phosphorus gm	Iron mg
1	CONT.	74.98	2.1	19	8.02	0.3	0.25	4.43
2	10%	76.77	2.13	19.45	8.1	0.35	0.27	4.46
3	30%	75.96	2.11	19.07	8.19	0.34	0.25	4.45
4	50%	73.99	2.03	18	8.2	0.28	0.24	4.4
5	70%	72.48	1.97	17.3	8.31	0.26	0.22	4.38
6	100%	72.44	1.9	16.96	8.42	0.23	0.21	4.36

TABLE 4

ANALYSIS OF 15 DAYS OLD *VIGNA SINENSIS* PLANT AT DIFFERENT PERCENTAGE OF FLY ASH

S.No.	Conc. Of Fly Ash	Moisture In %	Chlorophyll mg/	Carbohydrate gm	Fiber gm	Calcium gm	Phosphorus gm	Iron mg
1	CONT.	78.77	1.22	7.9	7.7	0.18	0.5	8.56
2	10%	78.99	1.238	8.55	7.8	0.22	0.53	8.65
3	30%	78.48	1.213	8.08	8.05	0.19	0.51	8.58
4	50%	78.22	1.179	7.88	8.1	0.16	0.45	8.39
5	70%	77.9	1.128	7.4	8.18	0.14	0.38	8.28
6	100%	77.67	1.056	6.8	8.21	0.12	0.36	8.15

TABLE 5

ANALYSIS OF 15 DAYS OLD *LYCOPERSICUM ESCULENTUM* PLANT AT DIFFERENT PERCENTAGE OF FLY ASH

S.No.	Conc. Of Fly Ash	Moisture In %	Chlorophyll mg/	Carbohydrate gm	Fiber gm	Calcium gm	Phosphorus gm	Iron mg
1	CONT.	82.59	1.094	3.3	5.88	0.2	0.07	2.45
2	10%	83.95	1.126	3.9	5.93	0.25	0.13	2.51
3	30%	83.04	1.112	3.6	5.98	0.23	0.078	2.46
4	50%	82.18	1.071	3.2	6.08	0.19	0.06	2.44
5	70%	81.38	0.991	2.9	6.18	0.15	0.04	2.43
6	100%	80.55	0.97	2.4	6.21	0.11	0.032	2.42

TABLE 6

ANALYSIS OF 30 DAYS OLD *ALLIUM CEPA* PLANT AT DIFFERENT PERCENTAGE OF FLY ASH

S.No.	Conc. Of Fly Ash	Moisture In %	Chlorophyll mg/	Carbohydrate gm	Fiber gm	Calcium gm	Phosphorus gm	Iron mg
1	CONT.	81.34	2.207	10.96	4.4	0.26	0.07	8.71
2	10%	81.5	2.282	11.24	4.5	0.3	0.09	8.76
3	30%	81.67	2.168	11.11	4.62	0.28	0.1	8.74
4	50%	79.4	2.085	10.58	4.71	0.25	0.06	8.69
5	70%	78.3	2	10.08	4.8	0.2	0.02	8.68
6	100%	76.6	1.94	9.36	4.9	0.19	0.01	8.66

TABLE 7

ANALYSIS OF 30 DAYS OLD *BRASSICA NIGRA* PLANT AT DIFFERENT PERCENTAGE OF FLY ASH

S.No.	Conc. Of Fly Ash	Moisture In %	Chlorophyll mg/	Carbohydrate gm	Fiber gm	Calcium gm	Phosphorus gm	Iron mg
1	CONT.	82.67	2.21	38.68	6.33	0.26	0.57	4.87
2	10%	82.98	2.23	38.86	6.41	0.3	0.61	4.84
3	30%	81.88	2.19	37.93	6.49	0.29	0.57	4.78
4	50%	81.67	2.15	37.27	6.62	0.23	0.54	4.63
5	70%	80.89	2.097	36.87	6.73	0.22	0.44	4.62
6	100%	80.77	2.056	34.85	6.78	0.2	0.43	4.57

TABLE 8

ANALYSIS OF 30 DAYS OLD *ZEA MAYS* PLANT AT DIFFERENT PERCENTAGE OF FLY ASH

S.No.	Conc. Of Fly Ash	Moisture In %	Chlorophyll mg/	Carbohydrate gm	Fiber gm	Calcium gm	Phosphorus gm	Iron mg
1	CONT.	77.96	2.18	20.02	8.1	0.37	0.26	4.18
2	10%	75.77	2.22	21.3	8.19	0.38	0.3	4.22
3	30%	75.98	2.25	21.04	8.22	0.36	0.28	4.24
4	50%	74.99	2.16	20.01	8.3	0.34	0.24	4.16
5	70%	74.45	2.1	18.96	8.41	0.32	0.2	4.14
6	100%	73.44	2.08	16.88	8.5	0.3	0.19	4.11

TABLE 9
ANALYSIS OF 30 DAYS OLD *VIGNA SINENSIS* PLANT AT DIFFERENT PERCENTAGE OF FLY ASH

S.No.	Conc. Of Fly Ash	Moisture In %	Chlorophyll mg/	Carbohydrate gm	Fiber gm	Calcium gm	Phosphorus gm	Iron mg
1	CONT.	76.22	2.09	18.01	7.79	0.23	0.36	8.58
2	10%	77.9	2.19	18.06	7.88	0.25	0.45	8.62
3	30%	77.67	2.15	18.02	8.1	0.24	0.38	8.59
4	50%	76.02	2.04	17.9	8.18	0.22	0.32	8.44
5	70%	75.9	1.95	17.6	8.21	0.19	0.29	8.42
6	100%	75.07	1.84	17.3	8.28	0.17	0.22	8.39

TABLE 10
ANALYSIS OF 30 DAYS OLD *LYCOPERSICUM ESCULENTUM* PLANT AT DIFFERENT PERCENTAGE OF FLY ASH

S.No.	Conc. Of Fly Ash	Moisture In %	Chlorophyll mg/	Carbohydrate gm	Fiber gm	Calcium gm	Phosphorus gm	Iron mg
1	CONT.	84.19	2.07	3.96	5.91	0.22	0.062	2.78
2	10%	84.45	2.17	4.19	6.07	0.24	0.08	2.85
3	30%	84.34	2.12	4.03	6.12	0.26	0.072	2.87
4	50%	84	2.035	3.44	6.18	0.21	0.06	2.75
5	70%	83.98	1.973	3.02	6.22	0.19	0.05	2.62
6	100%	83.55	1.93	2.98	6.31	0.12	0.031	2.54

TABLE 11
ANALYSIS OF 45 DAYS OLD *ALLIUM CEPA* PLANT AT DIFFERENT PERCENTAGE OF FLY ASH

S.No.	Conc. Of Fly Ash	Moisture In %	Chlorophyll mg/	Carbohydrate gm	Fiber gm	Calcium gm	Phosphorus gm	Iron mg
1	CONT.	82.34	2.22	11.05	4.48	0.27	0.08	8.86
2	10%	82.56	2.28	11.96	4.58	0.31	0.12	8.95
3	30%	82.38	2.25	11.22	4.69	0.28	0.09	8.88
4	50%	81.44	2.195	10.98	4.78	0.27	0.06	8.86
5	70%	81.2	2.11	10.6	4.89	0.24	0.03	8.83
6	100%	81.1	2.04	9.87	4.97	0.23	0.02	8.8

TABLE 12
ANALYSIS OF 45 DAYS OLD *BRASSICA NIGRA* PLANT AT DIFFERENT PERCENTAGE OF FLY ASH

S.No.	Conc. Of Fly Ash	Moisture In %	Chlorophyll mg/	Carbohydrate gm	Fiber gm	Calcium gm	Phosphorus gm	Iron mg
1	CONT.	82.22	2.22	39.08	6.4	0.3	0.59	4.8
2	10%	83.32	2.262	39.66	6.48	0.34	0.6	4.85
3	30%	82.87	2.24	39.33	6.51	0.31	0.62	4.83
4	50%	81.98	2.15	38.67	6.68	0.29	0.56	4.8
5	70%	81.89	2.103	37.47	6.79	0.25	0.51	4.72
6	100%	80.87	2.05	35.15	6.81	0.23	0.5	4.67

TABLE 13
ANALYSIS OF 45 DAYS OLD *ZEA MAYS* PLANT AT DIFFERENT PERCENTAGE OF FLY ASH

S.No.	Conc. Of Fly Ash	Moisture In %	Chlorophyll mg/	Carbohydrate gm	Fiber gm	Calcium gm	Phosphorus gm	Iron mg
1	CONT.	74.99	2.24	21.94	8.19	0.47	0.35	4.51
2	10%	75.45	2.28	22.99	8.21	0.48	0.39	4.56
3	30%	75.46	2.26	21.56	8.31	0.5	0.36	4.5
4	50%	74	2.22	21.03	8.44	0.46	0.34	4.2
5	70%	73.98	2.19	19.65	8.52	0.43	0.32	3.89
6	100%	73.55	2.11	18.76	8.61	0.39	0.3	3.72

TABLE 14

ANALYSIS OF 45 DAYS OLD *VIGNA SINENSIS* PLANT AT DIFFERENT PERCENTAGE OF FLY ASH

S.No.	Conc. Of Fly Ash	Moisture In %	Chlorophyll mg/	Carbohydrate gm	Fiber gm	Calcium gm	Phosphorus gm	Iron mg
1	CONT.	78.67	2.123	18.84	7.82	0.22	0.46	8.55
2	10%	78.98	2.2	19.09	7.91	0.32	0.59	8.64
3	30%	78.78	2.178	18.98	8.19	0.29	0.54	8.58
4	50%	77.67	2.1	18.08	8.26	0.178	0.39	8.53
5	70%	76.89	2.017	17.94	8.37	0.176	0.38	8.52
6	100%	76.77	1.97	17.77	8.41	0.17	0.34	8.47

TABLE 15

ANALYSIS OF 45 DAYS OLD *LYCOPERSICUM ESCULENTUM* PLANT AT DIFFERENT PERCENTAGE OF FLY ASH

S.No.	Conc. Of Fly Ash	Moisture In %	Chlorophyll mg/	Carbohydrate gm	Fiber gm	Calcium gm	Phosphorus gm	Iron mg
1	CONT.	83.24	2.09	4.75	6.06	0.24	0.022	3.384
2	10%	83.98	2.163	4.84	6.13	0.27	0.042	3.392
3	30%	83.55	2.13	4.79	6.2	0.25	0.036	3.387
4	50%	83	2.07	3.95	6.28	0.22	0.019	3.382
5	70%	82.98	2.03	3.68	6.35	0.2	0.018	3.38
6	100%	82.55	1.91	3.06	6.46	0.17	0.017	3.379

****

Study Of Copper Plated Mild Steel With Special Reference To Corrosion Resistance Property

Dr. Bindu Gandhi *

Abstract - The corrosion resistance of Mild steel electroplated with copper has been evaluated in various chemical media like aqueous solution containing 3.5% NaCl,tap water ,rainwater 10%NaOH etc. The corrosion resistance of mild steel electroplated with copper in these media increased after electroplating with copper.
Keywords - corrosion prevention, electroplating.

Introduction - Iron, in its various forms, is exposed to all kinds of environments. It tends to be highly reactive with most of them because of its natural tendency to form iron oxide. When it does resist corrosion it is due to the formation of a thin film of protective iron oxide on its surface by reaction with oxygen of the air. This film can prevent rusting in air at 99% RH, but a contaminant such as acid rain may destroy the effectiveness of the film and permit continued corrosion. Thicker films of iron oxide may act as protective coatings, and after the first year or so, could reduce the corrosion rate significantly.

Coating is a covering that can be applied to the surface of an object, normally called as substrate. The purpose of application of coating is the value enhancement of the substrate by improving its appearance, corrosion resistant property, wear resistance, etc. Process of coating involves application of thin film of functional material to a substrate. The functional material may be metallic or non-metallic; organic or inorganic; solid, liquid or gas. This can be genuine criteria of classification of coatings.

Copper plating is an electro-chemical process, in which a layer of copper is deposited on the metallic surface of a solid through the use of electric current.

Copper plating is an important process because:

1. It provides valuable corrosion protection.
2. It improves wear resistance of the surface.
3. It has excellent adhesion to most base metals, improving ductility of coated products.
4. It has excellent heat conductivity and electrical conductivity, making the plated products suitable for precision engineering applications, such as printed circuit boards (PCB).

Copper Plating - Copper is one of the best electrical conductors. A layer of copper offers an excellent electrical conductivity to many components. As a result, copper plating is used in both the electrical as well as electronics industries. As copper is a soft metal, it can be applied to metal parts that require some flexibility. The copper layer won't peel out, as it maintains adhesion to the metal surface, even under bending conditions. It gives a uniform coverage on most non-ferrous and some of the ferrous base metals. In the process of copper plating, copper sulphate acts as an electrolyte, copper wire dipped in electrolyte works as an anode and an iron rod to be plated is dipped in electrolyte and connected externally as a cathode.

When an electric circuit is switched on and current passes through, the copper sulphate (CuSO4) molecule is split into positive copper ions and negative sulphate (SO4) ions. The positive Cu2 ions are attracted to the cathodic iron rod. When the Cu2 ions reach the cathode, they take 2 electrons, creating neutralized metallic copper, and are then deposited onto the iron rod surface. The copper molecules in the copper anode change to Cu ions, losing 2 electrons. When they enter the electrolyte solution and chemically react with sulphate ions, copper sulphate is produced to re-balance the concentration of the electrolyte.

Copper plating provides excellent wear and corrosion protection of nickel-plated steel parts as an under-coating. As an under-plate it provides an effective barrier between base material and subsequent metal deposits.

Copper plating is applied to fully cleaned as well as pickled steel products, such as steel wire, by the process of electro deposition. The copper layer protects the coated sections against diffusion of carbon or cementation within the sections. Copper plating is also used in protective chrome plating, in which copper forms the intermediate plate. Nickel plating is applied over the copper layer on steel, then a thin coat of chromium is applied for effective corrosion resistance.

Experimental Method - The mild steel is used as a base metal for electroplating experiments. Many test specimens of steel were prepared. The test specimens dimension was 2x2 cm. After complete preparation of specimens they were electroplated with copper.The chemical used were of AR Grade and easily soluble in water. Distilled water was used for preparation of solutions. All the experiments were performed at room temperature

* **Asst.Prof. (Chemistry) M.J.B.P.G.Girls College, Moti Tabela, Indore (M.P.) INDIA**

Corrosion Testing - The corrosion property of different coatings was evaluated qualitatively. The analysis was performed on coated and uncoated specimens. All the specimens were tested in various corrosive media and then compared. Two types of tests were performed to test the corrosion behaviour of specimens.

1. **Atmospheric exposure test.**
2. **Immersion test.**

Before performing tests specimens were immersed and agitated in isopropyl alcohol for 15 seconds dried at laboratory temperature for minimum of one hour, and then tests were performed.

1. Atmospheric exposure test - Uncoated and coated specimens were exposed to open atmosphere. The specimens were weighed before exposure. Exposed time was about three months. The exposed specimens were then physically examined, cleaned and weighed. The uncoated specimens show indication of corrosion where as coated samples appears to be unaffected by exposure to atmosphere.

2. Immersion test - Immersion testing is the most frequently used for evaluating the corrosion of metals. The test was performed on coated and uncoated specimens. Corrosion resistance of different coatings was tested by immersing the specimens in .1 M NaOH, 3.5% NaCl, .1 M H_2SO_4, tap water, distilled water, rain water, acetic acid, acetone, ethyl alcohol, aniline, carbon tetrachloride, phosphoric acid, aqueous ammonia, aqueous H_2S, CO_2 (wet), Cl_2 (wet), SO_2 (wet), Conc. HCl, Conc. H_2SO_4, and Phenol.

The solutions were prepared using standard grade chemicals, diluted in distill water to specified concentrations. Immersion exposure was performed in sealed corrosion flasks containing 150 ml. of each solution. The flasks were maintained in static condition without agitation or aeration. The immersion time was about 170 Hrs. During the immersion period corrosion flasks were monitored. After the completion of immersion duration specimens were taken out from the flasks rinsed with water and observed visually for any rust on the specimens.

Results of corrosion in different corrosive media showed that distilled water is least corrosive. Corrosion rate is greater in acidic media and increases with increase in acid concentration. Corrosion in acidic solution is attributed to the presence of water, air and H^+ ion which accelerated corrosion process.Copper served good resistance to corrosion by all types of water used for test.Copper coated specimens showed corrosion resistance to NaCl, NaOH and organic liquids .1 M HCl did not corrode copper but concentrate HCl showed corrosive action

Conclusion - Results showed significant increase in corrosion resistance was achieved for the plated samples compared with that of unplated. Some of the specimens did not make good performance in corrosion test. It might be due to coating imperfection. Some of the specimens showed little corrosion attack for longer duration of exposure in the corrosive media. The severity of attack decreases with increasing weight of deposited metal on specimens.

References :-

1. Schlesinger, M., Paunovic, M., “Modern electroplating (4th edition) Wiley, New York (2000).
2. Uhlig, H.H., “Corrosion and corrosion control” 2nd ed., John Wiley & Sons, Inc. New York (1971).
3. Tomashov, N.D., “Teory of Corrosion and Protection of Metals, The Mac Millan Co. New York, (1966).
4. Shrier, L.L., (ed.), “Corrosion”, Halsted Press, John Wiley and Sons, New York (1963).

****

Naveen Shodh Sansar (An International Refereed Research Journal) April to June 2015, Volume - 2
ISSN 2320-8767, E- ISSN 2394-3793, Imapct Factor - 0.715 (2014)

Cultivation Of Medicinal Plants - An Eco-Friendly Approach

Archana Nigam * R.S. Nigam **

Abstract - Sustainable rural development is the management and conservation of the natural resources base, and the orientation of technological and institutional change in such a manner as to assure the attainment and continued satisfaction of human needs for the present and future generations. Such sustainable development, in the agriculture, forestry and fishers sectors, conserves land, water, plant and animal genetic resources, is environmentally non-degrading, technically appropriate, economically viable and socially acceptable.
Key words - Medicinal Plant, A sustainable rural development.

Introduction - World needs, eco-friendly farming systems for sustainable agriculture. This is the need of the present day. There is an urgent need to develop farming techniques, which are sustainable from environmental, production and socioeconomic points of view. The means to guarantee sufficient food production in the next decades and beyond is critical because modern agriculture production throughout the world does not appear to be sustainable in the long-term. The agricultural community is thus setting it hopes on sustainable agriculture, which will maintain the cycles of input-output and ecosystem balance.

Sustainable agriculture is a philosophy based on human goals and on understanding the long-term impact of our activities on the environment and on other species. Use of this philosophy guides our application of prior experience and the latest scientific advances to create integrated, resources-conserving, equitable farming systems. These systems reduce environmental degradation, maintain agricultural productivity, promote economic viability in both the short and long term and maintain stable rural communities and quality of life.

Material And Methods - Sustainable farming uses some form of integrated pest management for pest control, and this can include the use of chemical pesticides that are not used by organic farmers. Thus, sustainable agriculture does not mean a return to the farming methods of the late 1800's.Rather, it combines traditional techniques that stress conservation with modern technologies, such as improved seed, modern equipment for low-tillage practices, integrated pest management that relies heavily on biological control principles, and weed control that depend on crop rotation.

Observation - In the following pages few of the indigenous practices for medicinal plants are described:

1. **Areca nut (Areca Catechu) -** (1) A paste is prepared out of Strychnos nuxvomica leaves and tender coconut water in equal proportions and used as an effective insecticide on areca nut. This is used by the farmers
2. **Cardamom (Elettaria cardamomum) -** The farmers use the leaves of Strychnos nuxvomica are mixed with cow dung and applied to the cardamom plants to destroy root grubs.
3. **Castor(Ricinus communis) -** (1) One Kg. of puffed sorghum is spread around the boundaries of the field to attract the birds which feed on castor semi loopers also. The farmers use this practice.(2) Two kg. of neem leaves are soaked in 2-3 lit. of goat urine and then distilled . About 500 ml. of this distillate is diluted with 15 lit of water and sprayed over castor to control semi looper (Achaes janata) and is being used by the farmers.
4. **Coconut (Cocos nucifera) -** (1) To prevent rats from climbing coconut trees, a larger palm leaf is split along its mid rib; one set of leaflets is wrapped around the trunk below the crown and the other set is wrapped in the opposite direction. It is being used by the farmers (2) By placing fine coral gravel in the crown of coconut trees, the rhinoceros beetle is deterred from burrowing and feeding, used by the farmers. (3) To control flower shedding in coconut, salt is poured on the apical portion of the flower buds and also spread in the root zone and given plenty of water, used by the farmers. (4) The base of coconut trees is covered with coconut fronds to prevent direct sun from drying out the stem and to keep the base cool. Also leaves decompose and turn in to organic manure used by the farmers. The liquid extracted from opium plant (Cannabis & Sativa) and the latex extracted from Ficus spp. are mixed together and poured in to the hole of rhinoceros beetle. To check dropping of immature nuts, a trench is dug at 4 feet distance from the tree and filled with 5 kg. of neem leaves and 25 kg. of green leaf manure and covered with soil.

* Professor (Botany) Govt. P.G. College, Satna (M.P.) INDIA
** Dean (Education) AKS University, Satna (M.P.) INDIA

5. **Coffee (Coffea Arabica)-** (1) Farmers use Ailium sativum and Carica papaya as fungicides against coffee rust.
6. **Garlic(Allium Sativum) -** The farmers store garlic for longtime, by keeping them in a vessenl containing finger millet grains.
7. **Ginger (Zingiber officinale) -** The farmers grow Calotropis spp randomly in the field of Ginger to act as repellant for insect pests
8. **Lemon (Citrus limon) -** The farmers control gummy disease in lemon, castor oil is poured in the water canal while irrigating the plants and 1 kg. of tobacco powder is also sprayed.
9. **Pine apple (Ananas stivus) -** Farmers grow pine apple on rocky places.
10. **Rose (Rosa spp) -** The farmers control termites in rose saplings, they are dipped in mixture of water and latex of Euphorbia nerrifolia (50ml, in 10 ml of water) before planting .Similarly, 100 gms fruits of Sapindus emarginatus are soaked in 1 L of water for 2-3 days . Then the filtrate is sprayed on rose plant on every third day to control leaf curl.
11. **Tobacco(Nicotiana tabacum) -** The farmers eradicating broom rape weed (Orabanche cernua) in tobacco, a drop of ground nut or gingelly oil is placed above the growth during its emergence, Similarly, they prepare a solution, made of 5 L of milk in 100 L of water and sprayed after a month of planting for 1 ac. Of tobacco crop to prevent tobacco mosaic virus.

Result And Discussion - Sustainable agriculture emphasizes the conservation of its own resources. For a farm to be sustainable, it must produce adequate amounts of high-quality foods, be environmentally safe and where appropriate, be profitable. Sustainable farms minimize their purchased inputs (fertilizers, energy and equipment) and rely, as much as possible on the renewable resources of the farm itself .This is especially important in the 90 per cent of farms that exist in the third world, where these inputs are often not available or affordable.

Agriculture ecosystems, unlike the natural ecosystems , are human manipulated ecosystems and regular and sometimes intense disturbances are a major part of economically viable agriculture management systems.

Sustainable agriculture is complex issue associated with producing food while maintaining our biophysical resources including soil, water and biota with no adverse impacts on the wider environment. It should

1 Maintain or improve the production of ‘clean’ food.
2 Maintain or improve the quality of landscapes, which includes soils, water,biota and aesthetics.
3 Have minimal impact on the wide environment.
4 Be economically viable.
5 Be acceptable to society.

References :-

1. FAO(1988)- Medicinal Plant Cultivation 40
2. Rather(1800)- Medicinal Plant Cultivation 41

****

Zooplankton Density And Physico-Chemical Characteristics In Sitapat Pond At Dhar Town (M.P.) India

Dr. Darasingh Waskel *

Abstract - Plankton density and physico–chemical parameters are an important role for evaluating the suitability of water for irrigation and drinking purpose. A study of zooplankton density in Sitapat pond at Dhar town was carried out for a two years seasonly from 2007 to 2008. A total of 17 species were recorded: 8 Rotifers, 4 cladocerans, 3 copepods and 2 Protozoans. Zooplanktons species were identified comparising of four major planktonic groups viz. Rotifera, cladocera, copepod and protozoa.

These groups are represented in order of dominance as Rotifera>Cladocera>Copepoda>Protozoa. The water samples were analyzed for pH, specific conductivity, Alkalinity, Nitrates, phosphate, total hardness, dissolved oxygen and biological oxygen demand.

Key Words - Zooplankton, Physico-chemical characteristics, species.

Introduction - The plankton plays a very important role for maintanance ofthe water body. Plankton refers to microscopic aquatic plants or animal having little or no resistance to water current and living free floating in open or “pelagic waters”. The zooplankton constitute an important link between primary producers and consumers of higher order in the aquatic food chain and food web. They play a major role in energy transfer at secondary level and their composition upon different environmental factors. Plankton is of almost importance in the fresh water ecosystem as these are the main source of energy and having a very high nutritive value (Mishra and Joshi 2003).

In ecologically, zooplankton are one of the most important biotic components influencing all the functional aspects of an aquatic ecosystem, such as food chains, food webs, energy-flow and cycling of matter (Murugan et Al., 1998; Dadhik and Saxena, 1999; Sinha and islam , 2002; Park and Shin, 2007). The zooplankton place an integral role and serves bioindicators and it is a well-suited tool for understanding water pollution status (Ahmed, 1996; Contreras et Al ., 2009). The zooplankton density was identified up to genus level and seasonal variations of total zooplankton in the Sitapat Pond at Dhar town (M.P.) was studied in the years of 2007 to 2008. The group accounted for a contribution of Rotifers 20.2%, cladocerans 12.41 % copepods 11.34 % and Protozoans 6.66% Respectively.

Material And Methods- Sitapat pond is situated about 4.50 km away from Dhar town and is approachable by Dhar-Salkanpur road. This pond is constructed in 1984 is very large pond water to the hole town for drinking purpose. The cathment area of the pond is 2.85 sq.miles. the length of Pond is 570 meter and maximum height of pond Earthen = 16.28 meters, top width of pond Earthen = 3.0 meter.

Water samples were collected from six stations of Sitapat pond in glass bottles seasonally during years 2007-2008.

The plankton samples were collected following Welch (1953) and Lind (1979) by filtering 40 lit. of water through small plankton net made up of bolting silk no. 25 (64 µ mesh size). The concentration was preserved in 5% formalin and lugol’s solution for plankton study respectively. The zooplankton were identified with the help of key’s provided by Edmondson, 1959 and Adoni 1985, APHA,1985.

Counting of the individual zooplankton was done by Sedgwick Rafter cell (1985 – adoni), method using formula.

Zooplankton/lit. = n(V/v) 1/c x 10^3

Where :

n = total no. of individual in observed transacts .

V= volume of the sample in counting cell in mm^3

v = volume of observed transacts in mm^3

C = Concentrationfactor =

$$\frac{\text{Original Volume of Sample(ml)}}{\text{Volume of sample concentration (ml)}}$$

Standard Deviation (SD) :

$$SD = \frac{\sqrt{\Sigma\ (x - x^{-})^{-2}}}{n-1}$$

Density = mean + SD x 10^2

* Department of Zoology, Maharaja Bhoj Govt P.G. College, Dhar (M.P.) INDIA

Where ;

X = Individual reading of parameter

X^- = mean of $\sum x$

n = Number of samples .

Results And Discussion - In the present study the zooplankton population was found tobe comparising of four major groups viz. Rotifers, cladocerans, Copepods and Protozoans. In all 17 species of zooplankton were identified : 8 Rotifers, 4 cladocreans, 3 copepods and 2 Protozones. In the present study the density the of total zooplanktons 2455 no/lit and 2380 no/lit duting 2007 and 2008 respectively. In the Sitapat pond the succession of zooplankton is noticed as Rotifera > cladocera > copepoda > Protozoa. The zooplankton density of selected stations in Sitapat pond are shown in table 01, 02 and 03.

Rotifera - In the present study rotifers recorded as a first dominant group of the total zooplanktons. The rotifers population in the pond contributed 10.12 to 20.01 %. The maximum density of rotifer was recorded during the summer season and minimum in the rainy season . Rotifers are most sensitive bioindicators of water quality and their presence may be used as a reference to the physico – chemical characteristics of water (Hafsa and Gupta 2009). Singh et al.(2009), reported that higher rotifer populations occurs during summer and winter might be dominant due to hypertrophical condition of the pond and high temperature and low level of water.

Cladocera - The group cladocera comprising of water fleas, commonly occurred in almost all the fresh water bodies. Cladocera forms second dominating group of zooplankton in the present study. The cladocera density in contributed 6.38% to 12.41% of total zooplanktons. The maximum density of cladocera was recorded in the summer and minimum in rainy season. Govind (1978), Ganpati and Pathak (1979), Sharma (1993), reported cladoceran population as second dominant group from various fresh water bodies .

Copepods - The copepods are major links in the aquatic ecosystem. The copepods density in this pond contributed 2.97% to 11.34% of total zooplanktons. The maximum density of copepods was observed in the summer season and minimum in the winter season.

Protozoa - Protozoa are also important members in food chain an aquatic ecosystem. In the present study protozoan density in this pond contributed 1.13% to 6.66% of total zooplanktons. The maximum density of protozoans was recorded in the summer season and minimum in the rainy season. Rao (1987), choubey (1990) and Sharma (1993), reported high density of protozoa in summer season.

Conclusion - In the present study it was concluded that there was a continues declining in the number of species due to various anthropogenic activities . Species recorded in the rainy season were fews numbers due to low food availability. As the zooplankton serve as an important link in the food chain and they are the main source of food and other organisms, thus efforts should be done for their biodiversity conservation.

References :-

1. APHA (1975): standard methods for the examination of water, sewage and industrial wastes. 14th Edn. APHA Inc. New York. P. 1193
2. Arora C.H. (1966) : Rotifera as indicators of trophic nature of environments. *Hydrobiologia* 32 (1-2) : 146-159.
3. Bhuiyan , A.S. & Nessa , Q. (1998) : A quantitative study on zooplankton in relation to the physico-chemical conditions of a fresh water fish pond of Rajshani. *Univ. J. Zool. Rajshani. Univ.* 17: 29-37,
4. Chowdhury A.N. Begum. S & Sultana, S. (1989) : Occurrence of seasonal variation of zooplankton in fish pond in relation to some physico-chemical factors. *Bangladesh j. Zool.* 17(2) : 101-106.
5. Choudhary, S. & D.K. (1999) : Singh Zooplankton population of Boosra lake at Mujaffarpur Bihar. *Environ. Ecol.* 17, 444-448
6. Contreras, JJ , S.S.S. Sharma, M. Merino – Ibarra and S Nandini (2009): Seasonal changes, in the rotifer (Rotifera) diversity from a tropiacal high altitude reservoir (Valle de Bravo, Maxico) J. Environ Biol 30, 191-195
7. Fakruzzaman, M., Chowdhury, A.H., Naz, S & Zaman, M. (2001): Zooplankton of some fishponds in Barind Tract in relation to its physico-chemical variables. Univ. j. Zool. Rajshani Univ. 20: 75-80.
8. Gaikwad, SR , KN Ingle and SR Thorat (1980): Study of zooplankton patter and resting egg diversity of recentaly dried waterbodies in north Maharshtra region, J. Environ Biol. 29, 353-356
9. Hasfa S. L. and Gupta S (2009) : Phytoplankton diversity and dynamics of chatla floodplain lake. Barak Valley, Assam North East India – A seasonal study Journal of Environmental Biology , 30(6) 1007-1012.
10. Islam, M.A. chowdhury A.H. & Zamam, M. (1998) : Seasonal occurance of zooplankton in four managed fishponds in Rajshani Univ. j. Zool. Rajshani Uni. 17 : 51-60.
11. Kiran , B.R. , E.T. Puttaiah and D Kamath (2007) : Diversity and seasonal fluctuation of zooplankton in fish pond of Bhadra fish farm, Karnataka, Zoos Print J. 22, 2935-2936
12. Krishnamoorthy , S. Rajalakshmi and D. Sakthivel (2007): Diversity of Zooplankton in mangrove areas of Puducherry, India j. Aqua. Bio. Vol. 22(1) PP 45-48.
13. Kurbatova, S.A. (2005) : Response of microcosm zooplankton to acitification ; Lzv. Akad. Nauk. Ser Biol., 1 , 100-108
14. Methivanan , V.P. Vijayan , S. Sabhanakayam and O. Jeyachitra (2007): An assessment of plankton population of Cauvery river with reference to population. J. Environ. Biol. 28, 523-526.
15. Meshram, C.B.(2005) : Zooplankton biodiversity in relation to pollution of lake Wadali, Amarawati J. Ecotoxicol Environ. Monit., 15, 55-59.

16. Mishra S. and Joshi B.D.(2003) : Assessment of water quality with few selected parameters of river Ganga at Haridwar. Him. J. Env. Zool.17(2) : 113-122.
17. Mulani, S.K., MB Mule and S.U. Patil (2009) : Studies on water quality and zooplankton community of the Panchganga river in Kolhapur city. J Environ Biol. 30, 455-459
18. Neves, I.F., O. Recha, K.F. Roche and A.A. Pinto (2003): Zooplankton community structure of two marginal lakes of the river cuiaba (Mato Grosso, Brazil) with analysis of rotifers and Cladocera diversity . Braz J Biol 63, 1-20
19. Park, S.K. and H.W. shin. (2007): Studies on phyto-and-zooplankton composition and its relation to fish productivity in a west coast fish pond ecosystem. J. Environ. Biol., 28, 415-422
20. Simpson , E.H.(1949) : Measurment of diversity , nature, 163, 688
21. Smitha, P.G.,K. Byrappa and SN Ramaswamy (2007): Physico – chemical characteristics of water samples of bantwal Taluk, South-eastern Karnataka, India J. Environ Biol., 28, 591-595
22. Singh, S.P. , D. Pathak and R. singh (2002) : Hydrobiological studies of two ponds of Satna (M.P.) India Eco. Environ. Cons. , 8, 289-292.
23. Sinha , B. and M.R. Islam (2002) : Seasonal variation in zooplankton population of two lentic bodies and Assam state Zoo cum Botanical garden, Guwahati , Assam Eco. Environ Cons. 8, 273-278.
24. Wetzel, R. G. (2001) : Limnology : Lake and river Ecosystem , 3rd ed. Academic Press. ISBN -12-7447601.

Table – 3

Yearly variation of zooplanktons density in Sitapat pond

(Mean + SD + 10^2)

S. No.	Name of Genera	Year 2007	Year 2008
1	Rotifera	61.13 ± 3.104	61.77 ± 2.589
2	Cladocera	18.77 ± 2.345	19.45 ± 2.369
3	Copepoda	14.34 ± 2.43	14.01 ± 1.834
4	Protozoa	5.60 ± 1.416	4.74 ± 0.570
	Total	**99.84 ± 9.295**	**99.97 ± 7.362**

Table – 1
Seasonal variation in Zooplankton density in Sitapat Pond (no/lit.) during 2007

No	Name of the group & Genara	Seasons																		Ann ual Total	Status
		Rainy						Winter						Summer							
		I	II	III	IV	V	VI	I	II	III	IV	V	VI	I	II	III	IV	V	VI		
	ROTIFERA																				
1	Branchionus caudatus	0	0	5	8	0	0	0	2	15	17	0	0	2	8	17	8	5	2	89	C
2	Branchionus forficula	0	0	10	5	9	2	0	5	10	15	2	5	15	10	18	12	5	8	131	A
3	Branchionus falcatus	8	2	11	12	3	0	7	6	7	8	2	0	5	8	18	12	11	7	127	A
4	Keratella sp.	10	12	15	0	0	12	15	0	0	0	0	0	0	18	20	5	8	5	120	A
5	Mnostyla sp.	10	11	17	12	12	2	0	0	0	0	3	2	10	12	15	25	2	4	137	A
6	Lepadella rhombiodes	12	8	0	2	4	0	4	0	0	0	12	2	15	8	4	0	0	8	79	C
7	Hexarthra mira	0	2	2	0	0	3	10	12	15	4	2	3	7	8	15	17	17	13	130	A
8	Notholca sp.	0	0	0	0	0	0	10	18	11	12	12	15	0	0	0	0	0	0	78	C
	Total species	**40**	**35**	**60**	**39**	**28**	**19**	**46**	**43**	**58**	**56**	**33**	**27**	**54**	**72**	**107**	**79**	**48**	**47**	**891**	
	CLADOCERA																				
1	Bosmina sp.	8	10	2	11	0	0	4	8	12	13	17	11	18	13	15	17	4	6	169	A
2	Daphnia sp.	0	0	0	0	6	8	8	10	13	10	8	12	15	10	20	17	12	5	154	A
3	Monia sp.	10	8	8	12	10	0	12	11	13	12	13	16	19	20	21	18	13	11	227	A
4	Leydigia sp.	8	7	6	9	15	20	0	0	0	0	2	5	3	2	5	8	9	12	111	A
	Total species	**26**	**25**	**16**	**32**	**31**	**28**	**24**	**29**	**38**	**35**	**40**	**44**	**55**	**45**	**61**	**60**	**38**	**34**	**661**	
	COPEPODA																				
1	Cyclops sp.	0	11	12	10	15	18	10	6	8	6	4	3	10	25	21	18	15	6	198	A
2	Mesocyclops sp.	8	11	13	12	10	12	0	0	0	3	5	1	8	18	20	22	16	15	174	A
3	Phyllogiaptolus blani	0	10	0	4	3	0	0	4	6	8	3	5	15	28	30	8	32	15	171	A
	Total species	**8**	**32**	**25**	**26**	**28**	**30**	**10**	**10**	**14**	**17**	**12**	**9**	**33**	**71**	**71**	**48**	**63**	**36**	**543**	
	PROTOZOA																				
1	Arcella sp.	0	0	0	0	0	8	3	2	5	9	5	8	10	11	22	31	9	10	133	A
2	Euglepha	0	0	6	5	8	5	7	2	12	15	10	2	12	15	27	28	12	13	179	A
	Total species	**0**	**0**	**6**	**5**	**8**	**13**	**10**	**4**	**17**	**24**	**15**	**10**	**22**	**26**	**49**	**59**	**21**	**23**	**312**	

A= Abundence, C=Common

Table - 2
Seasonal variation in Zooplankton density in Sitapat Pond (no/lit.) during 2007

No	Name of the group & Genara	Seasons																		Ann ual Total	Status
		Rainy						Winter						Summer							
		I	II	III	IV	V	VI	I	II	III	IV	V	VI	I	II	III	IV	V	VI		
	ROTIFERA																				
1	Branchionus caudatus	0	7	15	8	0	0	0	2	12	17	8	2	11	8	15	18	7	5	135	A
2	Branchionus forficula	0	5	10	2	9	4	5	15	10	12	2	3	13	12	17	19	4	8	150	A
3	Branchionus falcatus	9	12	10	2	9	4	5	15	10	12	2	3	13	12	17	19	4	8	192	A
4	Keratella sp.	9	10	15	0	0	0	7	8	0	0	0	0	0	18	27	11	12	4	121	A
5	Mnostyla sp.	11	12	17	12	8	6	0	0	0	0	9	3	12	13	15	28	11	3	160	A
6	Lepadella rhombiodes	10	8	2	3	2	0	2	1	0	0	12	2	15	8	0	0	0	6	71	A
7	Hexarthra mira	0	2	5	0	0	3	11	21	15	3	10	8	16	18	20	14	12	11	169	A
8	Notholca sp.	0	0	0	0	0	0	0	9	11	8	12	13	14	0	0	0	0	0	67	C
	Total species	**39**	**56**	**74**	**37**	**35**	**18**	**31**	**61**	**64**	**58**	**58**	**39**	**96**	**85**	**111**	**102**	**59**	**42**	**1065**	
	CLADOCERA																				
1	Bosmina sp.	7	11	2	9	0	0	4	7	13	14	7	11	15	17	19	16	5	2	159	A
2	Daphnia sp.	0	0	0	0	5	8	8	12	13	10	11	12	15	10	18	17	15	7	161	A
3	Monia sp.	8	7	7	11	9	1	12	11	13	15	18	16	12	19	25	21	12	13	230	A
4	Leydigia sp.	6	7	6	9	15	17	0	0	0	0	3	7	3	2	5	8	9	11	108	A
	Total species	**21**	**25**	**15**	**29**	**29**	**26**	**24**	**30**	**39**	**39**	**49**	**46**	**45**	**48**	**67**	**62**	**41**	**33**	**658**	
	COPEPODA																				
1	Cyclops sp.	0	10	11	9	14	15	11	5	7	5	5	4	11	16	15	13	10	6	167	A
2	Mesocyclops sp.	7	10	12	11	9	11	0	0	0	3	4	1	9	15	11	11	14	12	140	A
3	Phyllogiaptolus blani	0	5	4	3	2	0	0	4	5	7	3	5	11	10	15	9	13	15	111	A
	Total species	**7**	**25**	**27**	**23**	**25**	**26**	**11**	**9**	**12**	**15**	**12**	**10**	**31**	**41**	**41**	**33**	**37**	**33**	**418**	
	PROTOZOA																				
1	Arcella sp.	0	0	0	0	0	5	4	3	6	8	2	2	5	10	12	15	9	4	85	C
2	Euglepha	0	5	2	0	7	5	6	2	10	2	9	1	11	12	17	9	8	4	110	A
	Total species	0	5	2	0	7	10	10	5	16	10	11	3	16	22	29	24	17	8	195	

A= Abundence, C=Common

Assessment Of Phytodiversity In Alirajpur College Campus, Madhya Pradesh, India

Jeetendra Pachaya* **Jeetendra Sainkhediya****

Abstract - Alirajpur district is formed on 17th May 2008 and situated in the south west corner of Madhya Pradesh, India. Topography it is fairly flat area. Alirajpur forest rages are an important corridor between forest areas of Gujarat and Maharashtra. College campus is extended over 14.5 acres of land. The forests and a hill of this region is a treasure house of medicinal plants. Phytodiversity of College campus is representing the richness of varied life form ranging from climber, shrubs and trees, which are annual to perennials. Present study records a total of 192 plants species which are distributed in 139 genera and 47 families. Different life forms diversity is Herbs ( ), Shrubs ( ), Trees ( ) and climbers ( ) and represented % of herbaceous element of total flora.
Key words: Phytodiversity, Alirajpur, life form and flora.

Introduction - Biodiversity is essential for human survival and economic well – being and for the ecosystem function and stability (Pitchairamu et al. 2008).Man has surveyed remote galaxies and has stood on the surface of moon but has not so far come anywhere near to completing a taxonomic catalogue of the fewer than half a million species of higher plants that grow on our planet (Burmmit et al. 2001). Botanists were exploring the floristic regions of the world for several centuries and their efforts have succeeded only in preparing a more realistic taxonomic account of the plants of India (Sasidharan, 2002). Condition is so serve in M.P. especially in Alirajpur due to various reasons some of them are habitat destruction, harvesting for trade, grassing etc. for these reasons loss of diversity is rich to alarming rate. The biodiversity found on earth today consisting of many millions of distinct biological species which is the product of nearly 3.5 billion years of evolution and came into existence, flourished and vanished due to various reasons (Sainkhediya and Ray,2014). India is referred as a 'mega-diversity' nation due to its rich floral and faunal wealth (Singh 2010).Central India is a unique place for the diversity of flora (Dwivedi 2009). Alirajpur has a rich and varied flora due to its diversified floral elements under well protected and reserved forests areas. Floristic diversity of campus is very rich.

Botanical gardens of Government college campuses of the state are forest fragments of varying sizes, which are communally protected and which usually have a significant religious connotation for the protecting community. Harvesting of the plants is usually prohibited within the campus. Each and every member protects these areas (Pachaya & Sainkhediya, 2014). Many rare and medicinal valued ground flora species were found growing luxuriantly under Nilgiri and teak trees. Alirajpur district lying between $22^0$18'N latitude and $74^0$20'E longitude, covers an area of 3182 square kilometers. Mahee and Narmada rivers make its Eastern and Southern border. According to census 2011, Alirajpur population is 728,999. Alirajpur District average Rainfall is 850 mm. Alirajpur District temperatures ranges between 23^0- 30^0C. Bhagoriya is a special cultural public festival of Alirajpur district. Amkhut and Katthiwara have a rich pocket of vegetation and dense forest.

Methodology - Intensive and extensive plant survey was carried out in Govt. P. G. College, Alirajpur campus during the year 2013-2014.The plant exploration work was carried in different seasons. All habitats of the study area surveyed carefully. The vegetation and distribution pattern of the plants were studied. Plant collection and herbarium preparation was carried out by standard method (Jain and Rao, 1977). Plant specimens were preserved by dipping the whole specimens in saturated solution of Mercuric chloride and alcohol. Dry and preserved plants mounted on herbarium sheets by adhesive glue and fevicols. Identification of plants done with the help of flora (Verma et.al., 1993; Sing et al., 2001; Mudgal et al,.1997; Khanna et al., 2001;Shah, 1978; Duthi, 1960; Gamble, 1915; Hains,1921-1924; Cook, 1903; Hooker, 1872-1897; Naik, 1998) and other taxonomic literature. Some plant specimen were examined and identified from BSI Central circle, Allahabad. The entire plant specimen was deposited in herbarium of Govt. P. G. College Alirajpur, Madhya Pradesh.

Result & discussion - Present study reports 191 plant species which is distributed in 47 families 139 genera. Dicotyledons consist of 162 species with 114 genera and 40 families and monocotyledons consists 29 species, 25 genera and 07 families (Table-.1). Our study reports 191 species and 139 genera which appear to be a good

* Botany, Govt. P. G. College, Alirajpur (M.P.) INDIA
** Botany, Govt. P. G. College, Alirajpur (M.P.) INDIA

representation of the flora for a small region. Out of the 47 families139 genera and 191 species monocotyledons share 07 families (11%),25 genera (47 %) and 29 species (48 %) and Dicotyledons share 162 families (13%),114 genera (36%) and 30 species (57 %).(Table-2 & fig. -1). Different life form diversity is showed in fig.-2. Table-3 showed the list of flowering plants of Govt. P. G. College, Alirajpur campus. The vegetation structure of the area is remarkably changing due to anthropogenic pressure and over – exploitation of forest resources. *Adansonia digitata L.* species were found to be rare in the district. In view of the serious concern that the rate of eroding biodiversity is rising and it is estimated that nearly 10% of the recorded biological wealth is on the verge of extinction (Raj.2010),due to care and action should be taken on priority basis for the conservation of rare, species. Table-4 showed the Phytodiversity of Alirajpur college campus and Madhya Pradesh. Leguminosae is the largest family in the area fallowed by Poaceae, Dipterocarpaceae , Compositae and so on (**Table-5 & Fig.-3:).**

Acknowledgement - We are very much thankful to Dr. M. L. Nath Principal Govt. P. G. College, Alirajpur for providing research and library facilities. Help and co-operation during plant survey rendered by local people of Govt. P. G. College, Alirajpur campus is highly acknowledged.

References :-

1. Pitchairamu C, Muthuchelian K, and Siva N, 2008. Floristic inventory and quantitative vegetation analysis of tropical dry deciduous forests in Piranmalai forests, Estern Ghat, Tamilnadu, India.Ethnobot.leaflets.,12 : (1).204-216.
2. Sasidharan, N. 2002. Floristic studies in parambikulam wildlife sanctuary. kerala forest research institute, peechi, thrissur.
3. Brummit KR, Santiago C, Augustine CC, Orchard AE, Smith GF and Wagner WL 2001. The species plantarum project,an international collaboration initiative for higher plant taxonomy.Taxon 50(4).1217-1230.
4. Sainkhediya Jeetendra and Ray Sudip, 2014. Analysis of vegetation and floral diversity of Nimar region, Madhya Pradesh, India. Indian journal of plant sciences. 4(3):102-109.
5. Singh A, 2010. Biodiversity conservation. Science reporter 5:9-12/42-43.
6. Pachaya J & Sainkhediya, J. 2014. Floristic studies in Govt. P.G. College Alirajpur campus, Madhya Pradesh, India. Naveen shodh sansar. 1:(8).19-22.
7. Jain SK and Rao RR, 1976.A Handbook of Herbarium methods. Today and tomorrow publ. New Dehli.
8. Verma DM, Balakrishnan, NP and Dixit RD, 1993. Flora of Madhya Pradesh. BSI Publication, Calcutta, India.1
9. Singh NP, Khanna KK, Mudgal V and Dixit RD (2001). Flora of Madhaya Pradesh (BSI Publication, Calcutta, India) 3.
10. Mudgal V,Khanna KK and Hajara P K, 1997. Flora of Madhaya Pradesh.2.
11. Khanna KK, Kumar A, Dixit RD and Singh NP, 2001. Supplementary flora of Madhya Pradesh. BSI Publications, Calcutta, India.
12. Shah GL, 1978.Flora of Gujarat state. University press, S. P. University, Vallabh Vidhyanagar, Gujarat, India.1-2.
13. Duthi JF, 1960.Flora of the upper Gangetic plains.BSI Publications Calcutta, India.2
14. Hains HH, 1921-1924.The Botany of Bihar and Orissa.BSI Reprint, Calcutta, India.1-3
15. Hooker JD, 1892-1897.Flora of British India.BSI Publication, Calcutta, India.1-7.
16. Cook T, 1903.Flora of the presidency of Bombay.BSI Publications Calcutta, India.1-3.
17. Hooker JD, 1892-1897.Flora of British India.BSI Publication, Calcutta, India.1-7.
18. Naik VN, 1998. Flora of Marathwada. Amrut prakashan, Aurangabad, India.1-2.
19. Raj MSK, 2010.Global biodiversity crisis and priorities in Indian plant systematic, Current Science.99:11.1491.

Table-1: Distribution of angiospermic plants

Angiosperm		Species	Genera	Families
	Polypetalae	96	63	22
Dicotyledons	Gamopetalae	54	42	13
	Monochlamydeae	12	09	05
	Total	162	114	40
Monocotyledons		29	25	07
	Grand total	191	139	47

Table-2: Diversity of Family, Genera and Species

Angiosperm	Species	%	Genera	%	Families	%
Dicotyledons	162	51	114	36	40	13
Monocotyledons	29	48	25	41	07	11

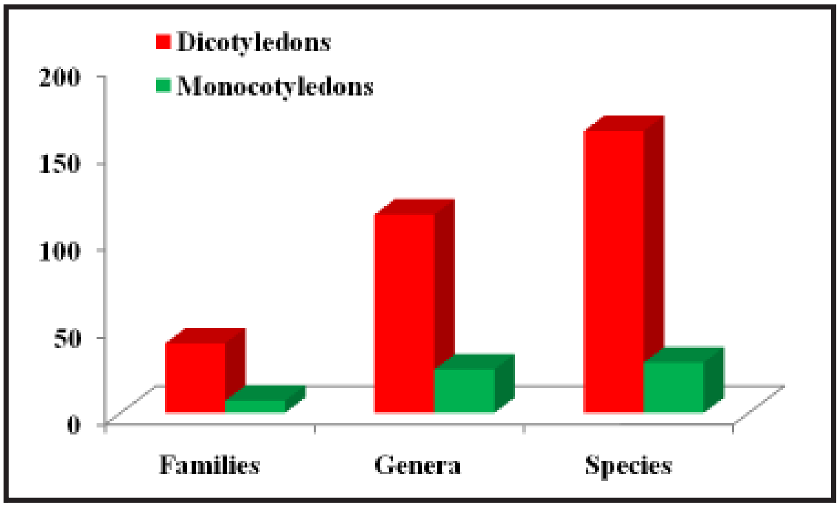

Fig. -1: Diversity of Family, Genera and Species

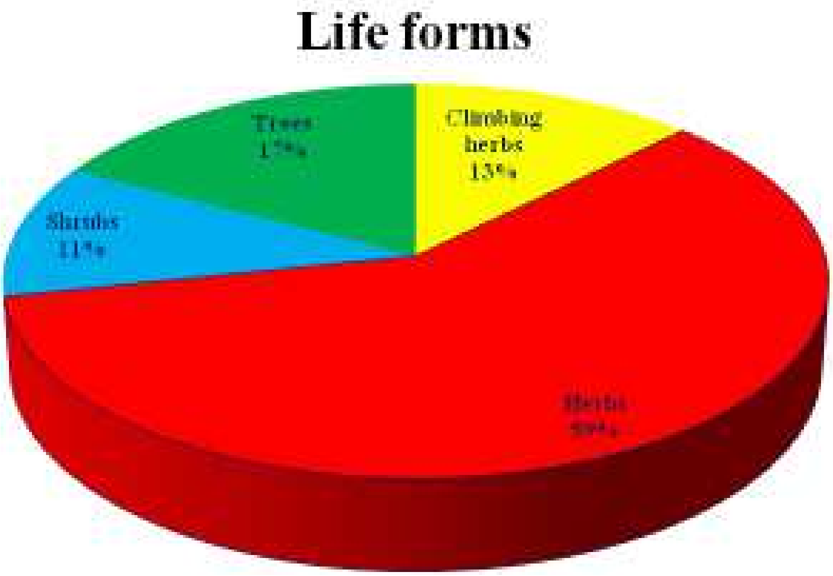

Fig.-2:Different life form diversity

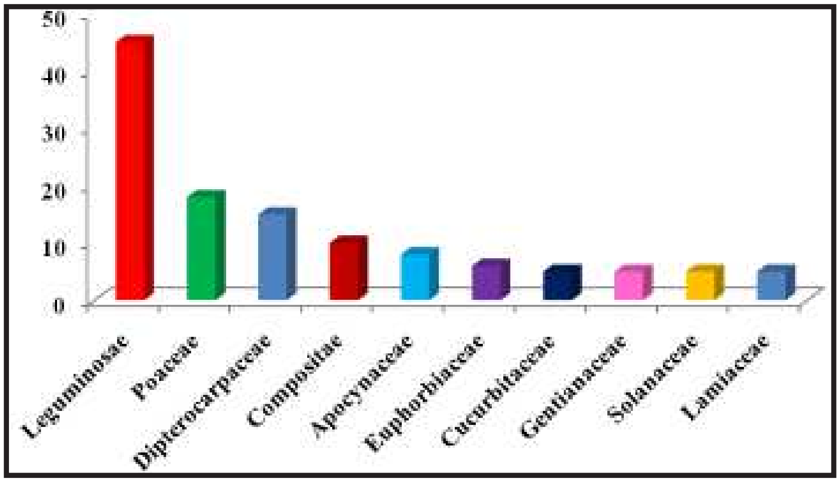

Fig.-3: Ten dominant families of the study area.

Table-3: List of flowering plants of Govt. P. G. College, Alirajpur campus

S.N.	Families	Botanical name	Habitat
1.	Annonaceae	*Annona reticulata L.*	**S**
2.		*Annona squamosa L.*	**S**
3.	Menispermaceae	*Cissampelos pareira L.*	**CH**
4.		*Cocculus hirsutus (L.) Theob.*	**CH**
5.		*Tinospora sinensis (Lour.) Merr.*	**CH CH**
6.	Papaveraceae	*Argemone Mexicana L.*	**H**
7.	Capparaceae	*Capparis decidua (Forssk.) Edgew.*	**CH**
8.		*Capparis grandis L.f.*	**CH**
9.		*Capparis sepiaria L.*	**CH**
10.	Cleomaceae	*Cleome gynandra L.*	**H**
11.	Polygalaceae	*Polygala arvensis Willd.*	**H**
12.		*Polygala erioptera DC*	**H**
13.	Dipterocarpaceae	*Shorea robusta Gaerth f.*	**T**
14.		*Abutilon hirtum (Lam.) Sweet.*	**H**
15.		*Abutilon indicum (L.) Sweet*	**H**
16.		*Adansonia digitata L.*	**T**
17.		*Bombax ceiba L.*	**T**
18.		*Corchorus aestuans L.*	**H**
19.		*Corchorus fascicularis Lam.*	**H**
20.		*Corchorus olitorius L.*	**H**
21.		*Grewia flavescens Juss.***S**	
22.		*Grewia hirsuta Vahl.*	**S**
23.		*Grewia sapida Roxb. ex DC.*	**S**
24.		*Sida acuta Burm. F.*	**H**
25.		*Sida cordata (Burm.f.) Borss.Waalk.*	**H**
26.		*Sida cordifolia L.*	**H**
27.		*Triumfetta malebarica J.Koenig ex Rottb.*	**H**
28.	Malpighiaceae	*Hiptage benghalensis (L.) Kurz*	**H**
29.	Zygophyllaceae	*Tribulus terrestris L.*	**H**
30.	Oxalidaceae	*Biophytum reinwardtii (Zucc.) Klotzsch.*	**H**
31.		*Biophytum sensitivum (L.) DC.*	**H**
32.		*Oxalis corniculata L.*	**H**
33.	Rutaceae	*Aegle marmelos (L.) Correa*	**T**
34.		*Murraya paniculata (L.) Jack*	**H**
35.	Simaroubaceae	*Ailanthus excelsa Roxb.*	**T**
36.	Meliaceae	*Azadirachta indica A.Juss.*	**T**
37.		*Melia azedarach L.*	**T**
38.	Rhamnaceae	*Ventilago denticulata Willd.*	**H**
39.		*Ziziphus jujuba Mill*	**T**
40.		*Ziziphus nummularia (Burm.f.) Wight & Arn.*	**T**
41.	Vitaceae	*Ampelocissus latifolia (Roxb.) Planch.*	**CH**
42.	Sapindaceae	*Cardiospermum halicacabum L.*	**CH**
43.	Anacardiaceae	*Mangifera indica L.*	**T**
44.	Leguminosae	*Abrus precatorius L.*	**CH**
45.		*Aeschynomene aspera L.*	**H**
46.		*Aeschynomene indica L*	**H**
47.		*Alysicarpus bupleuri - folius (L.) DC.*	**H**
48.		*Alysicarpus tetragonol - obus Edgew.*	**H**
49.		*Butea monosperma (Lam.) Taub.*	**T**
50.		*Cajanus platycarpus (Benth.) Maesen*	**CH**
51.		*Cajanus scarabae- oides (L.) Thouars*	**CH**
52.		*Clitoria annua J.Graham*	**CH**
53.		*Clitoria ternatea L.*	**CH**
54.		*Crotalaria albida Roth .*	**H**
55.		*Cullen corylifolium (L.) Medik.*	**H**
56.		*Dalbergia latifolia Roxb.*	**T**
57.		*Dalbergia sissoo DC.*	**T**
58.		*Desmodium dichoto- mum (Willd.) DC.*	**H**
59.		*Desmodium scorpi- urus (Sw.) Desv.*	**H**
60.		*Indigofera trifoliata var. duthiei (Naik) Sanjappa*	**H**
61.		*Indigofera linifolia (L.f.) Retz.*	**H**
62.		*Indigofera linnaei Ali*	**H**
63.		*Indigofera tinctoria L.*	**H**
64.		*Lathyrus aphaca L.*	**H**
65.		*Pongamia pinnata (L.) Pierre*	**T**
66.		*Rhynchosia minima (L.) DC.*	**H**
67.		*Rhynchosia bracteata Baker*	**H**
68.		*Tephrosia pumila (Lam.) Pers.*	**H**
69.		*Tephrosia purpurea (L.) Pers.*	**H**
70.		*Zornia gibbosa Span.*	**H**
71.		*Bauhinia purpurea L.*	**T**
72.		*Bauhinia racemosa Lam.*	**T**
73.		*Caesalpinia bonduc (L.) Roxb.*	**S**
74.		*Cassia fistula L.*	**T**
75.		*Cassia javanica L.*	**T**
76.		*Senna alata (L.) Roxb.*	**H**
77.		*Senna alexandrina Mill.*	**S**
78.		*Senna hirsuta var. puberula H.S.Irwin & Barneby*	**H**
79.		*Senna occidentalis (L.) Link*	**H**
80.		*Tamarindus indica L.*	**T**

Semiconductor

Dr. Neeraj Dubey *

Introduction - A semiconductor material has an electrical conductivity value falling between that of a conductor, such as copper, and an insulator, such as glass. Semiconductors are the foundation of modern electronics. Semiconducting materials exist in two types - elemental materials and compound materials. The modern understanding of the properties of a semiconductor relies on quantum physics to explain the movement of electrons and holes in a crystal lattice.[2] The unique arrangement of the crystal lattice makes silicon and germanium the most commonly used elements in the preparation of semiconducting materials. An increased knowledge of semiconductor materials and fabrication processes has made possible continuing increases in the complexity and speed of microprocessors and memory devices. Some of the information on this page may be outdated within a year, due to the fact that new discoveries are made in the field frequently.

The electrical conductivity of a semiconductor material increases with increasing temperature, which is behaviour opposite to that of a metal. Semiconductor devices can display a range of useful properties such as passing current more easily in one direction than the other, showing variable resistance, and sensitivity to light or heat. Because the electrical properties of a semiconductor material can be modified by controlled addition of impurities, or by the application of electrical fields or light, devices made from semiconductors can be used for amplification, switching, and energy conversion.

Current conduction in a semiconductor occurs through the movement of free electrons and "holes", collectively known as charge carriers. Adding impurity atoms to a semiconducting material, known as "doping", greatly increases the number of charge carriers within it. When a doped semiconductor contains mostly free holes it is called "p-type", and when it contains mostly free electrons it is known as "n-type". The semiconductor materials used in electronic devices are doped under precise conditions to control the concentration and regions of p- and n-type dopants. A single semiconductor crystal can have many p- and n-type regions; the p–n junctions between these regions are responsible for the useful electronic behaviour.

Properties :

- **Variable conductivity -** Semiconductors in their natural state are poor conductors because a current requires the flow of electrons, and semiconductors have their valence bands filled. There are several developed techniques that allows semiconducting materials to behave like conducting materials, such as doping or gating. These modifications have two outcomes: n-type and p-type. These refer to the excess or shortage of electrons, respectively. An unbalanced number of electrons would cause a current to flow through the material.
- **Heterojunctions -** Heterojunctions occur when two differently doped semiconducting materials are joined together. For example, a configuration could consist of p-doped and n-dopedgermanium. This results in an exchange of electrons and holes between the differently doped semiconducting materials. The n-doped germanium would have an excess of electrons, and the p-doped germanium would have an excess of holes. The transfer occurs until equilibrium is reached by a process called recombination, which causes the migrating electrons from the n-type to come in contact with the migrating holes from the p-type. A product of this process is charged ions, which result in an electric field.
- **Excited Electrons -** A difference in electric potential on a semiconducting material would cause it to leave thermal equilibrium and create a non-equilibrium situation. This introduces electrons and holes to the system, which interact via a process called ambipolar diffusion. Whenever thermal equilibrium is disturbed in a semiconducting material, the amount of holes and electrons changes. Such disruptions can occur as a result of a temperature difference or photons, which can enter the system and create electrons and holes. The process that creates and annihilates electrons and holes are called generation and recombination.[1]
- **Light emission -** In certain semiconductors, excited electrons can relax by emitting light instead of producing heat. These semiconductors are used in the construction of light emitting diodesand fluorescent quantum dots.
- **Thermal energy conversion -** Semiconductors have large thermoelectric power factors making them useful

* Professor & Head (Physics) Govt. Arts & Commerce College, Sagar (M.P.) INDIA

in thermoelectric generators, as well as high thermoelectric figures of merit making them useful inthermoelectric coolers.

- **Energy bands and electrical conduction -** Semiconductors are defined by their unique electric conductive behavior, somewhere between that of a metal and an insulator. The differences between these materials can be understood in terms of the quantum states for electrons, each of which may contain zero or one electron (by the Pauli exclusion principle). These states are associated with the electronic band structure of the material. Electrical conductivity arises due to the presence of electrons in states that are delocalized(extending through the material), however in order to transport electrons a state must be partially filled, containing an electron only part of the time. If the state is always occupied with an electron, then it is inert, blocking the passage of other electrons via that state. The energies of these quantum states are critical, since a state is partially filled only if its energy is near the Fermi level
- **Charge carriers (electrons and holes) -** The partial filling of the states at the bottom of the conduction band can be understood as adding electrons to that band. The electrons do not stay indefinitely (due to the natural thermal recombination) but they can move around for some time. The actual concentration of electrons is typically very dilute, and so (unlike in metals) it is possible to think of the electrons in the conduction band of a semiconductor as a sort of classical ideal gas, where the electrons fly around freely without being subject to the Pauli exclusion principle. In most semiconductors the conduction bands have a parabolic dispersion relation, and so these electrons respond to forces (electric field, magnetic field, etc.) much like they would in a vacuum, though with a different effective mass. Because the electrons behave like an ideal gas, one may also think about conduction in very simplistic terms such as theDrude model, and introduce concepts such as electron mobility.
- **Semiconductor device -** Semiconductor devices are electronic components that exploit the electronic properties of semiconductor materials, principally silicon, germanium, and gallium arsenide, as well as organic semiconductors. Semiconductor devices have replaced thermionic devices (vacuum tubes) in most applications. They use electronic conduction in the solid state as opposed to the gaseous state or thermionic emission in a high vacuum. Semiconductor devices are manufactured both as single discrete devices and as integrated circuits (ICs), which consist of a number from a few (as low as two) to billions of devices manuf-acturedand interconnected on a single semiconductor substrate, or wafer. Semiconductor materials are useful because their behavior can be easily manipulated by the addition of impurities, known as doping. Semiconductor conductivity can be controlled by introduction of an electric or magnetic field, by exposure to light or heat, or by mechanical deformation of a doped monocrystalline grid; thus, semiconductors can make excellent sensors. Current conduction in a semiconductor occurs via mobile or "free" electrons and holes, collectively known as charge carriers. Doping a semiconductor such as silicon with a small amount of impurity atoms, such as phosphorus or boron, greatly increases the number of free electrons or holes within the semiconductor. When a doped semiconductor contains excess holes it is called "p-type", and when it contains excess free electrons it is known as "n-type", where p (positive for holes) or n (negative for electrons) is the sign of the charge of the majority mobile charge carriers. The semiconductor material used in devices is doped under highly controlled conditions in a fabrication facility, or fab, to control precisely the location and concentration of p- and n-type dopants. The junctions which form where n-type and p-type semiconductors join together are called p–n junctions.

List of common semiconductor devices

1. DIAC
2. Diode (rectifier diode)
3. Gunn diode
4. IMPATT diode
5. Laser diode
6. Light-emitting diode (LED)
7. Photocell
8. Phototransistor
9. PIN diode
10. Schottky diode
11. Solar cell
12. Transient-voltage-suppression diode
13. Tunnel diode
14. VCSEL

References : -

1. Brain, Marshall. "How Semiconductors Work" howstuffworks.com.
2. Charles Kittel (1995) Introduction to Solid State Physics, 7th ed. Wiley, ISBN 0471111813.
3. Lidia £ukasiak and Andrzej Jakubowski (January 2010). "History of Semiconductors"
4. Yu, Peter Y.; Cardona, Manuel (2004). Fundamentals of Semiconductors : Physics and Materials Properties. Springer. ISBN 3-540-41323-5.

****

Child Labour - An Analysis Of Census 2011 In Reference To Shahdol Division

Dr. Pramod Kumar Pandey * Dr. Ashish Tiwari **

Abstract - A Child is Nature's precious gift and gift must be nurtured with care and affection, within the family and society. But unfortunately, due to socio-economic and cultural problems the code of child centeredness was replaced by neglect, abuse and deprivation, particularly in poverty affiliated section of the society. While child labour is a complex problem that is basically rooted in poverty. This paper is a modest attempt in critically analysing at the official sources of information on the magnitude of child labour in Shahdol division / district. The analysis is presented in the background of the present socio-economic context in has district which the direct impact on magnitude of child labour.
Key Words - Government of India, Planning Commission – 12th five year plan.

Introduction - According to International Labour Organization (ILO); the term 'child labour is often defined' as work that deprives children of their childhood, their potential and their dignity and that is harmful to their physical and mental development. It refers to work that is mentally, physically, socially or morally dangerous and harmful to children; and interferes with their schooling by depriving them of opportunity to attend school; obliging them to leave school prematurely; or requiring them to attempt to combine school attendance with excessively long and heavy work. Children within the age group of 5 to 14 years who are engaged as main workers or marginal workers are recognized as child workers.

According to article 1 of United Nations Convention on the rights of the child, 1989, "A child means every human being below the age of 18 years unless under the law applicable to the child, majority is attained earlier." Our constitution provides basic fundamental rights to the child, which also includes right to education whereby every child belonging to any caste or section has the right education upto the age of 14 years.

Child Labour (Prohibition and Regulation) Act 1986 was the culmination of efforts and ideas that emerged from the deliberations and recommendations of various committees on child labour. Significant among them were the National Commission on Labour (1966-1969), the Gurupadaswamy Committee on child labour (1979), and the Sanat Mehta Committee (1984). The act aims to prohibit the entry of children into hazardous occupations and to regulate the services of children in non-hazardous occupations. Particularly it is aimed at (i) the banning of the employment of children, those who have not completed their 14th year, in 18 specified occupations and 65 processes: (ii) laying down a procedure to make additions to the schedule of banned occupations or processes; (iii) regulating the working conditions of children in occupations where they are not prohibited from working; (iv) laying down penalties for employment of children in violation of the provisions of this Act and other Acts which forbid the employment of children; (v) bringing uniformity in the definition of the child in related laws. (Ref. at the top)

Child Labour in Statistics in India - As per 2011 census, in India, the ratio of adult to children workers was 61 : 39. According to the survey of child workers, 28% of child workers belonged to the age group of 6 to 10 years, 27% belonged to the age group of 11 to 15 years and the rest existed at the age group of 16 to 18 years. The number of child labourers according to census 2001 was 12,666,377 which has fallen to 4,353,247 in the 2011 census. The five worst states of India are Nagaland with 2.3% child workers, Maharastra and Meghalaya with 2.4%, Andhra Pradesh with 2.6% and Goa with 2.8 child labourers. On sector wise analysis, we got the following data :

No.	Sector	Male Child Labour	Female Child Labour
1	Cultivators	2754963	1066697
2	Agricultural Laboures	2673929	1947949
3	Mining Quarrying etc.	562730	207523
4	Household Industry	238744	162366
5	Manufacturing other than household Ind.	443600	32290
6	Construction	59677	21978
7	Trade and commerce	259486	5454
8	Transport Storage & Comm.	37465	152663
9	Other Services	219734	139628

* Professor (Physics) Pt. S.N.S. Govt. P.G. College, Shahdol (M.P.) INDIA
** H.O.D. (English) R.V.P.S. Govt. Degree College, Umaria (M.P.) INDIA

(Table See in the last page)

Child Labour Statistics of Shahdol Division - Shahdol Division comprises of three districts – Shahdol, Umaria and Anuppur. Shahdol division is still backward in many aspects with a very few industries. People depend on agriculture and the major natives are tribal's. Total child population of Shahdol, of the age group 5 to 14 years is 5,62,879, out of which total child workers are 24,093 which comprises of 1,532 SC child workers and 15,527 ST child workers and thus Shahdol has 3% of share of child workers in Madhya Pradesh. On viewing the inter district comparison – Shahdol has a highest share of 41% followed by Anuppur – 33% and Umaria 26%. Total number of child workers in districts of Shahdol is 9915, in Anuppur is 7937 and that in Umaria is 6241. Out of these 5315 are male and 4600 are female child workers in Shahdol district whereas their number in Anuppur is 4207 male, 3730 and in Umaria is 3271 male and 2970 female child workers. 9179 child workers work in rural areas and 736 in urban locations in Shahdol district: whereas this figure is 7490 in rural and 447 in urban areas of Anuppur and 5876 in rural and 365 in rural areas in Umaria district. Percentage share of SC child workers in Shahdol division is 6%, ST child workers are 65% and other child workers belonging to other categories is 29%. Number of child workers of SC category in Shahdol district is 734, in Anuppur is 209 and 289, in Umaria district. Total number of ST child workers in District Shahdol is 6018, in Anuppur is 5458 and 4051 in Umaria. Ratio of child workers to child population in the districts of Shahdol is 4.08, in which 4.31 are male and 3.85 are female. In Umaria child workers are 4.00 in which 4.09 are male and 3.90 are female and in Anuppur it is 4.84, which includes 5.06 males and 4.62 female child workers.

(Graph & Table see in the last page)

Social Character of child labour in India - Census data on caste-wise breakup of ratio of child workers to child population reveals that the children among lower caste are more vulnerable to labour exploitation. As per censur 2011 total number of child labour is 9915 out of which 734 child labour belong to SC and 6018 belong to ST category, jointly it is almost 67% reflecting the caste hierarchy in the society. Analysis also shows that the children belonging to ST are more vulnerable to child labour than the other castes. It is also observed that (4.6) Children in Rural areas are more likely to be engaged in work than urban areas (1.69), similar trends are also reflected in case of female workers.

Extreme Poverty and illiteracy are two major factors – There exist a vicious circle between poverty, illiteracy and child labour. Economic growth has not yielded commensurate results in the education of poverty and disparity. 37% of the population lives below the national poverty line. A child born in the poor household is at a high risk of exploitation than the child born in the rich household. Ironically, specially in India, lakhs of adults are jobless, still lakhs of children are pushed into labour, because children are the cheapest from of labour. They are not aware of their rights and too young to speak against their conditions. It is well researched that child labour perpetuates poverty. Recent study says that every extra year of schooling can increase annual GDP growth by 0.4%. A single year of primary school education increases the wages later in life by 5 to 15%. So a working child can not extricate his or her family out of poverty, but will reap the family stack in the poverty for generations.

Literacy - Literacy and education are important indicators in a society and play a central role in human development. In 2011, literacy rate of M.P. is 70.6 percent as compared to 63.7 percent in the year 2001. During the last decade the rise in literacy rate of M.P. is 6.9 percentages. Literacy rate of Shahdol District is 68.4 which is about 2% below than the state average, out of which male literacy rate is 78.3 and female literacy rate is only 58.2%. This means 42.8% female are illiterate in the district. Major sufferer group is Schedule Tribes. This shows direct correlation between illiteracy and child labour. The overall literacy rate of STs show increasing trend since census 1991. However proportion of literates who have attained education up to primary and middle levels constitute 24.8 percent and 9.7 percent respectively. Literates, who are educated up to mature / secondary / higher secondary, constitute 6.6% only. Graduates and above are 1.4 %, while non technical and technical diploma holders constitute about 0.1% only. It is also observed that education levels attained by all STs show that the drop-out rate is high after primary level. It declines shortly from the middle level onwards. Percentage of school going tribal children in the age group 5.14 years is only 46%. The work participation rate of ST population is 50.5%. Most of them are engaged in two major economic activities i.e. Cultivators and Agricultural Laborers. In Shahdol Division most of the child labor are in rural areas and engaged as main or marginal workers as cultivator's and agricultural laborers.

Thus most of the working children are concentrated in rural areas and extreme poverty and illiteracy are two major factors responsible for them. In rural areas they not only work in farm sector but also in various non-farm activities, in rural areas. This is also a reflection of narrow jurisdiction of the law which focuses only on visible forms of child labor in urban areas. Further, they remain as reservoir of cheap labor supply to urban areas. Thus the problem of child labor is essentially a rural problem especially in respect of Shahdol Division.

References :-

1. Divisional Consultation child workers – Census Analysis Publication. Unicef.
2. Government of India, Planning Commission – 12th five year plan.
3. Government of Madhya Pradesh, Labor Department.
4. The Child Labor (Prohibition and Regulation) Act, 1986

State Wise Comparison of Child Workers (5-14 yrs) in Numbers - 2011		
Total Child workers in Country : 10128669 (101.28 lakhs*)		
Lowest : Lakshadweep - 81, Daman & Diew - 881		
Highest : Uttar Pradesh - 2176706, Bihar - 1088509		
All India Rank (Top 5)		
State	In Numbers	In laksh
Uttar Pradesh	2176706	21.77
Bihar	1088509	10.89
Rajasthan	848386	8.48
Maharashtra	727932	7.28
Madhya Pradesh	700239	7.00
Source : CENSUS 2011 Economic Tables B-1		

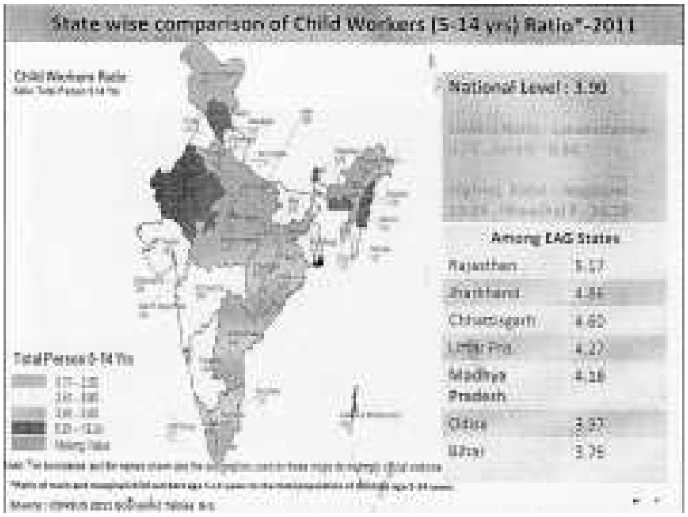

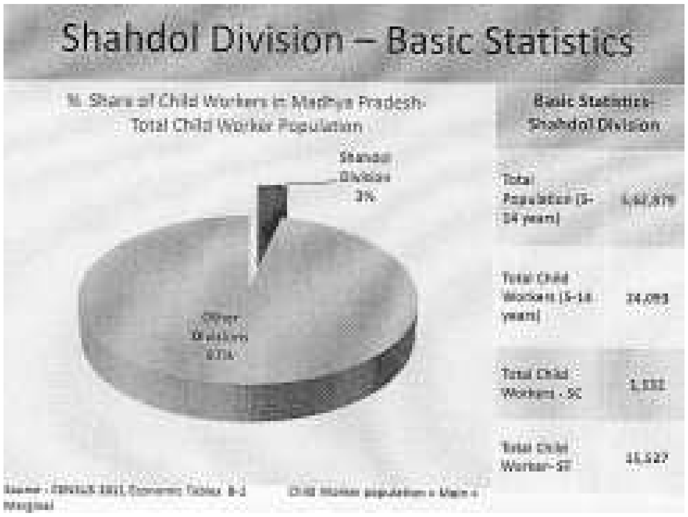

Child Workers (5-14 Years) In Districts of Shahdol Divison
Child Workers in Numbers

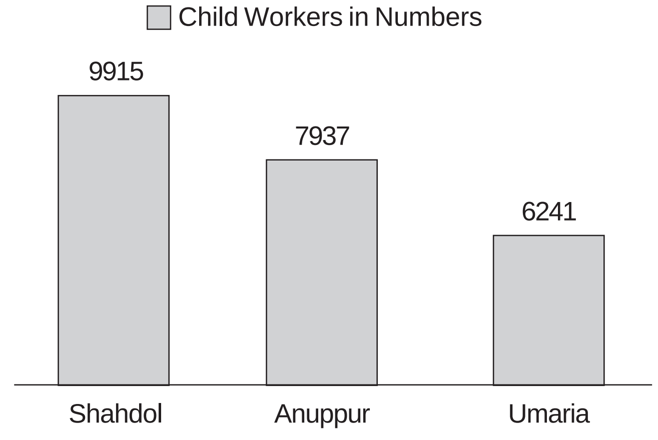

Source : CENSUS 2011 Economic Tables B-1
Child Worker population = Main + Marginal

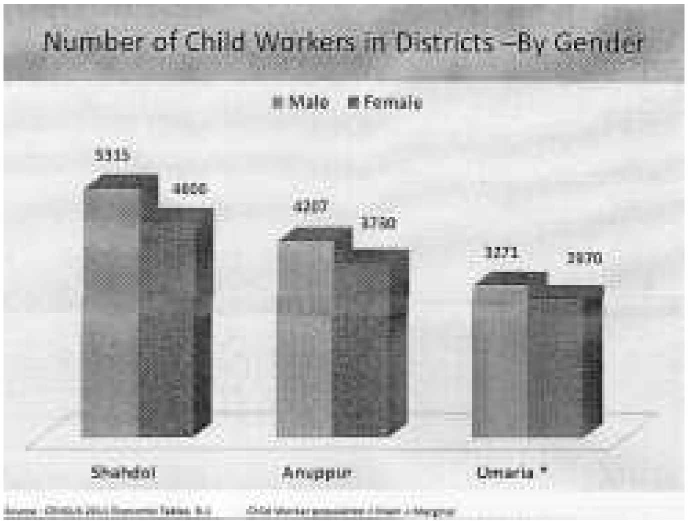

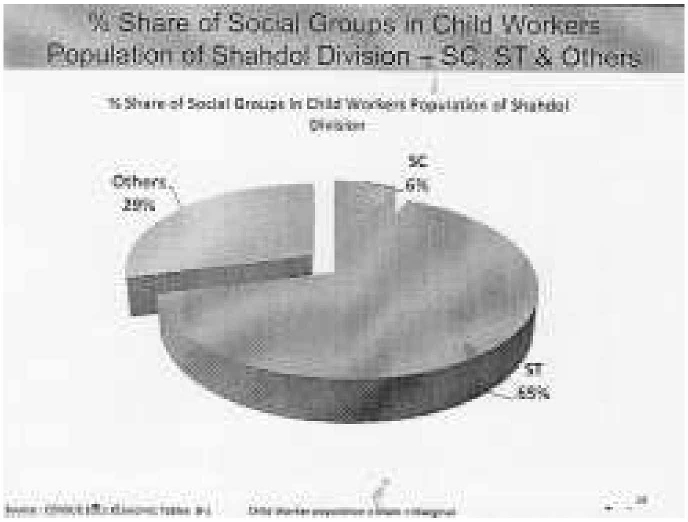

Ration of Child Workers of Child Population - Total			
District	Persons	Male	Female
Shahdol	4.08	4.31	3.85
Umaria*	4.00	4.09	3.90
Anuppur	4.84	5.06	4.62

Source : CENSUS 2011 Economic Tables B-1
Child Worker population = Main+ Marginal workers (5-14 years)

Ration of Child Workers of Child Population - Urban Area			
District	Persons	Male	Female
Shahdol	1.69	1.99	1.37
Anuppur	1.06	1.30	0.79
Umaria*	1.55	1.79	1.29

Source : CENSUS 2011 Economic Tables B-1
Child Worker population = Main+ Marginal workers (5-14 years)

Shahdol Distric-Child Worker Statistics

	Persons	Male	Female
Number of Child Population (5-14 Years)	242821	123193	119628
Number of Child Worker (2011)	9915	5315	4600
Number of Child Worker (2011) -Rural Area	9179	4863	4316
Number of Child Worker (2011) -Urban Area	736	452	284
Number of Child Worker (2011)-SC	734	382	352
Number of Child Worker (2011)-ST	6018	3183	2835
Ratio of Child Workers to Child Population	4.08	4.31	3.85
Ratio of Child Workers to Child Population (SC)	3.40	3.54	3.26
Ratio of Child Workers to Child Population (ST)	5.22	5.54	4.91

Anuppur Distric-Child Worker Statistics

	Persons	Male	Female
Number of Child Population (5-14 Years)	163920	83151	80769
Number of Child Worker (2011)	7937	4207	3730
Number of Child Worker (2011) -Rural Area	7490	3919	3571
Number of Child Worker (2011) -Urban Area	447	288	159
Number of Child Worker (2011)-SC	509	270	239
Number of Child Worker (2011)-ST	5458	2852	2606
Ratio of Child Workers to Child Population	4.84	5.06	4.62
Ratio of Child Workers to Child Population (SC)	2.96	3.10	2.82
Ratio of Child Workers to Child Population (ST)	6.74	7.03	6.45

Umaria Distric-Child Worker Statistics

	Persons	Male	Female
Number of Child Population (5-14 Years)	156138	79966	76172
Number of Child Worker (2011)	6241	3271	2970
Number of Child Worker (2011) -Rural Area	5876	3049	2827
Number of Child Worker (2011) -Urban Area	365	222	143
Number of Child Worker (2011)-SC	289	147	142
Number of Child Worker (2011)-ST	4051	2109	1942
Ratio of Child Workers to Child Population	4.00	4.09	3.90
Ratio of Child Workers to Child Population (SC)	2.05	2.03	2.07
Ratio of Child Workers to Child Population (ST)	5.19	5.32	5.04

✻✻✻✻✻✻✻✻✻✻✻✻✻✻

Body Mass Index As An Indicator For Assessing Affluent School Going Children Belonging To 6 To 15 Years Of Children Of Jabalpur City

Smita Pathak * Meera Vaidya ** Richa Jauhari ***

Introduction - WHO defines health as "a state of complete physical, mental and social well-being and does not consist only of the absence of disease or infirmity". WHO definition classifies 70-95% of people as unhealthy. Body Mass Index (BMI) is a number calculated from a child's weight and height. BMI is a reliable indicator of body fatness for most children and teens. BMI can be considered an alternative for direct measures of body fat. After BMI is calculated for children and teens, the BMI number is plotted on the CDC BMI- for - age growth charts to obtain a percentile ranking. The percentile indicates the relative position of the child's BMI number among children of the same sex and age. The growth charts show the weight status categories used with children and teens (underweight, healthy weight, overweight,and obese).

BMI-for-age weight status categories and the corresponding percentiles are shown in the following table.

Weight status category	Percentile range
Underweight	Less than the 5th percentile
Healthy weight	5th percentile to less than the 85th percentile
Overweight	85th to less than the 95th percentile
Obese	equal to or greater than the 95th percentile

For children and teens, BMI age-and sex-specific percentiles are used for two reasons-

1. The amount of body fat changes with age
2. The amount of body fat differs between girl and boys.

Methodology - The study was conducted in five different schools of Jabalpur city. The height and weight of all children between age group 6 to 15 years were taken with the help of Secca balance by standard procedure and body mass index was calculated by following formula - weight (in kg)/height^2 (metre). The subjects were then categorised according to their BMI.

Results and discussion -

Table No. 1 (See in next page)

Figure No. 1 See in next page)

Distribution of subjects of different schools according to their Body Mass Index

It is clear from the table no.1 that the total subjects in Little Kingdom School whose body mass index was calculated were 992, out of which 542 were under weight, 114 had normal weight, 220 were overweight and 116 were obese. The total subjects of Little World School were 1250, out of which 102 were under weight, 686 had normal weight, 322 were overweight and 140 were obese. There were 490 subjects in Wisdom Public School out of which 101 were under weight, 117 had normal weight, 212 were overweight and 60 were obese. The total subjects from Maharishi VidyaMandir School were 920, out of which 122 were under weight, 231 had normal weight, 462 were overweight and 105 were obese. The total subjects in Maharashtra High School whose body mass index were calculated were 495, out of which121 were under weight, 122 had normal weight, 173 were overweight and 79 were obese.

Summary and conclusion - Thus, the number of underweight , normal weight, overweight and obese subjects in five schools were segregated by the standard procedure of calculating BMI.

References :-

1. Assessing your weight and health risk.2013.National Heart Lung and Blood Institute website.Accessed in October 15.
2. Flegal KM,BK Kit,HOrpana,BI Graubard.2013 Associationwith overweight and obesity using standard body mass index categories:a systematic review and meta analysis.JAMA;309(1):71-82.
3. Shah NR,ER Braverman.2012.Measuring adiposity in patients:The utility of body mass index (BMI) percent body fat ,and leptin.PLOS ONE;7(4):e33308.
4. Sherry B,ME Jefferds,LMGrummer Strawn.2007. Accuracy of adolescent self-report of height and weight in assessing overweight status :a literature review.ArchPediatrAdolesc Med;161(12):1154-61.

* Professor, Govt. M.H. College of Home Science and Science for women, Jabalpur (M.P.) INDIA
** Head and Professor, Govt. M.H. College of Home Science and Science for women, Jabalpur (M.P.) INDIA
*** Research Scholar, Govt. M.H. College of Home Science and Science for women, Jabalpur (M.P.) INDIA

Table No. 1
Distribution of subjects of different schools according to their Body Mass Index

Name of schools	Population	Sample subjects			
		Underweight	Normal	Overweight	Obese
Little Kingdom School	992	114	542	220	116
Little World School	1250	102	686	322	140
Wisdom Public school	490	101	117	212	60
MaharshiVidyaMandir School	920	122	231	462	105
Maharashtra High School	495	121	122	173	79

Figure No. 1
Distribution of subjects of different schools according to their Body Mass Index

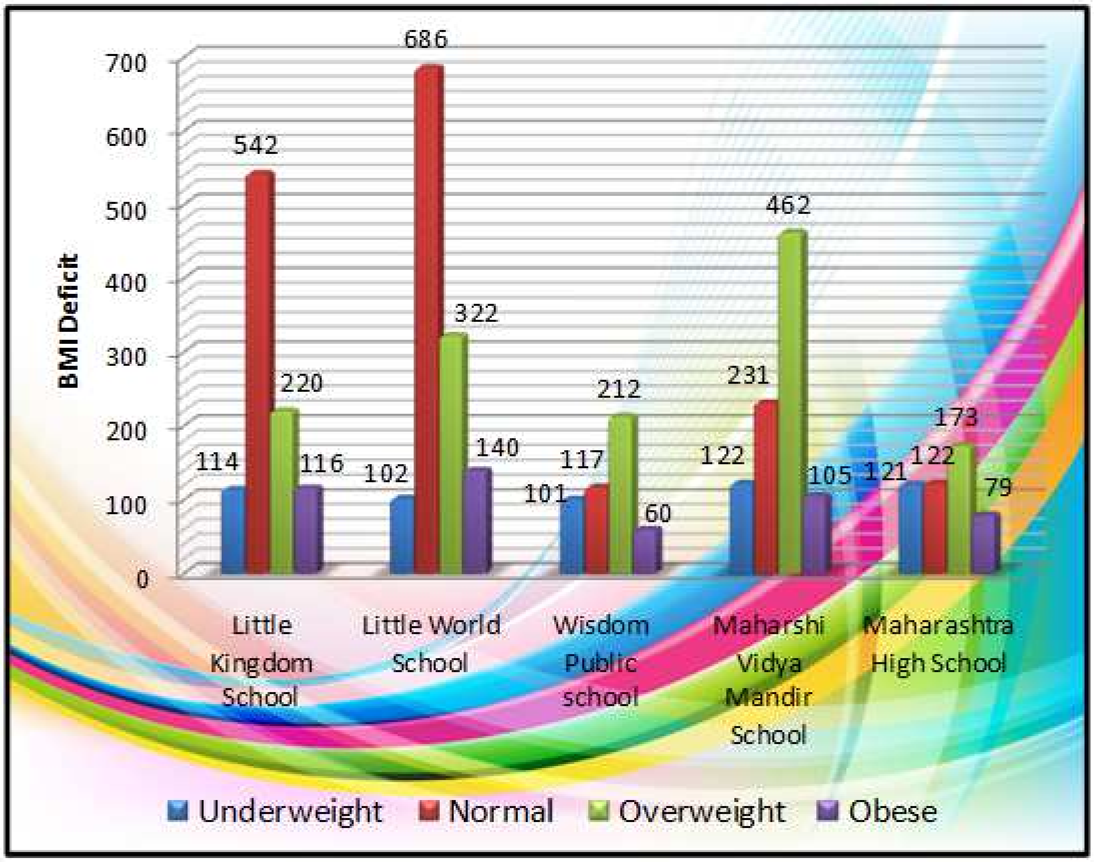

****

गोंड जनजाति में परिवार एवं उनकी आर्थिक व्यवस्था - एक अध्ययन (बैतूल जिले के विशेष संदर्भ में)

डॉ. मधुबाला वर्मा * रश्मि सोनी **

शोध सारांश - प्रस्तुत शोध पत्र बैतूल जिले की गोंड जनजाति में परिवार एवं उनकी व्यवस्था के संबंध में है। जिसमें न्यादर्श के रूप में 30 गोंड आदिवासी पुरूषों का चयन दैव निदर्शन विधि द्वारा किया गया है। शोध उपकरण के रूप में साक्षात्कार, अनुसूची एवं अवलोकन पद्धति का प्रयोग कर तथ्यों का संकलन किया गया और विश्लेषण कर परिणाम प्राप्त किये गये। प्राप्त परिणामों के अनुसार गोंड जनजाति में परिवार पैतृक व पितृवंशीय होते है। एवं परिवारों की अपेक्षा संयुक्त परिवारों की संख्या अधिक है। आर्थिक व्यवस्था के अंतर्गत इनका मुख्य व्यवसाय कृषि एवं कृषि मजदूरी है। आमदनी का दूसरा जरिया, वनोपज संग्रह एवं हाथ मजदूरी है जिसके द्वारा ये अपना एवं अपने परिवार का जीविकोपार्जन करते है।

प्रस्तावना - हमारे भारतीय समाज और संस्कृति को निराली छवि प्रदान करती है - भारत की जनजातियां। भारत आदिवासी, ग्रामीण व नगरीय समाजों मे विभक्त है। जनजातीय समूह को देश के सबसे पिछड़े वर्ग में रखा जा सकता है। गोंड एक प्राचीन एवं प्रभावशाली जनजाति है। आदिवासी समाज अन्य समाजो की तुलना में आर्थिक दृष्टि से विपन्न है। जनजातीय समाज की अपनी परम्पराऐं एवं मान्यताऐं है जो इस समाज के आर्थिक स्तर को प्रभावित करती है। रोटी कपड़ा और मकान सभी की प्रमुख आवश्यकता है। जिसकी पूर्ति के लिए हर इंसान अथक प्रयास करता है और यही प्रयास उसकी आर्थिक स्थिति का निर्धारण करते है। इस अध्ययन के माध्यम से बैतूल जिले की गोंड जनजाति में परिवार एवं आर्थिक व्यवस्था को जानने का ही प्रयास किया गया है।

साहित्य का पुनरावलोकन-

1. **गोयल, डॉ. सुनील** ने अपने शोध प्रबंध में यह स्पष्ट किया है कि आज विभिन्न जनजातियों में संयुक्त परिवार एकांकी परिवार में परिवर्तित हो रहे है ये पुरूष प्रधान परिवार होते है तथा इनमें पुरूष की तरफ से वंशावली चलती है।
2. **पाण्डा, वी.पी. (1993)** ने अपने अध्ययन में बताया कि अनुसूचित जनजाति के परिवारों में पितृप्रधान वंश परम्परा का प्रचलन है इन लोगो का आर्थिक जीवन वनोपज पर निर्भर है। पारम्परिक व्यवसाय कृषि है। इन पर बाहय सभ्यता का प्रभाव आंशिक रूप से देखने को मिलता है।

उद्देश्य -

1. गोंड जनजाति में परिवारो के स्वरूप का अध्ययन करना।
2. गोंड जनजातीय परिवारो की आर्थिक व्यवस्था का अध्ययन करना।

उपकल्पना-

1. गोंड जनजाति में अधिकांश परिवार संयुक्त होंगे।
2. गोंड जनजातीय परिवारों की आर्थिक व्यवस्था मुख्य रूप से कृषि, कृषि मजदूरी व वनोपज संग्रह पर निर्भर होगी।

न्यादर्श - न्यादर्श के रूप में बैतूल जिले की गोंड जनजाति से 30 आदिवासी पुरूषों का चयन दैव निदर्शन विधि द्वारा किया गया है।

उपकरण - उपकरण के रूप में साक्षात्कार, स्वनिर्मित अनुसूची व अवलोकन पद्धति का उपयोग किया गया है।

विधि-सर्वप्रथम बैतूल जिले की गोंड जनजाति से 30 आदिवासी पुरूषों का चयन दैव निदर्शन विधि द्वारा किया गया एवं उनकी जनजाति में परिवार एवं आर्थिक व्यवस्था से संबंधित कथनों से निर्मित अनुसूची का प्रयोग कर प्रश्न पूछे गये साथ ही अवलोकन विधि द्वारा परिवार के स्वरूप व आर्थिक व्यवस्था का अध्ययन कर तथ्यों संकलन किया गया। तथ्यों व आकड़ों का विश्लेषण प्रतिशत विधि द्वारा किया गया एवं परिणाम प्राप्त किये गये। जिसके आधार पर निष्कर्ष निकाले गये।

परिणामों का विश्लेषण -

कथन 1 - परिवार का स्वरूप कैसा है ?

क्रं.	परिवार का स्वरूप	संख्या	प्रतिशत
1	एकांकी	09	30
2	संयुक्त	21	70
	योग	30	100

कथन 2 - परिवार का मुख्य व्यवसाय क्या है ?

क्रं.	व्यवसाय	संख्या	प्रतिशत
1	कृषि	12	40
2	कृषि मजदूरी	10	33.5
3	हाथ मजदूरी	08	26.5
4	नौकरी	-	-
	योग	30	100

कथन 3 - वनोपज संग्रह का कार्य कौन करता है ?

क्रं.	वनोपज संग्रह कार्य	संख्या	प्रतिशत
1	स्त्री	-	-
2	पुरूष	-	-
3	बच्चे	-	-
4	सभी	30	100
	योग	30	100

* प्राध्यापक (गृहविज्ञान) शासकीय गीतान्जली कन्या पी.जी. महाविद्यालय, भोपाल (म.प्र.) भारत
** अतिथि विद्वान (गृहविज्ञान) शासकीय गृहविज्ञान स्नातकोत्तर महाविद्यालय, होशंगाबाद (म.प्र.) भारत

कथन 4 – अन्य मजदूरी के अंतर्गत क्या कार्य मिलता है ?

क्रं.	अन्य मजदूरी	संख्या	प्रतिशत
1	हैण्डपंप खुदाई	03	10
2	मलवा ढुलाई	06	20
3	सड़क निर्माण	05	20
4	उपरोक्त सभी	15	50
	योग	30	100

कथन 5 – परिवार की मासिक आय क्या है ?

क्रं.	मासिक आय	संख्या	प्रतिशत
1	2000–3000	09	30
2	3000–4000	15	50
3	4000–5000	06	20
4	इससे अधिक	–	–
	योग	30	100

उपरोक्त कथनों के अतिरिक्त भी कई कथनों को साक्षात्कार अनुसूची में सम्मिलित किया गया था। जिससे सही परिणाम प्राप्त कर निष्कर्ष निकाले गये है।

निष्कर्ष– उपरोक्त अध्ययन में हमने पाया कि बैतूल जिले की गोंड जनजाति में मुख्यत: संयुक्त परिवारो की संख्या अधिक है। परिवार में पुत्रों का विवाह हो जाने के पश्चात् वे घर के पास ही अपनी अलग गृहस्थी वसा लेते है किन्तु फिर भी परिवार का सबसे छोटा पुत्र एवं पुत्रवधु उसी परिवार में एक साथ रहते है। गोंड जनजातीय परिवारों का मुख्य व्यवसाय कृषि एवं कृषि मजदूरी है। जिन परिवारों के पास स्वयं की जमीन नहीं है वे दूसरे के खेतो पर कृषि मजदूरी करने के साथ–साथ वनोपज संग्रह एवं हाथ मजदूरी के अंतर्गत इन्हे हैण्डपंप, खुदाई, मलवा ढुलाई, सड़क निर्माण इत्यादि कार्यो में मजदूरी मिलती है। इन परिवारों की मासिक आय 3000–4000 रूपये के मध्य है और इतने कम रूपयों मे अपनी आर्थिक व्यवस्था को सुचारू रूप से चलाये रखना अत्यंत कठिन है इसीलिए आज भी इनकी आर्थिक स्थिति दयनीय बनी हुई है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :–

1. तिवारी, डॉ. शिवकुमार (2007), मध्यप्रदेश की जनजातियां, समाज एवं व्यवस्था, हिन्दी ग्रंथ अकादमी भोपाल।
2. पाण्डा, वी.पी. (1993), कोरकू जनजाति का मानव शास्त्रीय अध्ययन आदिम जाति अनुसंधान एवं विकास संस्थान भोपाल।
3. भदौरिया, संतोष कुमार (2003), गोंड जनजाति के परिवार और विवाह में सामाजिक परिवर्तन, शोध प्रबंध, बरकतउल्लाह विश्वविद्यालय भोपाल।
4. उपाध्याय, एकता एवं जैन, स्वाति (2010), आदिवासियों की आय का स्त्रोत: लघुवनोपज, जनजातीय परिदृश्य, यूनिवर्सिटी पब्लिकेशन्स नई दिल्ली।
5. गुप्ता, एम.एल. एवं शर्मा, डी.डी. (2004), सामाजिक अन्वेषण की सर्वेक्षण पद्धतियां, साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, आगरा।

****

कानपुर शहर के विद्यालयों में अध्ययनरत मध्यान्ह भोजन व्यवस्था (म.भो.व्य.) से लाभान्वित एवं अलाभान्वित विद्यार्थियों के दंत स्वास्थ्य स्तर का तुलनात्मक अध्ययन

पूनम रानी * डॉ. मंजू दुबे **

प्रस्तावना – 'स्वास्थ्य और सौंदर्य दोनों दृष्टियों से सुन्दर, चमकीले व पुष्ट दाँतों का महत्व है। यह तो सभी जानते हैं कि दूध के दाँत जाने पर दोबारा आते हैं पर प्रौढ़ दाँत कभी दोबारा नहीं मिलते और कृत्रिम दाँत कभी भी प्राकृतिक दाँतों की बराबरी नहीं कर सकते।'[1] इसलिए दाँतों की देखभाल के प्रति सावधान रहना अत्यावश्यक है। बच्चे दिन भर, टॉफी, चॉकलेट, मिठाइयाँ, कोल्ड ड्रिंक्स एवं फास्ट फूड की फरमाइश करते रहते हैं और माता पिता उन्हें खुश रखने के लिए उनकी फरमाइशें पूर्ण करते रहते हैं। इसका उनके दाँतों पर हानिकारक प्रभाव पड़ता है और उनके दाँत खराब हो जाते हैं। दाँतों में केविटी, पीलापन, सफेद परत का जमना, दाँतों में सफेद दाग होना या दाँत के रंग में परिवर्तन होना अस्वस्थ दाँतों की श्रेणी में आते हैं और सफेद, चमकीले दाग रहित पुष्ट दाँत स्वस्थ्य दाँतों की श्रेणी में आते हैं। दाँत खराब होने पर वे भोजन को ठीक प्रकार से नहीं पीस पाते हैं। फलत: भोजन का पाचन ठीक से नहीं हो पाता है और अपच भोजन शरीर से बाहर निकाल दिया जाता है। इस प्रकार पर्याप्त भोजन ग्रहण करने के बाद भी वो पाचन व अवशोषण के अभाव में शरीर द्वारा ग्रहण नहीं किया जाता है। इस कारण शरीर दिन प्रतिदिन कमजोर होता चला जाता है।

अस्वस्थ्य एवं पीले दाँतों के कारण बच्चे लोगों से बात करने एवं मुस्कुराने में भी कतराने लगते हैं। इस प्रकार दाँतों की अस्वस्थ्यता बच्चों के शारीरिक विकास के साथ-साथ उनके व्यक्तित्व को भी प्रभावित करती है। इसलिए विद्यार्थियों के दाँतों का परीक्षण समय-समय पर होना चाहिए। यद्धपि कानपुर में शासन द्वारा विद्यालयों में विद्यार्थियों के स्वास्थ्य हेतु मध्यान्ह भोजन व्यवस्था संचालित की गई है। कानपुर शहर के विद्यार्थियों के दाँतों का स्वास्थ्य कैसा है? क्या मध्यान्ह भोजन व्यवस्था से लाभान्वित विद्यार्थियों के दाँतों के स्वास्थ्य के स्तर और अलाभान्वित विद्यार्थियों के दाँतों के स्वास्थ्य में अंतर है? आदि प्रश्नों के समाधान हेतु शोधार्थी ने अपने शोध का विषय – 'कानपुर शहर के विद्यालयों में अध्ययनरत मध्यान्ह भोजन व्यवस्था (म.भो.व्य.) से लाभान्वित एवं अलाभान्वित विद्यार्थियों के दंत स्वास्थ्य स्तर का तुलनात्मक अध्ययन' चुना है।

उद्देश्य–

1. मध्यान्ह भोजन व्यवस्था से लाभान्वित बालक एवं बालिकाओं के दाँतों के स्वास्थ्य स्तर का तुलनात्मक अध्ययन करना।
2. मध्यान्ह भोजन व्यवस्था से अलाभान्वित बालक एवं बालिकाओं के दाँतों के स्वास्थ्य स्तर का तुलनात्मक अध्ययन करना।
3. मध्यान्ह भोजन व्यवस्था से लाभान्वित एवं अलाभान्वित विद्यार्थियों के दाँतों के स्वास्थ्य स्तर का तुलनात्मक अध्ययन करना।

परिकल्पना– शोध अध्ययनहेतु निम्नलिखित शून्य परिकल्पना का निर्माण किया गया –'म.भो.व्य. से लाभान्वित एवं अलाभान्वित विद्यार्थियों के दाँतों के स्वास्थ्य स्तर में सार्थक अंतर नहीं पाया जायेगा।'

शोध प्रविधि– शोध अध्ययन हेतु कानपुर शहर के प्राथमिक विद्यालयों में अध्ययनरत् 300 विद्यार्थियों का चयन दैव निदर्शन विधि से किया गया। 300 विद्यार्थियों में 150 विद्यार्थियों का चयन मध्यान्ह भोजन व्यवस्था युक्त विद्यालयों से तथा 150 विद्यार्थियों का चयन मध्यान्ह भोजन व्यवस्था रहित विद्यालयों से किया गया। मध्यान्ह भोजन व्यवस्था से लाभान्वित 150 विद्यार्थियों में 75 बालक एवं 75 बालिकायें तथा आलाभान्वित विद्यार्थियों में 75 बालक एवं 75 बालिकायें चयनित की गई (तालिका क्रमांक 1)। विद्यार्थियों का दंत परीक्षण लक्षण परीक्षण विधि से किया गया। प्राप्त आंकड़ों को आलेखित कर तुलनात्मक अध्ययन किया गया। परिकल्पना की सार्थकता ज्ञात करने हेतु टी-परीक्षण (T-Test) का उपयोग किया गया।

तालिका क्रमांक-1 (तालिका देखे)

तालिका क्रमांक-2

मध्यान्ह भोजन व्यवस्था से लाभान्वित बालक एवं बालिकाओं का दंत स्वास्थ्य स्तर

दंत स्वास्थ्य	बालक		बालिकायें		योग	
स्तर	संख्या	प्रति.	संख्या	प्रति.	संख्या	प्रति.
उच्च	18	12	22	14.66	40	26.66
निम्न	57	37.98	53	35.32	110	73.3
योग	75	50	75	50	150	100

तालिका क्रमांक 2 दर्शाती है कि 26.66% विद्यार्थियों के दाँतों का स्वास्थ्य स्तर उच्च पाया गया अर्थात् उनके दाँत सफेद, चमकीले तथा दाग रहित पाये गये जिनमें बालिकाओं का प्रतिशत बालकों की तुलना में अधिक पाया गया।

73.3% विद्यार्थियों के दाँतों का स्वास्थ्य निम्न स्तर का पाया गया अर्थात् उनके दाँतों पर सफेद पर्त व दाग तथा दंत खोह पाये गये तथा उनके दाँतों के रंग में भी परिवर्तन पाया गया। निम्न दंत स्वास्थ्य स्तर के विद्यार्थियों में बालकों का प्रतिशत बालिकाओं की तुलना में अधिक पाया गया। इस प्रकार उच्च दंत स्वास्थ्य स्तर की श्रेणी में बालिकाओं का प्रतिशत बालकों

* शोधार्थी, शासकीय कमलाराजे कन्या स्नातकोत्तर स्वशासी महाविद्यालय, ग्वालियर (म.प्र.) भारत
** प्राध्यापक एवं संकायाध्यक्ष (गृह विज्ञान) शासकीय कमलाराजे कन्या स्नातकोत्तर स्वशासी महाविद्यालय, ग्वालियर (म.प्र.) भारत

की तुलना में अधिक होना तथा निम्न दंत स्वास्थ्य स्तर की श्रेणी में बालकों का प्रतिशत बालिकाओं की तुलना में अधिक होना यह दर्शाता है कि बालिकाओं के दाँत बालकों के दाँतों की तुलना में अधिक स्वस्थ होते हैं। विद्यार्थियों के दाँतों का निम्न स्तर होना उनमें विटा. ए, डी एवं कैल्शियम की कमी तथा फ्लोराइड की अधिकता प्रदर्शित करता है। इसके साथ ही मीठे पदार्थों का सेवन व दाँतों की साफ सफाई में कमी को भी प्रदर्शित करता है।

तालिका क्रमांक-3

मध्यान्ह भोजन व्यवस्था से अलाभान्वित बालक एवं बालिकाओं का दंत स्वास्थ्य स्तर

दंत स्वास्थ्य	बालक		बालिकायें		योग	
स्तर	संख्या	प्रति.	संख्या	प्रति.	संख्या	प्रति.
उच्च	4	2.66	5	3.33	9	5.98
निम्न	71	47.32	70	46.65	141	93.97
योग	75	50	75	50	150	100

तालिका क्र. 3 से स्पष्ट होता है कि 93.97% विद्यार्थियों के दाँत अस्वस्थ्य हैं जिनमें बालकों का प्रतिशत बालिकाओं की तुलना में मामूली अधिक है। 5.98% विद्यार्थियों के दाँतों का स्तर उच्च है अर्थात् वे स्वस्थ्य अवस्था में सफेद चमकीले, दंत खोह व दाग रहित हैं। बालक एवं बालिकाओं की तुलना करने पर ज्ञात होता है कि स्वस्थ्य दाँतों वाले विद्यार्थियों में बालिकाओं का प्रतिशत बालकों की तुलना में मामूली अधिक है।

उच्च दंत स्वास्थ्य स्तर की श्रेणी के विद्यार्थियों में बालिकाओं का प्रतिशत अधिक होना तथा निम्न दंत स्वास्थ्य स्तर की श्रेणी के विद्यार्थियों में बालिकाओं का प्रतिशत कम होना इस बात की ओर इंगित करता है कि बालिकाओं के दाँतों के स्वास्थ्य बालकों के दाँतों के स्वास्थ्य की तुलना में उत्तम है।

तालिका क्रमांक-4 (देखे अगले पृष्ठ पर)

तालिका क्रमांक 4 के अवलोकन से स्पष्ट होता है कि 83.66% विद्यार्थियों का स्वास्थ्य स्तर निम्न पाया गया अर्थात् केवल 16.33% विद्यार्थियों के दाँतों का स्वास्थ्य उच्च स्तर का पाया गया अर्थात् उनके दाँत सफेद, चमकीले, दंत खोह व दाग रहित पाये गये। उच्च दंत स्वास्थ्य स्तर की श्रेणी में म.भो.व्य. से लाभान्वित विद्यार्थियों का प्रतिशत 13.33% तथा अलभान्वित विद्यार्थियों का प्रतिशत 2.99% पाया गया। इस प्रकार लाभान्वित विद्यार्थियों का प्रतिशत अलाभान्वित विद्यार्थियों की तुलना में अधिक पाया गया।

निम्न दंत स्वास्थ्य स्तर की श्रेणी के अंतर्गत म.भो. व्यवस्था से लाभान्वित विद्यार्थियों का प्रतिशत 36.33% तथा अलाभान्वित विद्यार्थियों का प्रतिशत 47% पाया गया। इससे स्पष्ट होता है कि निम्न दंत स्वास्थ्य स्तर के विद्यार्थियों का प्रतिशत लाभान्वित विद्यार्थियों की तुलना में अलाभान्वित विद्यार्थियों का अधिक है इससे स्पष्ट होता है कि मध्यान्ह भोजन व्यवस्था से विद्यार्थियों के स्वास्थ्य स्तर को लाभ पहुँचता है। उच्च दंत स्वास्थ्य स्तर की श्रेणी में म.भो.व्य. से लाभान्वित विद्यार्थियों का प्रतिशत अधिक होना तथा निम्न दंत स्वास्थ्य स्तर की श्रेणी में म.भो.व्य. से लाभान्वित विद्यार्थियों का प्रतिशत कम होना यह दर्शाता है कि मध्यान्ह भोजन व्यवस्था से विद्यार्थियों के स्वास्थ्य स्तर को लाभ पहुँचता है।

तालिका क्रमांक-5 (देखे अगले पृष्ठ पर)

तालिका क्र. 5 के अवलोकन से स्पष्ट होता है कि टी परीक्षण का मूल्य 298 स्वातंत्र्यांश पर 48.493 है जो कि 0.05 स्तर पर सार्थक है। अत: शून्य परिकल्पना 'मध्यान्ह भोजन व्यवस्था से लाभान्वित एवं अलाभान्वित विद्यार्थियों के दाँतों के स्वास्थ्य स्तर में सार्थक अंतर नहीं पाया जायेगा , अस्वीकृत होती है। तालिका से स्पष्ट है कि ला. विद्यार्थियों के दंत स्वास्थ्य स्तर का माध्य 4.00 है जबकि अलाभान्वित विद्यार्थियों के दंत स्वास्थ्य स्तर का माध्य 1.20 है जो कि लाभान्वित विद्यार्थियों के माध्य से कम है। म.भो.व्य. से लाभान्वित विद्यार्थियों एवं अलाभान्वित विद्यार्थियों के स्वास्थ्य स्तर के माध्य में सार्थक अंतर पाया गया। अत: म.भो.व्य. से ला. एवं अला. विद्यार्थियों के दंत स्वास्थ्य स्तर में सार्थक अंतर पाया गया।

निष्कर्ष- मध्यान्ह भोजन व्यवस्था से लाभान्वित एवं अलाभान्वित विद्यार्थियों के दंत स्वास्थ्य स्तर में अंतर पाया गया। ला. विद्यार्थियों के दाँतों का स्वास्थ्य अलाभान्वित विद्यार्थियों के दांतों के स्वास्थ्य की तुलना में उच्च स्तर का पाया गया। यद्यपि अधिकांश विद्यार्थियों 83.66% के दाँत अस्वस्थ्य अवस्था में हैं। केवल 16.33% विद्यार्थियों के दाँत सामान्य स्वास्थ्य अवस्था में सफेद, चमकीले, दंत खोह व दाग रहित पाये गये। बालिकाओं के दाँतों का स्वास्थ्य बालकों के दाँतों के स्वास्थ्य की तुलना में उत्तम पाये गये।

विद्यार्थियों का निम्न दंत स्वास्थ्य स्तर उनमें कैल्शियम, विटामिन ए व डी की कमी एवं फ्लोराइड की अधिकता को दर्शाने के साथ-साथ दाँतों की भली भांति देखभाल में कमी को भी प्रदर्शित करता है।

सुझाव- दाँतों की सुरक्षा एवं स्वास्थ्य स्तर उच्च बनाये रखने के लिए निम्नलिखित सुझाव हैं-

1. भोजन में कैल्शियम, फास्फोरस, विटामिन ए, डी तथा सी युक्त भोजन पदार्थों का समावेश प्रतिदिन करना चाहिये। कैल्शियम की प्राप्ति के स्त्रोत हैं, दूध व दूध से बने पदार्थ, तिल व हरी पत्तेदार सब्जियाँ। फास्फोरस की प्राप्ति हेतु अनाज, दालें एवं तेल युक्त बीजों का सेवन करना चाहिए। दूध व फास्फोरस की प्राप्ति हेतु यकृत, मछली के यकृत का तेल, अण्डे की जर्दी, घी, दूध, दही व मक्खन का सेवन करना चाहिए। विटामिन डी की प्राप्ति मछली के तेल, अण्डा, मक्खन, पनीर, वसा युक्त दूध एवं घी से होती है तथा प्रात:कालीन धूप में शरीर पर सरसों के तेल की मालिश कर विटामिन डी शरीर में उत्पन्न किया जा सकता है। विटामिन सी की प्राप्ति के लिए आँवला, अमरूद, नीबू, संतरा, अनानास, टमाटर आदि का सेवन करना चाहिए।
2. दाँतों की सफाई नियमित करनी चाहिए। प्रात:काल एवं रात्रि को सोने के पूर्व दाँतों की सफाई मुलायम ब्रश से करने की आदत बच्चों में बचपन से ही डालनी चाहिए। उन्हें सामने एवं अन्दर की तरफ से दाँत साफ करते समय ऊपर के जबड़े के दाँतों में ऊपर से नीचे एवं नीचे के जबड़ों के दाँतों में नीचे से ऊपर की ओर ब्रश करना चाहिए ताकि मसूड़े अपने स्थान पर यथावत् बने रहें। दिन भर में जब भी कुछ खायें, विशेषकर मीठा तो कुल्ला अवश्य करें।
3. मीठा खाने के बाद यदि ऊपर से नमकीन चीज खाई जाये तो भी मीठे का खराब असर दाँतों पर कम पड़ता है।
4. अत्यधिक गर्म या अत्यधिक ठण्डी चीजों का सेवन न करें।
5. बच्चों के जब दूध के दाँत गिरते हैं व स्थायी दाँत आते हैं तब यदि वे टेड़े मेड़े आ रहे हों तो तुरन्त दंत चिकित्सक की सलाह लेना चाहिए।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. व्होरा, आशारानी, 'लेडीज हैल्ड गाइड' प्रकाशक महल नई दिल्ली, पृष्ठ क्र. 45

2. गौतम, नन्दा, खनूजा रीना, 'मानव शरीर विज्ञान, साहित्य प्रकाशन आगरा।
3. सिंह, अनीता, 'उपचारात्मक पोषण' स्टार पब्लिकेशन आगरा।
4. कानगो, मंगला, 'पोषण एवं पोषण एवं पोषण स्तर' रिसर्च पब्लिकेशन जयपुर।
5. स्नेहलता, 'पोषण स्तर', डिस्कवरी पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली-110002

तालिका क्रमांक-1
मध्यान भोजन व्यवस्था से लाभान्वित एवं अलाभान्वित विद्यार्थियों का क्षेत्रानुसार वर्गीकरण

क्षेत्र	लाभान्वित विद्यार्थी				अलाभान्वित विद्यार्थी				कुल योग	
	लड़के		लड़कियाँ		लड़के		लड़कियाँ			
	सं.	प्रति.	सं.	प्रति.	सं.	प्रति.	सं.	प्रति.	सं.	प्रति.
सरसौल	25	8.33	25	8.33	25	8.33	25	8.33	100	33.32
घाटमपुर	25	8.33	25	8.33	25	8.33	25	8.33	100	33.32
चौबेपुर	25	8.33	25	8.33	25	8.33	25	8.33	100	33.32
योग	**75**	**25**	**75**	**25**	**75**	**25**	**75**	**25**	**300**	**100**

तालिका क्रमांक-4
म.भो.व्य. से ला. तथा अला. विद्यार्थियों के दंत स्वास्थ्य स्तर की तुलनात्मक तालिका

दंत स्वास्थ्य स्तर	लाभान्वित विद्यार्थी						अला. विद्यार्थी						कुल योग	
	बालक		बालिकायें		योग		बालक		बालिकायें		योग			
	सं.	प्रति.	सं.	प्रति.	सं.	प्रति.	सं.	प्रति.	सं.	प्रति.	सं.	प्रति.	सं.	प्रति.
उच्च	18	6	22	7.33	40	13.33	4	1.33	5	1.66	9	2.99	49	16.33
निम्न	57	19	53	17.66	110	36.33	71	23.66	70	23.33	141	47	251	83.66
योग	75	25	75	25	150	50	75	25	75	25	150	50	300	100

ला. - लाभान्वित, अला. - अलाभान्वित

तालिका क्रमांक-5
म.भो.व्य. से ला. एवं अला. विद्यार्थियों के दंत स्वास्थ्य स्तर का माध्य, मानक विचलन एवं टी-परीक्षण

विद्यार्थी	**माध्य**	**मानक विचलन**	**स्वातंत्र्यांश**	**टी-परीक्षण**	**रिमार्क का मूल्य**
ला. विद्यार्थी	4.00	0.00	298	48.493	$p<0.05$
अला. विद्यार्थी	1.20	0.40			

0.05 स्तर पर सार्थक

****

शासकीय विद्यालयों में अध्ययनरत विद्यार्थियों में कुपोषण स्तर का अध्ययन (ग्वालियर शहर के संदर्भ में)

अर्जुमन बानो * डॉ. मंजू दुबे **

प्रस्तावना – बालकों में कुपोषण समस्या एक विश्वव्यापी समस्या है 'विकासशील देशों में किये गये पोषण सर्वेक्षणों से पता चला है कि इन देशों की अधिकांश जनता द्वारा जो आहार लिया जाता है उसमें अनाज कन्द-मूल आदि मुख्य रुप से प्रयुक्त किये जाते हैं। इन आहारों में फलियों एवं सब्जियों की मात्रा बहुत कम होती है। दूध, मॉस, मछली और अंडों की मात्रा तो नाम मात्र की ही होती है। काफी बड़ी जनसंख्या को तो पर्याप्त भोजन ही नहीं प्राप्त होता है। इनके आहारों में कैलोरी प्रोटीन और विटामिन की भी कमी रहती है। जिन विटामिनों की कमी पायी जाती है उनमें विटामिन ए राइबोफ्लोविन, फोलिक एसिड और खनिजों में केल्शियम और आयरन प्रमुख है। स्तनपान छोड़ने वाले पूर्व शालेय बालकों में प्रोटीन कैलोरी कुपोषण प्राय: देखने में आता है। बालकों, गर्भवती महिलाओं और दुग्धस्त्रावी माताओं में विटामिन ए की कमी के रोग पाये जाते हैं।

उपरोक्त परिस्थितियों के मुख्य कारण है – (1) जनसंख्या में अत्यधिक वृद्धि। (2) बहुत कम क्रय शक्ति (3) असाक्षरता, अज्ञान, अन्धविश्वास और भोजन संबंधी सनकीपन (4) प्रतिव्यक्ति खेती योग्य भूमि की कमी और जमीन तथा पशुओं की बहुत कम उत्पादिता (5) औद्योगीकरण का निचला स्तर और (6) अस्वास्थकर वातावरण जिसके कारण बार बार संक्रमण रोग घेर लेते हैं तथा कुपोषण की समस्या को और अधिक जटिल बना देते हैं।'[1]

शासकीय विद्यालयों में अध्ययनरत बच्चे बहुत अधिक क्रियाशील होते हैं तथा बच्चे के शारीरिक, मानसिक व संवेगात्मक विकास में निरंन्तर वृद्धि होती है। बच्चों के स्कूल जाने से भी बच्चों की क्रियाशीलता काफी बढ़ जाती है और उनको अधिक कैलोरी अर्थात ऊर्जा की आवश्यकता होती है। यदि बालकों को उनकी आवश्यकतानुसार संतुलित एवं पर्याप्त भोजन प्राप्त नहीं होता तो वे कुपोषित होने लगते हैं। बच्चे ही भविष्य में देश की बागडोर सम्हाल सकते हैं। बच्चों को कुपोषण से बचाना हमारे समाज की जिम्मेदारी है। अत: शोधार्थी ने अपने शोध का विषय 'ग्वालियर शहर के शासकीय विद्यालयों में अध्ययनरत विद्यार्थियों में कुपोषण स्तर का अध्ययन' चुना है।

उद्देश्य –

1 विद्यार्थियों में कुपोषण स्तर का अध्ययन करना।

2 कुपोषण दूर करने हेतु सुझाव प्रस्तुत करना।

शोध प्रविधि – शोध अध्ययन हेतु ग्वालियर शहर के शासकीय विद्यालयों में अध्ययनरत विद्यार्थियों में से 300 विद्यार्थियों का दैव निदर्शन विधि से चयन किया गया। कुपोषण स्तर ज्ञात करने हेतु मानवमिति परीक्षण (Anthropometic measurement) का उपयोग किया गया।

सांख्यिकी गणना इंडियन एकेडेमी ऑफ पिडीएट्रीशीयन्स के वर्गीकरण के अनुसार की गई। (तालिका क्रमांक 1, ग्राफ क्रमांक 1)
(तालिका क्रमांक -1) (देखे अगले पृष्ठ पर)

तालिका क्रं. 1 के अवलोकन से ज्ञात होता है कि 10.33 प्रतिशत बालक तथा 10 प्रतिशत बालिकायें कुल 20.33 प्रतिशत विद्यार्थी कुपोषण रहित अर्थात सामान्य श्रेणी के अन्तर्गत पाये गये।

18.33 प्रतिशत विद्यार्थी प्रथम डिग्री कुपोषणग्रस्त पाये गये, जिनमें 10 प्रतिशत बालक व 8.33 प्रतिशत बालिकाये पायी गयी।

द्वितीय डिग्री कुपोषण ग्रस्त विद्यार्थी 33 प्रतिशत पाये गये। जिसमें बालकों का प्रतिशत 15.33 प्रतिशत तथा बालिकाओं का प्रतिशत 17.67 पाया गया।

तृतीय डिग्री कुपोषण ग्रस्त विद्यार्थी 23 प्रतिशत पाये गये, जिसमें 12.33 प्रतिशत बालक और 10.66 प्रतिशत बालिकायें पायी गयीं।

चतुर्थ श्रेणी कुपोषणग्रस्त विद्यार्थियों का प्रतिशत बहुत कम 5.33 प्रतिशत पाया गया, जिनमें 2 प्रतिशत पाया गया जिनमें 2 प्रतिशत बालक 3.33 प्रतिशत बालिकायें सम्मिलित हैं।

प्रथम एवं तृतीय डिग्री कुपोषणग्रस्त विद्यार्थियों में बालकों का प्रतिशत बालिकाओं की तुलना में अधिक पाया गया, जब कि द्वितीय एवं चतुर्थ डिग्री कुपोषणग्रस्त बालिकाओं का प्रतिशत बालकों की तुलना में अधिक पाया गया।

निष्कर्ष – शोध अध्ययन से निम्नलिखित निष्कर्ष प्राप्त हुये।

1. 20.33 प्रतिशत विद्यार्थी कुपोषण रहित सामान्य स्वस्थ्य अवस्था में पाये गये।
2. 79.64 प्रतिशत विद्यार्थी कुपोषण ग्रस्त पाये गये जिनमें प्रथम एवं तृतीय डिग्री कुपोषण ग्रस्त बालकों का प्रतिशत बालिकाओं की तुलना में अधिक पाया गया तथा द्वितीय एवं चतुर्थ श्रेणी कुपोषण ग्रस्त विद्यार्थियों में बालिकाओं का प्रतिशत बालकों की तुलना में अधिक पाया गया।

सुझाव –

1. भोजन में अनाज और दालों में वृद्धि की जाये क्योंकि इसमें कैलोरी और प्रोटीन पाया जाता है। जिसमें 5 वर्ष के अंदर अल्पपोषण की समस्या समाप्त हो जायेगी।
2. गर्भवती महिलाओं, दुग्धस्त्रावी माताओं और बालकों के लिए आहार में गिरियाँ और तिलहनों का उपयोग किया जाये क्यों कि यह वसा प्राप्त करने के अच्छे साधन हैं।

*शोधार्थी, शासकीय कमलाराजे कन्या स्नातकोत्तर स्वशासी महाविद्यालय, ग्वालियर (म.प्र.) भारत
** विभागाध्यक्ष एवं प्राध्यापक, शासकीय कमलाराजे कन्या स्नातकोत्तर स्वशासी महाविद्यालय, ग्वालियर (म.प्र.) भारत

3. शक्कर और गुड की बनी मूंगफली की चिक्की एवं पिंडखजूर का प्रतिदिन सेवन करना चाहिए।
4. सब्जी के कन्दमूल फलियाँ हरी पत्तेदार सब्जियों का उपयोग किया जाए क्योंकि इसमें केरोटीन, एस्कॉर्बिक एसिड, फॉलिक एसिड और खनिज पर्याप्त मात्रा में मिलते हैं।
5. दूध या दूध से बने पदार्थ उपयोग में लाये जायें।
6. माँस, मछली, अंडो, का सेवन प्रतिदिन किया जाये।
7. सोयाबीन, मूंगफली से बने पदार्थों का उपयोग किया जाए क्यों कि इससे बच्चों में वैसा ही विकास होता है, जैसा दूध और दूध के बने पदार्थों से लाभ प्राप्त होता है।
8. सोयाबीन, मूंगफली, बिनौले, फलियों के आटे के मिश्रण से प्रोटीन युक्त आहार बनाये जा सकते हैं।
9 आयोडीन युक्त नमक का उपयोग किया जाये। क्योंकि आयोडीन शारीरिक एवं बौद्धिक विकास के लिए अति आवश्यक है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. स्वामिनाथन. एम, 'आहार एवं पोषण' प्रकाशन एन.आर. ब्रदर्स एम. बाय अस्पताल मार्ग इन्दौर - 452001 (म.प्र.) पेज न. 235-235[1]
2. श्रीवास्तव डॉ. डी.एन. अनुसंधान विधियाँ प्रकाशक साहित्य प्रकाशन, आगरा।
3. सिंह डॉ. अनीता, उपचारात्मक पोषण, प्रकाशक स्टार पब्लिकेशन, आगरा।
4. मिश्रा, ऊषा अग्रवाल, अल्का, आहार एवं पोषण विज्ञान प्रकाशक साहित्य प्रकाशन आगरा।
5. कांगनो, मंगला, पोषण शास्त्र एवं पोषण स्तर ।

(तालिका क्रमांक - 1)
विद्यार्थियों का कुपोषण स्तर

कुपोषण की श्रेणी	विद्यार्थी				कुल योग	
	बालक		बालिकायें		संख्या	प्रतिशत
	संख्या	प्रतिशत	संख्या	प्रतिशत		
80 व अधिक % (सामान्य)	31	10.33	30	10.00	61	20.33
70-80% (प्रथम डिग्री कुपोषण)	30	10.00	25	8.33	55	18.33
60-70% (द्वितीय डिग्री कुपोषण)	46	15.33	53	17.67	99	33.00
50-60% (तृतीय डिग्री कुपोषण)	37	12.33	32	10.66	69	23.00
50% से कम (चतुर्थ डिग्री कुपोषण)	6	2.00	10	3.33	16	5.33
योग	150	50.00	150	50.00	300	100.00

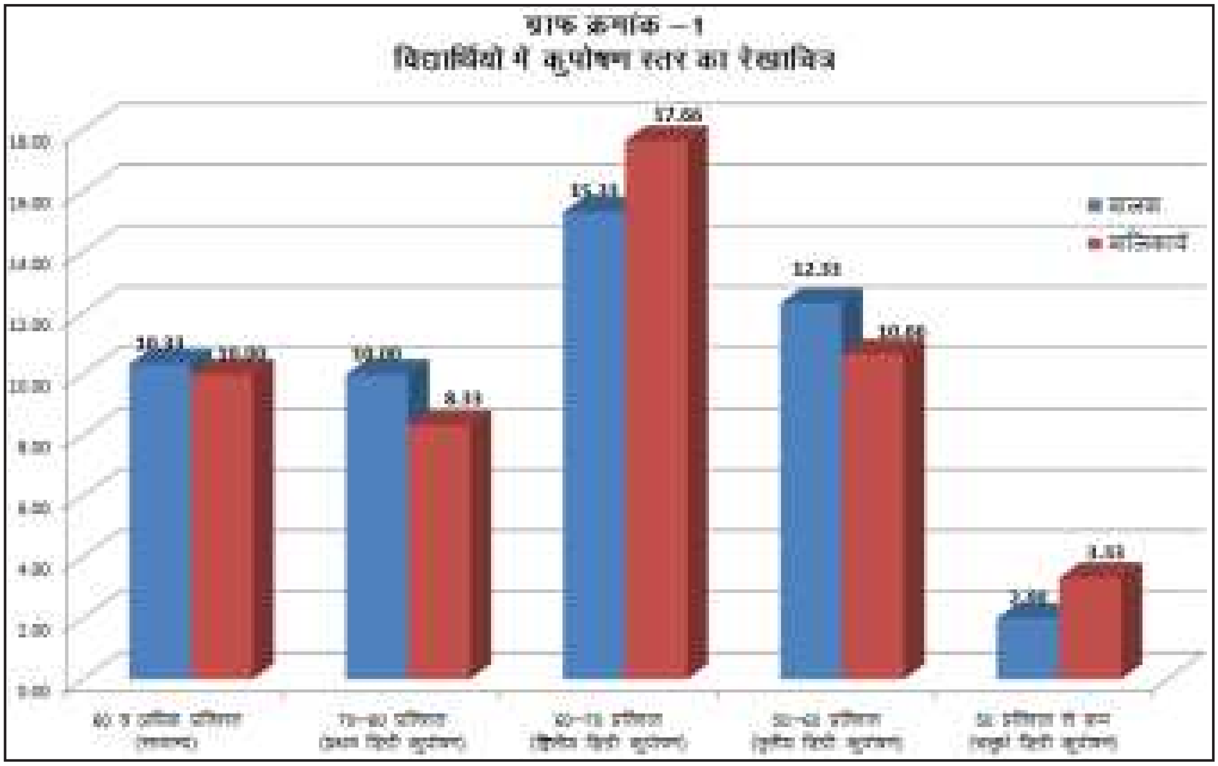

Lending In Deprived Sector And CSR Action In Nepalese Banking Sector

Dr. Kapil Dev Sharma * Jagat Bahadur Singh Rawal **

Abstract - From last few decades the rationale of Corporate Social Responsibility has been more felt and it become necessary phenomenon for every business entity. It is becoming an attentive agenda for them who engage with the activities that offer something in accordance to community satisfaction. This leads to acceptance of CSR as a compulsory part to run the entities in a fair manner. This is why CSR is becoming an unavoidable concern for business executors across the world. In fact, CSR is not charity or mere donation. Governments or governing body of the state around the world with international frameworks are increasingly establishing mandates for the private as well as public sector to integrate it along with other prime activities of the organization. Majority of the organizations around the world have been including CSR as a main activity and allocates the suitable funds making separate heading in annual budget for CSR activities.

This paper mainly emphasizes on size of the loan investment allocated for CSR activities, particularly in deprived sector by the major commercial banks in Nepal and to explore whether they are meeting the minimum requirements set by Nepal Rastra Bank the Central Bank of Nepal.
Keywords - Corporate Social Responsibility, Commercial banks, Public sector banks, Private Sector banks, Philanthropic Principles, Deprived Sector Loans, Obligatory Rate.

Introduction - Corporate Social Responsibility refers to strategies that Business corporations employ to conduct their business activities in a way to bring an overall positive impact on the communities, cultures, societies, and environments in which they operate. It is also known with a number of other names such as corporate responsibility, corporate accountability, corporate ethic, corporate citizenship, responsible entrepreneurship, triple bottom line and the like.

It is a thought where Business Organizations apart from their profitability and growth show interest in societal and environmental welfare by taking the responsibility of their activities on different connected parties.

Globally, CSR has integrated social as well as environmental issues into corporation's task and decisions. Business enterprises have undertaken CSR initiatives in the areas of water conservation, health care, rural welfare, environmental protection, poverty alleviation, inclusion, gender equality, education, community investment projects, culture and heritage, bio-diversity, disaster management and relief, green environment, product responsibility, waste management. Among these the subject matter of CSR about poverty alleviation consist to support the deprived sector by providing them economical assistance or granting easy loans. Many countries across the world have a wide range of laws to address on deprived sector. Unlike developed countries the area of CSR is still piling on its full form in developing countries.

CSR in Nepal - Corporate Social Responsibility is gradually becoming mandatory in most of the developing countries around the world as it is in the developed countries. But in Nepal no step has been taken so far regarding this. The form of CSR is still discretionary in Nepal. Being so the progress of its activities are still constant and around philanthropic principles. However the debate on essentiality of CSR is thriving in the recent past. . In real term, the investors and executors of the business organizations are not unaware about the importance and motives of CSR. They are also informed about how development of CSR is going on and in which way it is implementing in other countries.

It may be said that the main reason behind unprivileged of CSR activities and pitiable implementation in Nepal is only because of it is not mandatory. Open space of regulation, be short of policies and absence of governmental arbitrate regarding CSR are being taken as an opportunity for more earning and to secure from needless spending from corporations sides. Consequently, the condition of CSR in Nepal is still in a primitive stage as compared to other developing and developed countries where phases of CSR are passing from sustainable development to innovative initiatives or even much ahead than these. As a consequence of all these facts the structure of CSR is yet to be shifted from philanthropic to further stage in Nepal.

* Head, P.G. Dept. of Business Administration, J. D. B. Govt. College for Girls, Kota (Raj.) INDIA
** Research Scholar (Commerce and Management studies) Career Point University, Kota (Raj.) INDIA

The banking sector of Nepal does not differ from the said situation. Almost all commercial banks in Nepal are practicing their CSR activities more or less within the backdrop of philanthropic principle. The foremost CSR activities practicing contained by the name of philanthropy are education, literacy training, welfare of underprivileged, economical support to deprived sector, art, heritage, culture protection, health care, environmental program, contribution to Associations, Clubs, and other alike social organizations. In the same way religious activities, child and women development, sports, and blood donations are the other key areas where commercial banks are concerning their practices.

Literature Review - There are many research studies dealing with CSR practices and their implementation have been conducted in order to replicate the real grounds of CSR in banking and financial arena. The EU green paper (2001) identifies two main dimensions of companies implementing CSR as an internal dimension relating to practices internal to the company and on external dimension involving stakeholders. Sharma (2011) made an attempt to analyze CSR practices in India with special reference to banking sector and concluded that banking sector in India is showing interest in integrating sustainability into their economical modal.

Namarata Singh and others (2013) also analyzed the CSR practices and CSR reporting in Indian banking sector and concluded that maximum number of banks in both the banking sectors (public and private) highly performing CSR activities as per their priority but their CSR reporting are not satisfactory. Further, Eliza Sharma and Dr. Mukta Mani (2013) concluded in their study that the public sector banks have overall highest contribution in CSR activities than others. Similarly Deepika Dhingra and Rama mittal (2014) in their study compared the CSR practices in Indian Banking Sector and concluded that most of the banks implemented CSR in an ad hoc manner, unconnected with their business process and not stated how much they spend on CSR activities. In this way the numbers of studies have been conducted concerning the areas of CSR practices in banking sector.

But in Nepal studies specially screening the funding for deprived sector are lacking. A little endeavor in context to CSR practices can be seen in Nepal during last few years but no study touches the subject of lending loans for deprived sector. Kafle and Tiwari (2012) made an attempt to assess the CSR in Nepalese banking sector and concluded that gradually banks are moving forward to initiate the CSR practices satisfying their employee and enlightening the importance of CSR to the community. Aryal (2012) pointed out CSR as an indispensable tool for business success and he added that the ultimate result of CSR is better business and better society.

Likewise, Dhungel and Dhungel (2012) articulated in their study on CSR practices in banking sector of Nepal that the practices of CSR in Nepalese banking sector do not have consistency. Adhikari (2012) stated that implementation of CSR may not always be easy going. He added that many challenges like economic turmoil, shareholder's intention, size of firm, budget and so on can affect the execution of CSR.

Objective of the Study - The present study aims to explore the trends of lending financial loans to deprived sector from the major commercial banks in Nepal for commencing their commitment towards CSR.

Data sources and Methodology - The study is based on secondary data collected from annual reports of the banks which are disclosed respectively on their websites. The research design of the study is descriptive. The ownership structures of the banks have been used for selecting the banks for the study. Both the public and private sector have been selected for this study. The selected banks are Nepal Bank Limited (NBL) and Rastriya Banijya Bank limited (RBBL) from Public Sector along with Bank of Kathmandu Limited (BOKL) and Siddhartha Bank Limited (SBL) from Private Sector.

Lending trends to the deprived sector and policy of Central Bank of Nepal (NRB) - As described by the Central bank of Nepal (NRB), deprived sector lending means lending to those people who have very low income and are socially and economically under privileged. These includes women, scheduled cast, tribal classes, physically disabled peoples, below poverty line people, small farmers, labors and landless families. The NRB has made compulsion for the commercial banks to invest at least four and half percent of their total loan portfolio to the sector. However very recently NRB has made it easier for commercial banks and financial institutions to lend to the deprived sector by reducing its obligatory level and get it down to three and half percent of their total loan portfolio.

Table 1 Lending trends of Banks to the deprived sector (2012 to 2014) (See in the last page)

Interpretation - Above table shows about the trends and size of the amount lending in deprived sector by the major commercial banks of Nepal during the past three consecutive fiscal years. As per the lending amount in deprived sector to total loans amount of the fiscal year 2011-12, the highest amount was recorded public bank that is Rs 1,945,889 thousand by RBBL bank, while the lowest lending amount was recorded for private bank that is Rs 593,447 thousand by SBL bank. It is highest (5.72 per cent) in NBL and lowest (2.94 percent) in SBL.

During the fiscal year 2012-13, again the highest amount was recorded for public bank that is Rs 2,510,245 thousand by RBBL and lowest for private bank that is Rs 839,960 thousand by SBL. In the context of ratio, it is highest 5.12 per cent in RBBL and lowest 3.64 per cent in SBL. During the fiscal year 2013-14, again we can see that the highest amount of loan in deprived sector was landed from public bank that is Rs 2,450,524 thousand by RBBL and the lowest from private bank that is Rs 1,039,082 thousand by SBL. As far as loans to total loans ratio is concern it is highest 4.03 per cent in RBB bank within public sector and

lowest 3.00 per cent which is also in NBL bank under public sector. Thus from table 1 it can be inferred that the size of the deprived sector lending to total loans in public sector has taken a lead than private sector banks. Within public sector banks RBBL bank is seen more aggressive than NBL bank looking into lending to deprived sector. In private sector BOKL is lending more as compared to SBL bank.

Table 2 Deprived sector loans to total loans ratio (Table see the next page)

Interpretation - Table 2, reveals average standing of deprived loans to total loans made available by major commercial banks from both the sector of banks during foregoing three fiscal years. A comparative analysis of key commercial banks in public and private sector pertaining to lending in deprived sector as CSR activity during fiscal year 2011-12 to 2013-14 reveals that mean ratio of deprived sector loans to total loans is higher in public sector banks.

The mean value of the ratios of last three fiscal years in public sector is 4.45 per cent as compared to 3.69 per cent in private sector banks. The mean value of ratios for deprived sector loans to total loans in public sector banks has been showing higher in each fiscal year than private sector banks accept in the fiscal year 2013-14 where it is lower than private sector banks. On an average public sector banks are lending more in the area than the banks in private sector. Further both the banks in public sector have a higher ratio than both the banks in private sector.

Figure 1 Pattern of loan ratios in individual bank

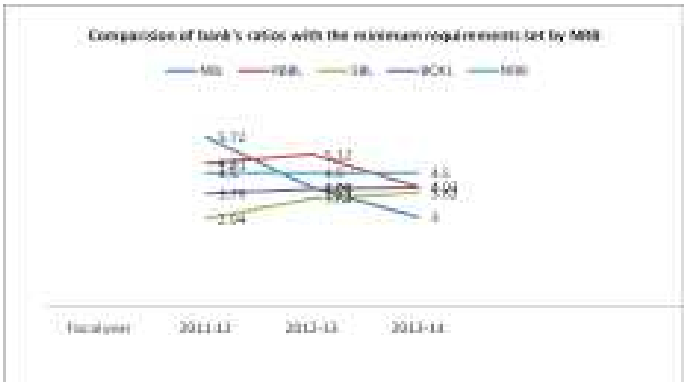

Interpretation - The above figure shows bank wise lending ratios with the obligatory rate of NRB. The figure shows that for the fiscal year 2011-12 there were only two banks i.e., NBL and RBBI (both from public sector) have met with the obligatory norm. In the fiscal year 2012-13 only RBBL has achieved the obligation line, rest of the banks were below the line. In the fiscal year 2013-14 no banks from either sector even touched the compulsion line and all the banks from both the sectors were below the regulatory norms. The figure depicts that only RBBL bank met with the obligatory rate in two fiscal year out of the study span of three years. The ratio in case of RBBL is showing rapid decline as compared to the other banks after the fiscal year 2011-12.

Figure 2 Comparision of sectorwise loan ratios with NRB's obligatory rate

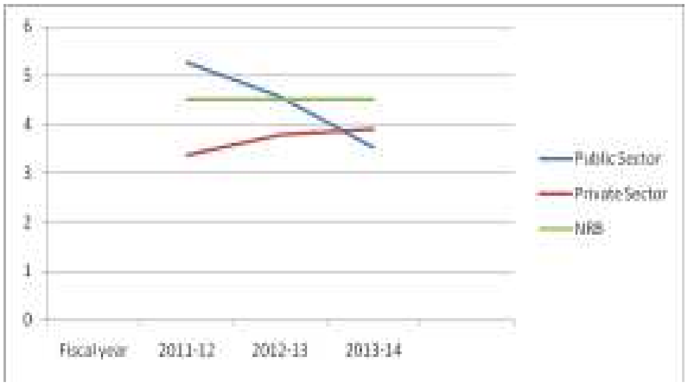

Interpretation - Figure 2 shows that only public sector banks have met the obligatory rate of lending for the fiiscal year 2011-12 and 2012-13, but in fiscal year 2013-14 both sector banks not succeed to meet with the regulatory norms. Public sector bank's lending was recorded high till the fiscal year 2012-13, but thereafter its lending ratio goes below the mandatory line and it was below the private sector banks' lending as well.

Concluding remarks - The practices of CSR in banking sector cannot be undervalued as compared to any other sector. In Nepal banking sector is performing parallel to other business sector if not to the lead. The banking sector is playing the notable role in CSR arena there. But in context to deprived sector lending, the analysis shows that there are some banks which are not even meeting the minimum regulatory requirements. Even after NRB's instruction for deprived sector loans, the banks have not taken considerable steps. The size of lending amount in deprived sector was not constant and none of the bank was able to maintain its regulatory norms for all the three fiscal years. Even though the public sector banks are to some extent seems superior as compared to private sector banks in case of lending to deprived classes. However, their lending trend appears to be going down constantly. While the private sector banks are yet to attain regulatory norms, their size of lending ranges always below the mandatory rate. These tendencies of lending state that the banks from both the sectors are not complying NRB's instructions. And the banks from both the sectors need to give more attention with regard to maintaining obligatory norms. In addition, the regulatory authority should develop and obtain some effective processes to regulate it effectively. At the same time the regulatory body requires to make their assessment regularly whether the banks are fulfilling commitment pertaining to CSR. Last but not the least, it is expected that this paper will make tip-off for further studies in this area and more particularly in the area of deprived loan and its implementation effect on associated people or the stake holders.

References :-

1. Caroline, W.B. (2006). Corporate Social Responsibility in Nepal, Management Dynamic vol.8, 33-55
2. Chapagain, B.R. (2010). Corporate social responsibility: Evidence from Nepalese financial service and Manufacturing sectors. Economic Journal of Development Issues, 11&12, 1-2
3. David, G. and Wood, N. (2006) Making corporate self-regulation effective in developing countries, World Development 34(5), 868-83
4. Ferrari, A. Jaffrin, G. and Shrestha, S.R. (2007), Access to financial services to Nepal, The conference Edition, Word Bank.
5. Gajurel, D. P. and Pradhan, R. D. (2012), Concentration and Competition in Nepalese Banking Journal of Business, Economic and Finance ISSN: 2146-7943
6. Khadka, N.B. (2002), Social responsibility of company: An observation with special reference of Nepalese Laws. NRL, 13, 204-215
7. NRB: (2014), Unified Directives-2071, Issued by Nepal Rastra Bank to the authorized banks and financial institutions. Banks and Financial institutions regulation department, NRB
8. http://www.nepalbank.com.np
9. http://www.rbb.com.np
10. http://www.bok.com.np/CSR/CSR-2013-14.php
11. http://www.siddharathbank.com.np
12. http://www.nrb.org.np
13 http://www.nepjol.nfo
14. http://www.wordbank.org

Table 1 Lending trends of Banks to the deprived sector (2012 to 2014)

Fiscal Years		2011-12			2012-13			2013-14		
Banks	Sector	Total loan Rs in (000)	Dep. sector loanRs in (000)	Per cent	Total loan Rs in (000)	Dep. sector loanRs in (000)	per cent	Total loan Rs in (000)	Dep. Sector loanRs in (000)	Per cent
SBL	private	20,217,584	593,447	2.94	23,086,563	839,960	3.64	27,186,905	1,039,082	3.82
BOKL	private	19,319,137	731,232	3.79	23,049,527	913,082	3.96	28,866,771	1,153,793	4.00
NBL	public	29,698,857	1,698,292	5.72	37,855,281	1,519,348	4.01	41,195,986	1,236,414	3.00
RBB	public	40,448,863	1,945,889	4.81	49,044,912	2,510,245	5.12	60,854,849	2,450,524	4.03

Table 2 Deprived sector loans to total loans ratio

Sectors	Public sector			Private sector		
Fiscal years	NBL	RBBL	Average of ratios	SBL	BOKL	Average of ratios
2011-12	5.72	4.81	5.27	2.94	3.79	3.37
2012-13	4.01	5.12	4.57	3.64	3,96	3.80
2013-14	3.00	4.03	3.52	3.82	4.00	3.91
Average of ratios	4.24	4.65	4.45	3.47	3.92	3.69

✻✻✻✻✻✻✻✻✻✻✻✻✻

Performance Evaluation Of Regional Rural Banks In India

Reena Nayak *

Abstract -This paper attempt to analyze the financial performance of RRB_s in India during the period 2006- 07 to 2010-11. The study is Based on secondary data collected prom annual reports of NABARD and RBI.

Introduction - Regional Rural Bank have been existence for around 36 years in the Indian financial scene. Regional rural Banks as a separate institution basically for rural credit on the basis of the recommendations of the working group under the chairmanship of M-narashiman . In order to provide access to low- cost banking facilities to the poor ,the narashimham working group (1975) proposed the establishment of a new Set of Banks , as institutions which "combine the local fed and the familiarity with rural problems which the cooperative possess and the degree of business organization ,ability to mobilize deposited , access to central money markets and modernized outlook which the commercial banks have"

Subsequently, the regional rural banks were setup through the promulgation of RRB Act of 1976.

Objectives of the study -

1. To measure financial performance of regional rural banks in India.
2. To analyze the key indicators of RRB_s in India.
3. To evaluate progress of the RRB_s during 2006-07 to 2010-11
4. To study the growth –pattern of regional rural banks in India.
5. To make importance suggestions to improve the working of RRB_s.

Hypothsis of the study -

1. The RRB_s in India have made a substantial quantitative progress .
2. The qualitative progresses of RRB_s have been found to be highly impressive.
3. The macro performance is highly substantial.

Problems of the study -

1. First and important problem of the research work is analysis of financial data .
2. Information from NABARD and RBI was difficult to be obtained.

Scope and coverage of the study -

1. It cover all RRB_s working in India.
2. The study covers a specific period from 2006-07 to 2010-11. After globalization and amalgamation .
3. There is macro evaluation of performance of all the RRB_s in India.

Research methodology -The financial performance of the RRB_s in India has been analyzed with the help of key performance indicators .The year 2010-11 was taken as the current year and year 2009-2010 was base year for the calculation of growth rate . Analytical techniques employed –Growth rate analysis was undertaken with a view to studying financial performance related to the RRB_s Growth rate is measured with the help of following formula –

Growth Rate = yt-yt-1/yt-1

Yt = Current year , yt-1 = Base year

Key performance indicators and Growth of RRB_s

Table I presents the key performance indicators and growth of RRBs from year 2006-07 to 2010-2011. Graph 1 presents key performance indicators and Graph 2 presents growth rate of RRB_s

Table 1. key performance indicators of RRBs in India.

(Figures –Rs.in Crore) (Table see in last page)

Summery /observation of the study

Sources of funds :- The sources of funds of RRB_s comprise of owned fund ,deposits ,borrowings from NABARD , sponsor Banks and other sources including SIDBI and National Housing Bank.

1. **Owned funds** - The owned funds of RRB_s comprising of share capital , Share capital deposits received from the shareholders and the reserves stood at Rs. 13838.92 crore as on 31 March 2011 as against Rs.12247.16 crore as on 31 March 2010 ; registering a growth of 13.0%.
2. **Deposits -** Deposits of RRB_s increased from Rs.145035 crore to Rs.166232.34 crore during the year registering growth rate of 14.60%
3. **Borrowings** - Borrowing of RRB_s increased from Rs. 18770 crore on 31 March 2010 to Rs. 26490.81 crore as on 31 March 2011 registering an increase of 41.10 %

* Research Scholar, Vikram University, Ujjain (M.P.) INDIA

Uses of Funds - The uses of funds of RRB_s comprise of investments and loans and advances .

1. Investments - The investment of RRB_s increased from Rs. 79379.16 crore as on 31 March 2010 to Rs. 86510.44 crore as on 31 March 2011 registering an increase of 8.98 % The investment Deposit Ratio (IDR) of RRB_s progressively declined over the year from 72% as on 31 March 2001 to 52.04% as on 31 March 2011.

2. LOANS and Advances - During the year the loans out standing increased by Rs. 16098.33 crore to Rs. 98917.43 crore as on 31 March 2011 registering rate of 19.4 % over the previous year.

3. Loaned issued - Total leans issued by RRB_s during the year increased Rs. 71724 .19 crore from Rs. 56079.24 crore during the previous year registering a growth of 27.90 %.

Working Results -

1. 75 RRB_s (out of 82 RRB_s) have earned profit (before tax) to the extent of Rs. 2420.75 crore during the year 2010-11. The remaining 7 RRB_s incurred loss to the rune of 71.32 crore.

2. Accumulated losses - As on 31 March 2011, 23 of the 82 RRB_s continued to have accumulated losses to the tune of 1532 .39 crore as against 1775.06 crore (27 RRB_s) as on 31st March 2010.

3. Non- Performing Assets - The gross NPA of RRB_s stood at Rs. 3712 crore as on 31 March 2011.The percentage of Net NPA of RRB_s has shown an increase from 1.8 % to 2.05% during the year .

4. Recovery performance - There has been on improvement in the recovery percentage during 2009-10 from 80.09 % as on 30 June 2009 to 81.18% as on 30 June 2010.

5. Credit Deposit Ratio - The aggregate CDR of RRB_s increased over the years from 57.10% as on 31 March 2010 to 59-51% as on 31 March 2011.

6. Productivity of Branch and staff :- The branch productivity increased to Rs.16.57 crore in 2010- 11 from Rs.14.72 crore in 2009 – 10 with a growth of 12.57% similarly. Staff productivity in 2010-11 increased to Rs. 3.78 crore from Rs. 3.70 crore in 2009-10 with a growth of 2.16 % .

Problems (Weakness) of RRB_s -

1. Very limited area of operations.
2. Mounting losses due to non – viable level of operations in branches located at resource –poor areas .
3. Switch over to narrow investment banking as a turn over strategy .
4. Burden of government subsidy schemes and inadequate knowledge of customers leading to low quality assets.
5. Unionized staff with low commitment to profit orientation and functional efficiency .

Suggestions for imrovement of RRB_s -

1. Government should encourage and support banks to take appropriate steps in rural development .
2. Policy should be made by government for opening more branches in weaker and remote areas areas of state.
3. Productivity can be improved by controlling the cost and increasing the income.
4. The RRB_s have to make an important changes in this decision making with regard to their investment.
5. The credit policy of the RRB_s should be based on the group approach of financing rural activities.
6. A uniform pattern of interest rate structure should be devised for the rural financial banks in the establishment of the RRB.
7. The RRB_s may relax their procedure for lending and make them easies for village borrowers .

Conclusion - To conclude, the rapid expansion of RRB_s has helped in reducing substantially the regional disparities in respect of banking facilities in India. The efforts made by RRB_s in branch expansion , deposit mobilization , rural development and credit deployment in weaker section of rural areas are appreciable . RRB_s successfully achieve its objective like to take banking to door steps of rural households particularly in banking deprived rural area . to avail easy and cheaper credit to weaker rural section who are dependent on private lender , to encourage rural savings for productive activities , to generate employment in rural areas and to bring down the cost of purveying credit in rural was .

Regional rural Banks plays a key role as an important vehicle of credit delivery in rural areas with the objective of credit dispersal to small , marginal farmers and socio economically weaker section of population for the development of agriculture , trade and industry . In this competitive ear . RRB_s have to concentrate on speedy, qualitative and secure banking services to retain existing customers and attract potential customers.

References :-

1. Misra ,B.S (2006), " The performance of regional rural Banks in India : Has post anything to suggest for future" RBI occasional papers , vol. 27, NOS.1 and 2 .
2. Horseman , S.B. (2002), performance of regional rural Banks , new delhi.
3. Ibrahim Dr. m syed (2010) " performance Evaluation of regional rural Banks in India" international business research vol.3 , no.4, P203-211.
4. Das, U.R. (1998) " Performance and prospects of RRB_c "Banking finance November .
5. Jham poonam)(2012) "Banking sector reforms and progress of regional rural Banks in India (An analytical study)" online published 11 January.
6. Report of Trend and progress in Banking, RBI, Various issues.
7. NABARD :Report
8. RBI, monthly Bulletins, various issues.

Table 1. key performance indicators of RRBs in India.

(Figures –Rs.in Crore)

Parameters	2006-07	2007-08	2008-09	2009-10	2010-11	Growth
No.of RRBs	96	91	86	82	82	
Profit/Loss Making	81/15	83/8	80/6	79/3	75/7	
No.of Branches	14526	14761	15158	15480	16001	3.46
Districts covered	534	594	617	618	620	0.32
Staff	68289	68005	68509	69042	70153	1.61
Owned fund	7285.98	8732.59	10895.73	12247.16	13838.92	13
Deposit	83143.55	99093.46	120184.46	145035	166232.34	14.6
Borrowings	9775.8	11494	12733.8	18770	26490.81	41.1
Investments	45666.14	48559.54	62629.45	79379.16	86510.44	8.98
Gross Loan (O/s)	48492.59	58984.27	67858.48	82819.1	98917.43	19.14
Loan issued	33043.49	38581.97	43445.59	56079.24	71724.19	27.9
CD Ratio	58.32	59.52	56.46	57.1	59.51	
Accumulated losses	2759.49	2624.22	2325.59	1775.06	153.39	-13.67
Profit(Before Tax)	926.4	1383.68	1859.36	2514.83	2420.75	-3.74
Loss	301.25	55.58	35.91	5.65	71.32	1162.3
Tax paid to Govt.	139.66	301.12	461.14	625.25	634.22	1.44
Gross NPA	3178.08	3566.34	2804.02	3084.82	3712	20.32
Gross NPA %	6.55	6.05	4.13	3.72	3.75	
Net NPA Amount	1625.41	1929.71	1114.54	1423.31	1941.32	36.39
Net NAP %	3.46	3.19	1.68	1.8	2.05	
Recovery %	79.8	80.84	77.76	80.09	81.18	
Net Worth	4526.48	6107.37	8570.04	10472.1	12306.53	17.52
Branch Productivity	90.6	10.75	12.41	14.72	16.57	12.57
Staff Productivity	1.93	2.33	2.74	3.7	3.78	2.16

Source : Reports of NABARD and RBI

****

Consumer Satisfaction Towards Public Distribution System

Dr. J.C. Porwal * Tabassum Patel**

Abstract - Poverty is a problem which is faced by the people. The government has taken more steps and programme to overcome the problem. Public distribution system was established to provide food at a subsidized rate. So the researcher has attempted to study the satisfaction and the perception of the consumer towards public distribution system in Ratlam (MP). The study also reveals some suggestion to the government for the betterment of their working of the public distribution system.
Keywords - Public Distribution System, Consumer Satisfaction.

Introduction - India has second largest population in the world. It has variety of natural resources and human resources. Human resources plays important role in economic development. India has honest and skilled labour but still country is facing number of economic problems like hunger, poverty, etc. For that very purpose Government of India has make frantic efforts like providing subsidized grain and necessity items for sale and this particular system is known as Public Distribution System.

Government of India is implementing the Public Distribution System program in welfare mode with universal beneficiary approach and hence it has under criticism for being non-specific and wasteful. It has also been found to be an inadequate program to fully address to the food security problem of the poor and vulnerable.

Meaning of public distribution system - Public Distribution System (PDS) is a poverty alleviation program and contributes towards the social welfare of the people. Essential commodities like rice, wheat, sugar, kerosene and the like are supplied to the people under the Public Distribution System at reasonable prices. PDS is a boon to the people living below the poverty line. Public Distribution System is the primary social welfare and antipoverty program of the Government of India.

Revamped Public Distribution System (RPDS) has been initiated by the Government of India from the year 1992 in order to serve and provide essential commodities to the people living in remote, backward and hilly areas. Government introduced Targeted Public Distribution System (TPDS) in the year 1997. Central Government and State Governments have been actively involved in steering the operations for the success of the Public Distribution System is considered as principal instrument in the hands of State Governments for providing safety net to the poor against the spiraling rise in prices of essential commodities.

Poverty being a dynamic and relative concept, accurate estimation is not possible in the absence of an acceptable criteria and methodology. The process of identifying BPL families is also fraught with errors and bias resulting in high levels of exclusion of deserving families. Further due to unforeseen natural calamities like droughts, floods and disaster, etc., a large number of vulnerable BPL families may be forced into poverty trap again. Our rigid government system will not be able to respond quickly to such situation. Therefore targeting a specific segment of population as BPL or APL and excluding large number of vulnerable families under public distribution system is felt administratively unacceptable and socially risky to the Government. Thus, out of its own experience Government of Madhya Pradesh feels that universal public distribution system assures better food security to people.

Goals of public distribution system -The goal of PDS does not restrict itself with the distribution of rationed articles. Making available adequate quantities of essential articles at all times, in places accessible to all, at prices affordable to all and protection of the weaker section of the population from the vicious spiral of rising prices is the broad spectrum of PDS. More specifically, the goals of PDS are:

- Make goods available to consumers, especially the disadvantaged /vulnerable sections of society at fair prices.
- Rectify the existing imbalances between the supply and demand for consumer goods; Check and prevent hoarding and black marketing in essential commodities.
- Ensure social justice in distribution of basic necessities of life.

* Retired Principal, Govt. College, Mandleshwar (M.P.) INDIA
** Research, Scholar Govt. Commerce College, Ratlam (M.P.) INDIA

- Even out fluctuations in prices and availability of mass consumption goods.
- Support poverty-alleviation programmes, particularly, rural employment programmes, (SGRY/SGSY/IRDP/ Mid day meals, ICDS, DWCRA, SHGs and Food for Work and educational feeding programmes).

Meaning ofconsumer satification - Essentially, consumer satisfaction is the extent to which consumers are happy with the products or services provided by a business. It is an important concept in business, because happy customers are those most likely to place repeat orders and explore the full range of services offered.

Definition - According to the Department of Marketing at Washington University, there is no single definition of consumer satisfaction. However, all the definitions in the literature and from consumers describe consumer satisfaction as a reasoned or emotional response to a product, service or consumer experience at a particular time.

Measurement - Consumer satisfaction can be measured using survey techniques and questionnaires. Questions typically include an element of emotional satisfaction coupled with an element of behavioral satisfaction, or loyalty to a particular product or service.

Literature review -

P.S.George (1974) has attempted to analyze public distribution of food grains and their income distribution effects in Kerala. He has tried to estimate the possible impact of rationing on incomes of the consumers using the relationship. The results for Kerala suggest that the system is economically viable. Further, ration rice, according to this study, accounted for a major share of rice consumption of consumers belonging to low income groups. Gupta basing on certain assumption has projected food grains requirements for PDS up to 1980, for all India, such projections are assumed to help policy makers in their procurement efforts.

Subba Rao, (1980) has attempted to estimate food requirement for the State of Andhra Pradesh under certain assumptions. While working out these estimates he has assumed a supply level of 12 ozs. (340 grams) per consumption unit. He concluded that ultimately the benefit of public distribution is zero or negligible.

Ravindra Kumar Verma,(1983) The Public Distribution System (PDS) was introduced in virtually all the states of India, but Kerala's PDS was the one which evolved as the most efficient and effective measure of food security. The salient features of the model were its universal coverage, high levels of utilization, physical access made possible through a vast network of retail outlets, rural bias and progressive utilization of the system. The present paper reveals the near breakdown of the system in Kerala after the introduction of the Targeted Public Distribution System (TPDS) and points out its wide ramifications.

Madhura Swaminathan,(1985) Evidence on calorie intake and nutritional outcomes establishes that chronic hunger and food in security persist today on a mass scale in India. !e liberalization-induced policy of narrow targeting of the Public Distribution System (PDS), a programme of food security that provides a minimum quantity of cereals at subsidized prices, has resulted in worsening food insecurity. Recent evidence from the 61st round of the National Sample Survey in 2004-2005 establishes that targeting has led to high rates of exclusion of needy households from the system and clear deterioration of coverage in States like Kerala where the universal PDS was most effective.

Fathima P. Jacob., (1992) Public Distribution System in India is a consumer side intervention in the food market. There are two basic aspects of evaluating the effects of policy intervention in Public Distribution System. One is to analyze the overall per capita availability of cereals and other is percapita consumption and it's the government policy to ensure whether the objectives of the Public Distribution System has been achieved.

K.S Chandresekar, (1999) analyzed the working of the public distribution system in Thirunelveli district such as allotment, liftment and off take of essential commodities in the district. He highlighted the problems of public distribution system in Thirunelveli district such as poor quality of essential commodities supplied, non-display of information on the notice boards regarding the availability of commodities and business hours not convenient to cardholders.

Suryanarayana, (2000) in his study contest the view the that poverty in India has declined in the suitability of the database and its implications for the observed trends in poverty estimates in the context of structural changes in the rural economy. He contends that the statistical estimates do not show a real reduction in poverty but only a reduction in over estimation of poverty for the initial year followed by its under estimation for the later years.

Objectives of the study -

- To know the consumer satisfaction towards public distribution system
- To know the products that are frequently purchased by the consumers
- To offer some suggestion to the government for betterment of public distribution system.

Research design - Descriptive research design is a scientific method which involves observing and describing the behavior of a subject without influencing it in any way.

Data collection - In order to achieve the objective of the study, researchers used both secondary and primary data. The specific literature had been collected to analyze the present situation of Public distribution system. Target respondent were 150 people of Ratlam City . For the study, data was collected with the help of Likert 5 point scale consisting of statements based on objective of the study.

Data analysis - The research data was first subjected to the basic analysis such as frequency distribution. This provided insight of the data and guided further data analysis. The entire variable were categorized and measured on 5 point rating Likert scale. For testing the instrument reliability, a reliability index was used. The overall 30 items were grouped

in 19 variables and compiled reliability calculated and obtained was 0.826 on the basis of 249 valid cases out of 150 cases. This figure suggests strong evidence of reliable in the constructs of measuring instruments for the concern variable for the study. Therefore, the questionnaire has high reliability.

Reliability Statistics

Cronbach's Alpha	No of items
0.826	30

GENDER OF THE RESPONDENT

S.NO	GENDER	NO OF RESPONDENT	ERCENTAGE
1	Male	88	59
2	Female	62	41
	Total	150	100

Interpretation - From the above table we inferred that 58% of the respondents are male and 41% of the respondents are female.

GENDER OF THE RESPONDENT

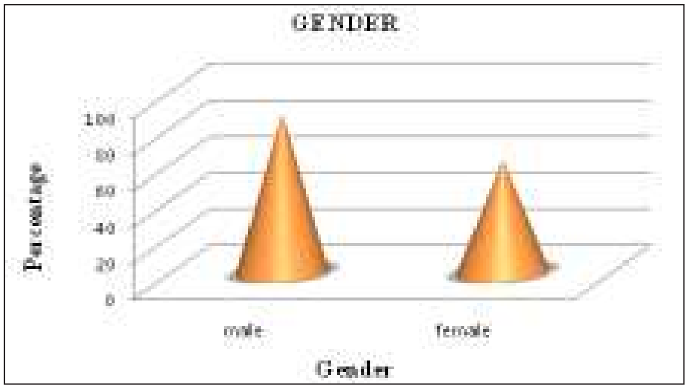

AGE OF THE RESPONDENT

S.NO	AGE	NO OF RESPONDENT	PERCENTAGE
1	Below	6	4
2	21-30	32	21
3	31-40	44	29
4	Above	68	45
	TOTAL	150	100

Interpretation - From the above table it is inferred that 45% of the respondent are above 40, 29% of the respondent are between 31-40, 21% of the respondent are between 21-30 and 4% of the respondent are below 20.

AGE OF THE RESPONDENT

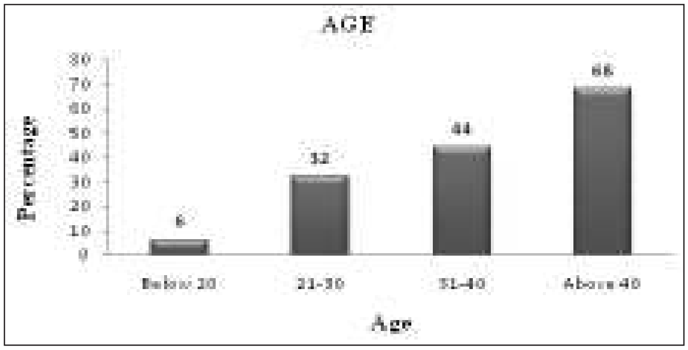

THE KIND OF CARD HOLDERS

S.NO	COLOR	NO OF RESPONDENT	PERCENTAGE
1	Green	96	64
2	White	48	32
3	Brown	6	4
	Total	150	100

Interpretation - From the above table it is inferred that 64 % of the respondents are green card holder , 32 % of the respondents are white card holder while the remaining 4% of the respondents are brown .

THE KIND OF CARD HOLDER

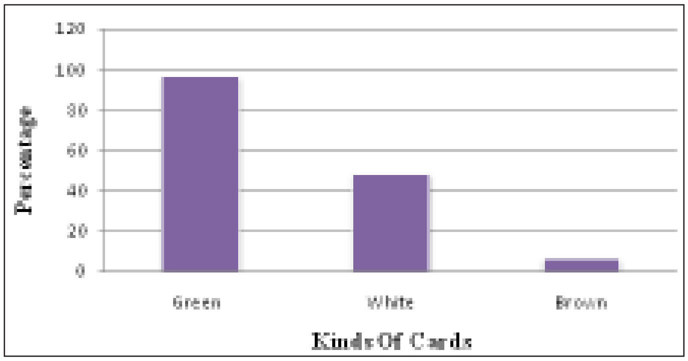

LEVEL OF AGREEMENT TOWARDS PDS

S.NO	PARTICULARS	TOTAL SCORE
1	Low Quantity Products	4.30
2	Improper Quality	3.43
3	Proper balance amount	3.29
4	Unavailability Of Products	3.67
5	Distributing Of Old Stock	3.91
6	Low Response From Store In charge	3.57
7	Long Waiting Hours In Queue	3.95
8	Invalidity Of Measuring Device	3.33
9	Enough storage capacity in store	2.56
	Mean score	3.80

Interpretation - From the above table it is inferred that the mean score is 3.80. The factors such as low quality products, distributing of old stock &l ong waiting hours in queue scores above 3.80 such as 4.30, 3.91, &3.95 respectively. Hence these factors are strongly agree by the respondents.

The factors such as Improper Quality, Proper balance amount, Unavailability Of Products, low response from store incharge ,invalidity of measures& enough storage capacity .scores below 3.80 such as 3.43, 3.29,3.67, 3.57,3.33&2.56 respectively. Therefore these factors are agree by the respondents.

Monthly income and service (See)

H_0 - There is no significant relationship between monthly income and service.

H_1 – There is a significant relationship between monthly income and service.

Chi square -

Calculated x^2 value = 28.56
Degree of freedom = 16
Table value = 26.296
Significant level = 5 %

Inference - It is inferred from the above table that the calculated value of chi square value is greater than the table value.

Hence the null hypothesis is rejected. So there is a significant relationship between monthly income and service.

Conclusion - Government has taken all efforts to make the system more effective and ensure the availability, affordability and accessibility of public distribution system articles to the poor. But the responses of sample respondents of this study showed different picture and unearthed that public distribution system is suffering from problems like leakages, poor quality and under weighment, non-availability of controlled as well as non-controlled articles As the main objective of public distribution system is to provide safety net to the poor against spiraling rise in price, the selling of non-controlled articles through FPS is not away from the scope of public distribution system .

Limitation of study - Lack of resources and time, as it was not possible to conduct survey at large level. During data collection many employees are unwilling to fill the questionnaire due to lack of time. Respondents were having the feeling of wastage of time for them.

Suggestion - The following suggestions are made for the consumer satisfaction towards public distribution system based on the findings of this study.

- The public distribution system department should take step to increase the performance of the public distribution system.
- The public distribution system department should allot separate date for separate wards.
- The public distribution system department should list out the price of all the product in public distribution system stores.
- The public distribution system department should periodically check the availability of the product in public distribution system stores.
- The quantity of the products distributed can be increased.
- The Quality of the rice can be increased.
- The public distribution should provide good quality products to the consumers.
- The public distribution system should reduce the waiting hours of the consumers.

References :-

Books -

- Kothari C.R., "Research Methodology"
- Memoria, C.B ., Marketing management, new delhi,kitab mahal publications
- Philip kotler, Marketing management, the millennium edition.

Journals -

- George P.S. (1996), Public Distribution System, Food Subsidy and Production Incentives, Economic and Political Weekly, Vol.31 (39), p-140.
- Suryanarayanan M.H. (1995), PDS Reform and Scope for Commodity based Targeting, Economic and Political Weekly, Vol.30 (13), p-687.
- Gupta (1995), Liberalization and Globalization of Indian Economy, Atlantic Publishers and Distributors, Vol.1 (11), New Delhi.
- Rao V. (1999), Role of PDS in Food Security, Social Welfare, Vol.46(6), September, p-7.

Websites -

1. www.tncsc.tn.gov.in
2. wikipedia.org/Food_and_Public_Distribution_(India)

Monthly income and service

Monthly Income	Service					Total
	Highly Satisfied	Satisfied	Neutral	Dissatisfied	Highly Dissatisfied	
Below5000	2	6	10	4	2	24
5000-10000	2	4	22	8	0	36
10000-15000	0	10	12	10	2	34
15000-20000	6	6	8	2	2	24
Above 20000	2	8	18	2	2	32
Total	12	34	70	26	8	150

****

Impact of Information Technology on Hotel Industry performances : An Indian market Prospective

Vijay Choudhary * Prof. N. S. Rao **

Abstract -The Indian tourism and hospitality industry has emerged as one of the key drivers of growth among the services sector in India. Tourism in India is a potential game changer. It is a sun rise industry, an employment generator, a significant source of foreign exchange for the country and an economic activity that helps local and host communities.

Introduction - The value of the brand to the consumer, the growth in emerging markets, the importance of consumer-facing technology, and development and retention of human capital have helped shape the tourism industry over the past five years.

The travel and tourism sector has developed into an industry with an annual economic report (direct, indirect and induced) of around US$ 6.5 trillion worldwide. The global hotel industry generates approximately between US$ 400-500 billion in revenue each year, one third of that revenue is attributable to the United States.

The paper will cover the following objectives:

Today the Market is entirely globalized many international players are entering into hotel industry in India. The objective of proposed study would be to:

- The overall status of Indian Hotel Industry and its Growth factors, challenges
- Study impact of Technology in Hotel Industry and future guidelines for top technologies to adopt
- Technology space at Organizational Structure of a Hotel
- Revenue factors affected by Information Technology for a Hotel
- Revolution at Hotel Industry – Impact of Technology

Status of Indian Hospitality Industry - The number of Foreign Tourist Arrivals (FTAs) has grown steadily in the last three years reaching around 7.46 million during January–December 2014. Foreign exchange earnings (FEEs) from tourism in terms of US dollar grew by 7.1 per cent during January-December 2014 as compared to 5.9 per cent over the corresponding period of 2013. FTAs during the Month of December 2014 were Rs 120,083 crore (US$ 19.02 billion) as compared to FTAs of Rs 107,671 crore (US$ 17.05 million) during January-December 2013 over the corresponding period of 2012. There has been a growth of 6.8 per cent in December 2014 over December 2013. (sources : Department of Tourism) Foreign Exchange Earnings (FEEs) during the month of December 2014 were Rs 12,875 crore (US$ 2.03 billion) as compared to Rs 11,994 crore (US$1.9 billion) in December 2013 and Rs 10,549 crore (US$1.67 billion) in December 2012.The growth rate in FEEs in rupee terms in December 2014 over December 2013 was 7.3 per cent. FEEs from tourism in rupee terms during January-December 2014 were Rs 120,083 (US$ 1,902.53) with a growth of 11.5 per cent over the corresponding period of 2013. **(Graph See in the last page)**

The Tourist Visa on Arrival (TVoA) scheme enabled by Electronic Travel Authorisation (ETA), launched by the Government of India on November 27, 2014 for 43 countries has led to a growth of 1,214.9 percent recently. For example, during the month of January 2015, a total of 25,023 tourist arrived by availing TVoA as compared to 1,903 TVoA during the month of January 2014.

Hospitality, a major segment of tourism, has grown by 10-15 per cent on the back of better consumer sentiment with the change of Government. As demand is going up occupancies are improving.

Investments in Hospitality Sector - The tourism and hospitality sector is among the top 15 sectors in India to attract the highest foreign direct investment (FDI). During the period April 2000-February 2015, this sector attracted around US$ 7,862.08 million of FDI, according to the data released by Department of Industrial Policy and Promotion (DIPP).

With the rise in the number of global tourists and realising India's potential, many companies have invested in the tourism and hospitality sector.

Emerging Role of Technology: Indian Hospitality Industry - Comparing with the industries at manufacturing, retail, health care, real state technology also is playing key role in Hotel Industry in India. The Global economy demand to adopt technological

Investment / guidelines/understanding of various stakeholders in the value chain to remain competitive. In this paper I have discussed various impacts and best practices be followed at Hotel Industries for technology

*Research Scholar, Pacific University, PAHER, Udaipur (Raj.) INDIA
** Director, Rajashtan Vidhyapeeth University (Raj.) INDIA

implementation. It will further reveal the impact of technology investment and its ROI to the business in terms of Operational efficiency gained and revenues enhancement. It would also be aimed to identify automated workflows for cost optimization of Hotel business operations with improved quality, results and Guest/Customer satisfaction which includes new online marketing opportunities and its associated IT enabled tools to use for improved Hotel financial performances.

Technology space atOrganizational Structure of a Hotel - These is standard Organizational structure of every hotel, no matter its size and complexity, that enables it to carry out its daily operations. Hotels employ a vast number of people with a variety of skills. However, each hotel organizes this diversified workforce in different ways. Hotel organizations follow the pattern of other businesses or social institutions.

The GM, General managers get the authority they need from the ownership interests of the management company. GM supported by his admin departments like Reservation, Front office, F&B, Housekeeping, Travel Desk, Accounts, Stores, Material Management, Sales and Marketing, Engineering and Human Resources. Now due to increased use of Technology, I.T. has also been added as a main front end department for a Hotel on which rest other department are dependent as far as the workflow and services are concerned.

Hospitality Industry – Technology as a challenge - Like in case of other department IT, being the business enabler in the present economy, has to be ready for showing tangible business results. The challenge in the boardroom is to justify ROI in terms of efficiency, new market reach, innovations and added brand values. These are various avenues where technology is associated with every nut and bolt of the hospitality business. Challenges considering expectation of internal users and various stakeholders are optimization of IT resources, controlling cost of running IT, high uptime and availability of Hospitality-IT-domain expert manpower.

Further, there is an increasing customer demand for connectivity on smart phones at BYOD front with constant optimized quality. This is resulting in IT service expectation being considered equally important as compared to other traditional hotel services like rooms, F&B, housekeeping, etc. Now, IT stands among the front-end department coming from the place where it was always perceived as the back office operation.

The increased dependency on IT from all other departments wherein the guest services and workflow are tightly integrated with IT-enabled process flow, the challenge is to keep it running with zero downtime.

Needs of IT in today's HospitalityIndustry: Guidelines for future initiative and investment:

The needs could be divided into three different perspectives:

Business - IT should be completely integrated and part of the corporate strategy in the Hospitality business.

IT Infrastructure: Has to be deployed looking into the elasticity of demand of IT services, wherein at the supply side, the perishable IT services are available in the form of Cloud, virtualization technology, etc.

CIO/Head IT - CIO should have a place in the boardroom to assess, suggest and implement technology keeping pace with the growth and market dynamics.

Products, Services and Trends:

Integrated BI solutions for complete business agility and analysis on top of the PMS (Property Management System), RMS (Revenue Management System), CRS (Central Reservation System)and MMS (Material Management System).

Specialized Hospitality cloud services in the form of IaaS (Infrastructure as a service), PaaS (Platform as a Service) and SaaS (Software as a Service).

Desktop virtualization at key Guest Service areas/ Departments like Front Office, Point of Sale (F&B Services) and Housekeeping.

Increased commoditization of rooms requires low-cost and integrated single platform comprising of PMS, RMS, OTA (Online Travel Agent, B2B, B2C) inventory management tool to handle market dynamics in more automated ways.

Revenue affected by Information Technologyfor a Hotel :

It's a common perception that the technology is nothing but a mere cost centre. Now, with the capability of developing new customers, new markets and creating new revenue streams, the IT department can now be seen as a 'Profit-Centre'. IT as a platform is contributing a lot to hotels getting the property made available on one click of a mouse to the entire world. The hotel website, considered as the face of property, now seems the preferred way of customer acquisition and retention for B2C segments. Social media presence, OTA channels, GDS (Global Distribution System) /IDS (Internet Distribution system, B2B model) all made IT a competitive advantage for greater customer reach and retention. The IT team in synergy with 'Revenue Department' can bring in a big difference in terms of growth of revenue, better RevPAR (Revenue per available room) and ADRs (Average Daily Rates).

Revolution at Hotel Industry – Impact of Technology - As technology developments continue at a relentless pace, it can be difficult for hotels, leisure providers and those in hospitality to keep up with recent changes, let alone look to the future. However, the savings and improvements that technology can deliver mean that management and operations keep one eye on these trends

1. HMS : Hotel Management System as a Service (SaaS Model) on Cloud - HMS delivered as a service, rather than held on premise is already a mainstream technology topic and despite being a new concept in the hospitality sector, it is already big news. It is evident that Hospitality companies and hotels are having a serious look at cloud computing. Two main factors are behind this.

Firstly, upfront capital investment is lower with the cloud as there are no initial hardware costs or associated expenses

such as full time, in-house IT staff to maintain the system. Secondly, hotels like the idea of taking the responsibility and distractions of IT off their site, leaving them free to focus on the day-to-day business of looking after their guests.

As well as the low capital expenditure of the cloud and the cultural "fit", there is also the fact that implementation timetables can shrink from months to days, resulting in immediate and obvious benefits in obtaining time to value.

2. Go Mobile - Mobile is the new face of computing as devices such as tablets and smartphones revolutionize the way we interact with technology. Hospitality is no exception to this revolution, in some cases leading the way.

There has often been the expectation that because hotels are, by their very nature, fixed entities, mobile technologies may have minimal impact. However, this myth has been thoroughly laid to rest as tablets, mobile phones, smartphones and laptops have become critical tools on both sides of the check-in desk.

Hotels now access its hotel management system on Andoid phones, tabs, apple iPads to eliminate old-fashioned, manual registration desk processes and even the PC. This enables hotel team members to 'meet and greet' their guests at any location, improving the personalization of the check-in experience and reducing the costs associated with static reception desks and all their technology at each location.

3. Social Media - Social media has had a big impact upon the hospitality industry. Trip Advisor travel portal has become one of the main sources of information for people researching holidays, hotels and leisure facilities. Meanwhile, newer social tools like Facebook or Twitter are quickly becoming just as influential. For any hotel to not at least monitor social media is tantamount to willingly flying blind. The online reputation of a property is business critical. It does not however, stand alone as a marketing department concern, but relates directly to daily operations.

Many of the Hotels are improving its online reputation by monitoring relevant comments made via social media channels such as Twitter. These comments can then be answered and addressed by both marketing and operational personnel. Incorporating social media into hotel management system in this way makes it easier to track all the possible sources of comments – especially when promotions are running.

4. Integrated Personalized systems - Customers expect their experience within a hotel to be totally personalized to them: from the welcome message on the television screen and food preferences to additional services such as personal training or flowers in the room.

This quickly creates a huge range of valuable customer preference data that needs to be fed into the HMS in order to deliver a personalized, high quality service for each return visit. This is not just a case of linking the CRM system into the hotel operations - it is embedding the process of capturing guest preferences and proactively using that data.

5. Process Integration - Hotels span many functions - from accommodation and event catering to specialized facilities such as golf or health spas. Each of these areas has, traditionally, operated an individual software system. Whilst this approach has delivered specific functionality, it has also led to silos of information.

Integrating these systems can provide more comprehensive management information, faster reporting and a truly comprehensive view of profitability. Integrating the hotel management system with the restaurant point of sale application means that the hotel has a comprehensive view of revenue per guest or event. The hotel can also pull together truly holistic reports for management information and customer communication.

Elsewhere, integration offers the possibility of being able to "revenue manage" the guest across all areas of their stay: this requires transaction level interfaces but need not be complex to use. Critically it aligns the marketing -based personalized offering with the financial outcome of the revenue secured.

On a wider scale, there are developments towards a complete open industry approach, connecting central reservations systems via the GDS, whilst other CRM applications can be linked via flexible web services integration with open API's that are compliant with industry standards.

References :-

1. http://www.investindia.gov.in/?q=tourism-and-hospitality-sector
2. www.wikipedia.org
3. http://www.scribd.com/doc/26045770/indian-hotel-industry-analysis
5. http://www.hospitalitybizindia.com/detailNews.aspx?aid=15876&sid=42 (issue Feb 2013)
6. FHRAI Magazine, A Journal on Indian Hospitality, July 2012, Page 40
7. www.CIO.in
8. Demystifying distribution 2.0 - A Tig Global special report, published by the HSMAI Foundation and Its publishing partners.
9. http://www.ibef.org/industry/tourism-hospitality-india.aspx

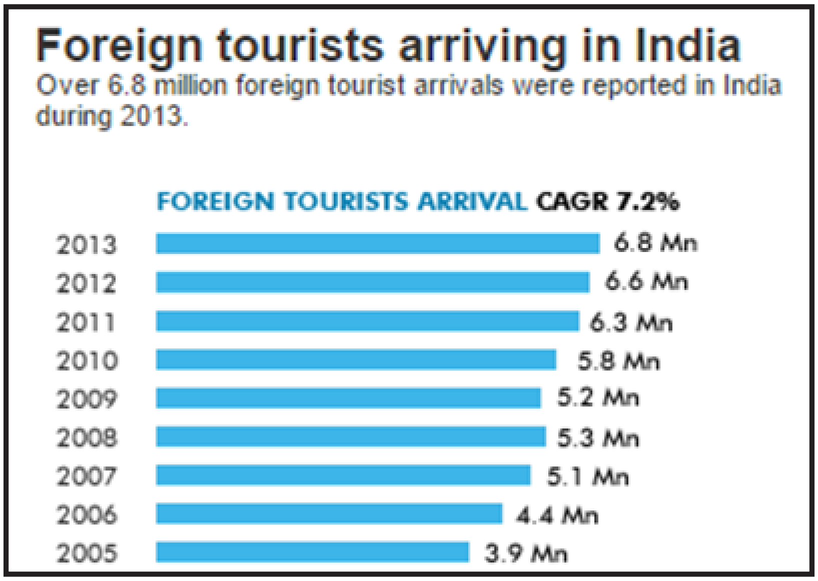
Foreign tourists arriving in India
Over 6.8 million foreign tourist arrivals were reported in India during 2013.
FOREIGN TOURISTS ARRIVAL CAGR 7.2%
2013
6.8 Mn
2012
6.6 Mn
2011
6.3 Mn
2010
5.8 Mn
2009
5.2 Mn
2008
5.3 Mn
2007
5.1 Mn
2006
4.4 Mn
2005
3.9 Mn

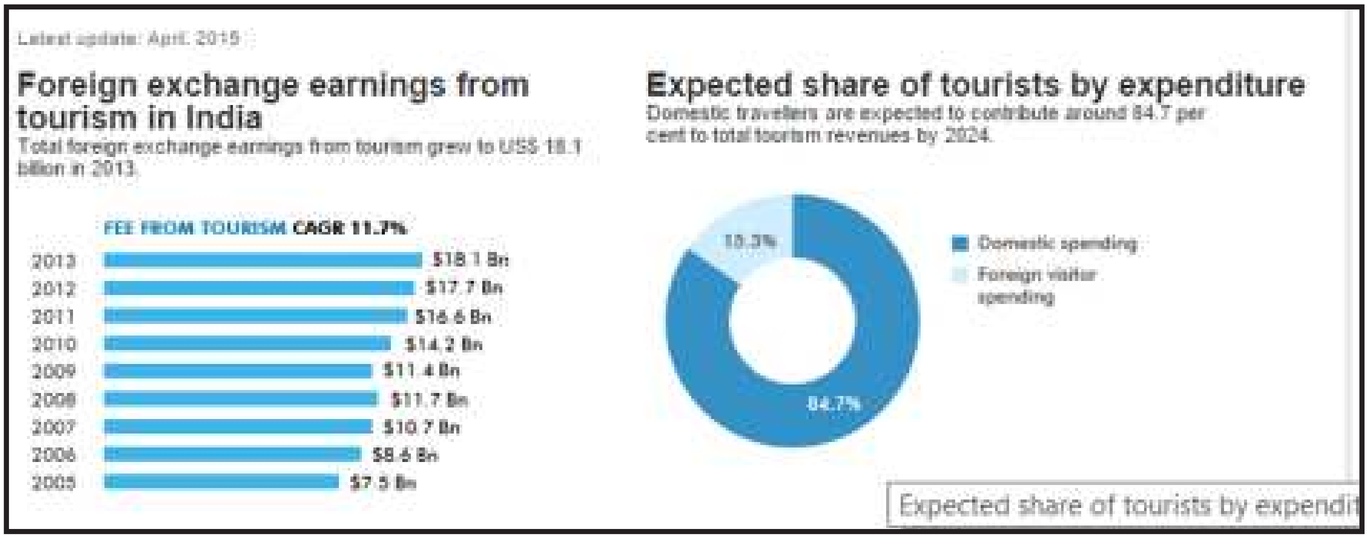
Latest update: April, 2015
Foreign exchange earnings from tourism in India
Total foreign exchange earnings from tourism grew to US$ 18.1 billion in 2013.
FEE FROM TOURISM CAGR 11.7%
2013
$18.1 Bn
2012
$17.7 Bn
2011
$16.6 Bn
2010
$14.2 Bn
2009
$11.4 Bn
2008
$11.7 Bn
2007
$10.7 Bn
2006
$8.6 Bn
2005
$7.5 Bn
Expected share of tourists by expenditure
Domestic travellers are expected to contribute around 84.7 per cent to total tourism revenues by 2024.
15.3%
84.7%
Domestic spending
Foreign visitor spending
Expected share of tourists by expendit

****

Comparative study on the asset-liability management between public and private sector bank

Dr. Rajeev Kumar Jhalani * Jyotsana Verma *

Abstract - Asset-liability management basically refers to the process by which an institution manages its balance sheet in order to allow for alternative interest rate and liquidity scenarios. Banks and other financial institutions provide services which exposé them to various kinds of risks like credit risk, interest risk, and liquidity risk. Asset liability management is an approach that provides institutions with protection that makes such risk acceptable. Asset-liability management models enable institutions to measure and monitor risk, and provide suitable strategies for their management. It is therefore appropriate for institutions (banks, finance companies, leasing companies,

Banking institution and others to focus on asset-liability management when they face financial risks of different types. Asset-liability management includes not only a formalization of this understanding, but also a way to quantify and manage these risks. Further, even in the absence of a formal asset-liability management program, the understanding of these concepts is of value to an institution as it provides a truer picture of the risk/reward trade-off in which the institution is engaged. For analyzing the data in Asset-Liability management, MATURITY GAP ANALYSIS.

Key Words - Asset liability management, Financial risks, Gap Analysis.

Introduction - Asset-liability management (ALM) is concerned with strategic management of assets (uses of funds) and liabilities (sources of funds) in banks, against risk caused by changes in the liquidity position of the banks, interest rates, exchange rates, and against credit risk and contingency risk.

ALM has gained significance in the financial services sector in recent years due the dramatic changes that have occurred in the post-liberalization period. There has been a vast shift in the borrowers' profile, the industry profile and exposure limits for the same, interest rate structure for deposits and advances, and so on. This has been accompanied by increased volatility of markets, diversification of bank product profiles, and intensified competition between banks on a global scale, all adding to the risk exposure of banks. Thus, banks increasingly need to match the maturities of the assets and liabilities, balancing the objectives of profitability, liquidity and risk. To this end, the Bank of International Settlement (BIS) has suggested a framework for the banks to tackle the market risks that may arise due to rate fluctuations and excessive credit risk. The Reserve Bank of India (RBI) has implemented the Basel II norms for the regulations of Indian banks, providing a framework for the banks to develop ALM policies.

At the macro-level, ALM leads to formulation of critical business policies, efficient allocation of capital, and designing of products with appropriate pricing strategies, while at the micro-level , the objectives of the ALM is two-fold: it aims at **profitability through price matching** while **ensuring liquidity by means of maturity matching.**

Price matching basically aims to maintain spreads by ensuring that the deployment of liabilities will be at a rate higher than the cost. Working towards this end, banks generally maintain profitability/spreads by borrowing short (lower cost) and lending long (higher yields). Though price matching can be done well within the risk/exposure levels set for rate fluctuation, it may, however, place the bank in a potentially illiquid position. Liquidity is ensured by grouping the assets/liabilities based on their maturing profiles. The gap is then assessed to identify the future financing requirements to ensure liquidity. The inter-linkage between the interest rate risk and the liquidity of the firm highlights the need for maturity matching. The underlying threat of this inter-linkage is that rate fluctuation may lead to defaults severely affecting the assets-liability position, and, in a highly volatile situation, it may lead to a liquidity crisis forcing the closure of the bank.

Thus, price matching should be coupled with proper maturity matching. However, maintaining profitability by matching prices and ensuring liquidity by matching the maturity prices and ensuring liquidity by matching the maturity levels is not an easy task; in fact they contradict each other to some extent because a spread is possible when a mismatch of maturity is taken up. Thus, a trade-off has to be maintained between profitability and liquidity banks generally aims to eliminate liquidity risk while managing interest rate risk.

* Principal, Rukma Devi Pannalal Ladhha Maheshwari College, DAVV, Indore (M.P.) INDIA
** Asst. Professor, Rukma Devi Pannalal Ladhha Maheshwari College, DAVV, Indore (M.P.) INDIA

The differential approach is primarily based on the fact that elimination of interest rate risk is not profitable, while elimination of liquidity risk does result in long term sustenance.

An effective ALM technique aims to manage the volume, mix, maturity, rate sensitivity, quality and liquidity of the assets and liability as a whole so as to attain a predetermined acceptable risk/ reward ratio. The purpose of ALM is to enhance the asset quality, quantity the risks associated with the assets and liabilities and further mange them, in order to stabilize the short-term profits, the long term earnings and the long run sustenance of the bank.

The scope of ALM function can be described as follows:

- Liquidity risk management
- Management of market risks (Including Interest Rate Risk)
- Funding and capital planning
- Profit planning and growth projection
- Trading risk management

The guidelines given in this note mainly address Liquidity and Interest Rate risks.

Literature review - There is a considerable literature addressing assets-liability management in banks. One of the key motivators of assets-liability management worldwide was the Basel Committee. The Basel committee on banking supervision (2001) formulated broad supervisory standards and guidelines and recommended statements of best practice in banking supervision. The purpose of the committee was to encourage global convergence towards common approaches and standards. In particulars, the Basel II norms (2004) were proposed as international standards for the amount of capital that banks need to set aside to guard against the types financial and operational risks they face. Basel II proposed setting up rigorous risk and capital management requirement designed to ensure that a bank holds capital reserves appropriate to the risk the banks exposes itself to through its lending and investment practices. Generally speaking, these rules mean that the greater risk to which the bank is exposed, the greater the amount of capital the bank needs to hold to safeguard its solvency and overall economic stability. This would ultimately help protect the international financial system from the types of problems that might arise should a major bank a series of banks collapse.

Gardner and Mills (1991) discussed the principles of assets-liability management as a part of banks' strategic planning and as a response to the environment in prudential supervision, e-commerce and new taxation treaties. Their text provided the foundation of subsequent discussion on asset-liability management.

Haslem et al (1999) used canonical analysis and the interpretive framework of asset/liability management in order to identify and interpret the foreign and domestic balance sheet strategies of large U.S. banks in the context of the "crisis in lending of LDCs" their study found that the least profitable very large banks have the smallest proportions of foreign loans, but, nonetheless, they emphasize foreign balance sheet matching strategies.

Vaidhayanathan (1999) discussed issues in asset liability management and elaborates on various categories of risk that requires to be managed in the Indian context. In the past Indian banks were primarily concerned about adhering to statutory liquidity ratio norms; but in the changed situation, namely moving away from administered interest rate structure to market determined rates, it became important for banks to equip themselves with some of these techniques, in order to immunize themselves against interest rate risk. Vaidhayanathan argues that the problem gets accentuated in the context of change in the main liability structure of the banks, namely the maturity period for term deposits.

Vaidya and shahi (2001) studied asset-liability management in Indian banks. They suggested in particular that interest rate risk and liquidity risk are two key inputs in business planning process of banks.

Ranjan and nallari (2004) used canonical analysis to examine asset-liability management in Indian banks in the period of 1992-2004. They found that SBI and associates had the best asset-liability management in the period 1992-2004. They also found that, other than foreign banks, all other banks could be said to be liability manages; i.e. they all borrowed from the money market to meet their maturing obligations. Private sector banks were found to be excessively concerned about liquidity.

In the 1940s and the 1950s, there was an abundance of funds in banks in the formof demand and savings deposits. Because of the low cost of deposits, banks had todevelop mechanisms by which they could make efficient use of these funds.Hence, the focus then was mainly on asset management. But as the availability oflow cost funds started to decline, liability management became the focus of bankmanagement efforts.Liability management essentially refers to the practice of buying money throughcumulative deposits, federal funds and commercial paper in order to fund profitableloan opportunities. But with an increase in volatility in interest rates and witha severe recession damaging several economies, banks started to concentrate moreon the management of both sides of the balance sheet.

Objectives -

- To compare the asset-liability management process and maturity gaps in public, private and foreign banks in India.
- To understand the ALM procedure in banks conceptually
- To analyze the impact on the profitability and liquidity through the asset-liability management
- To analyze the comparative advantages in terms of ALM in public and private bank in India.

The ALM procedure in bank - ALM is a comprehensive and dynamic framework for measuring, monitoring and managing the market risk of a bank. It is the management of structure of balance sheet (liabilities and assets) in such a way that the net earnings from interest are maximized

within the overall risk-preference (present and future) of the institutions.

ALM is a first step in the long term strategic planning process. Therefore, it can be considered as a planning function for an intermediate term. In a sense, the various aspects of balance sheet management deal with the planning as well as the direction and control of the levels, changes and mixes of the assets and liabilities and capital.

The ALM Process -

THE ALM process rests on three pillars:-

1. ALM Information Systems
   - Management Information Systems
   - Information availability, accuracy, adequacy and expediency
2. ALM Organization
   - Structure and responsibilities
   - Level of top management involve men
3. ALM Process
   - Risk parameters
   - Risk identification IRJC

RBI guidelines - As per RBI guidelines, commercial banks are to distribute the outflows/inflows in different residual maturity period known as time buckets. The Assets and Liabilities were earlier divided into 8 maturity buckets (1-14 days; 15-28 days; 29-90 days; 91-180 days; 181-365 days, 1-3 years and 3-5 years and above 5 years), based on the remaining period to their maturity (also called residual maturity). All the liability figures are outflows while the asset figures are inflows. In September, 2007, having regard to the international practices, the level of sophistication of banks in India, the need for a sharper assessment of the efficacy of liquidity management and with a view to providing a stimulus for development of the term-money market, RBI revised these guidelines and it was provided that :-

(a) The banks may adopt a more granular approach to measurement of liquidity risk by splitting the first time bucket (1-14 days at present) in the Statement of Structural Liquidity into three time buckets viz., next day, 2-7 days and 8-14 days. Thus, now we have 10 time buckets.

After such an exercise, each bucket of assets is matched with the corresponding bucket of the liability. When in a particular maturity bucket, the amount of maturing liabilities or assets does not match, such position is called a mismatch position, which creates liquidity surplus or liquidity crunch position and depending upon the interest rate movement, such situation may turn out to be risky for the bank. Banks are required to monitor such mismatches and take appropriate steps so that bank is not exposed to risks due to the interest rate movements during that period.

(b) The net cumulative negative mismatches during the Next day, 2-7 days, 8-14 days and 15-28 days buckets should not exceed 5 %, 10%, 15 % and 20 % of the cumulative cash outflows in the respective time buckets in order to recognize the cumulative impact on liquidity.

Tools for data collection - The study will be based on the suitable sample size of scheduled commercial banks for the year 2012-2013 The study will be based on secondary data.

The data used for the study included the followings:-

- Major financial reports
- Cash flow statements
- Balance sheets

Financial details of the selected banks, collected from the secondary sources, Viz. the database and the RBI sites and bank own sites

Tools For Data Analysis - The most important tool for analyzing the data in Asset-Liability management, MATURITY GAP ANALYSIS is being used.

Maturity gap - A measurement of interest rate risk for risk-sensitive assets and liabilities. The market values at each point of maturity for both assets and liabilities are assessed, then multiplied by the change in interest rate and summed to calculate the net interest income or expense.This method, while useful, is not as popular as it once was due to the rise of new techniques in recent years. Newer techniques involving asset/liability duration and value at risk have largely replaced maturity gap analysis.

Gap Analysis Model - Measures the direction and extent of asset-liability mismatch through either funding or maturity gap. It is computed for assets and liabilities of differing maturities and is calculated for a set time horizon. This model looks at the reprising gap that exists between the interest revenue earned 9n the bank's assets and the interest paid on its liabilities over a particular period of time (Saunders, 1997). It highlights the net interest income exposure of the bank, to changes in interest rates in different maturity buckets. Reprising gaps are calculated for assets and liabilities of differing maturities.

The positive gap indicates that it has more RSAS than RSLS whereas the negative gap indicates that it has more RSLS. The gap reports indicate whether the institution is in a position to benefit from rising interest rates by having a **Positive Gap (RSA > RSL)** or whether it is a position to benefit from declining interest rate by **a negative Gap (RSL > RSA).**

Rate Sensitive Assets & Liabilites - An asset or liability is termed as rate sensitive when

(a) Within the time interval under consideration, there is a cash flow,

(b) The interest rate resets/re-prices contractually during the interval,

(c) RBI changes interest rates where rates are administered and,

(d) It is contractually pre-payable or withdrawal before the stated maturities.

Followings are the rate sensitive assets and rate sensitive liabilities -

Rate Sensitive Assets -

- MONEY AT CALL
- ADVANCES (BPLR LINKED)
- INVESTMENT

Rate Sensitive Liabilities -

- DEPOSITS EXCLUDING CD
- BORROWINGS

Analysis And Interpretation - I am going to apply the maturity gap analysis technique upon the financial data of three different sectors of banks. That is public sector, private sector, and foreign bank. I have taken the following banks for my analysis and comparison:-

- State bank of India
- Axis bank

Balance sheet of AXIS BANK March 2013

Capital and Liabilities:	
Total Share Capital	467.95
Equity Share Capital	467.95
Share Application Money	0.00
Preference Share Capital	0.00
Init. Contribution Settler	0.00
Preference Share Application Money	0.00
Employee Stock Opiton	0.00
Reserves	32,690.42
Revaluation Reserves	0.00
Net Worth	**33,158.37**
Deposits	252,149.12
Borrowings	44,105.10
Total Debt	**296,254.22**
Minority Interest	12.53
Policy Holders Funds	0.00
Group Share in Joint Venture	0.00
Other Liabilities & Provisions	11,132.61
Total Liabilities	**340,557.73**
	Mar '13

	12 mths
Assets	
Cash & Balances with RBI	14,792.11
Balance with Banks, Money at Call	5,707.81
Advances	**196,990.14**
Investments	**113,378.06**
Gross Block	4,120.60
Accumulated Depreciation	1,733.27
Net Block	**2,387.33**
Capital Work In Progress	0.00
Other Assets	7,302.28
Minority Interest	0.00
Group Share in Joint Venture	0.00
Total Assets	**340,557.73**
Contingent Liabilities	525,321.87
Bills for collection	50,696.47
Book Value (Rs)	708.58

Maturity Gap in Axis Bank -

Maturity gap= rate sensitive assets – rate sensitive liabilities

RSA = Advances+ investments
= 113378.06+196990.14
= 310368.20

RSL = Deposits + borrowings
= 252149.12+44105.10
= 296254.12

Maturity gap = 310368.20-269254.12
= 41113.08

Maturity gap % = (gap/ outflow)* 100
= (41113.08/449139.20)*100
= 9.15%

Balance Sheet of State Bank of India -

Capital and Liabilities -

Total Share Capital	684.03
Equity Share Capital	684.03
Share Application Money	0.00
Preference Share Capital	0.00
Reserves	98,199.65
Revaluation Reserves	0.00
Net Worth	**98,883.68**
Deposits	1,202,739.57
Borrowings	169,182.71
Total Debt	**1,371,922.28**
Other Liabilities & Provisions	95,455.07
Total Liabilities	**1,566,261.03**
	Mar '13

	12 mths
Assets	
Cash & Balances with RBI	65,830.41
Balance with Banks, Money at Call	48,989.75
Advances	**1,045,616.55**
Investments	**350,927.27**
Gross Block	7,005.02
Accumulated Depreciation	0.00
Net Block	**7,005.02**
Capital Work In Progress	0.00
Other Assets	47,892.03
Total Assets	**1,566,261.03**
Contingent Liabilities	993,018.45
Bills for collection	0.00
Book Value (Rs)	1,445.60

Maturity gap in state bank of india -

Maturity gap= rate sensitive assets – rate sensitive liabilities

RSA= Advances+ investments
= 1045616.55+350927.27
=1396543.82

RSL= Deposits + borrowings
= 1202739.57+169182.71
=1371922.28

Maturity gap= 1396543.82-1371922.28
= 14621.54

Maturity gap %= (gap/ outflow)* 100
= (14621.54/12147992.26)*100
= 1.20%

Findings (See)

1.	RSA=RSLs	Increase	No change
2.	RSA = RSLs	Decrease	No change
3.	RSAs > RSLs	Increase	NII increases
4.	RSAs > RSLs	Decrease	NII decreases
5.	RSAs < RSLs	Increase	NII decreases
6.	RSAs < RSLs	Decrease	NII increases

Type of gapChange in interest rateChange in NII

Conclusion - Asset-Liability Management has evolved as a vital activity of all financial institutions and to some extent other industries too. It has become the prime focus in the banking industry, with every bank trying to maximize yield and reduce their risk exposure. The Reserve Bank of India has issued guidelines to banks operating in the Indian environment to regulate their asset-liability positions in order to maintain stability of the financial system. Maturity-gap analysis has a wide range of focus, not only as a situation analysis tool, but also as a planning tool. Banks need to maintain the maturity gap as low as possible in order to avoid any liquidity exposure. This would necessarily mean that the outflows in different maturity buckets need to be funded from the inflows in the same bucket. As per the RBI's guidelines, banks have to maintain a stable liquidity position in the short term duration, including both 1-14 IRJCAsia Pacific Journal of Marketing & Management 132days and 15-28 days time buckets, to ensure the stability and credibility of the banking system of the country. At the end it is being concluded that asset-liability management is one of the vital tool for risk management in banks and bank have to take great care for that. All banks have to work properly with regard to the ALM so as to increase their performance.

References :-

1. wikipedia.org/wiki/Asset_liability_management
2. www.allbankingsolutions.com/Banking-
3. www.axisbank.com
4. s://www.sbi.co.in
5. www.rbi.org
6. www.sciencedirect.com
7. kalyan-city.blogspot.com/
8. indianresearchjournals.com/pdf
9. rbidocs.rbi.org.in/rdocs/PressRelease
10. www.researchgate.net

Findings -

BANK	RSA	RSL	MATURITY GAP	MATURITY GAP %
STATE BANK OF INDIA	1396543.82	1371922.28	14621.54	1.20%
AXIS BANK	310368.20	296254.12	41113.08	9.15%

****

Non Performing Assests In India

Dr. Vandana K. Mishra *

Abstract - This paper deals with the concept of Non Performing Asset and Non Performing Assets (NPAs) in Indian Commercial Banks. In this paper detail of Non Performing Assets of Total banking sector and Analysis of NPAs of Public and Private Sector Banks has been listed in the table format.

The Indian banking sector is facing a serious problem of NPA. The magnitude of NPA is comparatively higher in public sectors banks than private sector banks. To improve the efficiency and profitability of banks the NPA need to be reduced and controlled. Hence the success of a bank depends upon methods of managing NPAs.

Key Words - Gross NPA, Net NPA, public sector banks, private sector banks.

Introduction - For any nation, banking system plays a vital role in the development of its sound economy. Banking is an important segment of the tertiary sector and acts as a back bone of economic progress. Banks are supposed to be more directly and positively related to the performance of the economy. Banks act as a development agency and are the source of hope and aspirations of the masses. Commercial banks are the major player to develop the economy. A major threat to banking sector is prevalence of Non-Performing Assets (NPAs).

The banking industry has undergone a sea change after the first phase of economic liberalization in 1991 and hence credit management came into picture. In recent times the banks have become very cautious in extending loans, the reason being mounting non-performing assets. Non-performing assets had been the single largest cause of irritation of the banking sector of India.

The Narasimham committee (1991) felt that the classification of assets according to the health codes is not in accordance with the international standards. It believed that a policy of income recognition should be objective and based on record of recovery rather than on any subjective considerations. Also, before the capital adequacy norms are complied with by Indian banks it is necessary to have their assets revalued on a more realistic basis on the basis of their realizable value. Thus the Narasimham committee (1991) believed that a proper system of income recognition and provisioning is fundamental to the preservation of the strength and stability of the banking system.

Objectives Of Study - The main objectives of this paper are as below.

1. To Know and discuss the concept of Non Performing Asset.
2. To study the classification of NPA and Types of NPA.
3. To highlight the trend of Gross NPA and Net NPA of Total Banking Sector for the Period of 2004-2011.

Research Methodology -

Data Collection - This is a descriptive research paper based on secondary data. Data have been collected through the Books, magazines, Journals, research paper, and websites.

Concept Of Non Performing Asset (Npa) - Non Performing Asset means an asset of account of borrower, which has been categorized by a bank or financial institution as sub-standard, doubtful or loss asset, in accordance with the directions relating to asset classification issued by RBI. Prior to 31st March, 2004 an NPA was defined as a credit facility in respect of which the interest or installment or principal has remained past due for a specified period of time which was 180 days. Due to the improvement in payment and settlement system, recovery climate, up gradation of technology and to match with international banking practices it has been decided with past due concept, with effect from March 31st 2004.

In accordance with the latest asset classification norms, a non-performing asset (NPA) shall be a loan or an advance, where:

- Interest and /or installment of principal remain overdue for a period of more than 90 Days in respect of a Term Loan,
- The account remains 'out of order' for a period of more than 90 days, in respect of an overdraft/ cash credit (OD/CC),
- The bill remains overdue for a period of more than 90 days in the case of bills purchased and discounted,
- Interest and/ or installment of principal remains overdue for two harvest seasons but for a period not exceeding two half years in the case of an advance granted for agricultural purpose, and
- Any amount to be received remains overdue for a period of more than 90 days in respect of other accounts.

*Asst. Professor, Smt. L.R.T. College of Commerce, Akola (Maharashtra) INDIA

NPAs Classification - NPA have been classified into following four types -

Standard Assets - A standard asset is a performing asset. Standard assets generate continuous income and repayments as and when they fall due. Such assets carry a normal risk and are not NPA in the real sense.

Sub-Standard Assets - All those assets (loans and advances) which are considered as non-performing for a period of 12 months.

Doubtful Assets - All those assets which are considered as non-performing for period of more than 12 months.

Loss Assets - All those assets which cannot be recovered. These assets are identified by the Central Bank or by the Auditors.

Types of NPA -

Gross NPA - Gross NPAs are the sum total of all loan assets that are classified as NPAs as per RBI Guidelines as on Balance Sheet date. Gross NPA reflects the quality of the loans made by banks. It consists of all the nonstandard assets like as sub-standard, doubtful, and loss assets. It can be calculated with the help of following ratio: Gross NPAs Ratio = Gross NPAs / Gross Advances

Net NPA - Net NPAs are those type of NPAs in which the bank has deducted the provision regarding NPAs. Net NPA shows the actual burden of banks*.* Since in India, bank balance sheets contain a huge amount of NPAs and the process of recovery and write off of loans is very time consuming, the banks have to make certain provisions against the NPAs according to the central bank guidelines. It can be calculated by following: Net NPAs = Gross NPAs – Provisions / Gross Advances – Provisions.

Non Performing Assets Of Total Banking Sector - In present scenario NPAs are at the core of financial problem of the banks. Concrete efforts have to be made to improve recovery performance. The main reasons of increasing NPAs are the target-oriented approach, which deteriorates the qualitative aspect of lending by banks and willful defaults, ineffective supervision of loan accounts, lack of technical and managerial expertise on the part of borrowers.

Table No 1 - Non Performing Assets of Total Banking Sector (Rs. Crore) **(See in the last page)**

The stricter regulations on NPA definitely reduced bad loans in the banks , Banks are now constantly being conscious of such accounts and proper measures are taken when an account has potential to become NPA. The Gross NPA of the total banking industryhas increased from Rs. 50815 crores in 2004 to 70861 crores in 2008 which however has declined to Rs. 58299 crores in 2011 (Table 1) Similarly the Net NPA has increased from Rs 23761 crores in 2004 to Rs.35554 crores in 2008 which however declined over time, and after 2009 they have become negative. This shows that the NPA levels of Indian commercial banks are reducing. This is also confirmed by the fact that the NPA (both gross and net) as percent of Gross advances as well as total assets is declining over time. While the Gross NPA as percent of gross advance and total asset has declined from 14.3% and 6.3% in 2004 to 5.2% and 2.5% in 2011 respectively, the Net NPA as percent of Gross advance and total asset has declined from 6.7% and 2.9% in 2004 to 1.9% and 0.9% in 2011 respectively.

Analysis Of Npas Of Public And Private Sector Banks - Source: RBI annual financial report, NPA of public and Private sector banks in Table 2. Comparison of Gross NPAs and Net NPAs of Public Sector and Private Sector Banks **(Table see in the nex page)**

The studies have been carried out using the RBI reports on banks (Annual Financial Reports) information /data obtain from banks and discussion with bank officials. The public sector and private sector banks showed a declining trend in gross and net NPAs over the period of study as shown in Table-2 but public sector banks has higher NPA compare to Private sector banks. The reason for it is that private sector banks have a secured loan policy as compared to public sector banks.

So even after implementation of prudential norms in early nineties and serious concern raised by government about growing size of NPAs, public sector banks paid least attention to all these warnings, which subsequently lead to turning fresh loans of banks into non performing category. So falling ratio of NPAs in terms of advances is not a true indicator of performance of public sector banks in the field of NPAs. In fact, growing size of gross NPAs in absolute form has been real cause of worry.

Conclusion - The NPAs have always created a big problem for the banks in India. It is just not only problem for the banks but for the economy too. The money locked up in NPAs has a direct impact on profitability of the bank as Indian banks are highly dependent on income from interest on funds lended. This study shows that extent of NPA is comparatively very high in public sectors banks as compared to private banks. Although various steps have been taken by government to reduce the NPAs but still a lot needs to be done to curb this problem. The NPAs level of our banks is still high as compared to the foreign banks. It is not at all possible to have zero NPAs. The bank management should speed up the recovery process. The problem of recovery is not with small borrowers but with large borrowers and a strict policy should be followed for solving this problem. The government should also make more provisions for faster settlement of pending cases and also it should reduce the mandatory lending to priority sector as this is the major problem creating area. So the problem of NPA needs lots of serious efforts otherwise NPAs will keep killing the profitability of banks which is not good for the growing Indian economy at all.

References :-

1. Prof. E. Gordon, Dr. K. Nateasan, 2010. Banking in India, Himalaya Publication House, Nagpur.
2. C.S. Balasubramaniam (2011), “Non Performing Assets and Profitability of Commercial Banks in India: Assessment and Emerging Issues”, Journal of Research in Commerce & Management, Vol. 1, Issue 7, pp. 41-57.

3. RBI Report on Trend and Progress of Banks in India (2004-12)
4. Journal of Financial Services Marketing. 6(4), 323-332.
5. Http://www.securityfocus.com

Table No 1

Non Performing Assets of Total Banking Sector (Rs. Crore)

S. No	Particulars	2004	2005	2006	2007	2008	2009	2010	2011
1	**Gross NPA**	50815	58722	60841	63741	70861	68717	64787	58299
2	Change		7907	2119	2900	7120	-2144	-3930	-6488
3	Percentage Growth		15.56	3.61	4.77	11.17	-3.03	- 5.72	-10.01
4	As Percent of Gross	14.39	14.71	12.79	11.42	10.42	8.86	7.19	5.27
	Advance								
5	As Percent of Gross Asset	6.36	6.18	5.49	4.91	4.62	4.04	3.27	2.57
6	**Net NPAs**	23761	28020	30152	32462	35554	32670	24617	21441
7	Change		4259	2132	2310	3092	-2884	-8053	-3176
8	Percentage Growth		17.92	7.61	7.66	9.52	-8.11	-24.65	-12.9
9	As Percent of Gross Advance	6.73	7.02	6.34	5.82	5.23	4.21	2.73	1.94
10	As Percent of Gross Asset	2.97	2.95	2.72	2.50	2.32	1.92	1.24	0.95
11	**Gross- Net**	27054	30702	30689	31279	35307	36047	40170	36858
12	Change		3648	-13	590	4028	740	4123	-3312
13	Percentage growth		13.48	-0.04	1.92	12.88	2.1	11.44	-8.24

Source: Report on Trends and Progress of Banks in India, various issues

Table 2

Years	**Public Sector Banks**		**Private Sector Banks**	
	Gross NPAs (%)	Net NPAs (%)	Gross NPAs (%)	Net NPAs (%)
2001-02	11.09	5.82	9.64	5.73
2002-03	9.36	4.54	8.08	4.95
2003-04	7.80	3.00	5.85	2.80
2004-05	5.50	2.00	6.00	2.70
2005-06	3.60	1.30	4.40	1.70
2006-07	2.70	1.10	3.10	1.00
2007-08	2.20	1.00	2.30	0.70
2008-09	2.00	0.94	2.36	0.90
2009-10	2.20	1.09	2.32	0.82
2010-11	2.40	1.20	1.97	0.53
2011-12	3.30	1.70	1.80	0.60

****

Role Of Human Resource Management & Occupational Health Safety System To Control Construction Hazards

Vikram Singh * Dr. Kapil Dev Sharma **

Abstract: Human resource management in occupational health and safety system in construction industry is clearly declares intention and commitment of top management and organization to set up a occupational health and safety policy to control construction hazards in construction industry. HSE management prevents the accident and controls the hazards at different levels.HRM to control different elements of occupational health and safety system in construction industry. In this paper, attempts have been made to find out the different terms and elements of safety management and components of occupational health and safety management system in construction industry to control various levels hazards.

Introduction - The international labour organization prepares a study material on safety and health in construction industries. This construction conversion set out requirements that are how reflected in national laws of many countries where this is not yet the case the requirements are reflective of current best where two or more employers undertake activities simultaneously at one construction site.

- The principal contractor or other person or body with actual control over or primary responsibility for overall construction site activities is responsible for co-ordinating health and safety measures and for ensuring compliance with the measure.
- Where the principal contractor or other person or body with actual control over or primary responsibility for overall construction site activities is not present at the site they must nominate a competent person or body at the site with the authority and means necessary to ensure co-coordinating compliance with the measures.
- Each employers remains responsible for applicable of the health and safety measures in respect of the workers, placed under their authority and mean also necessary to ensure the coordination and compliance with the measurement at any construction site with employer and employees, wherever employer or self-employed persons undertake activities simultaneously at one construction site they have the duty to co operate in the application of health and safety measures.
- Construction work should be planned, prepared and undertaken in such a way that.

a) Risks liable to arise at the workplace are prevents as soon as possible.
b) Excursively or unnecessarily strenuous work positions and movements are avoided.
c) Organization of work takes into account the occupational of workers.
d) Material and products are used which are suitable from an occupational safety and health point of view.

Working methods are employed which protect workers against the harmful effects of chemical, physical, biological agent and work on height or underground or in construction industries all such any constructing work is under progress a well established occupational health and safety policy and planning to prevent an accident.

Brief description -

Health and safety plan on site - Preparation of pre-construction information:

The purpose of pre- construction information is to provide information to those bidding for a planning work and for the development of the construction phase plan. Pre-construction information is essentially a collection of information about the significant occupational health and safety risk of the construction project that the principal contractor will have to manage during the construction phase.

The pre- construction information will mainly come from-

1. **The client**- who have to provide information relevant to health and safety to the co-coordinator, this could include existing drawings, survey of the site or premises, information on the location of services and utilities regarding man ,machine & material etc.
2. **Designers** – who have to provide information about the risk which cannot be avoided and will have to be controlled by the principal contractor and other contractor? Typically, this information may be provided on site layout plan, drawings map is written specifications or in outline methods statements.

*Research Scholar, Pacific University, Udaipur (Raj.) INDIA
**H.O.D. (Business Management) Govt. J.D.B. Girls P.G. College, Kota (Raj.) INDIA

The uses of Pre-construction information of any construction site

a) First, at any new construction site during its development the plan can provide a focus at which the occupational health and safety planning for considerations of design are brought together under the control of the coordinator.

b) Second, when the construction project plan is approved secondly the plan plays a vital role in the tender documentation. It enables prospective principal contractor to be fully aware of requirements. This will allow prospective principal contractors to have a level playing field as far as occupational health and safety is concerned on which to provide tender submissions.

c) Thirdly, the construction project plan provides a template against which different tender submissions can be measured. This helps the coordinator to advise the client on the provision of resources for the occupational health and safety to assess the competence of prospective principal for contractors.

d) Fourth, the coordinator is responsible for ensuring that the pre construction information is prepared. This does not mean that the co coordinator must produce the plan directly but the coordinator must ensure that it is the best planning on the occupational health and safety basis in construction site.

1. The construction phase occupational health and safety plan - When a new construction project site starts the onsite construction phase occupational health and safety plan is develop by the principal contractor. Ensure the foundation on which the health and safety management of the construction work is based. The contents of the construction phase of occupational health and safety plan will depend on the nature of the project itself. However the occupational health and safety plan can usefully include.

a. A description of the project site this will include details of key dates, detail of other parties and the extent and location site plan, map of existing records and plans.

b. The human resources management structure and responsibilities of the various members of the construction project team members and whether based at site or elsewhere.

c. The occupational health and safety international standards to which the project will be carryout. These may be set in terms of statutory requirement of high standards that the client may require in particular circumstances.

d. The means for information about construction project site for informing to contractors about any risk to their occupational health and safety arising from the environment in which the project is to be carried out and the project construction work itself.

e. All contractors at construction project site, the self employed and designers to be appointed by the principal contractor are properly selected by the management. They are competent and will make adequate provision for worker's welfare and occupational health and safety management system on site.

f. On the construction project site for communicating and passing information between the project management team (including the client and any clients representative). The designer, the construction occupational health and safety system coordinator, the principal contractor, other contractors work on the construction site and others whose occupational health and safety may be effected.

g. All needful arrangement for the identification and effective management of activities with risks to occupational health and safety management system by carrying out risk assessments incorporating those prepared by others contractor, those are working on the construction site and also safety issues.

h. The management make and plan all type of emergency arrangement for dealing with and minimizing the effect of injuries fire and other dangerous occur on site

2. Occupational health and safety file - Preparation of the occupational health and safety file. The purpose of the occupational health and safety file is to provide a source of information needed to allow future planned construction work, alteration, refurbishment and demolition, including cleaning and maintenance to be carried out at any construction project site in a safe and healthy manner.

The main organization management client, designers, principal contractor, other contactors and coordinator all have legal duties in respect of the occupational health and safety file.

- The project management well coordinators must prepare, review, amend or add to the file as the construction project progresses and give it to the main organization or client at the final of the construction project handed over to party.
- The management of construction project party clients, designers, the principal contractors and other subcontractors must supply the information necessary for compiling or updating the project file.
- The management should keep this file to assist with future any more party construction or extension or modification work on this project.
- The project management and other reverend department and every one providing information correct and should make sure that it is as per the record and report and provided as per requirement by any other section, interest of organization for any future development.

Content of the occupational health and safety file - The contents of the occupational health and safety file will vary depending on the type of structure and the future of health and safety at any construction site safety risks that will have to be managed all project related typical and normal information which may be put in the occupational health and safety file may be includes:

a) A brief description of the construction project history and planning of work carried out in future at this site.

b) If there is any residual or positional hazards that remain and how can they have been minimized or dealt from workers site as a safe worker methods as per MSDS (Material Storage Data Sheet) or fire risk such as a lead fuel paints or pesticides and other flammable liquid.

c) All important information regarding the removal or dismantling of installed man, machine, material, plant related other equipment.

d) Occupational health and safety relevant policy, procedure methods standards and all information about equipment provided for cleaning or maintaining the project structure.

e) The nature location and marking of any significant services such as underground service, fire, safety first aid and other emergency service.

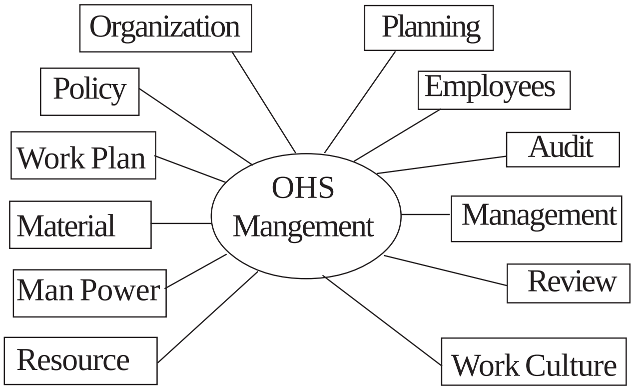

Human Resource Management
Figure - 1

Observation - Future use of the occupational health and safety - When the project is complete and handed over to the owner of the project at the finished and the occupational health and safety file has been given to the coordinator. The client should keep it available for those who need to use it. Usually this will include maintenance contractors, the coordinator need any type of contractor preparing or carrying out future need any type of construction related information for extension or renewal of project part. Ideally the health and safety file should be kept available for inspection on the premises to which it related, if may be useful to store the health and occupational safety file so that it is two parts, one part will be more relevant for day to day use, for example operational and maintenance manual, The other part will be for longer term use, for example, drawing that will only require when major alteration work is carried out the occupational health and safety file could be stored electronically, whatever from it is stored, it should be easily accessible.

Conclusion - Measure should be taken to ensure that there's cooperation's between employers and workers in order to promote safety and health at all construction site. Those concerned with the design and planning of a construction project must take into account the health and safety of the construction workers. Regarding the construction project all natural laws or regulations may require the notification of the construction project to the competent authority for construction site. Requirements may depend on the size and duration or characteristics of the work. National laws of national building code or regulation board may also require employers and self employed persons to comply with prescribed safety and health management measure at the occupational construction site.

For lees of reference it may be useful for the coordinator to produce a document that summarizes that main elements of the occupational health and safety file and acts as a quick reference to where the relevant information is stored. On a project that involves work on part of structure for which there is no occupational health and safety file. A file only has to be created in relation to the construction work carried out in the construction project, not for the whole, carried out in the client sells all or part of the structure the occupational health and safety file or the relevant part of the health and safety file, should be passed to the new owner.

References :-

1. Human resource management in construction.
2. Construction management system.
3. National education board of safety &health.UK.
4. National safety council journal.
5. Construction safety management.

****

Impact Of Indian Service Sector

Dr. Devendra Singh Rathore *

Introduction - The service sector also known as the tertiary sector is and umbrella term that describes any job that produces intangible value or goods. For example, a truck driver transporting food does not grow or harvest any food, but does provided value by bringing food to places to be eaten. Countries with large service sectors, like the United States, are typically more developed than countries that primarily rely on agriculture or industrial goods. Service jobs include a variety of manual labor jobs, such as waiters and truck drivers, as well as knowledge-based jobs like financial planning. While value in other sectors is measured in the amount of goods produced, success in the service sector can be measured by the value a customer received. The development of a country's services sector is an indicator of its economic development . India's services sector is a vital component of its economy, as it presently account accounts 60 per cent of its gross domestic product (GDP). It has matured considerably during the last few years and has bee globally recognized for its high growth and development. The services sector in India comprises a wide range of activities, including trading, transportation, communication, financial, real estate and business services and community social personal services.

The services sector in India attracts the highest foreign domestic investment (FDI) equity inflows, accounting for about 17.96 per cent of the total equity inflows. In the period April 2000 – June 2014, the services sector in India attracted FDI inflows amounting to about US$ 40,197.21 million it is very big achievement. According to International Data Corporation (IDC), the total mobile services market revenue is India will reach US$ 29.8 billion by 2014 and is expected to touch US$ 37 billion in 2017 with a compound annual growth rate (CAGR) of 5.2 percent. Manufacturing and services sectors in India expanded at a faster pace than China during June while emerging market output registered the strongest upturn in business activity since March quarter of 2013, as per an HSBC survey. India's logistics setor is valued at US$ 110 billion and is projected to touch US$ 200 billion by 2020. The sector will double its growth in seven years from the percent growth rate of 15 per center.

Impact on Economy – The Indian services sector has seen some major impact on economy in the recent past, from foreign as well as private Indian corporate. Some of the major developments and investments in this sector are as follows -

- Employees' Provident Fund Organization (EPFO) has launched and online registration facility for employers, a move that will help firms get provident fund (PF) code within a day. Applicants can also track the status of their application through the website.
- Fosroc, and international company in construction solutions space, plans to set up its fourth plant in West Bengal along with its already existing three plants, one each in Karnataka, Uttarakhand and Gujarat. Its products include cement and concrete technology as well as chemicals for water and fireproofing and finishing.
- Uber has introduced its affordable line of UberX cabs across three cities in India. These cabs are priced about 25-40 per cent cheaper than its flagshop Uber Blacks. India is the second biggest market in terms of cities covered for Uber, which is presently valued at US$ 18 billion.
- Adfactors, India's larges public relations (PR) firm and The Holmes Report's 'Asia-Pacific Financial Consultancy of he Year' in 2013, has set up its Sri Lanka office in Colombo. This is Adfactors PR's third office in Asia outside India, after Dubai and Singapore. The new company, Adfactors Public Relations Lanka (Pvt) Ltd, will offer its suite of communications services to Sri Lanks-based businesses – both domestic and international.

India has the second fastest growing services sector with its compound annual growth rate at nine per cent, just below China's 10.9 per cent, during the last 11-year period from 2001 to 2012, the Economic Survey for 2013-14 said. Russia at 5.4 per cent is a distant third. Among the world's top 15 countries in terms of GDP. India ranked 10th in terms of overall GDP and 12th in terms of services GDP in 2012, it said, adding that services share in world GDP was 65.9 per cent but its share in employment was only 44 per cent in 2012. As per the survey, in India, the growth of services – sector GDP has been higher than that of overall GDP between the period FY2001-FY2014. Services constitute a major portion of India's GDP with a 57 per cent share in GDP at factor cost (at current prices) in 2013-14, an increase of 6 percentage points over 2000-01.

* Prof. (Commerce) Govt. P.G. College, Neemuch (M.P.) INDIA

Among fast growing developing countries, India is distinctive for the role of the service sector. Where earlier developers grew on the basis of exports of labour – intensive manufactures, India has concentrate on services. Although there are other emerging markets where the share of services in GDP exceeds the share of manufacturing, India stands out for the size and dynamism of its service sector. Skeptics have raised doubts about both the quality and sustainability of the increase in service sector activity. They have observed that employment in service is concentrated in the informal sector, personal services and public administration, activities with relatively little scope for productivity imrovement and limited spillovers. The downplay information technology and communications – related employment on the grounds that these sectors are small and use little unskilled labour, the implication being that a labour – abundant economy cannot rely on them to move people out of low – productivity agriculture. They worry that the rapid growth of service sector employment simply reflects the outsourcing to service sector providers of activities previously conducted in house by manufacturing firms; in other words, it is little more than relabeling of existing employment than new jobs. We make three groups which creates a lot of jobs.

Group I - Public Administration, Defense, Retail Trade, Transport, Storage, and wholesale.

Group II - Education, Health, Social work, Hotels, Restaurants, Entertainment, Social / personal services, Travel and tourism.

Group III - IT, Post an Communication, Computer service, Financial intermediation, Legal, Technical, Advertising, other Business Activities.

Above three groups cover all available jobs and finance activities. Today India's population more than 120 billion its mean 240 billion hands want work and job and Service sector provide.

They ask question whether shifting labour from agriculture directly to service confers the same benefits, in terms of productivity growth and higher living standards, as the more conventional pattern of shifting labout from agriculture to manufacturing in the early satages of economics develpment. We find that the growth of services in India has been broad – based, although it has been unusually rapid in modern services like communications, business services and financial services. In practice, services that are tradable internationally have grown fastest. We reject the claim that the growth of the service sector is simply disguised manufacturing activity. Only a small fraction of the growth of demand, in fact, derives from the outsourcing of activities from manufacturing to services. Rather, most production that does not go towards exports derives from the growth of final demand at home. The growth of service – sector employment does more to add to total employment outside agriculture than outsourcing arguments would lead one to expect. This suggests that policy makers should continue to encourage exports of It, communications, financial and business services while also liberalizing activities like education, health care and retail trade where regulation has inhibited the ability of producers to meet domestic demand. Finally, we observe that the skill content of labour employed in both manufacturing and in services is increasing and shown tendencies towards convergence. It is not a if manufacturing employs only low-skilled labour while modern services employ on high – skilled labour. Both sector are moving towards the employment of skilled labour, the skilled – unskilled mix of labour in the two sectors is becoming increasingly alike. Hence, it is no longer obviously the case that manufacturing is the exclusive destination for the vast majority of Indian labour moving into the modern sector and that modern services are available destination only for the highly skilled few. To the extent that the expansion of both modern manufacturing and modern services is constrained by the availability of skilled labour, this just underscores the importance for India of continuing to invest in labour skills. We conclude that sustaining economic growth and rising living standards will require shifting labour out of agriculture into both manufacturing and services, not just into one or the other. The argument that India needs to build up labour - intensive manufacturing and the argument that it should exploit its comparative advantage in service are often posed in opposition to one another. We argue, in contrast, that these two routes to faster growth and higher imcomes are complements, not incompatible alternatives.

Employment in Service Sector – One reason why some observers are unimpressed by the growth o the service sector is the presumption the modern services do not make significant use of unskilled and semiskilled labour, the factors of production that India has in abundance. They downplay information technology and communications – related service sector employment on the grounds that these activities are small and use little unskilled labour, the implication being that a labour – abundant economy cannot rely on them to move people out of low – productivity agriculture, service sector growth has been quite labour intensive and, in certain segments, more so than manufacturing sector growth. While the share of group I (traditional services) in GDP has decline over time, its share in employment has not. Group II (hybrid) services have accounted for a growing share of GDP and an even more rapidly growing share of economy wide employment. Group III (modern) services have accounted for increased shares of both GDP and employment over time, show that employment elasticity's are highest in Group Ii and time, show that employment elasticity's are higher for high – skilled than low skilled workers, they are also positive and significant for medium-skilled workers across a wide range of services. They are highest of all in modern business services.

The employment elasticity for medium skilled workers is in general about half the elasticity for high skilled labour and is positive for all service activities except agriculture. One might argue that India does not use the same technology as the advanced countries analyzed here. Given the relative endowments of labour and capital, India presumably used

more labour and more unskilled labour, thus this elasticity calculate using the OECD countries would not be indicative. We therefore, Calculate these elasticity using data only through 1995, the assumption being that technology lags in India by a decade, We find that the overall elasticity of employment are similar. However, the elasticity reported in the table is somewhat lower for unskilled labour and somewhat higher for skilled labour than in the period before 1995. We also estimate the regressions for employment elasticity with interaction terms. This is consistent with the notion that there is an economically significant demand for unskilled labour associate with the growth of the services sector in less advanced economies. Overall, we observe that the skill content of the labour employed in manufacturing and services is showing tendencies toward convergence. Manufacturing like most service activities, has negative employment elasticity for unskilled labour hours, a positive but modest elasticity for mediums skilled labour and a large elasticity for skilled labour. Thus, the skill content of both the manufacturing and service sector is increasing over time. It is not as if manufacturing employs only unskilled labour while modern services employ only highly skilled labour. Infect the skill mix of labour employed in the two sectors in becoming increasingly similar. As emphasized in the introduction, it is no longer obviously the case that manufacturing is the main destination for the vat majority of Indian labour moving into the modern sector and that modern services are a viable destination only for the highly-skilled few.

Conclusion – India a distinctive for the rapid growth of its service sector high term information technology, communication and business services in particular. However, whether the service sector provides a route out of poverty for the masses and thus a path to economic development is disputed. Some say that the high skill and education requirements of modern service sector jobs make them and impractical destination for the rural masses. Others counter theta as more skilled and educated workers "graduate" from manufacturing and traditional services, they open up economic space there for less educated workers capable of upgrading their skills. They argue that the skilled unskilled mix of he manufacturing and service sectors, each taken as a whole is not as different as commonly supposed.

Some say that much non-traditional services sector employment is little more than the outsourcing (re-labeling) of activities previously undertaken in-house by manufacturing firms. Others counter that much of the growth of service sector employment represents job creation as opposed to outsourcing. We find little evidence that the growth of the service sector simply disguised manufacturing activity. Although it is probably still the case that even the most rudimentary jobs in the modern service sector like basic data entry, require some high school education (something possessed by only a third of the relevant cohort) while much employment in manufacturing does not, the data suggest that the skilled unskilled mix of labour in the two sectors is becoming increasingly alike. It is no longer so obviously, the case that manufacturing is the exclusive destination for the vast majority of Indian labour moving into the modern sector and that modern services are a viable destination only for the highly skilled.

How modern service sector jobs are now migrating from India's urban centers to its small town and rural villages, creating employment for semi skilled workers. While these worker may not have the mathematical training to work as computer programmers or the English fluency needed for employment in call centers, with some high school education, they are sufficiency numerate and have adequate facility in English to "do basic data entry, read forms, and even write simple e-mail messages".

The wages of these rural service sector workers are three to four times those available in agriculture but only half those of workers in Bangalore, where the competition for labour is more intense and living costs are higher. American trucking companies seeking to process their timesheets in India may not have the local knowledge to find rural workers to undertake the task but Indian companies like rural shores have been established to run service sector facilities in rural areas. These observations are consistent with the view that employment in modern service sector activity can be a route out of poverty not just for the few and not just for urban residents. They are also consistent with the conclusion that employment in modern services can be a useful supplement to employment in manufacturing as a route out of rural poverty. Sustaining economic growth and rising living standards, thus, will benefit from shifting labour out of agriculture into modern services as well as manufacturing and not just into the latter. To the extent that the expansion of both sectors continues to be constrained by the availability of skilled labour simply underscores the importance for India to continue to invest in labour skills.

References :-

1. Berchert, Ingo and Aadity, Mattoo, (2013), "The Crisis resilience of Services Trade". World Bank Policy Research working paper 4917.
2. Bhagwati, Jagdish, "Splintering and disembodiment of Services and Developing Nations," World Economy, Vol.7
3. Bosworth, Barry, Susan M., Collins and Arvind, Virmani, (2012), "Sources of Growth in the Indian Economy", in India Ploicy.
4. Indian budget publication.
5. Department of Industrial Policy and Promotion (DIPP).
6. International Data Corporation (IDC)
7. Media Reports & Press Release
8. Basel committee on banking supervision : www.bis.org.
9. Threats for e-commerce: hawking J.
10. Journey of : e-commerce : Dr. J.S. Job
11. The e-banking Revolution : Gretchen. H
12. Impact of Globalization in Accounting : T. Majumdar
13. www.wikipedi.org.
14. www.worldbank.org.
15. www.ficci.com

Entrepreneurial Development Programmes (EDPs) In India

Deepika Shrivastava *

Introduction - Entrepreneurship development has become a matter of great concern in all developed and developing countries all over the world. Entrepreneurial development is a systematic and an organized development of a person to an entrepreneur. The development of an entrepreneur refers to inculcate the entrepreneurial skills into a common person, providing the needed knowledge, developing the technical, financial, marketing and managerial skills, and building the entrepreneurial attitude.EDP is a programme meant to develop entrepreneurial abilities among the people. It refers to inculcation development and polishing of entrepreneurial skill into a person needed to establishing and successfully run his/her enterprise . The concept of entrepreneurial development programme involves equipping a person with the required skill and knowledge needed for starting and running the enterprise.

Concept & Definition of Entrepreneurship development Programme - Entrepreneurship development Programme is designed to help an individual in strengthening his Entrepreneurial motive and in acquiring skills and capabilities necessary for playing his entrepreneurial role effectively. It is necessary to promote this understanding of motives and their impact on entrepreneurial values and behavior for this purpose.

Objective Of The Study -

1. To study about the concept of entrepreneurship development programme
2. (EDPS) .
3. To explain the entrepreneurship development programme in India.
4. To explain the problems of entrepreneurship development programme in India.

EDPs In India : A Historical Perspective - The war of economic freedom started in 1950 in the form of planned development. Then it was realized that the way to get rid of poverty and unemployment lies in the effective exploitation of hidden potential in the country. For this policy makers started advocating the promotion and development of small –scale industries in the country.

The employment oriented thinking for small sector. Underwent changes by the end of sixties and now small sector was recognized as an effective instrument to utilize the entrepreneurial potential remained hitherto dormant in the country. Realizing the various problems feud by the entrepreneurs in establishing enterprise, the Govt. decided to offer promotional package to the entrepreneurs. Promotional packages include financial help and incentives infrastructural facilities and technical and managerial guidance provided through various supporting organization of the Central, State and Local levels.

Concerted efforts on entrepreneurship development in India started with the establishment of small industry extension and Training institute (SIET), now (NISIET) in 1962.SIET got an opportunity with support from Harvard University to do pioneering work in entrepreneurship development in India. Harvard University conducted 5 years and research programmed in Andhra Pradesh. Gujarat Industrial Investment Corporation GIIC which for the first time started a three month training programme on entrepreneurship development in 1970. The programme was designed to unleash the talent of potential entrepreneurs and some selected entrepreneurs.

Special emphasis was given on three aspects:

1. Establishment of small scale enterprise.
2. Its management .
3. To earn profits out of it.

A major initiative to faster economic development in the North, East India took place with the establishment of the North Eastern Council(NEC) in 1972. The main objective of NCE was to promote economic development of the NER through Inter- state plans and bring the NER to the mainstream of the country. Since (EMTC) entrepreneurial motivation Training Centers was one of the oldest and noblest initiatives taken in the field of entrepreneurship development in the country. Like the State Planning Board of the Govt. of Assam under the dynamic leadership of the Chief Minister took the initiative in requesting SIET institute, Hyderabad to be associated with training and research in the field of entrepreneurship development in Assam with specific focus on self- employment for the educated unemployed youth of the state.

The integrated models of entrepreneurship development proposed by SIET included **five main components:**

*Asst. Prof., Career College, Bhopal (M.P.) INDIA

1. Local organization to initiate and support potential entrepreneurs till the break-even stage.
2. Inter-disciplinary approach.
3. Strong information support.
4. Training as an important intervention for entrepreneurial development.
5. Monitoring and evaluation and institutional financing.

SIET and small industry development organization(SIDO) through Small Industry Services Institute (SISI) and Industrial Development Bank Of India (IDBI) and Technical Consultancy Organization(TCOS) started organizing EDPs. The encouraging results of these efforts the national level financial institution such as IDBI, IFCI, ICICI and SISI with active support from the Gujarat Govt. sponsored a National Resource Organization called entrepreneurship development institute of India (FDI) Ahmadabad in 1983. In course of time some State Govt. with the support from national level financial institute established State level center for entrepreneurship development (CED) or institute of entrepreneurship development (IED) in 12 states. According to this 686 organizations are involved in conducting EDPs in the country which have imparted training to thousand of people by conducting hundreds of EDPs.

Best Practices By EDPs - With the objectives of EDPs it organized training programme Usually for six weeks . the programme consists of the following six inputs.

1. General Introduction To Entrepreneurship - In this step the participants are exposed to a general knowledge of Entrepreneurship such as factors affecting small scale industries ,Role of Entrepreneurs in economic development, entrepreneurial behavior and the facilities available for establishing small-scale enterprise.

2. Motivation training - The training inputs under this aim at inducing and developing the need for achievement among the participants. It ultimately tries to make the participants starts their own business enterprise after The completion of the training programme.

3. Management Skill - Since a small entrepreneur cannot employ a management professionals to manage their business so they impart basic and essential managerial skills in the different functional areas of management like finance, marketing, human resource and Production.

4. Support System And Procedure - This is following by acquainting them with producer for approaching them applying and obtaining support from them.

5. Fundamentals of project feasibility study - under this input the participants are provided guidelines on the effective analysis of feasibility or viability of the particular project relating to marketing, organization, technical financial and social aspects of the project.

6. Plant Visits - In order to familiarize the participants with real life situations in small business ,plant visits are also arranged.

Problems Of EDP - EDPs suffer many counts. The problems and lacunae are on the part of all those who are involved in the process, be it the trainers and the trainees the ED organizations, the supporting organizations, and the state Govt. The important problems are as follows —

1. Trainer-motivations are not found upto the mark in motivating the trainees to start their business.
2. ED organizations lack in commitment and sincerity in conducting the EDPs. In some cases EDPs are used as means to generate surplus for the ED organization.
3. Non conducive environment and constraints make the trainer-motivators role ineffective.
4. The antithetic attitude of the supporting agencies like banks and financial institutions serves as stumbling block in the success of EDPs.

Conclusion - The entrepreneurship with his vision and ability to bear risk Can transform the economic development in India. EDPs play a vital role in initiating and sustaining the process of development in India. The overall aim of EDPs is to stimulate a person for adopting entrepreneurship as a career and to make him able to identify and exploit the opportunity for new ventures.

References :-

1. Dr. S.S. Khanka entrepreneurial Development , S Chand.
2. 2 . Mali, D D 2000 Entrepreneurship Development In North-East Indian Institute of Entrepreneurship Guwahati.
3. Sharma S.V.S. and M.M.P. Akhouri (1978) Small Entrepreneurial Development ,Indian Experience in the North Eastern Region , SITE Institute, Hyderabad.
4. A study of entrepreneurship Development process in India PDF ms Indira Kumari Volume : 3 | Issue : 4 | April 2014 ISSN - 2250-1991

****

Tourism Entrepreneurship in India: Perspective & Prospects

Dr. Rakhi Saxena *

Introduction - Tourism is one of the largest and dynamically developing sectors of external economic activities. Its high growth and development rates, considerable volumes of foreign currency inflows, infrastructure development, and introduction of new management and educational experience actively affect various sectors of economy, which positively contribute to the social and economic development of the country as a whole. Most highly developed western countries, such as Switzerland, Austria, and France have accumulated a big deal of their social and economic welfare on profits from tourism. According to recent statistics, tourism provides about 10% of the world's income and employs almost one tenth of the world's workforce. All considered, tourism's actual and potential economic impact is astounding. Many people emphasize the positive aspects of tourism as a source of foreign exchange, a way to balance foreign trade, an "industry without chimney" — in short, manna from heaven. For decades tourism industry growth has been a major contributor to increased economic activity throughout the world. It has created jobs in both large and small communities and is a major industry in many places. It is the dominant economic activity in some communities.The main purpose of this paper is to explore the unlimited business opportunities of entrepreneurship in tourism industry and show the Perspective & prospects of tourism entrepreneurship in India.

Objective of the study -

1. To study about the concept of Tourism & Tourism enterprises.
2. To study about the perspective & prospects of Tourism entrepreneurship in India.

Concept of Tourism & Tourist - Tourism is a multidimensional concept and implies many things to many people. Tourism an Industry, a source of income, especially of foreign exchange. For the tourist it is travel, relaxation, a holiday, an expose to other cultures and traditions. We can say in other words Tourist is any person travelling to a place other then that of his/her usual environment for less than 12 months and whose main purpose of the trip is other then the exercise of an activity remunerated from within the place visited.

Definition of Tourism entrepreneurship - A Tourism enterprise as a composition of products involving transport ,accommodation ,catering ,natural recourses entertainment and other facilities and services, such as shops and banks and other tour operators'

The perspective of tourism entrepreneurship in India - India bursting with tourism opportunities ,we have been slightly slow on the uptake , as far as promoting tourist destinations goes. A point highlighted by the first Planning Commission way back in 1955 , which ranked tourism 269th On their priority list of industries lower then even the development of light houses. At that time the average number of tourist who came knocking at our door ,was around 15000.During post independence ,while critical issues like agriculture ,infrastructure and power supply hogged the limelight ,travel and tourism received step daughterly treatment , as it was deemed a" luxury " – affordable by only few .Not much has changed over the past six decades. Five year plans shows that in the third plan (1961-66) tourism got approximately 4001 cores , which was 0.11% of the total plan outlay . In the Eighth plan (1992-1997), it was 272 cores but still 0.11% of the total plan outlay. Tourism has emerged as number one largest smokeless and fast growing industry in the world due to its ample promises and prospects. Presently it accounts for 8% to the world trade and around 20% of service sector in the world .Evidences indicates that many countries have progressed from backward to developing to developed mainly due to tourism development.

The level of tourism development in India has so far at a very low level is indicated by its paltry share to national income and to the world trade . While tourism contributes to more than 70% in the national income of some of the countries like Malaysia and Singapore, its share to the national income of India is still dismally low 2.5%of the world territory ,it accounts for only 0.40% in the world tourism market .At present India ranks 47thamong the top 60 tourist in the world.

The following points shows that Indian tourism industry indicating it is important role in the national economy:

*Asst. Prof., Career College, Bhopal (M.P.) INDIA

1. The percentage of foreign tourists in India has increased by 12.4 % in one year that is from 2006 to 2007 .in 2006 Indian tourist industry witnessed a growth of 14.3%,which reached around 3.89 million in 2007.
2. The foreign tourist arrival led to a robust growth in the foreign exchange earnings that increased from U$$ 5.03billion during January to October 2006 to U$$ 6.32 billion during Jan-to oct 2007,which is apparently a 25.6% rice.
3. The outgoing graph of tourism industry in India is in no way lagging behind from the inbound one. people travelling from India to abroad or states within India have increased by 25%.
4. The united nations world tourism(UNWTO) has estimated the outgoing tourists to reach around 50 million by the year 2020.
5. India has a growing medical tourism sector.
6. The 2010 Commonwealth games in Delhi give a big boost to tourism in India.

The prospect of Tourism entrepreneurship in India - The National Tourism policy , 2002 earmarked considerable changes and policy inclusions in the Indian Tourism industry ."Incredible India" campaign fallout of the policy insisted on worldwide publicity of Indian tourism .The most Significant aspects of the new Tourism policy rests on the coordinated efforts of public and private sectors in tourism policy rests on the coordinated efforts of public and private sectors in tourism planning & promotion. The new policy centers around seven broad objective known as seven Ss-Welcome (SWAGAT),Information (Sulchana), Facilitation (Suvidha), security (suraksha).Cooperation (Sahyog) ,Infrastructure Development (Sanrachana),and cleanliness (Safaai) which are the main areas of operation in the policy. However ,the initial national Policy on tourism was declared in ,by amalgamating the discrete efforts of tourism promotion in the initial years of planning. By 1986 (during the 7th Plan), tourism was assigned the status of a service sector industry. By now some fourteen Indian states have declared tourism as an industry.

Some of the salient features of tourism promotion in India since 1991 are listed as follows:

1. Tourism was made a priority sector for foreign direct investment in 1991 making it eligible for automatic approvals up to 51% of the equity.
2. A National strategy for tourism Development was evolved in 1996 which advocated the strengthening of an institutional set up in human resource development ,setting up of an Advisory Board of tourism industry and Trade (which has since been set up) , the integrated development of tourist destination and the promotion of private sector in tourism development.
3. Declaration of Export House status to the tourism Industry in 1998; specifically Hotels ,Travel Agents ,Tour Operators and Tourist Transport operators are given this status.
4. Declaration of Ecotourism Year 2002.
5. Adoption of Single Window Clearance System for Tourism Entrepreneurs.
6. Confederation of Indian Industry (CII) and the task Force on Infrastructure for tourism suggests in their reports that tourism should be declared as an infrastructure industry of the country.
7. Sustainable Policy determination ,openness for foreign direct investments, financial assistance to the private tourism entrepreneurs , etc. are also remarkable landmarks in the history of the tourism industry in India.

Conclusion - Tourism is the most important civil industry in the world .The World Travel and Tourism Council (WTTC) has predicated that "India has potential to become number one tourist destination in the world with the demand growing at 10.1% per annum. Tourism in India 's third largest foreign exchange earner after gem and jewellery and readymade garments. The travel & tourism economy supports 18 million jobs in India or 5.9% of total employment and accounts for 5.6% of the gross domestic production (GDP).in 2010 this will rise to 25 million jobs or 6.8% of total employment .The travel & tourism demand in India amounts to rs. 1200 billion and by 2010 will reach around 6200 billion. It would grow an annual rate of 8.3%,more then double the global forecast of 4.1%.Tourism , in the twenty first century ,with its multi sect oral spin –offs is believed to be the catalyst to bring about enhanced development and prosperity in India.

References :-

1. Cook, R.A., L.J. Yale, and J.J. Marqua,(1999). Tourism: The business of Travel, New Jercey:Prantice Hall.
2. Hall C.M. and Stephen, J. Page, (2002). The Geography of tourism and recreation. Environment, place & space, London: Routledge.
3. Hudman, E.L. and D.E. Hawkins, (1989). Tourism in Contemporary Society: an introductory text, New Jersey: Prentice Hall.
4. Khanka, S.S. (2011):Developing Tourism Entrepreneurship in India:perspectives and prospects ,In;Venkata Rao and G. anjaneya Swamy (Eds .):Tourism Entrepreneurship ,Excel books ,new Delhi
5. Lundberg, D.E., (1990). The Tourist Business. New York: Van Nostrand Reinhold.
6. Nabi G., (2000). Socio-Economic Impact of tourism, Jaipur: Pointer.
7. Punia, B.K., (1994). Tourism Management-Problem & Prospects: Delhi, Ashish.
8. Seth, P.N., (1997). Successful Tourism Management, New Delhi: Sterling.
9. tourism.gov.in

****

Value Added Tax (VAT) In India

Shivali Dubey *

Introduction - The relevance of Value Added Tax to the Indian context has been under discussion ever since it was proposed by the Indirect Taxation Enquiry Commission in 1977 under the Chairmanship of Shri L. K. Jha. In 1986, this idea was put into practice in a cautious and tentative manner through the introduction of MODVAT covering select commodities as a partial replacement to existing excise duties. The Jha Committee report focused mainly on the taxes of the central government. Subsequently, the Report of the Tax Reforms Commission and more importantly, the report on the Reform of Domestic Trade Taxes in India: Issues and Options (1994) presented a detailed case for replacing the sales tax regimes in the Indian States with a comprehensive VAT.

Compliance with the first two items was to be ensured by January 1, 2000, with April 1, 2000, being the proposed date for introducing VAT. The first item found easy acceptance with most States complying with the agreed floor rates. There were a number of discussions on the second item, which resulted in the formulation of detailed criteria for identifying "pipeline projects" which would be the last set of units provided with access to the incentive schemes. The target date for introduction of VAT however, has been re-scheduled many times since, with the new target set for April 1, 2005. During this period, the Empowered Committee of State Finance Ministers, constituted to coordinate and monitor the transition to the new tax regime, has, through sustained deliberations over a period of over three and half years, arrived at a consensus on a design of VAT to be implemented from April 1, 2005. An important feature of the proposed VAT regime is that it seeks to simply replace the existing form of sales tax with a value added tax based on input tax credit mechanism without changes in the scope of the tax– an intra-State VAT on goods.

TAX - An Overview - VAT was first introduced in France in the year 1954 and its scope was expanded to include services in 1978, agriculture in 1983, resulting in VAT becoming one of the most important fiscal innovations of the last century. It is presently adopted by over 115 countries all over the world.

What is value added Tax ? - VAT is the abbreviated form for Value Added Tax. For this purpose value added is to be understood as "the value that a producer (whether a manufacturer, distributor) adds to his raw materials or purchases before selling the new or improved product or service.

Definition – Value Added Tax (VAT) - VAT in simple terms could be defined "as a tax on the value addition at different stages of manufacturing and distribution of goods and services".

It is a form of indirect tax in the nature of a multi-point sales tax with a set off or credit for tax paid on purchases / services. Each transaction of goods sold in the course of business is taxed, thus providing revenue to the government on value addition at each stage. On account of set off being provided on preceding purchase, cascading effect on the cost of goods is avoided. It is a self policing system reducing the scope for tax evasion.

Objectives of Value Added Tax - The primary objective of VAT must be to enhance competitiveness while removing the cascading effect of taxes and levies. While ensuring that this primary objective is in the forefront of the evolution of VAT law, the State must ensure that barriers to inter-state trade should be eliminated in order to create a unified national market. All of us will agree that the VAT regime must be simple, transparent and consistent in structure and approach, ensure revenue neutrality and mechanism must be self regulated. One of the most important criteria for implementation of VAT by the State will be to design and maintain a suitable mechanism to carefully monitor the revenues under VAT and a comparative study of the same with the present scenario to ensure current revenue levels.

Value Added Tax - Position in India - India is a federal state. Thus the powers of taxation are divided between the Centre and State. In India's indirect tax system, the Central government has the authority to impose excise duties on production or manufacture while the States are assigned the power to levy sales tax. In addition, States are empowered to levy tax on many other goods and services in the form of entry tax, octroi, entertainment tax, electricity duty, motor vehicles tax and so on.

The present framework of the Constitution empowers both the State and the Centre to levy indirect taxes on trades and services. This dichotomy gives room for varied taxes and tax structures. Such variety invariably brings with it the difficulties in administration and gives room for tax evasion. Coupled with this, is the slow pace of appellate and adjudication procedures.

Due to this dichotomy of authority under the Constitution, India has been rather slow in the adoption of VAT. Also, it has created an obstacle in introducing the European-style VAT in India, although over the years, tax reform committees have recommended that central excise duty, sales tax, and other domestic trade taxes be replaced by a comprehensive VAT that could tax all commodities and services.

In 1999, the meeting of Chief Ministers and State

* 5th Year Student, Hidayatullah National Law University, Raipur (C.G.) INDIA

Finance Ministers of Indian States unanimously agreed to introduce a unified value added tax regime throughout the Country by April 2002. The National Institute of Public Finance will provide technical assistance to States for introducing Value Added Tax.

It is by now quite clear, because of experience of Maharashtra and other States that the move towards VAT is to be well designed. It should extend to retail stage and it must be as broad based as possible, providing set off on tax paid on inputs as well as on capital goods. If this mechanism is followed VAT will become a multi stage consumption tax administered through a few rates or a single rate.

Homogeneity - A large Indian market has unfortunately been marred by fragmented inter-state barriers which have hampered free flow of goods and services within the country affecting the competitiveness of Indian industry. It is in this scenario that States while moving towards the VAT regime must address operating procedures specifically relating to rate structures, classification of products, set-off mechan - isms and documentary procedures which will be uniform across states. In the event of a divergence of structure and practice, in different States or non-allowance of set-off in respect of inter-State transactions, the growth of trade will be hampered leading to complex situation, which can affect the Indian economy.

States have been contemplating introduction of a revenue neutral rate by merging allied levies (like Entry tax, Octroi, Additional tax, Cess, Turnover tax etc.). If the revenue neutral rate fixed by the States differ by more than 1 to 2 percent between the States, there could be diversion of trade and render VAT system futile. It will not be out of place for me to mention that a harmonized classification of commodities duly aligned with Central & International classification will reduce litigation and create a conducive environment for trade & industry.

Issues Arising In Value Added Tax Regime - Tax Credit / Set off - Similar to MODVAT/ CENVAT under the Central Excise, the dealers and professionals are under the impression that if VAT paid on purchases is higher than VAT payable on sales the differential will only lie in the books and physical refund may not be possible. However there can be some genuine claim for refund **in the following cases**

1. Raw materials are chargeable at a higher rate and tax is payable at a lower rate or exempt;
2. Sale price is lower than purchase price for acceptable reasons;
3. When purchases effected within the State are sold in the course of interstate trade / Exports;
4. When VAT credit for purchases is available and no tax is payable on sales, say on some declarations;

Goods Held In Stock - On the date of introduction of VAT, stock of goods held could be a subject matter to be considered, as sales tax on purchases will have alreadybeen incurred and needs to be allowed as a set-off. The be problem assumes importance as the rate of VAT is likely to different than that under the Sales tax.

Gist Of State's Views, Plan & Expectations - Measures to reform the existing commodity taxation system in the States have been the subject of discussion in various conferences on economic reforms for many years. The State Government's recognizes the need to modernize its tax administration, adopt the best tax policy design to suit the present day's requirements in the light of increasing globalization of the economy. The tax reform measures are also needed to ensure buoyant revenue flow, improve voluntary compliance, and combat evasion and related corrupt practices. The Value Added Tax (VAT) system is considered as the best available option. This tax system is fair, simple, and inherently highly compliant. The Commercial tax revenues have almost reached a plateau. The need to expand the tax base is being acutely felt. This warrants rationalization and replacement of the existing scheme of taxation with an inherently highly compliant tax system.

Both the Committees were of the opinion that to sustain continuous economic growth, the only rational alternative for the existing single point Sales Tax is the Value Added Tax.

On account of the "set off system," which requires maintenance of accounts of tax paid on purchases and sales, it has a self-policing effect that may reduce the scope for tax evasion/ avoidance. VAT has a novel advantage of transparency of incidence of tax, as the tax component in any transaction is easily identifiable/ computable, thus helping, analysis of tax effect on various options of investments/ economic choices of producers or consumers. Because of its anti-cascading effect, the number of times a product is traded before reaching a final consumer or how much of a value is added at what stage in production-distribution process is of no consequence under VAT. It is also neutral regarding choice of production technique as well as business organization. It would also help in better pricing of the products by the manufacturers/ traders especially exporters; this would make their products competitive in the market.

Suitable From Of Value Added Tax For States - A VAT in its pure form analyzed the impact adversely affecting present tax revenues. A study of the VAT as adopted by the countries throughout the world discloses that many countries have not adopted VAT in its pure form. Although a single rate of tax is ideal in a VAT regime, most of the countries have adopted more than one rate. Almost all the countries have a negative list of commodities, which are not subjected to VAT.

Although capturing the value addition to tax up to the retail point is the basic feature of VAT, most of the countries have a special treatment for small retailers. Many countries levy a composition type of tax on retailers without applying the tax crediting principle of VAT. This is to reduce the burden of maintenance of detailed accounts that are otherwise required. This, however, has to be done without jeopardizing the positive economic effects of VAT i.e. widening the tax base, netting of all value-additions, removal of the cascading effects of tax on most of the goods. Taking a cue from such experience of other countries, the State has to tailor the VAT to suit its revenue needs.

Threats Under Value Added Tax - Even without any empirical estimates, one can gather general impression of

the evasion of sales tax. Presently, under the Sales Tax laws, taxes are evaded in numerous ways, which don't think needs any elaboration at this juncture. It is important to understand that the advent of VAT regime is expected to effectively check and put an end to such means. However, unlike any other mechanism, VAT is also not free from such threats. Some of the issues that may need to be addressed and adequately provided for while designing the VAT law are-

At the buyer's end -

1. Incorrect usage of non-VAT able invoices
2. Use of fake bills to counter purchases made from unregistered dealers or dealers under the composition scheme
3. Adjustment of inter-state with purchases made locally
4. Inflation of purchase invoices

At the seller's end -

1. Unauthentic bills
2. Classification of goods for applicability of special additional tax
3. Classification of goods to identify exempt vis-à-vis taxable goods
4. Under pricing of goods sold
5. Some of the means to check tax evasion are by simultaneous action on the following:

- Design and implementation of effective ways to monitor the flow of goods
- Availability of effective machinery to check the accuracy of the claims of dealers
- Ensuring high degree of compliance by all dealers.

Intra-State Value Added Tax With CST - An Assessment- In its present form, the treatment of interstate transactions between registered dealers distinguishes between inter-state sales and consignment/branch transfers. The tax is levied by the Government of India, and is collected and retained by the State of origin. As is well recognised in the literature, this form of taxation leads to tax exportation beyond the extent of the tax on the inter-state sale, since this system allows the originating State to tax its inputs too at a rate of upto four per cent. For any rate of tax on inputs, higher than four percent, the manufacturer in any State would prefer to purchase through inter-state transactions thereby reducing the incidence of the tax. This very process had placed a ceiling on the rate of tax on inputs used by a manufacturer. For rates lower than or equal to four per cent however, there was a "level playing field" between local purchases and inter-state purchases. This therefore meant that the taxes on purchases as well as the tax on the inter-state sale were exported out of the State. In the case of consignment transfers, the incidence was limited to the former.

It is important to assess how this scenario changes with a changeover from the present cascading type of first point sales tax to an intra-state VAT with set off of input taxes against CST as well. The proposal for treatment of inters -a state transaction in the new scheme of things is as follows: the States would offer set-off of input taxes against CST collected. In the case of consignment transfers, the set-off would be for input taxes over and above four per cent. Once again the latter is designed to prevent or minimize the incentive to take recourse to inter-state transactions for purchase of inputs. While this change over should make every individual State an attractive investment proposition when assessed in isolation, when put together, it has the potential of inducing greater concentration of industry in a few States. The logic is as follows: since full tax credit is available for local purchases, whereas CST (or input taxes on purchases in the case of consignment transfers) sticks to the value of the good on inter-state purchases, there is incentive to minimize the number of inter-state transactions before the good reaches the consumer. Further, an illustration suggests that locating the manufacturing activity in the State with the largest value of sales too yields some tax saving which could translate in either lower prices or higher profits for the manufacturers. This would suggest that manufacturing activity would get concentrated in the States which have higher levels of income.

In order to understand the impact on the economy of this change over to this proposed system of it is useful to compare this scenario with that under the present system. Given that there is not much difference in the tax rates between local purchases and inter-state purchases in the present system, the distortions in the economy induced by the tax system are largely limited to those induced by the existence of cascading tax system. The location of industries was less likely to be affected by this system – even the tax-based industrial incentives tended to become uniform across States as a result of competition among States.

In other words, the changeover to an intra- state VAT with CST provisions remaining in place (even with reduced rates of tax) would, at the very minimum, disturb the existing structure of business transactions in the economy. While there is agreement in principle, that the present system of taxation of inter-state trade has to be replaced with a system which works on a destination basis, the contours of the new system as also the time frame for the reform process are yet to be defined. The agenda presently is defined only so far as reduction in the rate of CST to two per cent, at the time of switch over to the intra-state VAT. This would be an unhappy state of affairs for two reasons – one, with a changeover to VAT, it is expected that economic agents would have to restructure their business strategies to optimize in the new environment. Second, given that some of the measures would involve costs in terms of revenue loss for the different levels of government, evaluating the costs and planning a suitable course of action is critical to the success of the reforms process. To give an example, a change over from a first point tax to a value added tax is associated with some losses and some gains. It is often argued that the losses are from firm sources revenue that is easy to collect while the gains are from dispersed sources, requiring more effort by the tax department. To guard against potential loss of revenue in the short run, it is considered advisable to introduce VAT with slightly higher rates of tax. In the Indian context, however, the increase in rates of tax through the floor rates regime was implemented independent of the

introduction of VAT. This meant two kinds of problems the potential for repeating the same is limited, and the revenue that needs to be protected was enhanced. In other words, the revenue augmenting measures of tax reforms need to be packaged with those that imply a cost on the exchequer. The objective therefore, should be to provide a stable business environment, and then the trajectory and time frame of reforms need to be announced in advance. This would allow agents to plan for the future and allow for minimization of any short term irrational decisions for the Value Added Taxation system in India.

Conclusion - Value Added Tax in India has been introduced in modified variants over the past two decades. However, VAT in its pure form is yet to be introduced in India, at Central or State level. Fortunately, the States' views on few broad issues are clearly known and we can therefore use this forum to debate on their correctness and requirements and forward our suggestions based on our assimilations and understandings.

Ideally, for deriving the full benefits of a VAT, the tax should cover all goods and services. Any exemptions, whether they be in the form of exemptions of select goods or the entire set of services, bring back cascading into the system, diluting the gains from introduction of VAT. To the extent that the production of goods requires the use of some services, where the suppliers of the services, in turn would have used some goods for the supply of the service, the tax on these goods does cascade through the system. This could potentially distort decision making between production of goods and provision of services. Further, there are a number of services, which are often intimately related with the sale of goods or vice versa. In such cases, the value attributable to the sale of goods cannot be easily separated from the value of the services provided. This opens up the possibility of under-valuation of the goods part of such transactions. Servicing of cars in garages as well as similar other repair activities are examples of the same. Hire purchase schemes too potentially face the problem of distinction with hiring in schemes. The other major activity, which suffers from this problem, is construction activity. Most States have sought to get around this problem in the case of construction by determining some benchmark shares for goods and services in the transactions. Such processes once again would distort the decision making process, but have been adopted for want of a better mechanism of taxation.

References :-

Books & Reports -

1. Empowered Committee of State Finance Ministers 2005, A White Paper on State-Level Value Added Ta,. New Delhi, January.
2. Financial Mail, 1988. VAT and property: time to take stock, Vol. 109, No. 7, 19 August
3. Somers, J. (ed). 1995. VAT and sales taxes worldwide: a guide to practices and procedures in 61 countries, Chichester: Wiley.
4. Lakdawala D.T., 2009, 'Value Added Tax' The Indian Economic Journal, Volume 24, No.2, October-December.
5. Das-Gupta, Arindam, 2004, "The VAT versus the Turnover Tax with Non-Competitive Firms." National Institute of Public Finance and Policy, New Delhi, Working Paper 21, July.
6. Jha, Shikha and Srinivasan, P.V., 2009, 'Value Added Taxes in India: An Incidence Analysis', National Institute of Public Finance and Policy, New Delhi.
7. Bird, Richard. 1989. "The Administrative Dimension of Tax Reform in Developing Countries." In The Theory and Practice of Tax Reform in Developing Countries, edited by Malcolm Gillis, Durham: Duke University Press.
8. Ahuja, S.P., 2006 'Progression in Indirect Taxation in India: 2004-2005 and 2005-2006', Indian Economic Review, 6(1).
9. Government of Karnataka, 2001, First Report of the Tax Reforms Commission, Bangalore, Finance Department.
10. Government of India, 2001, Report of the Advisory Group on Tax Policy and Tax Administration for the Tenth Plan, New Delhi: Planning Commission.
11. Government of India, 2005, Indian Tax Reform. New Delhi: Ministry of Finance.
12. Government of India, 2005, Report of the Taxation Enquiry Commission, New Delhi: Ministry of Finance.
13. Government of India, 2001, Report of the Expert Group on Taxation of Services. New Delhi: Ministry of Finance.
14. Government of India, 2002, Report of the Taskforce on Direct Taxes. New Delhi: Ministry of Finance.
15. Government of India, 2002, Report of the Taskforce on Indirect Taxes. New Delhi: Ministry of Finance.
16. Government of India, 2004, Indian Public Finance Statistics. New Delhi: Ministry of Finance.
17. Government of India, 2004, Report of the Task Force on Implementation of the Fiscal Responsibility and Budget Management Act, 2003. New Delhi: Ministry of Finance.
18. Government of India, Various years. Report of the Comptroller and Auditor General (Direct Taxes). New Delhi.
19. Government of India, Various years. Union Budget. New Delhi: Ministry of Finance.
20. Government of India, Various years. Public Enterprises Survey. New Delhi: Ministry of Industry,

Dictionaries -

1. Garner A. Brayan, Black's Law Dictionary, 7th edition, Western Group Publication
2. Judy Pearsall, Concise Oxford English Dictionary, 10th edition, Oxford Press
3. Rutherford Leslie, Osborn's Concise Dictionary,8th edition, Universal Law Publication

Websites -

1. www.finmin.nic.in/kelkar/final_dt.htm
2. www.planningcommission.nic.in/aboutus/committee/wrkgrp/tptarpt.pdf
3. www.finmin.nic.in/downloads/reports/
4. www.expenditurereforms.nic.in/main2.htm
5. www.worldbank.org/publicsector/legal/
6. www.socialsciences.scielo.org/
7. www.economicsnetwork.ac.uk/books
8. www.southasianbooks.edu

Research Methodology And Project Management - Minor And Major : Types Of Research, Importance And All About Project

Pallavi Mane * Dr. Rajeshri Desai **

Introduction - Doing PhD Research is scientific, methodological way of finding answers to hypothetical questions. Since **research methodology** gives direction for conducting your thesis and also affects your results and how you conclude the findings, thus, it requires special and complete attention.

Moreover research is considered as an academic activity, thus always term should be used in a technical sense. As soon as candidates register for their PhD, there are several major questions that they ask themselves such as "How to Research?" and 'What to research? and central question would be 'why research'?

Research can be method of finding solution to a problem or it can also involve in formulation of a theory. Hence in order to formulate a theory or to find answer to question, researchers need to be familiarizing with the appropriate methods.

In general research objectives fall into a number of following broad groupings:

1. **Exploratory or Formulatory research** - To gain familiarity with a phenomenon or achieve new insights.
2. **Descriptive research** - To portray accurately the population or individual or a group characteristics.
3. **Diagnostic research** - To determine the association or frequency of something which occurs.
4. **Hypothesis testing studies -** To test a hypothesis of a casual relationship between variables:

Qualitative research :

Research problem - how? why?

Literature review - exploratory - what are the variables involved? constructs are untidy research issues are developed

Paradigm - critical realism/interpretive

Methodology - for example, case study research or action research

Quantitative research :

Research problem - who (how many)? what (how much)?

Literature review - explanatory - what are the relationships between the variables which have been previously identified and measured? hypotheses are developed.

Paradigm - positivist. **Methodology -** for example, survey or experiment.

Types of Research - There are different types of research and the basic types of research are as follows.

1. **Descriptive Versus Analytical -** This research includes fact finding enquiries or surveys of different kinds. In business research, it is called as Ex post facto research. Researcher does not has control over the variables. In analytical research, researcher use the information already readily available and analyze the information critically and present it.
2. **Applied vs. Fundamental -** Action (Applied) research aims at finding a solution for an immediate problem facing an industry or business or society, while basic (fundamental) is concerned with generalizations with formulation of a theory.
3. **Qualitative or Quantitative research -** Quantitative research focuses on numbers and measurement while qualitative research aims more at thoroughly describing a situation or explaining reasons for a problem or circumstances
4. **Conceptual Vs Empirical -** Abstract idea (s) or theory is conceptual research and used by philosophers while empirical (experimental) research relies on observation or experience alone. In this type of research, researcher must provide a working hypothesis and prove or disprove the same using appropriate methodology.
5. **Other types of Research -** Based on the purpose of research PhD Candidates can also chose other type of research such as longitudinal research, field setting research, simulation research, laboratory research, clinical or diagnostic research, historical research, conclusion oriented research, operation research, decision oriented research. However, type of research is based on the purpose of your PhD study. It is always good to contact research methodology expertise of your area for more valuable information.

Project Management – Minor And Major :

What Is Project Management and Why Is It Different?

Project management is always showing up in the business media today. It seems that every few months, something hits the news that has to do with project management. Maybe it's a demand that every business should have a PMO. Or

* Research Scholar, School of Commerce D.A.V.V., Indore (M.P.) INDIA
** Professor (Commerce) School of Commerce D.A.V.V., Indore (M.P.) INDIA

maybe, another major project that has hit major overruns because of poor project management.

But what is project management? And How does it differ from any other type of management? What makes it special? How will it affect me as an entrepreneur and business leader? Why is it so important?

This article explains what project management is and why it is different from regular management. Strategic project management is used to illustrate the differences. Operational project management uses the same tools and techniques, and acts under the same conditions. However, the difference between an operational group and a project group is a little less obvious.

Project management is the collection of tools, and system design and people skills necessary to lead, support, guide and control temporary endeavors.

Traditionally, business thinkers have explained the structure of management by referring to the old military structure of strategic, tactical and administration.

- Strategic groups put the business in the right place,
- tactics dealt with the customer and competition, and
- administration was focused on doing the stuff that wasn't really important.

There is a strategic group - Their function is to think in terms of the future of the organization. Effectively, they navigate and steer the organization. They look for large changes and major improvements. We seldom call this management. Normally, it is referred to as planning.

Operations group - They depend on doing the same things, in the same way, repeatedly. Their focus, is on today and the past. At most, they will initiate incremental improvement. When we talk of management, we are usually thinking of this group.

Bridging the gap is the **project group**. Their focus is on shifting the operations group so that it follows the direction set by the strategic group. Their focus is neither on the future nor the past but rather on change. Their activities are temporary. They appear and disappear as goals shift.

These temporary activities are called **PROJECTS**. And their management requires a different set of skills than operational management.

1. An Operational Manager needs to focus on his department's activities. That means that he must be knowledgeable in the same subjects as his people. Industry and subject knowledge are most important. Tasks and systems are not as important since they seldom change.

On the other hand, project management is a generic management profession.

The focus is not on the subject of the project but rather on people, tasks and systems.

2. An Operational Manager focuses on continuation. Typically, he or she will start with an existing team. They will focus on enhancing that team and gaining the most from that team. And with luck, will never have to participate in closing down that team.

On the other hand, project management is focused on building a team, quickly forging that team, and then closing down the team. Because the team is temporary, maintaining it is more a matter of keeping it pointed in the right direction than in traditional management. Instead, the focus is on the beginning and end of a team.

PMO: Project or Program, Office or Officer, Temporary or Permanent - With the advancement of project management, the 'PMO' shot form has become highly recognized and quite popular term. Many organizations today have one form of a PMO or another. However, this term is still quite misunderstood, and the three letters could mean different things for different people. It is important to establish now that in the case of PMO **One Size Does Not Fits All**.

- What does the abbreviations PMO stands for?

There is no agreement in the industry on one common definition of what these three letters mean. Most often, they are used to possibly mean:

1. Program Management Office (let us call it PgMO)
2. Portfolio Management Office (say PtMO)

Further, we have also heard the term 'PMO' used to mean 'PM Officer', 'PM Organization', among other usage. For portfolio management, PtMO is not a common term. Even when an organization has a function responsible for the portfolio of projects it is often called PMO only or something else; such as: PPM (Project Portfolio Management) or EPMO (Enterprise Project Management Office).

Therefore, the term PMO most often refers to Program or Project Management Office. The main practical differences between these two uses are that a PgMO is considered more strategic with a focus on programs and program management whereas PjMO is more operational with the emphasis on managing single projects. As a result, PgMO typically reported at a higher level in the organization than a PjMO.

- Are all PMO the same? No, they are not!

First Difference (Project or Program) - As explained earlier, the differences start with whether the PMO is a PjMO, PgMO, or PtMO. We also established that PtMO is not common so that leaves us with PjMO or PgMO.

Definition of 'program'; a program consists of many projects and program management is about managing programs. This distinction is important since it leads to different approaches of management; managing a program is quite different than managing a project.

To summarize: the first difference in the use of the term is the focus of the PMO; is the PMO focusing on managing projects or programs?

Second Difference (Organizational) - The second difference is related to the following: is the PMO established specifically for one project/program or is it for the organizational projects and programs?

To Explain further:

Temporary - One Project/Program - What we mean here is often "clients" organizations appoint a project management company to help them manage a **major or mega project**. If this company (the provider of service) is managing (or helping a "client" manage) a major project or program and the PMO is dedicated to this one project (or program)... then the term PMO is another way to refer to a Project (or Program) Management Team (PMT). In this scenario, when the project/program finishes the organization will dissolve the PMO. In other words, the PMO is temporary.

Permanent - Organizational - The more traditional and globally recognized use of the term PMO typically refers to an organizational PMO. The organization could be a department, strategic business unit, or even higher level. In these various cases, the PMO is for the whole 'organization'. In other words, this PMO is the Project Management Function within the organization and is permanent.

Are all organizational PMO the same?

Once again NO, and we are back to what we said earlier, there is no common definition or agreement on what a PMO is. However, when the PMO is organizational, what most would agree is that the PMO is not for one project or program but it is for all of the projects and programs within the organization.

In that regard, what is the role or function of the PMO?- This would vary, often on a PMO because it is eager to awaken the giant of project management within individuals, organizations, and nations!

Is Project Management the New Quality? - In the 1980's and 1990's Quality Management seemed to be taking over the world's organizations and businesses. It seemed quality improvement, value added management, LEAN, six sigma and so on were all seen as the tools for helping organizations improve performance every year. A large number of the world's best practice organizations led the way with massive investments in training, systems, equipment and culture change programs. It now appears that most of these organizations that were leading the charge to quality have largely led the retreat as well. Few organizations now seem to have highly paid Quality Managers, Quality Departments or Quality Systems as such.

If that was correct then my question now is: If quality improvement was so vital to every organization's success then, how is it happening now?

My answer is PROJECT MANAGEMENT - Organizations, both public and private sector have embarked on a huge project management kick and most don't seem to realize it. A brief review of job titles in the public sector has thousands of staff with project in their title. They could be project managers, project team members or project officers but most are not formally trained project professionals and don't really do formal projects that would meet today's definition of a project.

Three Ways to Make Microsoft Project Courses More Effective - In order to use their **project planning software** more effectively, many companies send their teams to **Microsoft Projects courses**. Sometimes employees don't seem to learn much and that's not always the fault of the course.

Proper planning can avoid three of the major pitfalls that lead to bad training.

1. **Training is Work - Schedule Appropriately**
2. **Today's Hot Topic Is Tomorrow's Obsolete Skill**
3. **Less Is Not More**

References :-

1. www.grassroots.com
2. www.researchscholar.com
3. Books on Research Methodology and Project Management.

****

भारतीय खाद्य निगम एवं खाद्य सुरक्षा

डॉ. इफ्फत खान *

प्रस्तावना – कल्याणकारी राज्य में शासन का दायित्व जनता के लिए सुरक्षा व न्याय प्रदान करने से पूर्व आवश्यक वस्तुएं उपलब्ध कराना है। अनादि काल में भोजन की व्यवस्था व्यक्ति, समाज और राज्य की प्रमुख चिन्ता का विषय रही है। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद से सरकार कृषि के विकास पर अधिक ध्यान दे रही है। काफी समय से एक ऐसी संस्था के बारे में विचार किया जा रहा था जो खाद्यान्न के क्रय–विक्रय के साथ–साथ खाद्यान्न का भण्डार बनाये रखे व1957 में श्री अशोक मेहता की अध्यक्षता में खाद्यान्न जांच समिति ने खाद्यान्नों के क्रय–विक्रय से संबंधित नीति और कार्यक्रमों का क्रियान्वयन करने के लिए एक खाद्यान्न संगठन की स्थापना का सुझाव दिया। 'इस संगठन को उन कार्यो को अपने हाथ में लेना चाहिए जो मुख्य संचालक द्वारा किये जाते हैं, अपितु बाजार में खाद्यान्न का व्यापार करना चाहिए एवं सब बड़ी मण्डियों में विशेषकर आधिक्य वाले क्षेत्रों में अपनी शाखाएं खोलना चाहिए।[1]

जनवरी 1965 में भारतीय संसद में एक अधिनियम द्वारा भारतीय खाद्य निगम की स्थापना खाद्यान्नों की अधिप्राप्ति, भण्डारण, परिचालन, संरक्षण एवं वितरण हेतु की गई। मध्यप्रदेश में भारतीय खाद्य निगम ने अपना कार्य नवम्बर 1966 में प्रारंभ किया। मध्यप्रदेश में जहां आधी से अधिक जनसंख्या गरीबी रेखा के नीचे जीवनयापन कर रही हो वहां मूल्य वृद्धि का होना अत्यन्त दुखदायी है।

अध्ययन विधि – आज जब अर्थव्यवस्था मूल्य वृद्धि वितरण की अनैतिक प्रवृत्तियों से ग्रस्ति हैं, भारतीय खाद्य निगम के सार्वजनिक वितरण प्रणाली में योगदान का पता लगाने इस विषय का चयन किया गया। आंकड़ों का संकलन और वैधता के परीक्षण हेतु परिकल्पनाओं का निर्माण किया गया। परिकल्पना के बिना न तो कोई प्रयोग हो सकता है और न कोई वैज्ञानिक गति से अनुसंधान संभव है।

परिकल्पनाएं –

1. मध्यप्रदेश एवं भारत में ग्रामीणों का प्रमुख व्यवसाय कृषि है जो पिछड़ी हुई स्थिति में है। किसानों को अधिक उत्पादन हेतु प्रोत्साहन देने की आवश्यकता है।
2. उपज का उचित प्रतिफल किसानों एवं कृषि विकास के लिए आवश्यक है।
3. मध्यप्रदेश में जहां आधी से अधिक जनसंख्या गरीबी रेखा के नीचे जीवन यापन कर रही है भारतीय खाद्य निगम सार्वजनिक वितरण प्रणाली की जीवन रेखा है।
4. भारतीय खाद्य निगम में खाद्यान्न अधिप्राप्ति, आधिपत्य वाले राज्यों से खाद्यान्न का परिचालन भण्डारण, गुण, नियंत्रण एवं वितरण में योगदान दे रहा है।
5. सार्वजनिक वितरण प्रणाली मूल्यवृद्धि, वितरण की अनैतिक प्रवृत्तियों को रोकने में अपरिहार्य है।
6. खाद्य सुरक्षा में भारतीय खाद्य निगम का योगदान सराहनीय है।

परिकल्पना के परीक्षण के लिए ऑकड़ों के संकलन की आवश्यकता होती है। भारतीय खाद्य निगम के क्रय केन्द्रों से प्रश्नावली द्वारा प्राथमिक समंक एकत्रित किये गये। द्वितीय समंक भारतीय खाद्य निगम के वार्षिक प्रतिवेदनों एवं पत्रिकाओं से प्राप्त की गई।

भारतीय खाद्य निगम के मुख्य उद्देश्य –

1. किसानों का समर्थन मूल्य निश्चित करने में परामर्श करना ताकि किसान अधिक से अधिक खाद्यान्न उगाने के लिए प्रोत्साहित हो।
2. खाद्यान्नों के मूल्यों के उच्चावचनों को रोकना एवं विभिन्न राज्यों के मूल्यों में समानता लाना।
3. गेहूँ एवं चावल का पर्याप्त भण्डार अधिप्राप्ति एवं आयात द्वारा बनाऐ रखना ताकि हर स्थिति में खाद्यान्न निरन्तर मिल सके।
4. देश के हर कोने में परिचालन करके खाद्यान्न पहुंचाना ताकि सार्वजनिक वितरण प्रणाली द्वारा वितरण हो सके।

भारतीय खाद्य निगम का मुख्य उद्देश्य 'कृषि उत्पादकों को उनके उत्पादन का उचित मूल्य दिलाने के साथ–साथ उपभोक्ताओं का अच्छी गुणवत्ता का खाद्यान्न उचित मूल्य पर उपलब्ध कराना है।'[2]

संगठनात्मक ढांचा – भारतीय खाद्य निगम का प्रधान कार्यालय नई दिल्ली में स्थित है। इसके नियंत्रण में पूरे देश में 5 आंचलिक कार्यालय, 19 क्षेत्रीय कार्यालय, 156 जिला कार्यालय एवं 3 बन्दरगाह कार्यालय आते हैं। उत्तर क्षेत्र का आंचलिक कार्यालय नई दिल्ली में है। उत्तर क्षेत्र में दिल्ली, हरियाणा, हिमांचल प्रदेश, जम्मू एवं कश्मीर, पंजाब, राजस्थान एवं उत्तर प्रदेश में क्षेत्रीय कार्यालय है।

पूर्वी क्षेत्र का आंचलिक कार्यालय कलकत्ता में है। पूर्वी क्षेत्र में बिहार, उड़ीसा, पश्चिम बंगाल में क्षेत्रीय कार्यालय है। उत्तर पूर्वी सींमाचल में असम एवं उत्तर पूर्वी सीमान्त में क्षेत्रीय कार्यालय है। दक्षिणांचल का आंचलिक कार्यालय मद्रास में है। इस क्षेत्र में आन्ध्रप्रदेश, कर्नाटक, केरल, तमिलनाडू राज्यों की राजधानी में क्षेत्रीय कार्यालय वरिष्ठ प्रबंधक के अधीन कार्य करते हैं। इसके अतिरिक्त मद्रास एवं विशाखापट्नम में बन्दरगाह कार्यालय है जो आयात और निर्यात का कार्य करते हैं। पश्चिम क्षेत्र का आंचलिक कार्यालय मुम्बई में है। पश्चिम क्षेत्र में गुजरात, मध्यप्रदेश, महाराष्ट्र राज्य आते हैं एवं इन राज्यों की राजधानी में वरिष्ठ क्षेत्रीय प्रबंधक के अधीन कार्य करते हैं। पश्चिम क्षेत्र में कांडला बन्दरगाह कार्यालय आयात और निर्यात कार्य करता है।

खाद्य निगम के कार्य –

1. खाद्यान्न का क्रय – खाद्यानों की अधिप्राप्ति तथा क्रय भारतीय खाद्य निगम का मुख्य कार्य है। भारतीय खाद्य निगम पूरे देश में खाद्यान्नों तथा अन्य खाद्य वस्तुओं की अधिप्राप्ति और वितरण का कार्य कर रहा है। भारतीय खाद्य निगम खाद्यान्नों की अधिप्राप्ति द्वारा समर्थन मूल्य उपायों के अन्तर्गत

* अतिथि विद्वान (वाणिज्य) महारानी लक्ष्मीबाई शासकीय कन्या स्नातकोत्तर महाविद्यालय, भोपाल (म.प्र.) भारत

किसानों को लाभदायक मूल्य दिलाने के साथ-साथ खाद्यान्न का उत्पादन बढ़ाने में सहायता प्रदान कर रहा है। जान मैलोर ने ठीक ही कहा है कि 'खाद्यान्नों की पूर्ति बढ़ाने हेतु .किसानों को मूल्य प्रेरणा देने की आवश्यकता है।[3]

भारतीय खाद्य निगम देश में अधिक उत्पादन वाले क्षेत्रों से कुल गेहूँ की मात्रा का 90 प्रतिशत किसानों से क्रय करता है। भारतीय खाद्य निगम, केन्द्रीय भण्डार के लिए समर्थन उपायों के अन्तर्गत गेहूँ की अधिप्राप्ति पंजाब हरियाणा और उत्तर प्रदेश राज्यों से बड़े पैमाने पर करता है। भारतीय खाद्य निगम के अतिरिक्त राज्य सरकार की एजेंसियां केन्द्रीय भण्डार के लिए समर्थन मूल्य पर गेहूँ खरीदती है। देश भर में फैली 10,000 से अधिक केन्द्रों में किसान निगम को समर्थन मूल्य पर अपना अनाज बेचते हैं और भुगतान के प्रति आश्वस्त रहते हैं। इससे किसानों को अधिक खाद्यान्न उपजाने को प्रोत्साहन मिलता है। चावल की अधिप्राप्ति मुख्यत: पंजाब, हरियाणा, उत्तर प्रदेश, आंध्रप्रदेश तथा छत्तीसगढ़ से की जाती है। भारतीय खाद्य निगम केन्द्रीय भण्डार के लिये चावल की अधिप्राप्ति जिलों द्वारा चावल के उत्पादन पर लेवी लगाकर की जाती है। लेवी का प्रतिशत अलग-अलग राज्यों में अलग-अलग होता है इसका निर्धारण भारत सरकार के परामर्श से राज्य सरकारों द्वारा किया जाता है।

सार्वजनिक वितरण प्रणाली को सुचारू रूप से चलाने के लिए सरकार समर्थन मूल्यों पर अनाज व अन्य कृषिगत वस्तुएं क्रय करके सुरक्षित भण्डार बनाये रखती है। समर्थन मूल्य वह मूल्य है जो सरकार विभिन्न फसलों जैसे धानगेहूँ व मोटे अनाजों आदि के लिए निर्धारित करती हे। इस प्रकार समर्थन मूल्य वह मूल्य है जो सरकार सार्वजनिक वितरण प्रणाली तथा सुरक्षित भण्डार के निर्माण हेतु खाद्यान्नों का क्रय करने के लिए निर्धारित करती है। समर्थन मूल्य निर्धारित करते समय सरकार किसानों एवं उपभोक्ताओं के हितों को ध्यान में रखती है ताकि किसानों को उसकी उत्पादन लागत तथा उस पर उचित लाभ प्राप्त हो एवं उपभोक्ताओं पर बोझ न बने। मध्यप्रदेश में गेहूँ का समर्थन मूल्य निम्न तालिका में दर्शाया गया है-

तालिका-1
मध्यप्रदेश में गेहूँ का समर्थन मूल्य

वर्ष	प्रति क्विंटल
1990-91	215
1991-92	225
1992-93	305
1993-94	350
1994-95	360
1995-96	360
2013	1350
2014	1400

उपरोक्त तालिका से स्पष्ट है कि पिछले 24 वर्षों में मध्यप्रदेश में गेहूँ के समर्थन मूल्य में 6 गुनी वृद्धि हुई है। इस प्रकार सरकार किसानों को लाभदायक मूल्य दिलाने में योगदान दे रही है।

सार्वजनिक वितरण प्रणाली एवं खुली विक्रय - आर्थिक प्रगति के दो स्तम्भ होते हैं- उत्पादन एवं वितरण। एक कितना शक्तिशाली कयों न हो यदि दूसरा पक्ष कमजोर होगा तो आर्थिक प्रगति पर विपरीत प्रभाव पड़ेगा। 'सार्वजनिक वितरण प्रणाली की आवश्यकता इसलिए प्रतीत की गई कि कम आय वाले उपभोक्ताओं के हितों की रक्षा के लिए मुक्त बाजार प्रणाली उपयुक्त नहीं पायी गई। स्थायी आधार पर ऐसी व्यवस्था सस्ते मूल्य की दुकानों का जाल बिछाकर पूरी की जा सकती है।[4] भारतीय खाद्य निगम सार्वजनिक वितरण प्रणाली को शक्तिशाली बनाने हेतु उचित मूल्य की दुकानों को समय पर खाद्यान्न उपलब्ध करा रहा है ताकि उपभोक्ताओं को खाद्यान्न की पूर्ति लगातार बनी रहे। खाद्यान्नों के मूल्यों को नियंत्रण में रखने के लिए भारतीय खाद्य निगम, फ्लोर मिलों, बड़े व्यापारियों, सुपर बाजारों को निर्धारित मूल्यों पर खुली बिक्री कार्यक्रम के अधीन गेहूँ एवं चावल बेचना है।

मध्यान्ह भोजन कार्यक्रम - प्रधानमंत्री द्वारा स्वतंत्रता दिवस 1995 से लाखों बच्चों को साक्षर बनाने, गरीब पालकों को एक वक्त रोटी की चिंता से मुक्त कराने एवं जिन्दगी की नई राह दिखाने हेतु प्राथमिक विद्यालय के बच्चों को मध्यान्ह भोजन की व्यवस्था की गई है। बच्चों की उपस्थिति के साथ-साथ बच्चों का पोषण स्तर सुधारना भी इसका उद्देश्य था। दोपहर भोजन योजना के अन्तर्गत 1995 से 2002 तक प्रति बच्चा 3 कि.ग्राम अन्न वितरित किया जाता था। जून, 2005 से तैयार भोजन व्यवस्था सभी बच्चों के लिए लागू की गई। 1 मार्च, 2008 से वर्ग 6 से वर्ग 8 के बच्चों के लिए भी मध्यान्ह भोजन योजना लागू की गई। भारतीय खाद्य निगम ने सभी जिला प्रबंधकों को निर्देश दिया है कि मध्यान्ह भोजन योजना के लिए सबसे अच्छी किस्म का गेहूँ एवं चावल जिला प्रशासन को उपलब्ध कराये।

भण्डारण - जिस अनाज को क्रय किया जाता है उसको वितरण करने तक भण्डार गृहों में रखना पड़ता है क्योंकि अनाज की मांग पूरे वर्ष बनी रहती है। खाद्यान्नों की वर्तमान पूर्ति एवं भावी आवश्यकताओं को पूरा करने हेतु भारतीय खाद्य निगम ने देश के कोने कोने में भण्डारण गोदाम समूहों का एक जाल फैला दिया है। भारतीय खाद्य निगम अपने गोदामों में अनाज के भण्डारों को सुरक्षित रखता है तथा वर्ष भर आवश्यकता वाले स्थानों में पूर्ति करता है। भण्डार गृह का उचित स्थान होना, यातायात एवं समान लागत में कमी ला सकता है। भण्डारण आवश्यकताओं का निर्धारण करते समय प्रकार, आकार एवं स्वामित्व पर ध्यान दिया जाता है।

ढुलाई - देश के विभिन्न भागों में उपभोक्ताओं के प्रति अपने उत्तरदायित्व के निर्वाह के लिए भारतीय खाद्य निगम बड़े पैमाने पर खाद्यान्नों का परिचालन कमी वाले क्षेत्रों को करता है। ढुलाई कार्य मुख्यत: उत्तरी राज्यों-पंजाब, हरियाणा, उत्तरप्रदेश और राजस्थान से कमी वाले क्षेत्रों को किया जाता है। मध्यप्रदेश की गिनती भी आधिक्य वाले राज्यों में की जाती है। मध्यप्रदेश से अन्य राज्यों को गेहूँ, चावल एवं धान की ढुलाई की जाती है।

भारतीय खाद्य निगम खाद्य सुरक्षा प्रणाली का प्रबंध करने जैसे उत्तरदायित्व को वहन करते हुए सार्वजनिक वितरण व्यवस्था में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है। यह सार्वजनिक वितरण प्रणाली की जीवन रेखा की तरह कार्य कर रहा है। भारतीय खाद्य निगम उपभोक्ता मूल्यों में स्थिरता बनाए रखने के साथ-साथ कम आय वाले वर्गों के हितों की रक्षा कर रहा है। यह खाद्यान्नों की अधिप्राप्ति द्वारा समर्थन उपायों के अन्तर्गत किसानों को लाभदायक मूल्य दिलाने के साथ-साथ खाद्यान्न का उत्पादन बढ़ाने में सहायता प्रदान कर रहा है। भारतीय खाद्य निगम का कुशल खाद्य सुरक्षा प्रणाली उपलब्ध कराने में योगदान सराहनीय है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची :-

1. Foodgrains Enquiry Committee Report, 1957, p. 84
2. Food Corporation of India Annual Report 1965-66, p. 10
3. Mellore John, Agricultural Price Policy, World Bank Working Paper 214, 1975
4. भारत सरकार राजमर्रा की चीजों को स्थिर मूल्यों पर उपलब्ध कराना, 1979
5. Food Corporation of India, Annual Reports.

Naveen Shodh Sansar (An International Refereed Research Journal) April to June 2015, Volume - 2
ISSN 2320-8767, E- ISSN 2394-3793, Imapct Factor - 0.715 (2014)

बैंक इंश्योरेन्स : सफलता की नई राह

डॉ. आर. के. विपट * प्रो. अर्चना मुजमेर **

प्रस्तावना – वैश्वीकरण एवं निजीकरण के फलस्वरूप भारत के वित्तीय क्षेत्र में बड़ी तेजी से बदलाव आया है। प्रतिस्पर्धा और नियमों के बंधन से मुक्त करने वाली शक्तियों के कारण ग्राहकों की अपेक्षाओं में आया बदलाव स्पष्ट दिखाई दे रहा है। सूचना और संचार प्रौद्योगिकी की प्रगति के कारण ग्राहक अब सरल, तेज, कुशल और सुरक्षित बीमा सेवाओं की अपेक्षा करने लगे हैं, और वह भी उचित कीमत पर एक ही खिड़की से। इस बदले हुए परिदृष्य में ग्राहक उपलब्ध विकल्पों का बखूबी उपयोग करना चाहते है। यदि संबंधों में नए सिरे से जान फूंकने की कोशिश नहीं की जाएगी तो वफादारी की पारंपरिक धारणा को मिटते देर नहीं लगती। प्रतिस्पर्धा में बने रहने और ग्राहकों की बढ़ती अपेक्षाओं को पूरा करने के लिए सार्वजनिक बीमा कंपनियाँ अपनी पारंपरिक भूमिका में सीमित न रहते हुए उससे आगे व्यापक बीमा सेवा प्रदाता की भूमिका अदा कर रही है। सार्वजनिक बीमा आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए अनेक प्रकार की योजनाएँ लेकर आ रहे है। जिसके प्रत्यक्ष लाभार्थी ग्राहक ही है। इस प्रक्रिया में सेवा के दायरे का विस्तार करते हुए बीमा कंपनियाँ अब कारोबार की लागत को कम करने का प्रयास कर रही हैं।

इसी उद्देश्य से बीमा कंपनियों द्वारा बैंक इन्श्योरेन्स योजना प्रारंभ की गई। बैंक इन्श्योरेन्स उदारीकरण एवं वैश्वीकरण पश्चात् बैंकिंग व बीमा क्षेत्र में हुए विधिक परिवर्तनों के फलस्वरूप एक नई विपणन नीति थी, जो शीघ्र ही वैश्विक प्रवृत्ति बन गई।

बैंक इन्श्योरेन्स बीमा कंपनी और बैंक के बीच समझौते के द्वारा एक ऐसी व्यवस्था है, जिसमें बैंक के ग्राहकों को बीमा कंपनी के बीमा उत्पाद बेचती है। यह व्यवस्था बीमा कंपनी व बैंक दोनों के लिए लाभप्रद होती है। बैंक अपने ग्राहकों व कर्मचारियों को बीमा उत्पाद का विक्रय कर अतिरिक्त आय (कमीशन) अर्जित करती है, वहीं दूसरी ओर बीमा कंपनी को एक साथ बहुत से नए ग्राहक व नई बीमा संभावनाएँ प्राप्त हो जाती है। बैंके अपने ग्राहकों व बीमा कंपनियों के मध्य एक तरह से मध्यस्थ का कार्य करती है। बैंक के कर्मचारी व अधिकारी के द्वारा ग्राहकों को बीमा कंपनी के सभी बीमा उत्पादों की जानकारी दी जाती है, ताकि ग्राहक अपने लिए उचित बीमा पॉलिसी चुनकर बीमा आवरण ले। इस हेतु बीमा कंपनियाँ बैंक स्टाफ, अधिकारी व कर्मचारियों को बीमा उत्पादों, विपणन रणनीतियों एवं विक्रय प्रबंध आदि की पूर्ण जानकारी व प्रशिक्षण भी प्रदान करती है।

जो भी बीमा कमीशन होता है वह बैंक के खाते में जाता है। बीमा पॉलिसी की शेष प्रशासन प्रक्रिया बीमा कंपनी द्वारा ही की जाती है। यथा पॉलिसी जारी करना, दावा निपटान आदि। बैंक इन्श्योरेन्स के तहत् ऐसे बीमा उत्पाद (पॉलिसी) भी प्रस्तुत किए जाते हैं, जो मध्यम या दीर्घकालीन विनियोग एवं कर से राहत प्रदान करने वाले हो जिनमें जोखिम कम हो व जिनके बारे में ग्राहकों को समझाया जाना बैंक अधिकारियों के लिए मुश्किल ना हो। बैंक के द्वारा ऐसे वित्तीय विशेषज्ञों (अधिकारियों) की सहायता लेनी होती है जो बीमा के नियमन व मार्केटिंग की अच्छी समझ व अनुभव रखते हों।

बैंकों द्वारा बैंकिंग सेवाओं और बीमा उत्पादों को एक साथ प्रदाय करना ही बैंक इन्श्योरेन्स हैं। कई देशों में बैंक इन्श्योरेन्स सफलतापूर्वक अपनाया जा चुका था।

भारत सरकार के द्वारा 3 अगस्त 2000 को जारी किए गए नोटिफिकेशन के द्वारा बैंकों को बीमा व्यवसाय करने की अनुमति प्रदान की गई। जिनके अनुसार बैंक एजेंट के रूप में बीमा कंपनियों के उत्पादों का विक्रय कर सकती है। इसके लिए उन्हें शुल्क भी दिया जाएगा। बैंकों द्वारा बिना जोखिम में भागीदारी किए बीमा व्यवसाय किया जाएगा।

भारत में भी बैंकों व बीमा कंपनियों द्वारा समझौते किए गए और इससे कई तरह के लाभ प्राप्त हुए।

1. बैंकों के लाभदायकता के नए क्षेत्र खुल गए हैं। बैंकों के द्वारा कम पूँजी में अधिक प्रत्याय प्राप्त होने लगा है, क्योंकि बीमा उत्पादों के विक्रय हेतु अतिरिक्त पूँजी की बहुत ज्यादा आवश्यकता नहीं होती।
2. ग्राहकों के लिए एक ही स्थान पर समस्त वित्तीय अर्थात बैंकिंग सेवाएँ तथा बीमा उत्पाद उपलब्ध हो जाते है। ग्राहकों की सुविधा उपभोक्ता संतुष्टि की आवश्यक शर्ते हैं।
3. बैंकों के विस्तृत नेटवर्क व बेहतरीन ग्राहक सेवाओं का संपूर्ण फायदा इंश्योरेंस कंपनियों को प्राप्त होता है।
4. बैंकों के द्वारा बीमा उत्पादों के विक्रय एजेंट द्वारा विक्रय की तुलना में अपेक्षाकृत कम जोखिम होता है।
5. बैंकों द्वारा दिए जाने वाले ऋणो (कम लागत का) से संबंधित संपत्तियों का बीमा हो जाने से वे ऋण सुरक्षित हो जाते है। और बैंकों की संभावित जोखिम/हानियाँ कम हो जाती है।

बैंक इन्श्योरेन्स की शुरूआत फ्रांस में हुई और शीघ्र ही यह योजना यूरोप के अन्य देशों में सफलतापूर्वक प्रचलित होने लगी। भारत में भी वर्तमान में कई बीमा कर्त्ताओं द्वारा बैंकों से गठबंधन किया जा चुका है और बैंक, बैंक इन्श्योरेन्स के माध्यम से बीमा उत्पाद विक्रय करने लगी है। यूरोप में तो यह समझौते बहुत ही प्रचलित हैं किन्तु अमेरिका में बहुत समय इसे प्रतिबंधित रखा गया और अभी तक इसके प्रयोग में अधिक सफलता नहीं मिल पायी है। चीन ने भी हाल ही में इस पद्धति को अपनाया है। वहाँ घरेलू बीमा कंपनियों और बैंकों के अतिरिक्त कई वैश्विक बीमाकर्ताओं द्वारा भी बैंक इन्श्योरेन्स को लाभप्रद माना है।

* विभागाध्यक्ष (वाणिज्य) भेरूलाल पाटीदार शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, महू (म.प्र.) भारत
** सहायक प्राध्यापक (वाणिज्य) माखनलाल चतुर्वेदी शासकीय कन्या स्नातकोत्तर महाविद्यालय,खण्डवा (म.प्र.) भारत

प्रतिष्ठित बीमा कंपनी लोम्बार्ड अन्तर्राष्ट्रीय इन्श्योरेन्स द्वारा पहली बार निजी बैंकों से गठजोड़ कर अपने उच्च आय के विनियोगकर्ताओं एवं उनके परिवारों को बीमा का सुरक्षा आवरण प्रदान करने हेतु वित्तीय नियोजन के रूप में बीमा उत्पादों को प्रस्तुत किया। वास्तव में बीमा के परंपरागत वितरण चैनल की तुलना में बैंक इन्श्योरेन्स कम लागत और अधिक उत्पादकता सहित आधुनिक वितरण चैनल है। अत: इसके विकास की भविष्य में संभावनाएँ है।

रिजर्व बैंक के निर्देश है कि विभिन्न बैंकों को अपने चयनित शाखा कार्यालय में आधारभूत संरचनाओं जैसे भूमि, भवन, उपकरण, फर्नीचर, संचार आदि की व्यवस्था हेतु अनुमति प्रदान की जाएगी ताकि वे संबंधित बीमा कंपनी के बीमा उत्पादों का विपणन पर्याप्त पारदर्शिता रखते हुए कर सकें और प्राप्त प्रीमियम के अनुपात में उन्हें फीस का भुगतान प्राप्त हो सकें।

अब तक देश की लगभग सभी बड़ी सार्वजनिक और निजी बैंक किसी न किसी बीमा कंपनी के साथ समझौते कर उनकी कारपोरेट एजेंट बन चुकी है। अर्थात् बैंक इन्श्योरेन्स की योजना हमारे देश में लोकप्रिय और लाभप्रद सिद्ध हो चुकी है।

भारत में बीमा व्यवसाय विशेषकर बैंक इन्श्योरेन्स में अपार संभावनाएँ हैं। बैंकों के विशाल नेटवर्क जो देश के कोने-कोने में फैला हुआ है की सहायता से बीमा कंपनियाँ अपने बीमा व्यवसाय को तीव्र गति से वृहद् रूप में विस्तृत कर पायेंगी।

विकास की दौड़ में शामिल सभी बीमाकर्ताओं व बैंकों को भविष्य की चुनौतियों और जोखिमों को भी ध्यान में रखना होगा। सही रणनीतियों, उच्च सेवाओं और ग्राहक संतुष्टि के द्वारा बैंक इन्श्योरेन्स द्वारा सफलता के नए रास्ते खोले जा सकते हैं।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. Unite House : News letter – August 2004
2. एश्योरेंस आपके लिए – मार्च 2011
3. Different Web sites : relating insurance
4. मध्यांचला – मार्च 2004

****

प्राचीन भारतीय न्याय व्यवस्था एवं वर्तमान भारत में उसकी प्रासंगिकता

डॉ. सारिका मिश्रा *

शोध सारांश – किसी भी देश का संविधान उसकी न्याय व्यवस्था के आधार पर स्तभ होते है जिस पर सम्पूर्ण समाज की शांति व्यवस्था, उन्नति, विकास निर्भर करता है और यह तभी संभव है जब देश की न्याय व्यवस्था देश की संस्कृति, समाज, परिवेश से मेल खाती हो। अत: भारत की वर्तमान न्याय व्यवस्था जो अंग्रेजी शासन की देन है वह भारत की संस्कृति एवं समाज से मेल न खाने के कारण सही न्याय करने में असमर्थ हो रही है। अत: इस शोध पत्र के माध्यम से प्राचीन भारतीय न्याय व्यवस्था से परिचित कराकर उसकी वर्तमान भारत में प्रासंगिकता को समझाने का प्रयास किया जा रहा है इस शोध पत्र का एक उद्देश्य यह भी है कि लोगों को इस बात से अवगत कराया जाये कि हमारी प्राचीन भारतीय न्याय व्यवस्था कितनी धर्म आधारित थी तथा संस्कृति एवं सामाजिक स्थिति से मेल खाने की वजह से उपयुक्त तथा सच्चा न्याय करने वाली थी। अत: हमें वापस इसी प्राचीन भारतीय न्याय व्यवस्था की तरफ जाना चाहिए तथा ऐसे कानून का निर्माण करना चाहिए जो हमारी सामाजिक आवश्यकताओं को पूरा करते हैं।

प्रस्तावना – किसी सभ्य समाज एवं देश के लिए न्याय व्यवस्था का होना आवश्यक है क्योंकि मानव कई प्रकार की दुर्बलताओं से ग्रसित है और इन दुर्बलताओं के वशीभूत होकर कई प्रकार के अपराध करता है। अगर न्याय व्यवस्था न हो तो मानव की इन दुर्बलताओं पर अंकुश लगाना कठिन हो जायेगा तथा समाज में अराजकता व्याप्त हो जायेगी। मनु के अनुसार इस संसार में पूर्णत या शुचि मनुष्य दुर्लभ है (दुर्लभों हि शुचिर्नर:)[1] मानव काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद आदि से ग्रसित होता है तथा दूसरों के अधिकार क्षेत्र में आक्रमण करने का प्रयत्न करता हे। इस संकट का सिर्फ एक ही निदान है कि किसी मानव ने दूसरे मानव के अधिकार को हरण करने का प्रयास किया उसी अनुपात में प्रथम मानव को उसके अनाधिकार प्रयास के लिए दण्ड मिलना चाहिए तथा दूसरे मानव को अपने अधिकार के उपभोग के लिए सुविधा प्राप्त होनी चाहिए। इन्हीं समस्याओं के निदान के लिए न्याय व्यवस्था की स्थापना की गई थी। स्मृतियों में विवादों को व्यवहार नाम से सम्बोधित किया गया है।

नोत्पादयेत्स्वयं कार्य राजा नाप्यस्य पुरुष:।
न च प्रापितम–येन ग्रसेदर्थ कथंचना।[2]

मनु ने ऐसे राजा को मृतक–तुल्य माना है जो प्रजा के अधिकारों की रक्षा नहीं कर सकता। अत: मनुष्यों के मध्य पारस्परिक अधिकार हरण सम्बन्धी प्रवृति को रोकने के लिए न्याय व्यवस्था की स्थापना करना अत्यन्त आवश्यक है। नारद स्मृति, मनु तथा याज्ञवलक्य आदि स्मृतियों में न्याय व्यवस्था के विषय में अधिक विस्तृत विवरण मिलात है। किसी भी देश की न्याय व्यवस्था उस देश की शान्ति व्यवस्था के लिए उत्तरदायी होती है। वर्तमान भारत में जो न्याय व्यवस्था है अर्थात वर्तमान भारतीय संविधान में अधिकांश कानून अंग्रेजों द्वारा बनाये गये कानून व्यवस्था से ही ले लिए गये है, जो हमारे देश की सामाजिक एवं संस्कृति प्रकृति के हिसाब से उचित नहीं है इसलिए वर्तमान भारतीय न्याय व्यवस्था में अनेक दुर्बलताएॅं है तथा वर्तमान भारतीय न्याय व्यवस्था से अपराधी को पर्याप्त दण्ड नहीं मिलता है। इसके विपरित हमारी पुरातन ग्रन्थों में जिस न्याय व्यवस्था का वर्णन मिलता है वह धर्म आधारित जो भारतीय सामाजिक एवं सांस्कृतिक दृष्टि से अनुकूल होता था पीड़ित को समय पर पर्याप्त न्याय मिलता था। इस शोध पत्र में प्राचीन न्याय व्यवस्था, न्यायपालिका का स्वरुप, न्यायपालिका के प्रकार, न्यायपालिका के अधिकारी, न्यायाधीश के गुण, न्यायाधीश के अधिकार और कर्तव्य का वर्णन कर उसकी वर्तमान भारत में प्रासंगिता को स्पष्ट करना चाहती हॅू।

न्याय व्यवस्था– प्राचीन न्याय व्यवस्था में निष्पक्ष न्याय कर अपराधी को दण्ड देना राजा का प्रधान कार्य बताया गया है। स्मृतियों में राजदण्ड का सिद्धान्त प्रतिपादित किया गया है। राजा जिस प्रकार अपने प्रशासनिक कार्यो के लिए मंत्रिगणों की सहायता ले तथा उसी प्रकार न्याय कार्य में भी सभा एवं सदस्यों की सहायता लेकर ही निर्णय करता था। राजा विभिन्न क्षेत्रों में विशेषज्ञता प्राप्त किये लोगों से विचार विमर्श के उपरान्त ही निर्णय लेता था। स्मृतियों में आधुनिक युग की तरह व्यवस्था नहीं हुआ करती थी। आज की भाषा में कहा जाये तो जुरी की राय के आधार पर ही निर्णय लिए जाते थे तथा धर्म के आधार पर दण्ड की व्यवस्था थी। अर्थात् जो जितना ज्यादा धर्म ज्ञात होता था अगर उसके द्वारा कोई अपराध होता था तो उसके लिए उतने अधिक दण्ड की व्यवस्था थी। प्राचीन न्याय व्यवस्था में पीड़ित को तुरन्त न्याय प्राप्त हो इसकी व्यवस्था की गई थी। इस सम्बन्ध में मनु का कथन है कि लोगों के झगड़े को निपटाने की इच्छा से राजा को ब्राह्मण एवं मंत्रियों सहित न्याय भवन में प्रवेश करना चाहिए और प्रतिदिन झगड़ों के कारणों का निपटारा करना चाहिए।[3]

न्यायपालिका के प्रकार– प्राचीन भारत में न्यायालय को सभा कहा जाता था। इसे धर्मस्थान, धर्मासन, सदस, कहा जाता था।[4] नारद स्मृति एवं याज्ञवलक्य में विवादों के निपटारे के लिए चार प्रकार के न्यायालयों की व्यवस्था थी। (1) सभा (2) पूजा (3) श्रेणी (4) कुल[5]।

नृपेणाधिकृता: पूजा श्रेणयोऽय कुलीनच।
पूर्व पूर्व गुरुज्ञेय व्यवहारविधौ नृणाम्।।

नारद ने युग के स्थान पर गण का प्रयोग किया है मनु ने कुलानि का अर्थ सगे सम्बन्धियों का समूह, युग का अर्थ विभिन्न वृत्ति तथा विभिन्न जाति का समूह तथा गुण का अर्थ मठों में रहने वाले ब्राह्मण से लगाया है।[6] इस प्रकार न्यायपालिका के कई विभाग थे। (1) राजा (2) न्यायधीश (3)

* वाणिज्य एवं प्रबंधन विभाग, अटल बिहारी वाजपेयी हिन्दी विश्वविद्यालय, भोपाल (म.प्र.) भारत

गण (4) यूग (5) श्रेणी (6) कुल। राजा मुख्य न्याय करने वाला था। बृहस्पति स्मृति के अनुसार 'साहस' नामक मुकदमों के अतिरिक्त सभी प्रकार के मामलों का फैसला कुल श्रेणी और गण करते थे। किन्तु अंतिम निर्णय राजा का होता था। मनु ने शासन व्यवस्था को ग्राम स्तर पर बॉटा था और स्तर पर एक अधिकारी होता था जो उस क्षेत्र में न्याय व्यवस्था को संचालित करता था। एक ग्राम के अधिकारी ग्रामिक, दश का दशी, कोस का विशी कहलाता था। यदि छोटा अधिकारी निर्णय लेने में असमर्थ होता था तो उससे बड़ा अधिकारी उसके सम्बन्ध में निर्णय लेता था। मनु ने ग्रामिक, दशी, विशती, शती सहस्ताधिपति आदि अधिकारियों का वर्णन मिलता है ये सब राजा द्वारा निर्वाचित होते थे। इन अधिकारियों को अपने अपने स्तर पर शान्ति व्यवस्था रखनी पड़ती थी जब ये असमर्थ होते थे तो मुकदमा नृप तथा सभा द्वारा निपटाया जाता था। इनके निर्णयो को राजकीय मान्यता प्राप्त होती थी।

न्यायपालिका के अधिकारी– प्राचीन भारतीय न्याय व्यवस्था में कुछ जाति तथा विशिष्ट व्यक्तियों द्वारा ही न्याय कार्य किया जाता था। कुछ जातियों एवं व्यक्तियों को न्यायकार्य के लिए अयोग्य माना था तथा ब्राह्मण व्यक्ति कर्म से भले उचित न हो परन्तु वह न्याय करने के अधिकारी होते थे।

जातिमात्रोपजीवी ता कामं स्याद् ब्राह्मण ब्रुव:।
धर्मप्रवक्ता नृपतेन तु शूद्र: कर्थेच न।।[7]

मनु ने कहा है कि शूद्रों तथा नास्तिको से मुक्त राज्य अकाल तथा व्याधियों से ग्रस्त होकर शीघ्र नष्ट हो जाता है।[8]

स्मृतियों में न्यायपालिका के अधिकारियों के सम्बन्ध में एक स्पष्ट श्रृंखला नहीं प्रस्तुत की गई है लेकिन अधिकारियों के विषय में वर्णन मिलता है। न्याय व्यवस्था का मुख्य अधिकारी राजा था। राजा के बाद प्राडविकक नामक अधिकारी का क्रम आता है राजा की अनुपस्थिति में विद्वान, ब्राह्मण न्याय करता था। न्याय करने के लिए तीन सदस्यों की एक सभा का निर्माण किया गया था। मनु के अनुसार राजा की अनुपस्थिति में वेदज्ञ ब्राह्मण तथा सभा के तीनों विद्वान सदस्य साथ ही बैठकर विवादों को देखते थे तथा समझते हुये निर्णय करते थे।

सोडस्य कार्याणि संपश्येत सभ्यैरेव त्रिभिर्वृत:।
सभामेव प्रविश्याग्रयामासीन: स्थित एव वा।।[9]

न्यायाधीश के गुण– बृहस्पति स्मृति के मत अनुसार न्यायाधीश का व्यवहार एवं वाणी में प्रेम होना चाहिए।[10] आपस्तम्ब धर्मसूत्र के मत से न्यायाधीश को विद्या, कुलीन वंशोत्पत्ति, वृद्धावस्था, चातुरता तथा धर्म के प्रति सावधान रहना चाहिए।[11] नारद के अनुसार न्यायाधीश को तर्क, वेद तथा स्मृति में निपुर्ण होना चाहिए। मनु ने न्यायाधीश के लिए धर्म–प्रवक्ता शब्द का प्रयोग किया है अर्थात वह धर्म का ज्ञाता होना चाहिए।[12] याज्ञवलक्य के अनुसार राजा को विवादों को निपटाने के लिए सभी धर्मो को जानने वाला ब्राह्मण नियुक्त करना चाहिए जो सभा सदो के साथ रहे।[13]

सभ्यै सह नियोक्तव्यों ब्राह्मण: सर्वधर्मवित्

न्यायाधीश के सहयोग के लिए जो सभा सद नियुक्त किये जाते है वे तीनों वेदों में पारंगत होने चाहिए। इन सभी को सभा में सदा सत्य बोलना चाहिए। याज्ञवलक्य के अनुसार राजा को वेदों में पारंगत, धर्मशास्त्र के ज्ञाता, सत्यवादी, तथा शत्रु और मित्र को सम्यक भाव से देखने वाले, रागद्धेष रहित गुणों से युक्त पुरुष को सभा का सदस्य मनोनीत करना चाहिए।[14]

श्रुताध्यनसम्पन्ना धर्मज्ञा: सत्यवादिन:
राज्ञा सभासद: कार्यारिपौ मित्रे च ये सभा:।।

न्यायाधीश तथा सभा सदो को लोक व्यवहारों वेदों तथा धर्म–शास्त्रों में निपुण होना चाहिए। नारद के अनुसार न्यायाधीश एवं सभा के सदस्य संस्कृति तथा आचार को मानने वाले ईश्वर को मानने वाले धर्म ग्रंथों के ज्ञाता क्रोध–लोभ–घमण्ड एवं दरिद्रता से मुक्त होने चाहिए।[15] स्मृतिचन्द्रिका में कहा गया है कि यदि राजा न्याय के मार्ग से विचलित हो रहा है तो न्यायाधीश एवं सभा के सदस्यों का कर्तव्य है कि उसे उचित राह बताये।[16] इस सभी प्रकारो के गुण से मुक्त व्यक्ति ही न्यायाधीश एवं सभा के सदस्य बनने के लायक हुआ करते थे।

न्यायाधीश के अधिकार और कर्तव्य– न्याय करने वालो में महत्वपूर्ण स्थान राजा का होता है उसका निर्णय अंतिम होता है अत: मनु के अनुसार राजा का कर्तव्य है कि धर्म के आसन पर बैठकर सभा के कार्य और विवादों का निर्णय करे।[17] याज्ञवलक्य में राजा का यह कर्तव्य बताया गया है प्रतिदिन व्यवहार कार्य को करे याज्ञवलक्य के अनुसार राजा को लोभ तथा क्रोध को त्याग कर मुकदमों का निर्णय धर्मशास्त्रों के अनुसार करना चाहिए।[18]

व्यवहारान्नृप: पश्येद्विद्धद्भिर्ब्राह्माणै: सह।
धर्मशास्त्रानुसारेण क्रोधलोभतिवर्जित:

गौतम मुनि का कथन है कि किसी विवाद के निर्णय में न्यायाधीश तथा सभासदों में मतभेद हो जाए तो राजा का कर्तव्य है कि वेदज्ञ तथा धर्मशास्त्रों में पारंगत विद्धान ब्राह्मणों की राय लेकर विवाद का फैसला दे।[19] बृहस्पति तथा विष्णुधर्मसूत्र के मत से राजा को अधिकार है कि कोई सभासद उचित न्याय नहीं करता है तथा घूस लेता है तो उसे राज्य से निष्कासित कर दे।[20] नारद तथा याज्ञवलक्य के अनुसार राजा का कर्तव्य है कि सभा के जो सदस्य प्रेम के कारण, धन के लोभ के कारण या किसी भय के कारण धर्म के विरुद्ध अपना निर्णय व्यक्त कर दे तो पराजित व्यक्ति पर जितना दण्ड लगा हो उसका दुगुना उस पर लगा कर वसूल करना चाहिए।[21] इस प्रकार प्राचीन भारतीय ग्रन्थों में यह बताया गया है कि अगर न्याय करने वाले अपने कर्तव्यों का पालन नहीं करते तो वे भी दण्ड के भागी होते थे।

वर्तमान भारतीय न्याय व्यवस्था के लिए प्राचीन भारतीय न्याय व्यवस्था की प्रासंगिता इस बात से सिद्ध होती है कि प्राचीन भारतीय न्याय व्यवस्था धर्म, समाज, भारतीय संस्कृति यहॉ की सामाजिक आवश्यकता एवं प्रकृति के अनुसार थी। जो आज भी पुरातन है तथा जिसमें बहुत ज्यादा परिवर्तन नहीं हुआ है जबकि वर्तमान न्याय व्यवस्था अंग्रेजों की देन है जो भारतीय समाज एवं संस्कृति से मेल न खाने की वजह से सही न्याय नहीं कर पा रही है। जिसके चलते पीड़ित को न्याय समय पर एवं पर्याप्त रुप में प्राप्त नहीं हो रहा है। परिणामस्वरुप भारतीय समाज में अराजकता, लोभ, भष्ट्राचार आदि कई प्रकार की बुराई बढ़ती जा रही है। इस सब पर विजय प्राप्त करने के लिए हमें वर्तमान भारतीय न्याय व्यवस्था को भारतीय ग्रन्थों में बताई गई न्याय व्यवस्था की तरफ मोडना पडेगा। क्योंकि प्राचीन न्याय व्यवस्था वर्तमान में उतनी ही प्रासंगिक एवं वैज्ञानिक है जो प्राचीन भारत के लिए हुआ करती थी।

निष्कर्ष– इसे शोध पत्र के निष्कर्ष में कहा जा सकता है कि प्राचीन भारतीय न्याय व्यवस्था जिसका केन्द्र राजा होता था परन्तु वह अकेला निर्णय नहीं ले सकता था, वही पद्धति आज भी अपनाना चाहिए। प्राचीन भारत में न्यायालयों के प्रकार जो स्तरो के आधार पर होते थे तथा एक स्तर पर न्याय न मिलने पर अगले स्तर पर सुनवाई के लिए अपील कर सकते थे। यही व्यवस्था वर्तमान भारतीय न्याय व्यवस्था में है पर उतनी मजबूत नहीं जो

होनी चाहिए। न्यायपालिक के अधिकारियों के लिए जो योग्यता गुण, समझ, न्यायप्रियता, सत्य के प्रति निष्ठा, धर्म का ज्ञान पक्षपात रहित सोच प्राचीन न्याय व्यवस्था में बताई गई है वह वर्तमान न्यायाधिशों में होना जरुरी हो गया है। जिस तरह प्राचीन भारतीय न्याय व्यवस्था में न्यायाधिशों द्धारा अपने कर्तव्यों का पालन न करने पर उनके लिए दण्ड की व्यवस्था थी। वही दण्ड व्यवस्था वर्तमान भारतीय न्याय व्यवस्था में न्यायाधिशों के लिए होना जरुरी हो गई है। अत: वर्तमान न्याय व्यवस्था जो अंग्रेजी शासन की देन है उसमें परिवर्तन करना चाहिए तथा हमें पुन: भारतीय प्राचीन न्याय व्यवस्था जो धर्म आधारित थी उस ओर वापस जाना चाहिए क्योंकि वह हमारी संस्कृति एवं सामाजिक व्यवस्था के अनुकूल है जो भारतीय परिवेश के लिए ज्यादा सार्थक सिद्ध हो सकती है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची :-

1. मनु. 7,22
2. मनु, 8.43
3. मनु, 81-3
4. वशिष्ट, 16,2
5. याज्ञ, 2,30
6. व्यवहार प्रकाश, 29
7. मनु, 8, 21
8. मनु, 8, 22
9. मनु, 10
10. ब्रहस्पति नीति, 24
11. आपस्तम्ब, 2.11, 29.5
12. मनु, 8.20
13. याज्ञ, 2.3
14. याज्ञ, 2.2
15. वशिष्ट, 16.3.5
16. स्मृति चन्द्रिका, 15
17. मनु 8.23
18. याज्ञवल 2.1
19. मनु, 8.12-14
20. विष्णु धर्म 5.180
21. नारद 1.67
22. याज्ञवल 2.4

****

उज्जैन जिले में विभिन्न बैंकों द्वारा किसान क्रेडिट कार्ड के निर्गमन की प्रक्रिया

डॉ. एम. एस. मन्सूरी * डॉ. मोईन खान **

प्रस्तावना – वर्तमान में सरकार द्वारा विभिन्न प्रकार की ऋण योजनाएँ कृषकों के लिए लागू है। इन्हीं योजनाओं में से वर्ष 1998-99 के केन्द्रीय बजट में एक ऐसी ही योजना का शुभारम्भ किया गया जिसे '**किसान क्रेडिट कार्ड**' योजना कहा जाता है। इसके अन्तर्गत किसानों की भूमि के क्षेत्रफल के आधार पर उन्हें बैंकों द्वारा एक क्रेडिट कार्ड बनाकर दिया जाता है। जिसके द्वारा समय-समय पर उनकी आर्थिक आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए आवश्यक वित्त उपलब्ध करायी जाती है एवं इसका भुगतान कृषकों को निर्धारित समयावधि के भीतर किस्तों में करना होता है।

प्रत्येक किसान की ऋण सीमा का निर्धारण उसके द्वारा धारित भूमि के क्षेत्रफल के आधार पर किया जाता है। इसके अन्तर्गत केवल प्रारम्भ में कार्ड प्राप्त करते समय आवश्यक औपचारिकताओं की पूर्ति करनी पड़ती है। इस योजना के अन्तर्गत ऋण पर ब्याज की दर, बैंकों द्वारा कृषि के लिए दिए जाने वाले ऋणों की ब्याज दर के बराबर होती है। इस योजना का मॉडल राष्ट्रीय कृषि एवं ग्रामीण विकास बैंक (NABARD) द्वारा वर्ष 1998-99 में तैयार किया गया था।

किसान क्रेडिट कार्ड योजना के अन्तर्गत बैंकों द्वारा दिये गये ऋणों का सामान्य बीमा निगम की राष्ट्रीय कृषि बीमा योजना के द्वारा बीमा किया जाता है। किसान साख पत्र धारकों को दुर्घटना से मृत्यु होने की स्थिति में 50,000 रू., स्थायी अशक्तता की स्थिति में 25,000 रू. का व्यक्तिगत दुर्घटना बीमा का कवर प्रदान किया जाता है।

उज्जैन जिले में जिला सहकारी केन्द्रीय बैंक, व्यापारिक बैंक तथा क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक तीनों प्रकार की बैंक अपनी सेवाएँ दे रही है। जिला सहकारी केन्द्रीय बैंक, क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक, व्यापारिक बैंकों में जो कृषक किसान क्रेडिट कार्ड की सुविधा प्राप्त करना चाहते हैं उन्हें एक निर्धारित प्रपत्र में जिला सहकारी केन्द्रीय बैंक, क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक या व्यापारिक बैंक को इस हेतु आवेदन करना होता है। इस आवेदन-पत्र के साथ कृषक को निम्नलिखित दस्तावेज बैंक में प्रस्तुत करना होते हैं –

1. जमीन का नक्शा।
2. जमीन की जमाबन्दी (खसरा एवं खतौनी)।
3. जमीन की गिरदावरी।
4. स्वयं की फोटो।
5. स्थान प्रमाणीकरण।
6. पहचान-पत्र।
7. जमानतदार कृषक का भू-स्वामित्व दस्तावेज।
8. अन्य बैंकों का अदेय प्रमाण-पत्र।
9. बैंक के अभिभाषक से सम्बन्धित सर्च रिपोर्ट।

आवेदन पत्र की जाँच तथा समस्त औपचारिकताओं का पालन होने के बाद बैंक कर्मचारी, अधिकारी कृषक की जमीन का मौका-मुआयना करते हैं। सभी तरह की जाँच करने के बाद पूर्णत: आश्वस्त होने के बाद बैंक प्रबन्धक सम्बन्धित कृषक को किसान क्रेडिट कार्ड जारी करने का निर्णय लेता है तथा किसान क्रेडिट कार्ड कृषक को जारी कर दिया जाता है। भारत में किसान क्रेडिट कार्ड को निर्गमित करने का प्रारम्भिक उत्तरदायित्व लगभग 27 व्यापारिक बैंकों (भारतीय स्टेट बैंक समूह तथा अन्य सार्वजनिक क्षेत्र के बैंक) को सौंपा गया है। इसी प्रकार लगभग 95 क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों तथा लगभग 183 सहकारी बैंकों द्वारा भी किसान क्रेडिट कार्ड निर्गमित किए जा रहे हैं।

किसान क्रेडिट कार्ड सामान्यत: तीन वर्ष की अवधि के लिए निर्गमित किया जाता है। लेकिन इसका प्रत्येक वर्ष नवीनीकरण कराना पड़ता है। इस किसान क्रेडिट कार्ड के द्वारा प्राप्त साख को एक वर्ष अर्थात् 12 माह की अवधि में वापस चुकाना पड़ता है। किसान क्रेडिट कार्ड के द्वारा दी जाने वाली रकम पर बैंक निर्धारित दर से ब्याज वसूल करता है। ब्याज उतनी राशि तथा उस अवधि के लिए वसूल किया जाता है जिसका वास्तव में उपयोग किया गया हो। वर्तमान में किसान क्रेडिट कार्ड के जरिए दिये गये 50,000 रूपये तक की ऋण राशि पर 9 प्रतिशत वार्षिक दर से ब्याज वसूल किया जाता है। इससे अधिक राशि के ऋणों पर आधार उधार दर (Prime Lending Rate = PLR) के बराबर या उससे 1 प्रतिशत अधिक की दर से ब्याज वसूल किया जाता है। इन ऋणों पर सुरक्षा, मार्जिन एवं ब्याज दर रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया के मापदण्डों के अनुसार लागू होती है।

निष्कर्ष –किसान क्रेडिट कार्ड योजना से किसानों के लिए अल्पकालीन वित्त प्राप्त करना आसान हो गया है। इस योजना का उद्देश्य किसानों को बैंकिंग प्रणाली के द्वारा उपयोगी एवं समय पर वित्तीय सहायता प्रदान करना है। इसके अन्तर्गत किसान कृषि उपकरण के खरीदने एवं अपनी कृषि सम्बन्धी सभी आवश्यकताओं के लिए वित्त प्राप्त करते हैं। इस योजना के अन्तर्गत किसानों को भूमि के क्षेत्रफल के आधार पर उन्हें क्रेडिट कार्ड बनाकर दिया जाता है। जिसके द्वारा उन्हें समय-समय पर उनकी आर्थिक आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए आवश्यक वित्त उपलब्ध हो जाता है एवं इसका भुगतान उन्हें निर्धारित समयावधि के भीतर करना होता है। जिससे किसान कृषि आदानों के क्रय सहित अपनी खेती सम्बन्धी आवश्यकताओं के लिए साख उचित समय पर प्राप्त करते हैं। यह साख लोचदार होती है तथा इस साख को प्राप्त करने की लागत भी कम आती है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची :-

1. डॉ. एम.एस. मन्सूरी – अप्रकाशित शोध प्रबन्ध।
2. वार्षिक प्रतिवेदन – जिला सहकारी केन्द्रीय बैंक, कार्यालय, उज्जैन।
3. पी.सी. जैन – भारत में कृषि विकास 1992
4. सुबह सिंह यादव – कृषि अर्थव्यवस्था, रावत पब्लिकेश जयपुर।

* अतिथि विद्वान (वाणिज्य) शासकीय कन्या स्नातकोत्तर महाविद्यालय, उज्जैन (म.प्र.) भारत
** अतिथि विद्वान (वाणिज्य) यश महाविद्यालय, बदनावर (म.प्र.) भारत

अधिकार प्राप्ति का ब्रह्मास्त्र-सूचना का अधिकार अधिनियम-2005

डॉ. केशव मणि शर्मा *

शोध सारांश - डॉ. केशव मणि शर्मा, प्राध्यापक वाणिज्य को राष्ट्रीय सेवा योजना के विश्वविद्यालय स्तरीय चिन्तन शिविर भाबरा दिनांक 20 से 24 अक्टूबर 1997 के आयोजन पर व्यय राशि रूपये 5,641/- डॉ. महेन्द्र नागर पूर्व राज्य सम्पर्क अधिकारी, रासेयो द्वारा गबन की गई थी। 16 वर्ष बाद दिनांक 10 फरवरी, 2014 को सूचना के अधिकार अधिनियम के माध्यम से खुलासा होने पर डॉ. केशव मणि शर्मा के खाते में जमा कर दी गई।

इसी प्रकार बिहार के डूमराव गाँव निवासी धीरेन्द्र कुमार को न्यायिक परीक्षा 2007 में 451 अंक प्राप्त करने के बावजूद भी बिहार लोक सेवा आयोग ने अनुत्तीर्ण घोषित कर दिया गया जबकि सूचना का अधिकार अधिनियम के माध्यम से ज्ञात हुआ कि उससे 100 अंक कम प्राप्त करने वालों का चयन कर दिया गया। धीरेन्द्र कुमार सूचना का अधिकार अधिनियम के कारण आज जज हैं। बुराड़ी इलाके में हूबर अपार्टमेण्ट दिल्ली के बिल्डर श्री पी.के. गुप्ता द्वारा भ्रष्टाचार के दम पर नगर निगम, पुलिस तथा बैंक के साथ मिलकर कई मंजिला इमारत लालडोरा की जमीन पर अवैध रूप से बना डाली परन्तु आर.टी.आई. के माध्यम से श्री राजेश ने 2005 में इसका भण्डाफोड़ कर कई लोगों को इस धोखाधड़ी से तो बचाया ही साथ ही धमकी के बावजूद भी बिल्डर को सजा दिलवाई।

आर.टी.आई. कार्यकर्ता सुभाषचंद्र अग्रवाल की सूचना के आधार पर ही दिल्ली के पांश लुटियंस में 17 पूर्व मंत्रियों के अवैध कब्जे से 36 में से 19 बंगलों को मुक्त करवा कर जनता के पैसे का दुरूपयोग रोका। आर.टी.आई. से जहाँ एक ओर जजों की सम्पत्ति सार्वजनिक करने का निर्णय हुआ वहीं दूसरी ओर मुरैना के जिला न्यायालय के लोक सूचना अधिकारी श्री एस.आर. अनगरे पर 10 अप्रेल 2008 को सुनाए गये फैसले में रू. 25,000/- का जुर्माना लगाया। नीमच के डॉ. लक्ष्मीनारायण शर्मा ने सूचना का अधिकार अधिनियम के माध्यम से न केवल अपनी सर्विस बुक में लाल स्याही से अंकित टिप्पणी को विलोपित करवाया बल्कि ऐसा करने वाले प्राचार्य को भी दण्ड दिलवाया।

राजस्थान के राजसमुन्द जिले में विजयपुरा में 800 ऐसे फर्जी हस्ताक्षरों को पहचाना गया जिनके द्वारा रू. 70 लाख की सरकारी जमीन को कोड़ियों के भाव नीलाम किया गया।

उत्तरप्रदेश के बहराईच जिले के केशव गाँव में एक भी इन्दिरा आवास 2005 के पूर्व स्वीकृत नहीं था। आर.टी.आई. में सूचना मांगने पर प्रशासन सक्रिय हुआ एवं 32 आवास बने। शेष पात्रों की सूची भी दीवार पर लगी।

प्रस्तावना - पूर्व प्रधानमंत्री राजीव गाँधी के अनुसार, सरकार एक रूपये की मदद भेजती है लेकिन उस आदमी तक केवल 19 पैसे ही पहुँच पाते हैं, जिसकी मदद के लिये राशि भेजी गई। 'आखिर 81 पैसे कहाँ गायब हो जाते हैं लोकतांत्रिक सरकार में 81 पैसे गायब होने की कहानी जानना आम आदमी का हक है क्योंकि यह राशि उसके लिये भेजी गई थी ? आम आदमी को यह जानने के लिये भारत सरकार ने 12 अक्टूम्बर 2005 को सूचना का अधिकार अधिनियम लागू किया जो जम्मू कश्मीर को छोड़कर शेष समस्त भारत में लागू होता है। यद्यपि राजस्थान में यह 26 जनवरी 2001 से ही लागू है। इसके लागू होने से अनेक लोगों ने अपने अधिकारों को प्राप्त करने के लिये इसका उपयोग किया। सरकारी कार्यालयों के लोक सूचना अधिकारियों को 30 दिन में आम नागरिक की प्रार्थना पर वांच्छित दस्तावेजों की प्रतिलिपियां उपलब्ध करवाने का दायित्व सौंपा गया एवं उल्लंघन करने पर रू. 250/- प्रतिदिन एवं रू. 25,000/- अधिकतम जुर्मने का प्रावधान भी किया गया। यद्यपि इस अधिनियम से नौकरशाही में हड़कम्प तो मचा ही पारदर्शिता के भय से भ्रष्टाचार पर भी अंकुश लगा है। खासकर सरकारी नौकरियों में भर्ती, पदोन्नति, भाई-भतीजावाद, पक्षपात आदि पर।

शोध प्रविधि एवं उद्देश्य - उक्त शोध-पत्र मुख्यत: केस स्टडी पर आधारित है जिसके माध्यम से शोधकर्ता को सन् 1997 में प्राप्त होने वाली उसके अधिकार की शासकीय राशि देवी अहिल्या विश्वविद्यालय के राष्ट्रीय सेवा योजना प्रकोष्ठ द्वारा रूपये 5,641/- दिनांक 10 फरवरी 2014 को 16 वर्ष बाद प्राप्त हुई। इस प्रकार शोधकर्ता डॉ. केशव मणि शर्मा के साथ ही बिहार के धीरेन्द्रकुमार, दिल्ली के राजेश, मुरैना के वकील लज्जाराम पाण्डेय सहित अनेक आमजन के अधिकार प्राप्ति की केस स्टडी पर आधारित उक्त शोध लालफीताशाही एवं नौकरशाही से पीड़ित आमजन को जागरूक करने के उद्देश्य पर आधारित है।

शोध का क्षेत्र - भारत इस अधिनियम को लागू करने वाला विश्व में 61वाँ देश है अर्थात 60 देशों में यह अधिनियम पूर्व से ही लागू है। शोध का क्षेत्र केस स्टडी के माध्यम तक ही सीमित रहा है अर्थात शोधकर्ता ने जो स्वयं देखा है महसूस किया है उन्हीं घटनाओं पर उक्त शोध आलेख केन्द्रित है। साथ ही अधिकारियों की लापरवाही के कारण इस अधिनियम के माध्यम से जागरूकता लाना भी शोधकर्ता की भूमिका संबंधी सीमित क्षेत्र रहा है। शोधपत्र में अधिकांश प्राथमिक समंकों का उपयोग किया गया है फिर भी

* प्राध्यापक (वाणिज्य) बी. एस. एन. शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, शाजापुर (म.प्र.) भारत

आवश्यकतानुसार द्वितीयक समंकों को भी यथा स्थान शामिल किया जाकर शोधपत्र को जनोपयोग बनाने का प्रयास किया है।

शोधपत्र - 'जिस चीज को पर्दे में रखा जाता है उसे देखने की ललक प्रत्येक मन में ज्यादा रहती है।' गोपनीयता अविश्वास की जड़ है जबकि पारदर्शिता विश्वास का आधार माना जाता है। भ्रष्टाचार एवं गोपनीयता एक सिक्के के दो पहलू हैं। जहाँ गोपनीयता रहेगी वहाँ भ्रष्टाचार पनपने की संभावना अधिक रहेगी और जहाँ पारदर्शिता रहेगी वहाँ भ्रष्टाचार पर स्वत: रोक लगेगी। लोकसभा के पूर्व अध्यक्ष श्री सोमनाथ चटर्जी ने भी कहा था 'प्रजातन्त्र में जनता सर्वोपरि है। जनता के दायरे से हमें किसी को अलग नहीं रखना चाहिये।' डॉ. ज्ञान प्रकाश पिलानिया ने भी इस संबंध में कहा है कि 'सूचना का अधिकार भ्रष्टाचार से लड़ने के लिये जनता का ब्रह्मास्त्र है।'

मैं उच्च शिक्षा विभाग में प्राध्यापक हूँ। देवी अहिल्या विश्वविद्यालय इन्दौर के राष्ट्रीय सेवा योजना प्रकोष्ठ के तत्कालीन कार्यक्रम समन्वयक डॉ. महेन्द्र नागर द्वारा मुझे विश्वविद्यालय स्तरीय 5 दिवसीय चिन्तन शिविर के आवास एवं भोजन की व्यवस्था संबंधी दायित्व सौंपा गया। इन्दौर, खण्डवा, खरगौन, बड़वानी, धार, झाबुआ, बुरहानपुर, अलीराजपुर सभी जिलों से आये लगभग 150 छात्र-छात्राओं के आवास एवं भोजन की उत्तम व्यवस्था मेरे द्वारा पूर्ण ईमानदारी, निष्ठा एवं उत्साह से की गई।

आजादी के स्वर्ण जयंती वर्ष पर शहीदे आजम चन्द्रशेखर आजाद की पवित्र जन्म स्थली भाभरा में 20 से 24 अक्टूबर 1997 तक आयोजित इस विश्वविद्यालयीन चिन्तन शिविर में विद्यार्थियों को आशीर्वाद देने हेतु देवी अहिल्या विश्वविद्यालय के कुलसचिव श्री सुरेश गोडल, कुलपति डॉ. भरत छपरवाल, राष्ट्रीय युवा योजना दिल्ली के निदेशक डॉ. एस.एन. सुब्बाराव, कलेक्टर श्री मनोज श्रीवास्तव, प्रदेश सरकार के पाँच केबिनेट मिनिस्टर, केन्द्र सरकार के 2 केबिनेट मिनिस्टर, मुख्यमंत्री श्री दिग्विजयसिंह, राज्यपाल मा. मोहम्मद सफी कुरैशी साहब के अतिरिक्त 500 स्वतन्त्रता संग्राम सैनानियों सहित उपराष्ट्रपति श्री कृष्ण कान्त जी जैसे वी.वी.आई.पी. पधारे।

मेरे द्वारा उक्त आयोजन का व्यय लेखा मात्र रू. 12,741/- विश्वविद्यालय को भेजा गया। विश्वविद्यालय द्वारा मुझे राहत राशि रू. 7100/- भुगतान कर दी गई शेष राशि रू. 5,641/- प्राप्ति हेतु मेरे द्वारा 15 वर्षों में लगभग 21 पत्र सम्बन्धित अधिकारियों को लिखे गये। भारत सरकार के पत्र क्रमांक/पी 6/रासेयो/क्षेके/म.प्र./2006-07/782 दिनांक 31 अक्टूम्बर 2006 तथा क्रमांक पी 21/रासेयो/ क्षेके/मप्र/2012/1197 दिनांक 31 दिसम्बर 2012 तथा मध्यप्रदेश शासन उच्च शिक्षा विभाग मंत्रालय के पत्र क्रमांक 292/81/2013/38-3 भोपाल दिनांक 15.02.2013 द्वारा कुल सचिव तथा कार्यक्रम समन्वयक सेवा योजना को भुगतान हेतु निर्देशित किये जाने के बाद भी आवेदक भुगतान का इन्तजार करता रहा किन्तु भुगतान नहीं मिला।

अन्तत: आवेदक द्वारा सूचना के अधिकार अधिनियम में आवेदन दिया तो कार्यक्रम समन्वयक डॉ. प्रकाश गढ़वाल के पत्र क्रमांक रासेयो/ 2013-14/203/Speed Post दिनांक 4 Feb 2014 के द्वारा आवेदक को सूचित किया कि 'जानकारी बहुत अधिक पृष्ठों की है। अत: आप दिनांक 18.02.2014 को कार्यालयीन समय पर शासन के नियमानुसार अवलोकन करने का कष्ट करें।' अपील के माध्यम से दस्तावेज प्राप्त हुए तो ज्ञात हुआ कि, आवेदक जिन रू. 5,641/- प्राप्ति हेतु 15 वर्षो से संघर्ष कर रहा है उसका भुगतान तो 15 वर्ष पूर्व ही डॉ. महेन्द्र नागर स्वयं प्राप्त कर चुके हैं। डॉ. महेन्द्र नागर द्वारा गबन की गई उक्त राशि रू. 5,641/- अन्तत: वसूल कर आवेदक को 16 वर्षो बाद दिनांक 10 फरवरी, 2014 को आवेदक के खाते में जमा कर दिया गया। इस प्रकार आवेदक जिस अधिकार को प्राप्त करने हेतु 15 वर्षों से संघर्षरत था फिर भी लालफीताशाही के कारण सफल नहीं हो पाया उसे सूचना अधिकार अधिनियम के माध्यम से 1 वर्ष में ही प्राप्त कर लिया।

समस्याएँ - इस प्रकार सूचना का अधिकार अधिनियम 2005 नागरिकों के लिये अधिकार प्राप्ति का ब्रह्मास्त्र तो साबित हो ही रहा है। बावजूद इसके आजकल अनेक ऐसे अधिकारी जो सही कार्य पारदर्शिता से नहीं कर रहे हैं वे सूचना के अधिकार अधिनियम के अंतर्गत दस्तावेज देने में किसी न किसी तरह की बाधाएँ पैदा करते रहते हैं, जिनके कुछ प्रमाण निम्नानुसार है -

1. कार्यालय जिला सत्र न्यायाधीश अलीराजपुर म.प्र. के पत्र क्रमांक क्यू लेखा/2013 अलीराजपुर दिनांक 12.06.12 में आवेदक मनीष वाणी को दस्तावेजों की नकल प्राप्ति हेतु सूचित किया गया कि, 'आप दस्तावेजों की नकल प्राप्ति हेतु राशि रू. 14,684/- के गैर न्यायिक स्टाम्प 7 दिन में इस कार्यालय में प्रस्तुत करें।' शायद न्यायाधीश महोदय को 'सूचना का अधिकार (फीस एवं लागत का विनिमय) नियम-2005 की धारा 4 का ज्ञान नहीं है।'
2. प्राचार्य, शासकीय स्वामी विवेकानन्द महाविद्यालय सारंगपुर के पत्र क्रमांक 914/12 रजिस्टर्ड सारंगपुर दिनांक 12/4/12 में आवेदक डॉ. केशवमणि शर्मा को सूचित किया गया कि, 'रू. 88/- संस्था को स्वयं उपस्थित होकर 7 दिवस में जमा कर रसीद प्राप्त करें। साथ ही यथोचित प्रारूप प्रपत्र संलग्न करें।' आवेदक द्वारा रू. 88/- प्राचार्य के खाते में जमा करने के बावजूद भी जानकारी नहीं दी एवं पत्र क्रमांक 957/12 रजिस्टर्ड सारंगपुर दिनांक 25.04.12 द्वारा आवेदन निरस्त कर दिया गया। शायद उच्च शिक्षा प्राप्त इस प्रथम श्रेणी अधिकारी को सूचना के अधिकार अधिनियम 2005 की धारा-7 एवं 20 का ज्ञान ही नहीं है।
3. प्राचार्य, शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, राजगढ़ ब्यावरा डॉ. आर.के. जाटवा के पत्र क्रमांक 1856/स्था/14 राजगढ़ दिनांक 01.11.2014 द्वारा आवेदक केशवमणि शर्मा को सूचित किया गया कि, 'निर्धारित प्रपत्र में आवेदन प्रस्तुत नहीं किया गया। निर्धारित प्रपत्र में आवेदन होने पर उस पर विचार कर वांछित जानकारी आपको प्रदान की जायेगी।' शायद मोटी तनख्वाह रू. सवा लाख प्रतिमाह से अधिक प्राप्त करने वाले इस प्रथम श्रेणी अधिकारी को मधु भादुड़ी बनाम दिल्ली विकास प्राधिकरण के मामले में 16 जनवरी, 2006 को दिये गये फैसले का ज्ञान ही नहीं है, जिसमें स्पष्ट कहा गया है कि आवेदन सादे कागज पर दिया जा सकता है। इस बात का उल्लेख अधिनियम में भी स्पष्ट रूप से किया गया है।
4. प्राचार्य पं. बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, ए.बी. रोड़, शाजापुर के मुख्य प्रवेश द्वार के बाहर आमजन की सुविधा के लिये एक बोर्ड प्रदर्शित किया गया है जिसमें सूचना का अधिकार अधिनियम 2005 के अंतर्गत सूचना प्राप्ति संबंधी विवरण निम्नानुसार दर्ज है -

'लोक सूचना अधिकारी-डॉ. एन.के. सोनी, सहायक लोक सूचना अधिकारी डॉ. आर.के. जैन इस कार्यालय से सूचना प्राप्त करने के लिये मुख्य लिपिक श्री बी.के. वर्मा एवं उनकी अनुपस्थिति में श्री किशोर पाटीदार, सहायक ग्रेड-3 को लिखित आवेदन अपरान्ह 2 बजे से 3 बजे के मध्य प्रस्तुत कर रसीद प्राप्त करें।'

यहाँ उल्लेखनीय है कि अधिनियम की धारा 6 में सूचना प्रदाय हेतु लोकसूचना एवं सहायक लोक सूचना अधिकारी की व्यवस्था का तो उल्लेख है परन्तु मुख्य लिपिक एवं उनकी अनुपस्थिति में सहायक ग्रेड-3 को आवेदन लेने का प्रावधान अधिनियम में नहीं किये गये हैं।

समय का स्वेच्छा से निर्धारण। उक्त प्रदर्शित बोर्ड में लोकसूचना अधिकारी एवं प्राचार्य द्वारा 2 बजे 3 बजे के मध्य सूचना का अधिकार अधिनियम में आवेदन प्राप्ति हेतु केवल एक घण्टा स्वेच्छा से समय निर्धारित किया गया है जबकि अधिनियम में न तो इस प्रकार के अधिकार लोक सूचना अधिकारी को दिये गये हैं और न ही केवल एक घण्टे का उल्लेख किया गया है। कार्यालयीन समय में कभी भी आवेदन स्वयं द्वारा, डाक द्वारा या अन्य किसी व्यक्ति के द्वारा भी दिया जा सकता है।

सूचना का अधिकार अधिनियम के प्रति संवेदनशीलता की कमी इससे भी परिलक्षित होती है कि लोक सूचना अधिकारी डॉ. एन.के. सोनी लगभग 5 माह पूर्व 31 अक्टूबर 2014 को सेवानिवृत्ता हो चुके हैं जबकि श्री किशोर पाटीदार लगभग 2 वर्ष से उच्च शिक्षा विभाग की सेवा में ही नहीं हैं।

इसके अतिरिक्त अनेक अधिकारियों को तो यह भी पता नहीं है कि उनके कार्यालय में कौन लोग सूचना अधिकारी हैं तथा कौन प्रथम एवं द्वितीय अपीलीय अधिकारी हैं ?

एक ओर लोक सूचना अधिकारी 9 वर्ष के अनुभव से यह महसूस करने लगा वह दस्तावेज आर.टी.आई. आवेदक को उपलब्ध नहीं करवायेगा तो आवेदक चुप हो जायेगा और यदि प्रथम अपील भी करेगा तो वहाँ से भी जानकारी मिलने में कोई मदद इसलिये नहीं मिल पायेगी कि वह विभागीय अधिकारी ही है। द्वितीय अपील के लिये आवेदक जायेगा तो वर्ष भर तक उसका नम्बर ही नहीं आयेगा तब तक जानकारी के उपयोग का महत्व कम हो जायेगा और फिर राज्य आयोग भी उसे 15 दिवस में जानकारी उपलब्ध करवाने हेतु निर्देश देगा कोई जुर्माना तो करेगा नहीं। साथ ही आवेदक को स्वयं के खर्चे से भोपाल जाना होगा जबकि लोक सूचना अधिकारी के विभाग द्वारा T.A./D.A. दिया जावेगा। क्रियान्वयन की इस जटिल प्रक्रिया एवं सरकार की इस अधिनियम के प्रति संवेदनाएँ कम होने से अधिनियम का उद्देश्य ही शिथिल होता जा रहा है।

राज्य सूचना आयोग के 31 दिसम्बर 2013 तक के आँकड़ों से ज्ञात होता है कि आयोग में 50 प्रतिशत से भी अधिक अपील लम्बित है। 2005 में अधिनियम के लागू होने से 31 दिसम्बर 2013 तक कुल 30,057 अपील/शिकायतें आयोग को प्राप्त हुईं, जिनमें से केवल 14,927 का ही समाधान हुआ। उक्त तिथि को 2032 शिकायतें तथा 13,098 अपील इस प्रकार कुल 15,130 प्रकरण लम्बित थे, जिनमें सर्वाधिक 2,177 आदिवासी बहुल जिले बालाघाट के हैं। दूसरा स्थान भोपाल 1,277 तथा तीसरा स्थान सिवनी 1,081 जिले का है।

सन् 2012 में सूचना आयुक्त एवं मुख्य सूचना आयुक्त की सेवानिवृत्ति के पश्चात नियुक्ति नहीं होने के कारण लम्बित प्रकरणों की संख्या में वृद्धि होती रही। श्री अजय दुबे की जनहित याचिका पर माननीय उच्च न्यायालय ने म.प्र. सरकार को 31 जनवरी 2014 के पूर्व उक्त पदों पर नियुक्ति करने संबंधी आदेश दिये। सरकार की इस अधिनियम के प्रति संवेदना इस तथ्य से प्रतिपादित होती है कि उच्च न्यायालय के आदेश के बावजूद भी अभी तक सूचना आयुक्तों की नियुक्तियाँ नहीं हो पाई हैं।

सुझाव - सामाजिक विकास को यदि वास्तव में यदि नई गति देना है तो बढ़ते हुए लम्बित मामलों की संख्या को कम करने हेतु निम्नानुसार सुझाव दिये जाते हैं -

1. प्रथम अपीलीय अधिकारी के अधिकारों में वृद्धि की जावे एवं उन्हें दण्ड देने का अधिकार दिया जावे।
2. सूचना आयुक्तों की संख्या अधिनियम के अनुसार बढ़ाकर 10 की जावे। सूचना आयुक्तों की नियुक्तियाँ की जावे।
3. सूचना आयुक्तों के मुख्यालय की स्थापना प्रत्येक संभाग स्तर पर की जावे।
4. सूचना प्रदान नहीं करने वाले लोक सूचना अधिकारी को अनिवार्यत: दण्डित किया जावे।
5. आवेदक द्वारा आवेदक देकर सूचना नहीं लेने पर दण्ड का प्रावधान किया जावे।
6. प्रक्रिया शुल्क में समानता लाई जावे अथवा प्रथम अपील हेतु रू. 50/- के स्थान पर रू. 20/- तथा द्वितीय अपील हेतु रू. 100/- के स्थान पर रू. 50/- शुल्क निर्धारित किया जावे। वर्तमान में केवल आन्ध्र प्रदेश ही एक ऐसा राज्य है जहाँ शहरी अथवा जिला स्तर हेतु प्रक्रिया शुल्क रू. 10/-, उपजिला स्तर हेतु रू. 5/- तथा ग्रामीण क्षेत्र हेतु किसी भी प्रकार का प्रक्रिया शुल्क नहीं है।
7. अन्य व्यक्ति से आवेदन दिलवाने वाले व्यक्ति के लिये सजा का प्रावधान किया जावे।
8. द्वितीय अपील के प्रकरणों के निराकरण के लिये सेवानिवृत्त व्यक्तियों के स्थान पर युवा एवं कर्मठ व्यक्तियों की नियुक्ति की जावे।
9. आर.टी.आई. को पाठ्यक्रम में शामिल किये जाने संबंधी संशोधन किये जावें।
10. अधिनियम को क्रियान्वित करने वाले अधिकारियों एवं लाभार्थियों को उचित प्रशिक्षण दिया जावे।

निष्कर्ष - इस प्रकार यदि उपरोक्त सुझावों पर अमल किया जावे तो सामाजिक विकास को सूचना के अधिकार अधिनियम के माध्यम से एक नई गति एवं दिशा प्राप्त हो सकेगी। साथ ही जिस प्रकार शाजापुर के डॉ. केशव मणि शर्मा, बिहार के श्री धीरेन्द्र कुमार, दिल्ली के श्री राजेश कुमार, मुरैना के श्री लज्जाराम पाण्डे, नीमच के डॉ. लक्ष्मीनारायण शर्मा द्वारा अपने अधिकारों इस अधिनियम के माध्यम से प्राप्त करने का सफल प्रयास किया उसी तरह अन्य पीड़ित व्यक्ति भी इस अधिनियम की सहायता के माध्यम से अपने अधिकारों को प्राप्त करने का प्रयास कर सकते हैं। यदि कोई शासकीय अधिकारी/कर्मचारी अपने वरिष्ठ अधिकारी की स्वेच्छाचारिता से पीड़ित है तो वह अधिनियम की धारा 4(1)(डी) के अंतर्गत आवेदन प्रस्तुत कर सकता है, जिसका स्पष्टीकरण लोक सूचना अधिकारी द्वारा पीड़ित व्यक्ति को दिया जायेगा।

फोटो दिनांक 10 मार्च 2015

संदर्भ ग्रन्थ सूची :-

1. आयुक्त, उच्च शिक्षा, म.प्र. शासन का पत्र क्र. रासेयो/2008/38/457 भोपाल, दिनांक 15 अक्टुबर 2008
2. भारत सरकार युवा कार्य एवं खेल मंत्रालय क्षैत्रिय केन्द्र भोपाल का पत्र क्रमांक/पी.6/रासेयो/क्षै के/म.प्र./2006-07/782 दिनांक 31.10.06
3. प्राचार्य, शासकीय महाविद्यालय, जोबट का पत्र क्र./रासेयो/08/1104 जोबट दिनांक 06.12.08 दे.अ.विश्वविद्यालय इन्दौर में प्राप्ति दिनांक 08.12.08
4. दे.अ.वि.वि. इन्दौर का पत्र क्रं. 2/97/98/2881 दिनांक 24/12/1997
5. प्राचार्य, शासकीय महाविद्यालय, जोबट का पत्र क्र. रासेयो/लेखा/111/दिनांक 01/01/1998
6. प्राचार्य, शासकीय महाविद्यालय, जोबट का पत्र क्र. रासेयो/लेखा/क्यू-1/98/दिनांक 23.01.98
7. प्राचार्य, शासकीय महाविद्यालय, जोबट का पत्र क्र. रासेयो/लेखा/98/129 दिनांक 27/03/98
8. प्राचार्य, शासकीय महाविद्यालय, जोबट का पत्र क्र. रासेयो/लेखा/98/143 दिनांक 15/07/98
9. दे.अ.वि.वि. इन्दौर का पत्र क्र. रासेयो/लेखा/98-99/03/2127/दिनांक 12/08/98
10. प्राचार्य, शासकीय महाविद्यालय, जोबट का पत्र क्र. रासेयो/लेखा/98/146 दिनांक 11/09/98
11. प्राचार्य, शासकीय महाविद्यालय, जोबट का पत्र क्र. रासेयो/लेखा/98/190 दिनांक 20/05/99
12. प्राचार्य, शासकीय महाविद्यालय, जोबट का पत्र क्र. रासेयो/लेखा/99/196 दिनांक 14/07/98
13. प्राचार्य, शासकीय महाविद्यालय, जोबट का पत्र क्र. रासेयो/लेखा/99/194 दिनांक 14/07/97
14. प्राचार्य, शासकीय महाविद्यालय, जोबट का पत्र क्र. रासेयो/लेखा/2009/241 दिनांक16.05.2000
15. दे.अ.वि.वि. इन्दौर का पत्र क्र. रासेयो/2/99-2000/1863 दिनांक 08/06/2000
16. प्राचार्य, शासकीय महाविद्यालय, जोबट का पत्र क्र. रासेयो/लेखा/2000/241 दिनांक10.07.2000
17. दे.अ.वि.वि. इन्दौर का पत्र क्र. रासेयो/3/2002/1468/दिनांक 06/06/02
18. प्राचार्य, शासकीय महाविद्यालय, जोबट का पत्र क्र. रासेयो/545/दिनांक 30/07/2003
19. प्राचार्य, शासकीय महाविद्यालय, जोबट का पत्र क्र. रासेयो/821/दिनांक 04/11/2003
20. प्राचार्य, शासकीय महाविद्यालय, जोबट का पत्र क्र. रासेयो/402/दिनांक 21/07/2004
21. प्राचार्य, शासकीय महाविद्यालय, जोबट का पत्र क्र. रासेयो/क्यू-3/दिनांक 15/05/2005
22. गालवा, डॉ. हनुमान, आम आदमी और सूचना का अधिकार, पत्रिका प्रकाशन, जयपुर, नवम्बर 2009
23. भारत सरकार के पत्र क्रमांक पी 21/रासेयो/ क्षेके/मप्र/2012/1197 दिनांक 31 दिसम्बर 2012
24. मध्यप्रदेश शासन उच्च शिक्षा विभाग मंत्रालय का पत्र क्रमांक 292/81/2013/38-3 भोपाल दिनांक 15.02.2013
25. कार्यक्रम समन्वयक डॉ. प्रकाश गढ़वाल का पत्र क्रमांक रासेयो/2013-14/203/Speed Post दिनांक 4 Feb 2014
26. कार्यालय जिला सत्र न्यायाधीश अलीराजपुर म.प्र. का पत्र क्रमांक क्यू लेखा/2013 अलीराजपुर दिनांक 12.06.12
27. प्राचार्य, शासकीय स्वामी विवेकानन्द महाविद्यालय सारंगपुर का पत्र क्रमांक 914/12 रजिस्टर्ड सारंगपुर दिनांक 12/4/12
28. प्राचार्य, शासकीय स्वामी विवेकानन्द महाविद्यालय सारंगपुर का पत्र क्रमांक 957/12 रजिस्टर्ड सारंगपुर दिनांक 25.04.12
29. प्राचार्य, शासकीय स्नात्कोत्तर महाविद्यालय, राजगढ़ ब्यावरा डॉ. आर.के. जाटवा का पत्र क्रमांक 1856/स्था/14 राजगढ़ दिनांक 01.11.2014
30. इकोनोमिक टाईम्स दैनिक समाचार पत्र 19 जनवरी 2014
31. शर्मा डॉ. एल.एन. राष्ट्रीय शोध संसार नीमच।
32. प्राचार्य शासकीय पी.जी. महाविद्यालय शाजापुर के मुख्य प्रवेश द्वार के बाहर प्रदर्शित बोर्ड।

****

एक श्रेष्ठ शोध-प्रतिवेदन निर्माण के सामान्य सिद्धान्त

डॉ. राजू रैदास *

प्रस्तावना – शोध कार्य का अंतिम चरण प्रतिवेदन लेखन है। प्रतिवेदन सम्पूर्ण अनुसंधान का संक्षिप्त रूप होता है। इसमें अनुसंधान के सभी आवश्यक पहलुओं का समावेश होता है। प्रतिवेदन एक प्रकार से अनुसंधान कार्य का प्रतिनिधित्व करता है। प्रतिवेदन में संपूर्ण अनुसंधान का प्रारंभ से लेकर अंत तक का संक्षिप्त लिखित विवरण दिया जाता है। प्रतिवेदन में सामग्री का व्यवस्थापन इस ढंग से किया जाता है कि हमारे सहयोगियों एवं मूल्यांकनकर्ताओं को शोध की समस्याओं, उद्देश्यों, महत्वों, परिसीमाओं, तथ्य, संकलन एवं निष्कर्षों का आसानी से ज्ञान हो सके। अत: प्रतिवेदन की शैली सरल तथा व्याकरण की दृष्टि से सही होनी चाहिए ताकि अस्पष्टता से बचा जा सके। प्रतिवेदन में दी गई साँख्यकीय सामग्री एवं आँकड़े यथार्थ होने चाहिए साथ ही प्रामाणिक शब्दकोषों का प्रयोग किया जाना चाहिए। फुट नोटों, उपशीर्षकों, मानचित्रों चार्टों, चित्रों एवं रेखाचित्रों का प्रयोग आवश्यकतानुसार किन्तु सावधानीपूर्वक किया जाना चाहिए।

Research Report का हिन्दी पर्याय शोध – प्रतिवेदन है। यह दो शब्दों से मिलकर बना है Research अर्थात् Research जिसका तात्पर्य पुन: खोज करना होता है। अन्य शब्दों में किसी वस्तु या विषय अथवा व्यक्ति से संबंधित ज्ञान को प्राप्त करने के लिए व्यवस्थित ढंग से किए जाने वाले प्रयास को अनुसंधान कहा जा सकता है अर्थात् किसी निश्चित कार्य को पूरा करने में की गई कार्य विधि को लिखित Report प्रारूप में प्रस्तुत किया जाना प्रतिवेदन है। शोध प्रतिवेदन का प्रस्तुतिकरण अनुसंधान का महत्वपूर्ण अंग है। इसे निम्नलिखित परिभाषा द्वारा और अच्छे ढंग से समझ सकते हैं 'प्रतिवेदन तैयार करना शोध का अंतिम चरण होता है। इसका उद्देश्य संबंधित व्यक्तियों तक अध्ययन का सम्पूर्ण परिणाम पहुँचाना होता है जो इतने विस्तार के साथ इस प्रकार व्यवस्थित होता है कि वह पाठकों को सामग्री के समझने एवं परिणामों की अपने लिए वैधता निर्धारित करने का अवसर दे सके'। (गुडे एवं हॉट के अनुसार)

शोध-प्रतिवेदन के मुख्य रूप से वर्गीकरण करने के दो आधार हैं –

1. अभिगम के आधार पर,
2. प्रस्तुतीकरण के आधार पर।

अभिगम और प्रस्तुतीकरण के आधार पर निम्नलिखित रूप से इसे पुन: विभाजित करके बताया जा रहा है –

अभिगम के आधार पर		**प्रस्तुतीकरण के आधार पर**	
1.	व्यावसायिक प्रतिवेदन एवं लेख	1.	प्रेरणिक प्रतिवेदन
2.	योजना प्रतिवेदन	2.	अप्रेरणिक प्रतिवेदन
3.	शोध-लेख	3.	चरणबद्ध प्रतिवेदन
4.	पूछताछ, संचार प्रतिवेदन	4.	समय अनुगम प्रतिवेदन
5.	तर्क पूर्ण लेख		

अनुसंधान प्रतिवेदन तैयार करने से संबंधित कुछ सामान्य सिद्धान्त –

1. प्रतिवेदन स्पष्ट तथा सार्थक होना चाहिए।
2. प्रतिवेदन के अंतर्गत विस्तार एवं सूक्ष्मता का उचित समावेश होना चाहिए।
3. प्रत्येक स्थान पर समझने के लिए आवश्यक सूचना अवश्य दी जानी चाहिए।
4. धनात्मक एवं ऋणात्मक दोनों ही प्रकार के निष्कर्षों को प्रस्तुत किया जाना चाहिए।
5. सार्थकता परीक्षणों से प्राप्त परिणामों को स्पष्ट रूप से व्यक्त किया जाना चाहिए।
6. फुटनोटो का प्रयोग आवश्यकतानुसार अवश्य ही किया जाना चाहिए।
7. प्रतिवेदन यथासम्भव सूक्ष्म होने चाहिए।
8. प्रतिवेदन के सभी तथ्यों का वैज्ञानिक विश्लेषण करना चाहिए।
9. प्रतिवेदन सरल, स्पष्ट, सुन्दर और आकर्षक होना चाहिए।
10. बार-बार एक ही तथ्य का दोहराव नहीं होना चाहिए।
11. शोध में आने वाली कठिनाइयों का वर्णन होना चाहिए।
12. एक आदर्श शोध-प्रतिवेदन में भविष्य के अनुसंधानों के लिए उपयोगी सुझाव भी होना चाहिए।

शोध-प्रतिवेदन की रूपरेखा – यहाँ पर इसे तीन भागों में बताया जा रहा है–

(अ) प्रारंभिक भाग– 1. मुख्य पृष्ठ, 2. शोधार्थी का घोषणा-पत्र, 3. शोध निर्देश का प्रमाण-पत्र, 4. प्राक्कथन, 5. विषयसूची, 6. सारणी एवं चित्रों की सूची।

(ब) प्रतिवेदन का मूल भाग– 1. सामान्य परिचय, 2. संबंधित साहित्य का सर्वेक्षण, 3. प्रविधि, 4. आँकड़ों एवं तथ्यों का प्रस्तुतीकरण एवं विश्लेषण, 5. निष्कर्ष एवं सारांश, 6. अनुशंसाएँ।

(स) संदर्भ भाग– 1. पाद-टिप्पणी, 2. संबंधित साहित्य का सर्वेक्षण, 3. परिशिष्टियाँ, 4.अनुक्रमणिका।

किसी भी शोधार्थी को प्रारंभिक भाग में शोध कार्य आरंभ करने के पूर्व कुछ महत्वपूर्ण सुचनाएँ देनी होती हैं जो निम्नानुसार हैं– मुख्य भाग: इसमें शोधार्थी द्वारा शोध-संस्था, उपसंख्या, प्रतिवेदन किस संस्था को व किस उपाधि हेतु है, वर्ष, निदेशक का नाम व शोध का नाम दिया जाता है।

शोधार्थी का घोषणा–पत्र में संबंधित संस्था द्वारा निर्धारित घोषणा-पत्र, उपाधि की आंशिक पूर्ति के लिए देना आवश्यक है। शोध निदेशक का प्रमाण पत्र में छात्र के द्वारा किया जा रहा है तो शोध निदेशक का प्रमाण-पत्र संलग्न होना चाहिए। प्राक्कथन-भाग में उन समस्त श्रोतों व सम्माननीय व्यक्तियों का आभार व्यक्त किया जाता है जिन्होंने शोधकार्य में सहायता की है। सामान्य रूप से एक से दो पृष्ठ की विषयसूची दी जाती है इसे ऐसे

* अतिथि विद्वान (वाणिज्य) शासकीय महाविद्यालय, उमरिया (म.प्र.) भारत

व्यवस्थित किया जाता है कि एक नजर में ही सारे मुख्य तत्वों को जाना जा सके, साथ ही शीर्षक व उपशीर्षकों के सामने पृष्ठ संख्या भी अंकित की जाती है। सारणी एवं चित्रों की सूची में सामान्य रूप से आखिर में सारणी एवं चित्रों की सूची का उल्लेख किया जाता है एवं उसी के सामने पृष्ठ संख्या भी अंकित की जाती है। प्रतिवेदन के मूल भाग के अंतर्गत निम्नलिखित सूचनाओं को समाहित किया गया है। सामान्य परिचय अध्याय सम्पूर्ण प्रतिवेदन का बहुत ही महत्वपूर्ण भाग होता है, इसलिए सरल भाषा में विचारों की अभिव्यक्ति दी जानी चाहिए। शोधार्थी को इस भाग में शोध अध्ययन की उपयोगिता एवं परिकल्पनाओं के सम्पूर्ण विवरण का उल्लेख करना चाहिए साथ ही संक्षेप में समस्या के उद्देश्यों का वर्णन एवं संबंधित राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय विद्वानों द्वारा किए गए कार्यों के सारांश का विवरण भी प्रस्तुत करना चाहिए कुल मिलाकर सम्पूर्ण सामग्री इस तरह से व्यवस्थित होनी चाहिए कि इसका अध्ययन करने से अध्ययनकर्ता को यह पूर्णत: स्पष्ट हो जाए कि संपूर्ण अध्ययन किन विषय-बिन्दुओं एवं तथ्यों पर आधारित किया गया है।

सम्बन्धित साहित्य का सर्वेक्षण -शोधार्थी द्वारा इस विषय बिन्दू में शोध से संबंधित अन्य विद्वानों द्वारा किए गए अध्ययन व निष्कर्षों का उल्लेख किया जाता है। यह अत्यन्त महत्वपूर्ण बिन्दु होता है क्योंकि इसी अध्ययन के आधार पर अपने विषय की विवेचना की व्याख्या की जा सकती है तथा यह भी पूर्णत: स्पष्ट हो जाता है कि अपना शोध पूर्व शोध कार्य से किस तरह से भिन्न है।

प्रविधि - आँकड़ों एवं तथ्यों के संकलन के लिए अपनाई जानेवाली पद्धति को इसी भाग में बताया जाता है अर्थात् आँकड़े संकलन का श्रोत वास्तव में क्या होगा ? प्राथमिक होगा अथवा द्वितीयक आँकड़ों के आधार पर शोध प्रबंध तैयार किया जाएगा साथ ही साथ आँकड़ों एवं तथ्यों को किसी न किसी विधि के माध्यम से एकत्रित किया जाता है, अत: विधि का उल्लेख भी नितांत आवश्यक है जिससे मूल्यांकनकर्ता व अन्य पाठकों को यह विश्वास हो जाता है कि जो भी आँकड़े प्रस्तुत किए गए हैं वे पूर्णत: विश्वसनीय एवं वैज्ञानिक हैं।

आँकड़ों एवं तथ्यों का प्रस्तुतीकरण व विश्लेषण - इस भाग के अंतर्गत सूचनाओं एवं तथ्यों के संलग्न को नियोजित ढंग से व्यवस्थापित करके विश्लेषण किया जाता है। इस भाग के अंतर्गत शोधार्थी को विशेष रूप से सतर्कता के सांथ कार्य का सम्पादन करना होता है साथ ही इस विषय बिन्दु का विशेष रूप से ध्यान रखना होता है कि कहीं संकलित आँकड़ों एवं तथ्यों की गणना करने में किसी भी प्रकार की त्रुटियॉ तो नहीं रह गई हैं तथा निष्कर्ष निकालते समय कोई महत्वपूर्ण सूचना कहीं से छूट तो नहीं गई है।

निष्कर्ष एवं सारांश - शोधार्थी द्वारा इस भाग में अन्तर्गत सम्पन्न किए गए कार्यों के परिणामों को इसी भाग के अन्तर्गत सम्मिलित किया जाता है। इस भाग के अन्तर्गत समस्त महत्वपूर्ण विश्लेषण दर्शाया जाता है।

अनुशंसाएँ - यह शोध-प्रतिवेदन का अंतिम भाग होता है। इस भाग के अन्तर्गत शोधार्थी को शोध-प्रतिवेदन का अध्ययन करने वाले पाठकों के लिए महत्वपूर्ण सूचना के रूप में अनुशंसा दी जाती है।

संदर्भ भाग - इस भाग के अन्तर्गत निम्नलिखित विषय-बिन्दुओं को सम्मिलित किया जाता है- पाद-टिप्पड़ी - शोध-प्रतिवेदन में आवश्यकता के अनुसार पृष्ठ के निचले भाग में पाद टिप्पणियाँ दी जाती हैं। पाद टिप्पणी वस्तुत: सन्दर्भ का ही कार्य करती हैं इसलिए जहाँ आवश्यक हो उस स्थान पर पाद- टिप्पणी आवश्यक रूप से दी जानी चाहिए। पाद- टिप्पणियाँ सामान्य ग्रन्थों से न लेकर विशिष्ट एवं प्रतिष्ठित ग्रन्थों से होना चाहिए। इसमें मूल श्रोत से सत्यापित निम्नलिखित सूचना समाहित होनी चाहिए- 1. लेखक का नाम, 2. स्रोत की संख्या, 3. संस्करण, 4. प्रकाशक का नाम, 5. प्रकाशन का स्थान, 6. वर्ष, 7. पृष्ठ संख्या।

ग्रंथ सूची - शोध-प्रतिवेदन को बनाने में शोधार्थी द्वारा जिस भी पाठ्य सामग्री का भी उपयोग किया जाता है उन समस्त स्त्रोतों का उल्लेख करने को ग्रंथसूची कहा जाता है फिर चाहे वह प्रकाशित स्त्रोत हो या अप्रकाशित शोध-प्रतिवेदन में ग्रंथसूची अत्यन्त ही महत्वपूर्ण स्थान होता है अत: इसे भी सावधानी पूर्वक तैयार करना चाहिए।

परिशिष्टियाँ - शोध-प्रतिवेदन में जो अतिरिक्त सूचना प्रदान की जाती है उसे परिशिष्टियाँ कहा जाता है। उदाहरणार्थ आँकड़ों के संकलन हेतु प्रयोग की जानेवाली प्रश्नावलियाँ आदि परिशिष्टियों में ही सम्मिलित की जाती है।

अनुक्रमणिका - यह शोध-प्रतिवेदन के क्रम को व्यवस्थित करता है। अनुक्रमणिका का होना एक अच्छे शोध-प्रतिवेदन के लिए नितांत आवश्यक है।

शोध-प्रतिवेदन की समस्याएँ - शोध-प्रतिवेदन की समस्या को अध्ययन की सरलता हेतु तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है- 1. भाषा से सम्बन्धित समस्या, 2. बौद्धिक स्तर की समस्या, 3. अवधारणा से सम्बन्धित समस्या।

भाषा से सम्बन्धित समस्या - शोध-प्रतिवेदन की भाषा और शैली के सम्बन्ध में हमेशा से विवाद रहा है। यदि शोध-प्रतिवेदन में सरल भाषा का प्रयोग किया जाता है तो यह कहा जाता है कि भाषा का स्तर ठीक नहीं रहा या भाषा का स्तर अत्यंत ही सरलतापूर्ण रखा गया जब कि शोध-प्रतिवेदन में कठिन तकनीकी शब्दों का उपयोग किया जाता है तो यह कहा जाता है कि भाषा का स्तर अत्यंत ही कठिन रखा गया जो कि समझ से परे रहा।

बौद्धिक स्तर की समस्या - शोध-प्रतिवेदन स्तर किस बौद्धिक स्तर के उपयोगकर्ता के लिए हो इस संबंध में भी विवाद है। वैसे शोध-प्रतिवेदन का स्तर स्वयं में इतना बड़ा है कि यह सामान्य स्तर के व्यक्ति के समझ से परे है फिर भी शाधार्थी का यह प्रयास होना चाहिए कि प्रतिवेदन को इस प्रकार से प्रस्तुत करे जिसमें तथ्यों को आवश्यक चित्रों, ग्राफ, सारणी इत्यादि से आसानी से समझा जा सके। इस प्रकार से यह कहा जा सकता है कि शोध-प्रतिवेदन किसी विषय की एक ऐसी विस्तारपूर्वक व्याख्या है जिससे अध्ययन में वर्णित समस्त पहलुओं को आसानी से समझा जा सकता है और सम्बन्धित विशेषताओं एवं कमियों को परखा जा सकता है।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची :-

1. Kothari CR, Research Methodology (1990), Vishava Prakashan New Delhi.
2. कपिलएच0के0, अनुसंधान विधिया (व्यवहारपरक विज्ञानों में), प्रकाशन-एच.पी. भार्गव बुक हाउस आगरा 282004.
3. डॉ. त्रिवेदीआर.एन. एवं डॉ. शुक्ला डी.पी., प्रकाशन-कॉलेज बुक डिपो, जयपुर।
4. शर्मा रामनाथ एवं शर्मा राजेन्द्र कुमार, सामाजिक सर्वेक्षण और अनुसंधान की विधियाँ और प्रविधियाँ (2004), एअलॉटिक ए नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या 120-128.

****

भारत में महिलाओं का आर्थिक सशक्तिकरण

ऊँकार सिंह रावत *

प्रस्तावना – 'जब हम एक महिला को साक्षर करते है तो इसका मतलब होता है कि हम एक परिवार को भी साक्षर करते हैं। शिक्षित महिला शिक्षा के महत्व को समझती है और अपने बच्चों को भी शिक्षित करने के प्रति उत्साहित रहती है और साथ ही पारिवारिक बजट में संतुलन होता है और वह परिवार अपेक्षाकृत बेहतर जीवनयापन करता है। यही से शुरू होता है एक बेहतर मानव संसाधन का निर्माण जो आर्थिक विकास और सशक्तिकरण का आधार स्तम्भ है। भारतीय महिलाओं का सशक्तिकरण तब तक संभव नहीं है जब तक उन्हें आर्थिक स्तर पर सशक्त नहीं किया जाए। इतिहास के विभिन्न कालखण्डों में भारतीय महिलाएं आर्थिक रूप से सदा पुरूषों पर निर्भर रही और यही मानसिकता आज भी कमोबेश समाज में विद्यमान हैं। इस मानसिकता की काट निसंदेह शिक्षा में निहित है।'

आज देश की कुल आबादी में महिलाओं की संख्या करीब 48 प्रतिशत है। इसका एक बड़ा हिस्सा अपने मूलभूत अधिकारों से भी वंचित है खासकर ग्रामीण क्षेत्रों में। आज देश में ऐसी महिलाओं की संख्या बहुत अधिक है जो शिक्षा स्वास्थ्य, आर्थिक अवसर जैसे कई क्षेत्रों में पुरूषों के मुकाबले निम्न दशा में हैं इसके अलावा महिलाओं के प्रति जन्म से मृत्यु पर्यन्त हिंसा की घटनाऐं आम हैं। महिलाओं के प्रति हिंसा का सबसे घिनौना पक्ष यह है कि उनके प्रति दोयम दर्जे की सामाजिक मानसिकता के कारण बेटियों के जन्म के दौरान पूर्व या पश्चात् उन्हें मार दिया जाता है। इतना ही नहीं सामाजिक प्रतिष्ठा का नाम देकर महिलाओं को कई तरीके से प्रतिबंधित करना और उनका शोषण करना भी समाज की एक बड़ी कुरीती प्रचलन में है। समस्याओं के गहरे जाल में रह रहे देश के इस प्रमुख वर्ग के प्रति हाल में केन्द्र सरकार के स्तर से एक बड़ी महत्ता दी गई है। स्वतंत्रता दिवस के अवसर पर लाल किले की प्राचीन से देश को संबोधित करते हुए प्रधान मंत्री नरेन्द्र मोदी ने देश की बेटियों को बचाने का संकल्प लिया था। इसी संकल्प का अमलीजामा पहनाते हुए हरियाणा के पानीपत से 22 जनवरी 2015 को 'बेटी बचाओ बेटी पढ़ाओ' योजना की शुरूआत की गई। महिला सुरक्षा और सशक्तिकरण की दिशा में किये जा रहे प्रयासो की कड़ी में यह एक बेहद संवेदनशील और महत्वपूर्ण अभियान है।

किसी देश की प्रगति और वास्तविक स्थिति का यदि अध्ययन करना हो तो वहां महिलाओं की शिक्षा का स्तर देखना चाहिए। एक शिक्षित नागरिक से जो अपेक्षाएं की जाती हैं उसी के आधार पर समाज का विकास निर्भर करता है। यदि किसी समाज या राष्ट्र में पर्याप्त संसाधन हो किन्तु वहां एक दक्ष और परिस्कृत मानव संसाधन नहीं हो तो उस के सारे मार्ग अवरूद्ध हो सकते हैं। आज भारत में महिलाओं के बीच साक्षरता दर करीब 65 प्रतिशत है जिसमें ग्रामीण महिलाओं का हिस्सा और भी कम है। जब हम एक महिला को शिक्षित करते हैं तो इसका मतलब होता है कि हम एक परिवार को भी शिक्षित करते हैं। कई अध्ययनों से यह बात सामने आई है कि जिस परिवार की महिलाएं शिक्षित होती हैं वहां पारिवारिक बजट में संतुलन होता है और वह परिवार अपेक्षाकृत बेहतर जीवनयापन करता है। वहीं दूसरी तरफ जिस परिवार की महिलाएं शिक्षित नहीं होती वहां पारिवारिक बजटिंग वित्तीय प्लानिंग सहित जीवन स्तर की स्थिति काफी गंभीर होती है। एक शिक्षित महिला शिक्षा के महत्व को समझती है और अपने बच्चों को भी शिक्षित करने के प्रति उत्साहित रहती है। यहीं से शुरू होता है एक बेहतर मानव संसाधन का निर्माण जो आर्थिक विकास और सशक्तिकरण का आधार सतम्भ है।

भारत में महिलाओं का आर्थिक सशक्तिकरण तब तक संभव नहीं जब तक उन्हें आर्थिक स्तर पर सशक्त नहीं किया जाए।

इतिहास के विभिन्न कालखण्डों में भारतीय महिलाएं आर्थिक रूप से सदा पुरूषों पर निर्भर रही और यही मानसिकता आज भी कमोबेस समाज की मानसिकता में विद्यमान है। इस मानसिकता की काट निसंदेह शिक्षा में निहित है। सामान्य रूप से देखें तो महिलाओं को शिक्षित करने से उन्हें एक व्यापक दृष्टिकोण मिलेगा, उनमें अच्छे व बुरे की पहचान करने की क्षमता का विकास होगा और इसके माध्यम से वे परिवार और समाज में समान दर्जा प्राप्त करने में सफल होगी। इसके साथ ही उन्हें बेहतर रोजगार, आजीविका, के साधन और आर्थिक निर्भरता प्राप्त करने में कोई कठिनाई नहीं आयेगी। इस प्रकार जब वे आर्थिक रूप वे सशक्त होगी तो यह न केवल उनके लिए बल्कि समाज और देश के लिए भी एक बेहतर अनुभव होगा।

माहिलाओं के सामाजिक, आर्थिक, और शैक्षिक सशक्तिकरण के उद्देश्य से केन्द्र सरकार और विभिन्न राज्य सरकारों ने विगत वर्ष में कई ऐसी योजनाएं और कार्यक्रम संचालित किए है जो बालिका शिक्षा और उनके आर्थिक सशक्तिकरण के लिहाज से महत्वपूर्ण और अनिवार्य रहे हैं। इनमें अर्ली चाइल्ड केयर तथा शिक्षा कस्तुरबा बालिका विद्यालय प्राथमिक स्तर पर लडकियों की शिक्षा के लिए राष्ट्रीय कार्यक्रम माध्यमिक और उच्चतर स्कूलों की छात्राओं के लिए छात्रावास माध्यमिक शिक्षा के लिए सहायता हेतु राष्ट्रीय कार्यक्रम सहित कई तरह की छात्रवृत्ति योजना संचालित है। लड़कियों की शिक्षा को प्रोत्साहन देने के लिए एक लड़की के लिए पोस्ट स्नात्क कार्यक्रम के लिए इंदिरा गांधी स्कॉलरशिप महिला समाख्या योजना आदि प्रमुख है। महिलाओं के लिए प्रशिक्षण तथा रोजगार कार्यक्रम सहायता (एस.टी.आई.पी.) इसी तरह की एक अन्य योजना है जो महिलाओं को रोजगार व प्रशिक्षण देने के लिए सहायता देने के कार्यक्रम के रूप में 1987 में केन्द्रीय क्षेत्र की योजना के रूप में शुरू की गई थी। इसी प्रकार से मार्च 2010 को राष्ट्रीय महिला सशक्तिकरण मिशन शुरू किया गया। इस मिशन का उद्देश्य भारत की महिलाओं को प्रभावित करने वाले मुद्दों जैसे शिक्षा, गरीबी, स्वास्थ्य, कानूनी अधिकार, सामाजिक, आर्थिक सशक्तिकरण तथा प्रमुख नीतियों,

* अतिथि विद्वान (वाणिज्य) शासकीय महाविद्यालय, इछावर, जिला - सीहोर (म.प्र.) भारत

कार्यक्रमों एवं संस्थानात्मक प्रबंधनो की बाधाओं को दूर करना है। इन सबके अलावा महिलाओं के विकास, रोजगार, शिक्षा, स्वास्थ्य से संबंधित कई सारी योजनाएं और अभियान अमल में लाए गए हैं जिनका फायदा भी मिला है।

मूल्यांकन– शायद ही आज कोई क्षेत्र ऐसा हो जहां महिलाएं अपनी उपस्थिति का आभास न करा रही हो। सरकारी एवं गैर सरकारी स्तर पर विगत छः दशकों के प्रयास पुरूषो के नजरिये में बदलाव लाने में काफी हद तक सफल हुए हैं। फिर चाहे वह बदलाव बाध्यकारी नीतियों से या जागरूकता से ही क्यों न आ रहे हो।

सामाजिक परिदृश्य में महिला मजबूर नहीं मजबूत नज़र आ रही है। महिला अधिकारों ने सशक्तिकरण की दशा में जो बड़ा आधार तैयार किया है उसमें शिक्षा मील का पत्थर साबित हुई है। शिक्षा का स्तर बढ़ा है तो कामकाजी महिलाओं की संख्या भी बढ़ने लगी है। अपनी क्षमताओं से महिलाओं ने रोजगार के सभी क्षेत्रों में न केवल दस्तक दे दी है वरन् मजबूती के साथ अपनी अस्तित्व का आभास भी कराया है। कामयाबी की नई–नई मिसाल बन रही महिलाएं सशक्तिकरण के उदाहरण हैं। महिलाओं तक बैंकिंग सेवाएं पहुंचाने के लिए प्रधान मंत्री जन–धन योजना के अंतर्गत अब परिवारों में महिलाओं के लिए एक अलग खाता खोलने पर ध्यान देना चाहिए जिसे वह बिना किसी पारिवारिक दबाव के अपनी मर्जी से चला सके। इससे परिवार में निर्णय लेने में उसकी सहभागिता बढ़ेगी और माली हालत में भी सुधार होगा।

बैंक वालों को स्वयं सहायता समुहों (एस.एच जी) के माध्यम से अथवा सीधे संपर्क से गांवों में शिविर लगाकर एक अभियान चलाकर केवल महिलाओं के बैंक खाते और खुलवाने होंगे।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची :–

1. कुरूक्षेत्र (महिला सशक्तिकरण) (मार्च 2015) – राजेश कुमार झा (वरिष्ठ संपादक)।
2. कुरूक्षेत्र (ग्रामीण–शहरी लिंकेज) (फरवरी 2015) – दीपक कच्छल (वरिष्ठ संपादक)।
3. उद्यमिता विकास – डॉ.राजेन्द्र शर्मा।
4. भारत में महिला शिक्षा अधिकार– बी.एच.वघेर।
5. सामाज कार्य सिद्धांत और व्यवहार – कुंवर सिंह तिलारा।

****

भारत में ग्रामीण विकास - समस्याऐं एवं नियोजन

फूलचन्द किराड़े *

प्रस्तावना – भारत गाँवों का देश है यहां की लगभग 75 प्रतिशत जनसंख्या गांवों में निवास करती है, देश की जनसंख्या का अधिकतर भाग छोटे या बड़े गांवों में निवास करती है, बिखरे ग्रामों का क्षेत्रफल काफी कम है एवं भारत की करीब तीन चौथाई जनसंख्या कृषि पर निर्भर है। प्रथम पंचवर्षीय योजनाकाल से ही विभिन्न योजनाओं एवं कार्यक्रमों के माध्यम से शासन ग्रामीण विकास हेतु प्रयासरत् है। देश के कई ग्रामीमण क्षेत्रों में आशानुरूप विकास भी हुआ है लेकिन जब तक समग्र ग्रामीण क्षेत्रों का विकास नहीं होगा, तब तक सम्पूर्ण विकास का सपना संजोना बेईमानी होगी। क्योंकि 28 प्रतिशत जनसंख्या का विकास करने से अर्थात शहरी क्षेत्रों के विकास मात्र से 72 प्रतिशत ग्रामीण का विकास सम्भव नहीं है, अत: भारत का विकास करने के लिए गांवों का विकास करना अत्यन्त आवश्यक है।

भारत एक कृषि प्रधान देश है देश की जनसंख्या का अधिकांश हिस्सा गांवों में निवास करता है, तथा ग्रामीणों का मुख्य व्यवसाय कृषि है। भारतीय अर्थव्यवस्था प्राचीन काल से ही कृषि प्रधान अर्थव्यवस्था रही है और भारतीय अर्थव्यवस्था में कृषि का महत्वपूर्ण योगदान है। ग्रामीण जनसंख्या के जीवन यापन का मुख्य साधन कृषि ही है और इन्हें अपनी मुलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति करने के लिए वित्त की आवश्यकता होती है।

वर्तमान में देश व प्रदेश में विकास की प्रक्रिया तीव्र गति से चल रही है केन्द्र व राज्य सरकार सतत् रूप से विकासात्मक स्वरूप हेतु प्रयासरत है फिर भी देश व प्रदेश में प्रादेशिक असंतुलन एक गम्भीर समस्या बनी हुई है। प्रादेशिक असन्तुलन का मुख्य कारण सामाजिक आर्थिक परिवर्तन की मन्द गति है तथा नगरों एवं ग्रामों के मध्य स्थापित दूरी में अपेक्षित सुधार नहीं होना है। फलस्वरूप गांव में आज भी गरीबी बेरोजगारी, स्वास्थ्य, सुविधाओं की कमी असुरक्षा तथा सामाजिक, आर्थिक विषमता जैसी तमाम समस्याएं विद्यमान हैं। जो कि ग्रामीण जनसंख्या का नगरीय क्षेत्रों में पलायन का मुख्य कारण है। परिणास्वरूप शहरों में आवास एवं रोजगार की समस्याएं खड़ी हो गई हैं। इन समस्याओं को कम करने व समग्र विकास के लिए ग्रामों का विकास अति आवश्यक है।

ग्रामीण विकास का अर्थ लोगों को होने वाले आर्थिक लाभों के साथ-साथ समाज के सम्पूर्ण ढांचे में होने वाले आर्थिक विकास की बेहतर सम्भावनाएं उसी स्थिति में हो सकती है। जब ग्रामीण विकास प्रक्रिया में जनता की अधिकांधिक सहभागिता सुनिश्चित की जाए, विकास योजनाओं का विकेन्द्रीकरण किया जाये ताकि गांवों की सामाजिक, आर्थिक, स्थिति मजबूत हो। आज़ादी के बाद से ग्रामीण जनता का जीवन स्तर सुधारने के लिए ठोस प्रयास किये गए हैं। इसलिए ग्रामीण विकास की एकीकृत अवधारणा रही है और सभी पंचवर्षीय योजनाओं में गरीबी उन्मूलन की सर्वोपरी चिंता रही है। सरकार द्वारा रोजगार की उपलब्धता हेतु कुछ रोजगार योजनाएं जैसे- स्वर्णजयंती ग्राम स्वरोजगार योजना, महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार योजना इत्यादि चलाई जा रही है, जिससे ग्रामीण जनसंख्या लाभान्वित हो रहे हैं।

ग्रामीण अर्थव्यवस्था का विकास हमारी योजना प्रक्रिया का एक प्राथमिक विषय है। तदानुसार स्थायी आधार पर ग्रामीण क्षेत्रों में लोगों की आर्थिक और सामाजिक खुशहाली सुधारने के लिए सतत् प्रयास किए गए हैं। ग्रामीण विकास मंत्रालय के अंतर्गत ग्रामीण विकास विभाग एक नोडल संगठन है, जो ग्रामीण जनता के सर्वांगीण उत्थान करने के लिए समर्पित है। यह विस्तृत पैमाने पर ग्रामीण अर्थव्यवस्था के लिए कार्यक्रमों के माध्यम से सुनिश्चित किया जाता है विभिन्न कार्यक्रमों. और योजनाओं का लक्ष्य ग्रामीण शहरी विभाजन को पाटना, गरीबी हटाने, रोजगार सृजन, मूल संरचना विकास और सामाजिक सुरक्षा प्रदान करना है। ग्रामीण विकास कार्यक्रम में निम्नलिखित का समावेश है-

1. ग्रामीण क्षेत्रों में आधारभूत सुविधाओं जैसे स्कूल, स्वास्थ्य सुविधाओं, सड़क पेयजल, विद्युतीकरण आदि का प्रावधान।
2. ग्रामीण क्षेत्र में कृषि उत्पादकता में सुधार।
3. सामाजिक, आर्थिक विकास के लिए सामाजिक सेवाओं जैसे स्वास्थ्य और शिक्षा का प्रावधान।
4. कृषि उत्पादकता बढ़ाकर, ग्रामीण रोजगार उपलब्ध कराकर ग्रामीण उद्योगों को बढ़ावा देने के लिए योजनाओं को लागू करना।
5. ऋण और सब्सिडी के माध्यम से उत्पादक संसाधन उपलब्ध कराकर गरीबी रेखा के नीचे रहने वाले व्यक्तिगत परिवारों और स्वयं सहायता समूह (एसएचजी) के लिए सहायता।

समस्याएं एवं नियोजन – किसी भी क्षेत्र के विकास में सेवाओं एवं सुविधाओं का महत्वपूर्ण योगदान होता है। ग्रामीण विकास में शिक्षा, स्वास्थ्य, परिवहन एवं संचार, व्यापार तथा प्रशासनिक सेवाएं महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। ग्रामीण विकास हेतु निम्न प्रयास किये जा सकते हैं-

1. ठोस कृषि नीति का अभाव- कृषि में आवश्यक परिवर्तन किये बिना ग्रामीण विकास संभव नहीं है, कृषि को लाभ का धन्धा बनाने के लिए ठोस कृषि नीति अपनाई जाए, ताकि कृषि से संबंधित सभी प्रकार की समस्याओं को हल किया जा सके किसानों को न्यूनतम ब्याज दर पर कृषि ऋण आसन शर्तों पर दिया जाए। कृषि पर आधारित उद्योग क्षेत्र में ही स्थापित किय जाए तथा कुटीर एवं लघु उद्योगों का विकास पुन: किया जावे ताकि ग्रामीण युवाओं को ग्राम में ही रोजगार प्राप्त हो सके।

* शोधार्थी, देवी अहिल्या विश्वविद्यालय, इन्दौर (म.प्र.) भारत

2. **कृषि पर जनसंख्या का दबाव–** वर्तमान में बढ़ती हुई जनसंख्या सभी क्षेत्रों के विकास को अवरूध्द कर रही है। बढ़ती जनसंख्या के कारण कृषि जोत का आकार छोटा होता जा रहा है, जिससे उत्पादन पर बुरा प्रभाव पड़ रहा है जो आर्थिक दृष्टि से लाभप्रद नहीं है, ग्रामीणों को शिक्षित कर 'बच्चे दो ही अच्छे' के विचार से अवगत कराना होगा अर्थात नियोजित परिवार के सिद्धांत का अपनाना होगा।इसके अलावा कृषि पर निर्भरता कम करने के लिए पशुपालन व्यवसाय को पूर्णत: विकसित करना होगा साथ ही कृषि आधारित उद्योगों को बढ़ावा देना चाहिए।

3. **यातायात एवं संचार सुविधा का अभाव–** यातायात एवं संचार सेवाएं ग्रामीण विकास में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती है। कई ग्राम आज भी पक्की सड़कों से नहीं जुड़ सके है तथा कई ग्रामों में आज भी इन्टरनेट जैसी सुविधाओं का अभाव है।

4. **आधारभूत सुविधाओं की कमी–** समुचित ग्रामीण विकास हेतु सर्वप्रथम ग्रामों में आधारभूत सुविधाएं जैसे– शिक्षा, स्वास्थ्य, आवास, रोजगार, पानी, बिजली, एवं परिवहन सुविधाओं की व्यवस्था की जाए।

5. **अन्य समस्याएं–** पंचायतों के सीमित अधिकार पंचायतों में धन की कमी बहुउद्देश्यीय योजनाओं का अभाव योजनाओं में भौगोलिक कारकों की उपेक्षा योजनाओं के क्रियान्वन में इच्छा शक्ति की कमी, अनुसूचित जाति, जनजाति एवं कमजोर वर्ग के लोगों की आर्थिक, सामाजिक दयनीय स्थिति एवं भ्रष्टाचार एक बड़ी चुनौती है। इन सब चुनौतियों के निराकरण हेतु शासन–प्रशासन को मिलजुलकर योजनाबध्द तरीके से कार्य करना होगा।

निष्कर्ष–उपर्युक्त, अध्ययन के आधार पर निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि गांवों का उत्थान करना आधुनिक भारत का प्राथमिक लक्ष्य है। वैसे सही मायने में देखा जाए तो सरकार ने ग्रामीण क्षेत्रों की स्थिति सुधारने एवं वहां से हो रहे पलायन पर रोक लगाने के लिए समय–समय पर अनेक कार्यक्रम और योजनाएं लागू की है परन्तु इन सबसे उतना लाभ नहीं मिला, जितना अपेक्षित था। देश के गांवों में आज भी प्रचुर भूमि खनिज, निर्माण सामग्री जैसे प्राकृतिक संसाधन मौजूद है। गांवो में पर्यटन आकर्षित करने वाले अनेक मनोरम स्थानों और पारंपरिक रूप से सम्पन्न संस्कृति का वरदान मिला हुआ है। देश के अनेक राज्यों के पास लिग्नाइट आधारित बिजली पवन ऊर्जा के स्त्रोत है, उनका विकास किया जाए। गांवों व निकटवर्ती कस्बों में ही फूड प्रोसेसिंग इकाईयों, लघु व कुटीर उ़द्योग तथा दस्तकारी उद्योग को स्थापित करके रोजगार अवसरों का विस्तार किया जाए। इससे गांवों की आर्थिक हालत सुधरेगी, और ग्रामीण जीवन अधिक खुशहाल बन सकेगा।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची :–

1. डॉ.डी.एम.दोमाड़िया, डॉ.,बी.आर.बारड़ – ग्रामीण अर्थव्यवस्था के आधार।
2. कालका प्रसाद भटनागर– ग्रामीण अर्थव्यवस्था।
3. ओ.पी.शर्मा– भारतीय अथव्यवस्था की दिशा।
4. सिंह सविन्द्र – भू–आकृति विज्ञान वसुन्धरा।
5. दन्त, रूद्र एवं के.पी.एम.सुन्दरम – भारतीय अथव्यवस्था।

****

भारत में काले धन की उत्पत्ति एवं समाधान

शीतल सोलंकी *

प्रस्तावना – आज विश्व की विभिन्न अर्थव्यवस्था काले धन की समस्या से चिन्तित हैं। यह उनके विकास मार्ग व वांछित लक्ष्य की प्राप्ति में बाधक हो रहा है। इस समस्या से विकसित, विकासशील और यहां तक कि समाजवाद अर्थव्यवस्था भी बहुत प्रभावित हो रही है। एक अध्ययन के अनुसार समग्र अवैधानिक आय, संपत्ति और अवैधानिक क्रियाओं जैसे सट्टा, जुआ, तस्करी , काला बाजार, घूस, पगड़ी आदि काली संपत्ति और सौदों के कारण वैधानिक मौद्रिक व्यवस्था प्रभावित हो रही है।

भारत में भी काले धन की शुरूआत विश्व युद्ध से प्रारम्भ हुई जब आवश्यक वस्तुओं की कमी हो जाने से सरकार का नियंत्रण व राशनिंग व्यवस्था लागू करनी पड़ी थी कि यह अर्थव्यवस्था समाप्त हो जायेगी परंतु ऐसा नहीं हुआ और यह बढ़ती गई और एक विशाल रूप में उभर आई। कई वर्ष पहले काले धन को भूमिगत अर्थव्यवस्था के रूप में प्रयुक्त किया गया।

काले धन का सृजन–

1. **करारोपण का स्तर–** भारत में काली आय के लिए उत्तरदायी, कर का ढ़ांचा एवं स्तर है। कर वंचन की समस्या का प्रमुख कारण कर दरों का और विशेष रूप से आयकर और निगम कर की दर का ऊँचा होना है इससे उत्पादकों व्यापारियों एवं विशेषज्ञों की व्यवसायी मनोवृति घटती है और कर चोरी को बढ़ावा मिलता है।

2. **कर प्रशासन की कमियां–** कर प्रशासन अंतर्राष्ट्रीय कर की तुलना में काफी कमजोर है। वर्तमान राजनीतिक परिवेश और चुनाव ढ़ांचा इस काली व्यवस्था को प्रभावित करता है। भारत में विभिन्न नियामक विधानों की क्रियाशीलता में शिथिलता ही काले धन की अर्थव्यवस्था नित्य नवीन आयाम से बढ़ती है।

3. सार्वजनिक व्यय कार्यक्रमों का दोषपूर्ण प्रबंध भारत में नियोजन कार्यक्रम का दोषपूर्ण प्रबंध ही काला धन एकत्रित करने के लिए उत्तरदायी है। जिसके परिणाम स्वरूप विभिन्न वस्तुओं और सेवाओं की आपूर्ति में कमी आ जाती है।

4. **राजनीतिक चंदा–** स्वतंत्रता के बाद से ही भारत में राजनीतिक पार्टियों को चंदा देने की प्रथा रही है। दानकर्ता अपने हित साधने, काले धन के सृजन में इन राजनीतिक हस्तियों का प्रयोग करते हैं जो प्रतिफल की दृष्टि से स्वाभाविक है।

5. **नियंत्रण एवं लाइसेंस व्यवस्था–** भारत में परमिट लाइसेंस, कंट्रोल व कोल जैसी पद्धतियाँ उत्पादन व विवरण के संबंध में अपनायी गयी हैं जो वस्तुओं की मांग व पूर्ति पर प्रतिबंध लगाती हैं।

काले धन का अर्थव्यवस्था पर प्रभाव– काले धन का प्रभाव यह होता है कि इससे सरकार को कर आय की हानि होती है कर आय सार्वजनिक आय का अति प्रमुख स्त्रोत है जिसमें कमी होने से विकास कार्यों में कमी या निमित घाटे की वित्त व्यवस्था करनी पड़ती है। कर आय की हानि अब लगभग 1000 करोड़ वार्षिक हो गयी है। यह अनुमान है कि पिछले वर्षों में कर आय की जितनी हानि हुई है, उतनी ही राशि घाटे की वित्त व्यवस्था द्वारा सृजित की गई है।

काले धन की क्रियाशीलता के कारण अर्थव्यवस्था की वास्तविक स्थिति की जानकारी नहीं हो पाती है। इससे अर्थव्यवस्था में उत्पादन , बचत व पूँजी निर्माण के सम्यक अनुमान नही मिल पाते हैं, जिसके फलस्वरूप बचत स्तर और बचत दर के ठीक अनुमान नहीं हो पाते हैं। समान्तर अर्थव्यवस्था की क्रियाशीलता प्रभावित हो जाती है।

काला धन यह देश में आर्थिक समानता के नियम को भी नकार देता है। यह असमानता और धन के विकेन्द्रीकरण को बढ़ावा देती है। कर वंचन की प्रक्रिया वेतनभोगी कर्मचारियों की तुलना में स्वरोजगार वाले सम्पन्न लोगों यथा, उद्योगपति, व्यापारी, निर्माण, ठेकेदार, वकील डॉक्टर, पूंजीपति आदि में अधिक होती है। विभिन्न तथ्यों से स्पष्ट रहा है कि काले धन की प्रक्रिया समाज में स्थिति, अर्थव्यवस्था और अपेक्षित क्रियाओं को बढ़ावा देती हैं।

काले धन की समस्या के कुछ वैकल्पिक उपाय –

1. काला धन या समांतर अर्थव्यवस्था के नियंत्रण के लिए लोगों के दृष्टिकोण में परिवर्तन की आवश्यक है। लोग चोर–बाजारी, तस्करी से प्राप्त विदेशी वस्तुएँ बड़े शान से खरीदते हैं और प्रयोग करते हैं उन पर प्रतिबंध लगाया जाए।
2. करारोपण की विभिन्न दरों में कटौती अपेक्षित है जिससे समाज का निचला व मध्यम वर्ग प्रभावित होता है। विभिन्न प्रत्यक्ष कर की ऊपरी दरों में कटौती होनी चाहिए। आवश्कता यह है कि आरोपित दरों का सम्यक अनुपालन हो।
3. सर्वाधिक आवश्यकता समाज में उन वस्तुओं और सेवाओं के बड़े पैमाने पर उत्पादन करने की है जो अनिवार्यताओं से संबंध है, ताकि इनसे संबंध कन्ट्रोल और परमिट की व्यवस्था समाप्त की जा सके।
4. तस्करी की प्रक्रिया न्यूनतम संभव समय से समाप्त होनी चाहिए और स्थायी संपत्ति की वृध्दि पर रोक किसी न किसी स्तर पर आवश्यक अपेक्षित है।
5. उपचारात्मक दृष्टिकोण से यह सोचा जा सकता है कि विद्यमान काला धन निकालने की स्वैच्छिक घोषणा एवं धारक बॉण्ड जैसी कोई नवीन योजना चलायी जाए, ताकि उपलब्ध प्रभूत धनराशि क्रतिपय उत्पादक परियोज नाओं में प्रयुक्त की जा सके।

निष्कर्ष– अंत में हम यह कह सकते है कि आज भारत जैसे अन्य विश्व में उभरती अर्थव्यवस्था के सामने काली आय या समांतर अर्थव्यवस्था से निपटने की बड़ी चुनौती है। इस चुनौती का असर देश के सभी लोगों पर पड़ता है। भ्रष्टाचार या काला धन रोकने और भ्रष्टाचार मुक्त करने के लिए देश के सभी नागरिकों , संस्थानों को यह तय करना होगा कि हम कभी काले धन को स्वीकार नहीं करेंगे। देश को आदर्श राष्ट्र बनाने के लिए इनका पूर्ण रूप से खण्डन करेंगे। यह एक ऐसा यथार्थ होगा जिसकी हमें प्रतीक्षा है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :–

1. भारतीय अर्थव्यवस्था , डॉ.बद्री विशाल त्रिपाठी।
2. बिजनेस स्टैण्डर्ड, 30 नवम्बर।
3. योजना पत्रिका, राजेश कुमार झा।
4. दैनिक भास्कर समाचार पत्र कमलकांत शर्मा।

*शोधार्थी (वाणिज्य) देवी अहिल्या विश्वविद्यालय, इन्दौर (म.प्र.) भारत

आजीविका मिशन के सफल क्रियान्वयन में ग्राम सभाओं की भूमिका

सुनीता सोलंकी * संतोष सिंह मालवीय **

प्रस्तावना – ग्रामों में निवासरत परिवारों के बेरोजगार युवक युवतियों को म.प्र. शासन की रोजगारोन्मुखी निति के तहत रोजगार से जोड़ने का कार्य भी मध्यप्रदेश राज्य ग्रामीण आजीविका मिशन द्धारा किया जा रहा है।

आजीविका मिशन का कार्य गरीब परिवारों की महिलाओं को संगठित और प्रेरित करके, स्व. सहायता समूहों के माध्यम से किया जाता है। इसलिए ऐसे परिवारों के साथ काम करते समय संवेदन शीलता की विशेष आवश्यकता है।

गरीबों को प्राथमिकता के आधार पर लाभ दिलाने, सामाजिक सुरक्षा सामाजिक समरसता, आर्थिक हितों तथा अधिकारों के उपयोग करने में ग्राम सभाओं तथा पंचायत राज संस्थाओं की अहम् भूमिका है। इस तरह आजीविका मिशन के लक्ष्यों और उद्देश्यों की प्राप्ति में ग्राम–सभा एक सहयोगी माध्यम है। मध्यप्रदेश देश का सबसे पहला राज्य है। जिसने सबसे पहले भारतीय संविधान के 73 वें संशोधन को लागू किया। महात्मा गांधी के ग्राम–स्वराज्य के सपने को साकार करने के लिऐं म.प्र. ने 26 जनवरी 2009 से म.प्र. पंचायत राज ग्राम–स्वराज संशोधन अधिनियम लागू किया।

एक गांव के लोगों को अपनी जरुरतो को पूरा करने, अपनी समस्या को निपटारा करने, अपने गांव का विकास करने, पानी, बिजली, स्वास्थ, सफाई, शिक्षा, जैसी समस्याओं को सुलझाने में ग्राम सभाओं के माध्यम से आम आदमी की सीधी और सक्रिय भूमिका सुनिश्चित करना इसका मुख्य उद्देश्य रहा है।

लक्ष्यों को प्राप्त करने में ग्राम सभा का सहयोग – मिशन के लक्ष्यों और उद्देश्यों की प्राप्ति में ग्राम–सभा एक सशक्त एवं सहयोगी माध्यम है। आजीविका मिशन के अन्तर्गत अनुसूचित जाति, अनुसूचिज जन–जाति, उपस्थित वर्गो महिला प्रमुख परिवारों तथा महिलाओं, निशक्त जनों, भूमिहीन, पलायन करने वाले परिवारों श्रमिकों के सामाजिक आर्थिक सशक्तिकरण पर विशेष जोर दिया जा रहा है।

मिशन का लक्ष्य है, आम गरीब आदमी को उसके हक ओर अधिकार का मंच प्रदान करने वाली, संवैधानिक व्यवस्था है।

ग्राम सभाओं की जिम्मेदारी है, कि अपनी शक्तियों के सहयोग से, ग्राम सभा सदस्यों के साथ मिलकर अपने गांव की जरुरतों को पूरा करने, समस्याओं का समाधान करने, व्यवस्थाओं के बेहतर संचालन, संचालनों का अधिकतम उपयोग करने परिवारों की आवश्यकतानुसार रोजगार के लिए योजनाओं, कार्यक्रमों के सहयोग से पर्याप्त संस्थानों की उपलब्धता कराना, स्वच्छता पानी, स्वास्थ्य शिक्षा जैसे मुद्दों पर योजना बनाना ओर क्रियान्वयन कर अधिकतम लाभ सुनिश्चित करना।

ग्राम सभाओं द्धारा आर्थिक समृद्धि को ध्यान में रखते हुए रोजगार मूलक योजना निर्माण के माध्यम से गांव के गरीब परिवारों को गरीबी रेखा से ऊपर लाया जा सकता है।

समिति सदस्यों के रुप में महिलाओं तथा वंचित तबको की मौजूदगी ग्राम सभाओं में कार्यक्रमों का क्रियान्वयन स्थाई समिति के माध्यम से किया जाता है। आवश्यकतानुसार कार्यो के लिए तदर्थ समितियों को बनाने का प्रावधान है।

महिलाओं को कानूनी हर अधिकार और संरक्षण – महिलाओं को ग्राम सभाओं में बैठने, महिलाओं से जुड़े मुद्दे उठाने और उन पर संवेदन शीलता के साथ प्राथमिकता के आधार पर निर्णय कराने के लिए अपनी बात रखने का अधिकार मिला है।

योजनाओं अथवा कार्यक्रमों के पात्र हितग्राहियों का चयन – ग्राम सभाओं के माध्यम से विभिन्न प्रकार की योजनाओं एवं कार्यक्रमों के लिए पात्र हितग्राहियों का चयन किया जाता है। सामाजिक न्याय व आर्थिक समृद्धि के लिए यह आवश्यक है, कि अधिक से अधिक योजनाओं, कार्यक्रमों का लाभ पात्रतानुसार गांव के लोगों को दिलाया जाय।

विभागीय समन्वय से संसाधनों का अधिकतम उपयोग एवम् लाभ – अजीविका के लिए यह आवश्यक है, कि गरीब परिवारों के खर्च को कम करके आय को बढ़ाने के ज्यादा से ज्यादा अवसर उपलब्ध कराए जायें। ताकि अतिरिक्त आमदनी शुरु हो सकें।

यदि ग्राम सभाओं के माध्यम से सभी गरीब परिवारों की पात्रतानुसार आर्थिक समृद्धि की कार्य योजना बनाई जाय और संबंधित विभागों से सहयोग लिया जाय तो आजीविका के माध्यम से अपनी आर्थिक स्थिति मजबूत कर सकते है।

'सामाजिक अंकेक्षण से सामाजिक और आर्थिक सशक्तिकरण' – ग्राम सभाओं में होने वाली सामाजिक अंकेक्षण की प्रक्रिया से भी सामाजिक सशक्तिकरण तथा आर्थिक विकास की प्रक्रियाओं का मजबूत बनाया जा सकता है।

मिशन का मानना है कि, प्रजातांत्रिक व्यवस्थाओं के अंतर्गत गठित ग्राम सभा के माध्यम से सामाजिक एवम् आर्थिक विकास से जुड़े कार्यक्रमों को गति प्रदान की जा सकती है। इसके लिए ग्राम सभा की विशेष भूमिका

* शोधार्थी, सुमन मानविकि भवन, अध्ययनशाला, उज्जैन (म.प्र.) भारत
** शोधार्थी, सुमन मानविकि भवन, अध्ययनशाला, उज्जैन (म.प्र.) भारत

होती है। तथा ग्राम स्तर पर विकास के कार्यक्रम संपादित किए जा सकते है।

चूँकि ग्राम की वार्षिक कार्य योजना की तैयारी, योजना का क्रियान्वयन, विभिन्न अन्य राज्यों का क्रियान्वयन, हितग्राहियों के चयन तथा पहचान के लिए ग्राम सभा के अधिकृत किया गया है, यह कोशिश भी की गई है, कि ग्राम सभा विकास की एक ईकाई के रुप में कार्य करे, जो कि अपने द्वारा संचालित कार्यक्रमों का स्वयं मूल्यांकन करके जो सीख मिले उसके आधार पर अपनी कार्य पद्धति में आवश्यक बदलाव करें। इन मान्यताओं के लिए पी.एफ टी को ऐसा प्रयास कराना चाहिए कि ग्राम सभा समय-समय पर किये जा रहे कार्यों का विश्लेषण करें तथा कार्य की गुणवत्ता तथा संवहनीयता पर विस्तृत चर्चा करें ताकि ऐसे बिन्दू जो कि कार्य को प्रभावित करते हुऐ लक्ष्यों को प्राप्त करने में बाधा बन रहे है, उनके सामाधान के लिए विशेष राणनीति बनाई जा सके। सहभागी मूल्यांकन तथा अनुश्रवण पद्धति का उपयोग करते हुए महिलाओं के स्व. सहायता समूह को, गरीबों को इस कार्य में जितनी ज्यादा भूमिका प्रदान की जावेगी उतनी ही इस बात की संभावना बनती है, कि विकास के जो भी कार्यक्रम सामुदायिक स्तर पर चलाए जा रहे है, उनमें ग्राम सभा अपनी सकारात्मक भूमिका निभायेगी तथा विकास के कार्यक्रमों को लागू करने में एक जवाबदेह ईकाई के रुप में कार्य करेगी। सामाजिक अंकेक्षण के माध्यम से विकास के कार्यक्रमों में पारदर्शिता सुनिश्चित की जा सकती है।

‘**सामाजिक अंकेक्षण में चर्चा के बिन्दु**’-

- गांव में सभी योजनाओं, कार्यक्रमों का लाभ सभी पात्र हितग्राहियों को मिल रहा है या नहीं।
- विभागीय कर्मचारियों का आवश्यकतानुसार सहयोग एवम् मार्गदर्शन उपलब्ध हुआ या नहीं।
- समन्वय के साथ एवम् योजना बद्ध ढंग से काम किया जा रहा है या नहीं।
- किये गये काम एवं दी गई सहायता का लाभ उचित रुप से हो रहा है, या नहीं।
- गांव में बनाई गई योजना का क्रियान्वयन ठीक से हो रहा है, या नहीं।
- काम समय पर पूरा हुआ या नहीं।
- खर्च पारदर्शिता के साथ एवं संवेदनशीलता के साथ हो रहा है, या नहीं।
- किये गए या किए जाने वाले कार्यो का लाभ सभी को समान रुप से मिल रहा है या नहीं।
- निर्मित संसाधनों का उपयोग सभी लोग कर पा रहे है, या नहीं।
- किसी के साथ भेदभाव या असमानता तो नहीं हो रही है।
- कोई वास्तविक पात्र परिवार किसी योजना के लाभ से वंचित तो नहीं है।
- वंचित, गरीब, निःशक्त , महिलाओं को उनके हक अधिकार मिल पा रहा है, या नहीं।
- पात्रतानुसार योजनाओं का निर्धारण लाभ समय पर पूरा मिल पा रहा है, या नहीं।
- स्कूल, आंगनवाड़ी, राशन की दुकान, उप स्वास्थ केन्द्र ठीक चल रहे है, या नहीं।
- सभी को लाभ मिल रहा है या नहीं।

उपरोक्त बिन्दुओं से हितग्राहियों को राहत मिलेगी।

‘**अन्नकोष, वस्तुकोष, राहत कोष के निर्माण से गरीब तबके को सहारा**’ -ग्राम सभा में चार प्रकार के कोष बनाने की बात की गई है।

(1) अन्नकोष (2) नगद कोष) (3) वस्तु कोष (4) श्रम कोष।

इनसे ज्यादा जरुरते पूरी होगी और उनके आजीविका कार्यो को सहारा मिलेगा।

‘**आर्थिक श्रेणीकरण की जन-केन्द्रित सहभागी प्रक्रिया और ग्राम सभा की स्वीकृति।**’

इस प्रकार के श्रेणीकरण से प्रत्येक गरीब परिवार को लाभानवित करने की सुनिश्चितता के लिए की जाती है। ग्राम सभा की बैठकों में सर्वसम्मति से श्रेणीकरण किए जाने तथा अनुमोदन किए जाने से पारदर्शिता प्रमाणित की जायेगी। ग्राम सभा सदस्य इस पूरी प्रक्रिया से आर्थिक वं सामाजिक रुप से मजबूत बनने के लिए तैयार हो जायेंगे।

‘ग्राम सभाएँ एवं पंचायत राज संस्थाऐं निम्न सहयोग कर सकती है’

- अत्यंत निर्धन-परिवारों को बी.पी.एल. सूची में शामिल करना।
- विभिन्न स्तरों पर एस.एच.जी. की मदद करना।
- पंचायती राज संस्थाओं की वार्षिक योजनाओं में स्वसहायता समूहो की मांगो को शामिल करना।
- एस.एच.जी. नेटवर्क को विभिन्न विभागों की बैठकों में समन्वय करना।
- योजना के जमीनी स्तर पर अनुश्रवण में सहयोग प्रदान करना।
- समस्त गरीब परिवार की महिलाओं को स्व. सहायता समूह से जोड़ना।
- समूह सदस्यों को ग्राम सभा में अनिवार्य रुप से उपस्थित रहना।
- आजीविका का विकास करना।

****

कृषि विकास में जल प्रबन्धन का प्रभाव (म.प्र.के धार जिले में राजीव गांधी जल प्रबन्धन मिशन के विशेष संदर्भ में)

मिसर नरगावें * प्रो. बंशीलाल डावर **

प्रस्तावना – भारत एक कृषि प्रधान देश है। देश में जनसंख्या का बहुत बड़ा भाग गांवों में बसा हुआ है जो मुख्य रूप से कृषि पर निर्भर है। देश की जनसंख्या का लगभग 70 प्रतिशत भाग ग्रामीण क्षेत्रों के अंतर्गत निवासरत हैं। जिनकी जीविका का मुख्य साधन कृषि है। स्वतंत्रता के बाद से ही कृषि का विकास करने के लिए शासन द्धारा विभिन्न प्रकार की योजनाओ को संचालित किया जा रहा है। इन योजनाओं में जल प्रबंधन, योजना भी महत्वपूर्ण है।

जल जीवन दायी तत्व है जो न केवल मानव अपितु जीव-जन्तु, वनस्पति आदि का स्त्रोत बल्कि उन सबके अस्तित्व का आधार है। मानव शरीर का लगभग 60 प्रतिशत भाग जल से निर्मित है। अत: जल मानव जीवन के लिये बहुत ही महत्वपूर्ण है। भारत के अधिकांश ग्रामीण क्षेत्रों में पेयजल की सुविधाओं का नितांत अभाव है, इसलिए ग्रामीण क्षेत्र पेयजल हेतु भूमिगत जल पर अत्यधिक निर्भर होते है। अत: भूमिगत जल का स्तर निरंतर गिर रहा है। ग्रामीण क्षेत्रों के अंतर्गत भूमिगत जल स्तर गिरने के कारण कृषि विकास प्रभावित होता जा रहा है।

हमारे देश में निरंतर बढ़ती हुई जनसंख्या के कारण अनाज की मांग भी बढ़ती जा रही है। अनाज की इस मांग की पूर्ति सिंचाई आधारित कृषि क्षेत्रों से पूरा करना संभव नहीं है। क्योंकि सतही जल स्त्रोत सीमित है और एक सीमा के बाद उनका उपयोग संभव नहीं है। अत: जनसंख्या वृद्धि के अनुपात में अनाज की मांग की पूर्ति के लिये यह आवश्यक है कि वर्षा आधारित कृषि क्षेत्रों में कृषि उत्पादन बढ़ाने के सार्थक प्रयास किये जाये। जिससे कृषि विकास में वृद्धि हो सके।

अध्ययन के उद्देश्य –

1. राजीव गांधी जल प्रबंधन मिशन की रूपरेखा एवं क्रियान्वयन का अध्ययन करना।
2. राजीव गांधी जल प्रबंधन मिशन का कृषि विकास पर पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन करना।
3. इस मिशन की समस्याओं तथा बाधाओं का अध्ययन करना।

अध्ययन क्षेत्र – प्रस्तुत शोध के अध्ययन हेतु मध्य प्रदेश के धार जिले का चयन किया गया है। धार जिला चूंकि आदिवासी एवं कृषि प्रधान क्षेत्र है यहां कि अधिकांश जनसंख्या कृषि पर निर्भर है। साथ ही शासन की कृषि विकास योजना, 'राजीव गांधी जल प्रबंधन मिशन' उपयुक्त क्षेत्र में संचालित है। अत: इसी दृष्टि से इस जिले का चयन किया गया है।

अध्ययन विधि – अध्ययन क्षेत्र में चुनी हुई प्रतिनिधि इकाईयों का चयन किया जाना निदर्शन कहलाता है। प्रस्तुत अध्ययन क्षेत्र से 'राजीव गांधी जल प्रबंधन मिशन से लाभान्वित विकासखण्डों एवं व्यक्तियों को चुना गया है। इस आधार पर अध्ययन हेतु धार जिले के पांच विकासखण्डों का चयन किया गया है। धार, उमरबन, नालछा, तीरला, सरदारपुर को चुना गया है तथा प्रत्येक विकाखण्ड से 30-30 लाभान्वितों का चयन कर उनका अध्ययन एवं विश्लेषण किया गया। इस प्रकार कुल 150 लाभान्वितों का अध्ययन किया जाना है।

समंकों का संकलन – प्रस्तुत अध्ययन हेतु प्राथमिक समंको का उपयोग किया गया है। प्राथमिक समंक साक्षात्कार सूची के माध्यम से अध्ययन क्षेत्र से लाभान्वित लोगो से एकत्रित किये है जो कि लाभान्वितों की शिक्षा, आय, पारिवारिक संरचना, व्यवसायिक गतिविधियों के सामाजिक तथा आर्थिक प्रभावशीलता से संबंधित है।

राजीव गाँधी जल प्रबंधन मिशन का परिचय – म.प्र. राज्य क्षेत्रफल की दृष्टि से देश में सबसे बड़ा राज्य है। लेकिन विभाजित होने के बावजूद भी प्राकृतिक संसाधनों से परिपूर्ण है। आवश्यकता है कि इन संसाधनों का उचित उपयोग करने की मिट्टी जल प्राणियों के लिये सर्वाधिक अति आवश्यक प्रकृति प्रदत्त संसाधन है। म.प्र. राज्य ने प्रदेश में राजीव गाँधी जल प्रबंधन मिशन का शुभारंभ सन् 1975 में किया है। पंचायत एवं ग्रामीण विकास विभाग से इस मिशन द्धारा वर्ष 1995-96 में प्रदेश के 36 जिलों में 267 विकासखण्डों के अंतर्गत प्रारंभ किया गया था।

म. प्र. में राजीव गांधी जल प्रबंधन मिशन की प्रगति – विभिन्न क्षेत्रों में व्याप्त सूखे की समस्या व गिरते भू-जल स्तर एवं कृषि उत्पादन पर कुप्रभाव को कम करने तथा ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार के स्थायी अवसर प्रदान करने के उद्देश्य से म.प्र. सरकार ने राजीव गांधी जल प्रबंधन मिशन का गठन किया है।

म.प्र में राजीव गांधी जल प्रबंधन मिशन के लिए वर्ष 2004-05 में 3000 करोड़ रू का प्रावधान किया गया था। मई 2004 में केन्द्र ने नई सरकार के गठन के बाद अगले कुछ महीनों में इसके अतिरिक्त 248 करोड़ रू प्रदान किए गए। वर्ष 2005-06 के बजट में इस मिशन के लिए 4,750 करोड़ रू की विशाल धनराशि निर्धारित की गयी थी। सामान्य तौर पर ग्रामीण बस्तियों में 250 व्यक्तियों के लिए एक हैडपम्प पर चल रहा देश में लगभग 14 लाख 51 हजार 407 ग्रामीणों बस्तियों में से 13 लाख 22 हजार

* अतिथि विद्वान (अर्थशास्त्र) शासकीय महाविद्यालय, थांदला, जिला - झाबुआ (म.प्र.) भारत
** सहायक प्राध्यापक (इतिहास) शासकीय महाविद्यालय, थांदला, जिला - झाबुआ (म.प्र.) भारत

283 बस्तियों को पूर्ण रूप से तथा 65 हजार 319 बस्तियों को आंशिक रूप से पेयजल सुविधा प्रदान की गई है। भारत में उपयोग योग्य जल-संसाधन की उपलब्धता सतह जल 690 मि.ली. तथा भू-गर्भीय जल-संसाधन के रूप में 396 मि.ली. अर्थात कुल 1086 मि.ली. प्रतिवर्ष है।

राजीव गांधी जल प्रबंधन मिशन के अंतर्गत लाभान्वितों की सामान्य जानकारी -

जाति के आधार पर कृषि विकास में जल प्रबंधन से संबंधित जानकारी

क्रं.	जाति का स्तर	उत्तरदाता की संख्या	प्रतिशत
1.	अनुसूचित जाति	33	22.00
2.	अनुसूचित जनजाति	78	52.00
3.	सामान्य	23	15.34
4.	अन्य पिछड़ा वर्ग	16	10.66
	योग	**150**	**100**

स्त्रोत - सर्वेक्षित आंकड़े

उपरोक्त तालिका से स्पष्ट हैं कि जल प्रबंधन मिशन से लाभान्वितों की जातिवार संबंधी जानकारी एकत्रित की गई है, जिसमें अनुसूचित जाति का 22.00 प्रतिशत है तथा अ.ज.जा. का 52.00 प्रतिशत है जो कि सर्वाधिक है

शिक्षा से संबंधित जानकारी

क्रं.	शिक्षा का स्तर	उत्तरदाता की संख्या	प्रतिशत
1.	अशिक्षित	53	35.33
2.	प्राथमिक	28	18.66
3.	माध्यमिक	21	14.00
4.	हाईस्कूल	17	11.33
5.	हायर सेकेण्डरी	13	8.66
6.	स्नातक	12	8.00
7.	स्नातक से अधिक	6	4.00
	योग	150	100

स्त्रोत - सर्वेक्षित आंकड़े

उपरोक्त तालिका के अंतर्गत शिक्षा से संबंधित जो जानकारी एकत्रित की गई है जिसमें अशिक्षित उत्तरदाताओं का 35.33 प्रतिशत है तथा प्राथमिक स्तर में 18.66 प्रतिशत है। स्नातक से अधिक उत्तरदाताओं का 4.00 प्रतिशत है। अतः शिक्षा के आधार पर अशिक्षित व्यक्तियों का प्रतिशत सर्वाधिक है जो कि 35.33 प्रतिशत है।

राजीव गांधी जल प्रबंधन मिशन के अंतर्गत व्यवसाय संबंधित जानकारी

क्रं.	व्यवसाय	उत्तरदाता की संख्या	प्रतिशत
1.	कृषि	66	44.00
2.	मजदूरी	39	26.00
3.	वनोपज	32	21.33
4.	अन्य	13	8.67
	योग	150	100

स्त्रोत- सर्वेक्षित आंकडे

उपरोक्त तालिका में राजीव गांधी जल प्रबंधन के अंतर्गत व्यवसाय संबंधी जानकारी एकत्रित की गई है जिसमें कृषि से संबंधित व्यवसाय करने वाले उत्तरदाताओं का 44.00 प्रतिशत व मजदूरी करने वाले 26.00 प्रतिशत तथा वनोपज व्यवसाय करने वाले 21.33 प्रतिशत उत्तरदाता है, जिसमें से कृषि का व्यवसाय करने वाले उत्तरदाता सर्वाधिक है।

मिशन से संबंधित प्राप्त रोजगार आय

क्रं.	आय स्तर	उत्तरदाता की संख्या	प्रतिशत
1.	3000 से कम	51	34.00
2.	3-5 हजार	42	28.00
3.	5-10 हजार	33	22.00
4.	10 हजार से अधिक	24	16.00
	योग	150	100

स्त्रोत - सर्वेक्षित आंकड़े

तालिका द्वारा स्पष्ट किया गया है कि मिशन से संबंधित प्राप्त रोजगार आय से संबंधित जानकारी एकत्रित की गई है। जिसमें 3000 से कम रोजगार आय प्राप्त करने वाले उत्तरदाताओं का 34.00 प्रतिशत है साथ ही 5-10 हजार रोजगार आय प्राप्त करने वाले उत्तरदाताओं का 22.00 प्रतिशत है। जिसमें 10 हजार से अधिक रोजगार आय प्राप्त करने वाले उत्तरदाताओं का प्रतिशत 16.00 है। अतः 3000 से कम आय वाले उत्तरदाताओं का प्रतिशत सर्वाधिक है।

समस्या -

1. **सम्पर्क की समस्याँ -** जिन क्षेत्रों में योजना या मिशन, ग्रामीण क्षेत्रों के लिए प्रारम्भ की जाती है वहां पर ग्रामीण क्षेत्रों के लोगो से सम्पर्क करने में बड़ी कठिनाई होती है। गांवों से भी लोग अपने घर दूर-दूर बनाकर रहते है उन्हें इकट्ठा करना और मिशन या योजना से संबंधित जो भी जानकारी कर्मचारी जब बाहर से गांवो में परिवेश करते है, तो उन्हें एक समय एक साथ सम्पर्क में काफी समस्या होती है गांवों को भौगोलिक क्षेत्र भी ऊँचा-नीचा होने के कारण वहां पर वाहन ले जाने में भी समस्या होती है, जिससे वह गांवों के लोगो तक ठीक ढंग से जानकारी नहीं पहुँच पाती है।
2. **योजना के क्रियान्वयन में एकरूपता का अभाव -** जलग्रहण मिशन में योजना के क्रियान्वयन में एकरूपता का अभाव पाया गया है क्योंकि मिशन क्रियान्वयन ऐजेन्सी में सम्मिलित कर्मचारी अलग-अलग विभागों के होते है, योजना का क्रियान्वयन करने में उन्हें उनकी भाषा एवं कार्यशैली के अनुरूप समझाने में उन्हें कठिनाई होती है।
3. **सामाजिक बुराईयों से मिशन की प्रगति में बाधा -**ग्रामीण क्षेत्रों में सामाजिक बुराईयाँ आज भी व्याप्त है, जैसे शराब पीना, झगड़े करना, द्वेष की भावना, चोरी करना आदि समस्याऐं भी मिशन के कार्यो में बाधा उपस्थित होती है, यहां तक कभी-कभी किसी बात को लेकर मिशन के कार्यो के कारण झगड़े भी होते है जिससे कई दिनों तक काम रूक जाता है।
4. **योजना के प्रति ग्रामीणों में रूचि का अभाव -** योजना क्षेत्र में सर्वेक्षण के दौरान ग्रामीणा क्षेत्रों में योजना या मिशन के प्रति जितनी रूचि दिखाई देनी चाहिए, उतनी देखने को नहीं मिलती है रूचि के अभाव में जितना काम होना चाहिए उतना नहीं हो पाता है, जिससे इस मिशन को आगे बढ़ने में कठिनाई होती है।
5. **योजना के प्रचार प्रसार का अभाव -** जल ग्रहण मिशन के कार्य करने वाले पदाधिकारियों, अध्यक्ष एवं अन्य सदस्यगणों को मिशन के कार्यक्रम की पुरी तरह जानकारी नहीं होती, जिससे योजना का प्रचार-प्रसार सहीं तरीके से नहीं हो पाता, जिसके कारण ग्रामीण क्षेत्रों तक इस मिशन की जानकारी नहीं पहुंच पाती है। इस प्रकार राजीव गांधी जल ग्रहण प्रबंधन को अनेक कठिनाईयों का सामना करना पड़ रहा है।

सुझाव –

1. राजीव गांधी जल ग्रहण क्षेत्र प्रबंधन के मिशन के उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए प्रचार-प्रसार के साथ-साथ मिशन द्वारा किये गये, कार्यो के लाभों से लोगो को परिचित किये गये, कार्यो के लाभों से लोगो को परिचित कराया जाना चाहिए, ताकि उनमें मिशन के प्रति और अधिक जागरूकता उत्पन्न हो सके एवं मिशन के उद्देश्यों को व्यवस्थित रूप से समझ सके तथा कृषि क्षेत्र में मिशन द्वारा सिंचाई पर्याप्त रूप से हो सके। कृषि क्षेत्र में विकास की गति को बढ़ावा मिल सके।
2. जल ग्रहण प्रबंधन मिशन की सफलता के लिए आवश्यक है कि मिशन के लाभों से ग्रामीण जनता को स्थानीय भाषा, स्थानीय बोली एवं गांवों में प्रचलित कहावतों के माध्यम से परिचित कराया जाना चाहिए।
3. जल ग्रहण प्रबंधन क्षेत्र मिशन लोक आधारित कार्यक्रम है। इस मिशन द्वारा ग्रामीण क्षेत्रों के लोगो को प्रत्येक वर्ग को इसका लाभ मिलना चाहिए, क्योंकि अधिकतर यह देखने में आया हैं कि गांव के सम्पन्न वर्ग के लोग ही इसमें अधिक से अधिक होते है। निम्न वर्ग के लोगों को पूरी तरह इसका लाभ नहीं मिल पाता है, जिससे उनमें मिशन के प्रति जागरूकता का अभाव होता है। जिसके कारण उन्हें कृषि आधारित ज्ञान का अनुभव नहीं हो पाता और वह आधुनिक कृषि कार्य करने में पिछड़ जाते है। जिससे उनके जीवन स्तर पर प्रभाव पड़ता है।
4. जल ग्रहण प्रबंधन मिशन के कार्यो का सहीं तरीके से क्रियान्वयन करने के लिए प्रति माइक्रोवॉटर शेड में संचालित की जाने वाली जल ग्रहण समिति के अध्यक्ष एवं सचिव एवं योग्य व्यक्ति का ही चयन किया जाना चाहिए जिससे मिशन अपने उद्देश्यों में सफल होकर प्रति व्यक्ति को लाभान्वित कर सके।
5. जल ग्रहण क्षेत्र प्रबंधन मिशन द्वारा जल ग्रहण समिति के सदस्य एवं कार्यकर्ताओं को प्रशिक्षण समय-समय पर नियमित रूप से देना चाहिए, जिससे मिशन के कार्यो का क्रियान्वयन सहीं तरिके से हो सके।
6. जल ग्रहण क्षेत्र प्रबंधन मिशन द्वारा गठित जल ग्रहण समिति में ग्रामीण क्षेत्रों की भागीदारी महिलाओं की सहभागिता भी अधिक से अधिक सुनिश्चित की जाना चाहिए, जिससे महिलाएं मिशन द्वारा रोजगार तथा अपनी रूचि जागृत कर सके।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची :–

1. सामान्य अध्ययन – 'भारतीय अर्थव्यवस्था (अतिरिक्तांक)' प्रतियोगिता दर्पण, उपकार प्रकाशन, स्वदेशी बीमा नगर, आगरा 2008।
2. मुख्य अवधारणा – राजीव गांधी जल प्रबंधन मिशन पंचायत एवं ग्रामीण विकास विभाग म.प्र. शासन भोपाल।
3. जल ग्रहण मार्गदर्शिका – ग्रामीण विकास मंत्रालय भारत सरकार 2011
4. सुभाष यादव – ग्रामीण विकास एवं अर्थव्यवस्था रावत पब्लिकेशन, जयपुर।
5. प्रतियोगिता दर्पण – अतिरिक्तांक भारतीय अर्थव्यवस्था 2011-12।
6. पूर्व शोध पत्र, पत्र-पत्रिकाएं एवं समाचार-पत्र आदि।

****

जन-धन योजना का विस्तार तथा चुनौतियॉ

डॉ. आशा साखी गुप्ता *

शोध सारांश - प्राधानमंत्री जन-धन योजना वित्तीय समावंशन का विश्व का सबसे बड़ा कार्यक्रम है। जन-धन योजना के अन्तर्गत 60 प्रतिशत खाते ग्रामीण क्षेत्रों में तथा 40 प्रतिशत खाते शहरी क्षेत्रों में खुले है। 51 प्रतिशत खाते महिलाओं में खुलवाऐ हैं 10 करोड़ से अधिक लाथर्कियो को रूपे कार्ड जारी कर दिये गऐ है, उन्हें योजना के अन्तर्गत 1-1 लाख रूपये व्यक्तिगत दुर्घटना बीमा का लाभी मिलेगा। इस योजना से प्रत्यक्ष लाभ अन्तरण की सुविधा में वृद्धि होगी तथा लक्षित वर्गो को सीधे लाभ मिलेगा।

योजना के विस्तार के साथ-साथ बैंकों के परिचालन व्यय में वृद्धि के तकनीकी रूप से दशा मानवीय संसाधन की समस्या का सामना करना पड़ेगा। अत: योजना की सफलता हेतु बैंकिग शाखाओं के विस्तार के साथ दशा बैंक कर्मियों की नियुक्ति प्रशिक्षण , तकनीकी क्षमता के विस्तार के साथ बैंकिग परिचालन व्यय के उचित वत्तीय प्रबन्धन की आवश्यकता है।

शब्द कुंजी - जन धन योजना, बैंकिंग ।

प्रस्तावना - प्रधानमंत्री जन धन योजना वित्तीय समावंशन वाली एवक महत्वाकांक्षी योजना है । 28 अगस्त 2014 को इस योजना की शुरूआत की गई। इस योजना के माध्यम से गरीबों को आर्थिक एवं सामाजिक सुरक्षा प्रदान होगी, क्योंकि आज भी गरीब व्यक्ति अपनी वित्तीय आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए महाजन तथा साहूकार की शरण में जाते है। अत: इस योजना के अन्तर्गत वित्तीय समावेशन को शामिल किया गया। यदि देश के अधिकांश लोग वित्तीय सेवाओं से जुडेगे तब आर्थिक विकास के लक्ष्यों को प्राप्त करने में आसानी होगी। वित्तीय समावेशन की दिशा में दुनिया में यह सबसे बड़ा कार्यक्रम है।

उद्देश्य -

1. शहरी व ग्रामीण क्षेत्रों में बैंकिग के विस्तार को ज्ञात करना।
2. यह ज्ञात करना कि बैंकिग का विस्तार आर्थिक विकास में कहां तक सहायक है।
3. योजना के क्रियान्वयन की चुनौतियों को ज्ञात करना।

प्राकल्पना -

1. जन-धन योजना से देश में बैंकिग का विस्तार हुआ है।
2. जन-धन योजना वित्तीय समावेशन की महत्वपूर्ण योजना है।
3. योजना के विस्तार के साथ-साथ बैंकिग क्षेत्र में कई चुनौतियों का सामना करना पड़ेगा।

शोध प्रविधि - प्रस्तुत अध्ययन में द्वितीयक समंक तथा साक्षात्कार पद्धति का प्रयोग किया गया है। शोध-पत्र में विभिन्न पत्रिकाओं, वेबसाइट तथा वित मंत्रालय भारत सरकार द्वारा जारी समंकां का संकलन कर वर्णात्मक तथा विश्लेषणात्मक पद्धति का प्रयोग किया गया है। प्राथमिक स्तर की जानकारी हेतु बैंक कर्मियों से चर्चा कर समस्याओं को ज्ञात करने का प्रयत्न किया गया है।

योजना के चरण - जन-धन योजना मूल रूप से राष्ट्रीय वित्तीय समावेशन मिशन है। इसके अन्तर्गत धन अंतरण, ऋण, पेंशन, बीमा आदि की सुविधा उपलब्ध कराई जा रही। इस योजना को दो चरणों में पूरा किया जाना है।

प्रथम चरण की अवधि 15.08.2014 से 14.08.2015 तक है। इस दौरान बैंकिग सुविधा से वंचित सभी लोगों को बैंकिग सुविधा उपलब्ध कराना, खाते के संतोषप्रद संचालन के उपरांत 5000 रूपये की ओवरड्राफ्ट सुविधा देना, एक लाख का दुर्घटना बीमा एवं 30,000 रूपये का जीवन बीमा कवर देना, रूपे डेबिट कार्ड उपलब्ध कराना, जागरूकता अभियान चलाना आदि कार्य किये जाने है।

दूसरे चरण में 5000 रूपये की ओवरड्राफ्ट राशि के डूबने पर, बैंक का नुकसान कम करने के लिए 'क्रेडिट गारंटी फंड' का सृजन करना , सूक्ष्म बीमा की सुविधा उपलब्ध कराना, पहाड़ी इलाकों में रहने वाली अनुसूचित जनजातियों को बैंक से जोड़ने आदि से संबंधित काम किए जाएगें।

जन-धन योजना तथा वित्तीय समावेशन - यह वित्तीय समावेशन की एक महत्वपूर्ण योजना है। इस योजना के माध्यम से शहरी तथा ग्रामीण क्षेत्रों में गरीब व्यक्ति , कृषक शून्य राशि खाते खुलवा सकते हैं, बैंकिग सेवाओं से जुड़कर सरकारी योजनाओं का लाभ प्राप्त कर सकते है। इससे गरीबों को सामाजिक आर्थिक सुरक्षा उपलब्ध होगी।

जन-धन योजना का विस्तार - इस योजना के अन्तर्गत एक सप्ताह (23 से 29 अगस्त 2014) में रिकार्ड 1,80,96,130 बैंक खाते खोले गए। इस योजना की सफलता को गिनीज बुक ऑफ वर्ल्ड रिकार्डस में दर्ज किया गया है।

वित्त मंत्रालय के आंकडो के अनुसार 21 करोड़ से अधिक परिवारों का सर्वेक्षण करने पर ज्ञात हुआ कि 99.74 प्रतिशत परिवार इस योजना के अन्तर्गत केवल चार महीने में खाता खुलावा चुके है। इस योजना के आरम्भ

* प्राध्यापक (अर्थशास्त्र) शहीद भीमा नायक शासकीय स्नाकोत्तर महाविद्यालय बड़वानी (म.प्र.) भारत

होने के पहले केवल 58 प्रतिशत परिवार बैंकिग प्रणाली से जुडे थे। इस योजना के अन्तर्गत 60 प्रतिशत खाते ग्रामीण क्षेत्रों में खुले है, तथा 40 प्रतिशत खाते शहरी क्षेत्रों में खुले है। 51 प्रतिशत खाते महिलाओं ने खुलवाएँ है। 10 करोड़ से अधिक लाभार्थियों को रूपे कार्ड जारी कर दिये गए है, उन्हें योजना के अन्तर्गत 1-1 लाख रूपये के व्यक्तिगत दुर्घटना बीमा का लाभ मिलेगा। प्राधामंत्री जन-धन योजना की की प्रगति निम्न तालिका दर्शाती है-

प्रधानमंत्री जन-धन योजना 31 जनवरी 2015 तक की स्थिति

क्र.	खातो की संख्या (लाख में)			
		ग्रामीण	शहरी	कुल
1	सार्वजनिक क्षेत्र के बैंक	533	451.47	984.48
2	क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक	184.89	32.98	217.87
3	निजी बैंक	32.26	20.12	52.38
	कुल-	750.15	504.57	1254.73

स्त्रोत- वित्तय मंत्रालय, भारत सरकार द्वारा जारी समंक

स्पष्ट है कि योजना के अन्तर्गत शहरी क्षेत्रों की अपेक्षा ग्रामीण क्षेत्रों में अधिक खाते खोले गऐ। इसके साथ-साथ निजी तथा ग्रामीण क्षेत्रीय बैंक की तुलना में सार्वजनिक क्षेत्र की बैंकों में खाते खुलाने में जनता ने अधिक रूचि दिखाई है। जन धन योजना के अन्तर्गत जमा धन राशि का विवरण निम्नानुसार है -

जन- धन योजना में जमा धन राशि 31 जनवरी 2015 तक की स्थिति

क्र	बैंक	खाते में जमा राशि (लाख रू.में)	शुन्य राशि खाते (लाख में)
1	सार्वजनिक क्षेत्र के बैंक	817463.04	655.41
2	क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक	159948.08	159.35
3	निजी बैंक	72551.5	29.97
	कुल -	1049962.62	844.73

स्त्रोत - वित्त मंत्रालय , भारत सरकार द्वारा जारी समंक

स्पष्ट है कि जनता ने सार्वजनिक क्षेत्र के बैंको में खाता खुलवाऐ है, तथा क्षेत्रीय एवं निजी बैंकों की अपेक्षा अधिक राशि जमा भी की गई है। लगभग 844.73 लाख शुन्य राशि खाते भी है, जो एक तरह से वित्तीय भार है, पर जैसे-जैसे प्रत्यक्ष लाभ अंतरण (डी बी टी) अर्थात सब्सिडी सीधे खातों में पहुंचने की योजना का विस्तार होगा वैसे -वैसे इन खातों में रकम बढ़ती जावेगी। 2014-15 वित्तीय वर्ष में डी बीटी के जरिये लगभग 3000 करोड़ रूपयें इन खातों में भेजे जावेगे। अगले वित्त वर्ष में लगभग 15 करोड़ रूपये बैंक खातों में सब्सिडी राशि भेजने की सरकारी योजना है। इस प्रकार प्रधानमंत्री जन-धन योजना से भविष्य में डी.बी.टी. की सुविधा में वृद्धि होगी इससे लक्षित वर्गो को सीधे लाभ मिलेगा तथा कुछ सीमा तक भ्रष्टाचार पर लगाम लगेगा। अधिक खाते खुलने से लोगों की बैंकिग आदतों का विस्तार होगा तथा देश में विशेषकर ग्रामीण क्षेत्रों में साहूकार प्रवृत्ति पर कुछ सीमा तक नियन्त्रण लगेगा।

योजना से कृषि वित प्रबंधन - प्रधानमंत्री जन-धन योजना के लागू होने से किसानों को रूपे कार्ड, मोबाइल बैंकिग की सुविधा ,दुर्घटना व जीवन बीमा, पेंशन आदि की सुविधा मिलेगी। किसानों को किसान क्रेडिट कार्ड, कर्ज तथा सब्सिडी का लाभ मिल सकेगा, यह किसान के व्यक्तिगत वित प्रबंधन में सहायक रहेगा।

योजना की चुनौतियॉ - वित्तीय समावेशन वाली इस योजना के विस्तार के साथ-साथ व्यवहारिकता के स्तर पर निम्न चुनौतियॉ का सामना करना पड़ रहा है-

1. बहुत से खातों का परिचालन नहीं हो रहा है, जो निष्क्रीय हो गऐ है।
2. बैंको के परिचालन खर्च में वृद्धि हुई है।
3. खातों के अनुपाल में अपर्याप्त मानवीय संसाधन होना।
4. खातों के विस्तार के साथ तकनीकी क्षमता सीमित होना।
5. बैंकिग कार्य को अद्यतन करने हेतु बैंक कर्मियों हेतु निरंतर प्रशिक्षण कार्यक्रम चलाना।
6. खातों के दोहरीकरण को रोकना।
7. छोटे-छोटे गांवो में बैंकिग शाखाओं का विस्तार करना।

सुझाव -

1. योजना के विस्तार हेतु बैंकिग शाखा का विस्तार आवश्यक है।
2. अतिरिक्त बैंक कर्मियों की नियुक्ति तथा प्रशिक्षण की आवश्यकता है।
3. बैंकों में तकनीकी क्षमता के विस्तार की आवश्यकता हैं।
4. बैंको के बढ़ते हुऐ परिचालन व्यय की वित्तीय व्यवस्था हेतु उचित वित्तीय प्रबंधन की आवश्यकता है।
5. योजना की सफलता हेतु देश में अद्य: संरचना, शिक्षा तथा जन जागरूकता में विस्तार की आवश्यकता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची :-

1. डॉ. रीता माथुर-(2008) मुद्र बैंकिग एवं राजस्व पंचशील प्रकाशन , जयपुर पृष्ठ क्रमांक 225
2. डॉ. बबीता अग्रवाल-(2009) मुद्रा तथ बैंकिग-ओमेगा पबिलिकेशन, नई दिल्ली पृष्ठ क्रमांक 221
3. सतीश सिंह- प्रधानमंत्री जन-धन योजना की चुनौतियां,कुरूक्षेत्र (ISSN NO. 0971-8451) (नवम्बर 2014) पृष्ठ-18,19
4. पायल सक्सेना - अर्थिक समेकन की नयी कहानी योजना -फरवरी 2015 पृष्ठ-35
5. वित्त मंत्रालय, भारत सरकार द्वारा जारी समंक।
(www.pmjdy.gov.in)

****

Naveen Shodh Sansar (An International Refereed Research Journal) April to June 2015, Volume - 2
ISSN 2320-8767, E- ISSN 2394-3793, Imapct Factor - 0.715 (2014)

आर्थिक सुधारों के परिप्रेक्ष्य में दलितों की शैक्षणिक स्थिति

डॉ. अंजना जैन *

शोध सारांश – दलित भारतीय समाज का एक बड़ा अंश है जो सदियों से तिरस्कृत व शोषित जीवन जी रहा है। हालांकि दलितों की सुरक्षा व उत्थान के लिए संविधान में कई प्रावधान है। अनेक योजनाऐं व कार्यक्रम इनके उत्थान के लिए चलाये जा रहे है जिससे वे विकास की ओर उन्मुख जरूर हुए। परन्तु उनका विकास शैशवावस्था में ही है। इसका प्रमुख कारण सामाजिक असमानता, आर्थिक शोषण व और शिक्षा की कमी इसके मूल में है। प्रस्तुत अध्ययन में यह जानने का प्रयास किया गया है कि, अनुसूचित जनजाति की प्रारम्भिक स्तर की शिक्षा की स्थिति क्या है? और उनकी शिक्षा के मार्ग में बाधक कारण कौन से है? प्रस्तुत अध्ययन में प्राथमिक व द्वितीयक तथ्यों व आंकड़ों के आधार पर निष्कर्ष निकाले गये हैं।

प्रस्तावना – भारतीय समाज का बुनियादी ढांचा जन्मजात असमानता पर आधारित जातियों और उपजातियों में विभाजित है। इस बटवारे में वर्षो से शोषित एवं उत्पीड़त दलित सबसे नीचे है। डॉ. बाबा साहब अम्बेडकर के अनुसार –'हिन्दु समाज उस बहुमंजिला मीनार की तरह है जिसमें प्रवेश करने के लिए न कोई सीढ़ी है और न ही कोई दरवाजा, जो जिस मंजिल में पैदा होता है उसे उसी मंजिल में मरना होता है।'[1] हालांकि दलितों की दशा सुधारने के लिए अनेक समाज सुधारक समय-समय पर प्रयास करते रहे हैं, परन्तु दलितों की दशा आज भी दयनीय ही है।

दलित शब्द एक ऐसे विस्तृत जीवन का बोध कराता है जो हमारे समाज का एक बड़ा अंश है और जो सदियों से तिरस्कृत जीवन जीता चला आ रहा है। दलित करूणा या पश्चात को नहीं बल्कि बेवजह दमन और अपमान का शिकार होने के स्वाभाविक रोष को व्यक्त करता है। हमारे समाज के इन वर्गों की प्रकति और उत्थान का हमारी राष्ट्रीय प्रगति और उत्थान के साथ गहरा सम्बन्ध है। देश की जनसंख्या का विशाल भाग आज भी निर्बल और दलित है। हालांकि दलितों की सुरक्षा एवं उन्नयन हेतु संविधान के अनुच्छेद 14, 15, 16, 19, 23, 29, 164, 275, 330, 334, 338, 339, 342, 366 पांचवी व छठी अनुसूचियों में निहित है इन प्रावधानों में दलितोत्थान हेतु अनेक योजनाऐं एवं कार्यक्रम चलाये गये।'[2] परिणामस्वरूप दलितों की आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक व शैक्षणिक दशा में सुधार अवश्य हुआ वे विकास की ओर उन्मुख जरूर हुए परन्तु अभी उनका विकास शैशवावस्था में ही है। भारत सरकार द्वारा अनुमोदित आंकड़ों के अनुसार भारत की कुल दलित आबादी के 55 प्रतिशत लोग गरीबी रेखा के नीचे अपना जीवन यापन कर रहे हैं।

हमारे देश में दलित वर्ग सबसे पिछड़े वर्गा में से है। हालांकि आजादी के बाद दलित साक्षरता का प्रतिशत बढ़ा है। पर सन्तोष:जनक नहीं है।

अध्ययन का उद्देश्य –

1. अनुसूचित जनजाति में प्रारम्भिक स्तर की शिक्षा स्थिति का अध्ययन करना।
2. शिक्षा के मार्ग में बाधक कारणों का अध्ययन करना।

आंकड़ों व तथ्यों का संकलन – प्रस्तुत शोध पत्र द्वितीयक तथ्यों पर आधारित है जिसके आंकड़े शिक्षा विभाग, सरकारी गजट, शोध पत्रिकाओं, ई-बुक रिपोर्ट, समाचार पत्र के माध्यम से, सांख्यिकी विभाग से एकत्र किये गये हैं।

अध्ययन से प्राप्त तथ्यों का विश्लेषण – प्रस्तुत अध्ययन के माध्यम से उद्देश्य के अनुसार भारत में शिक्षा के विभिन्न चरणों में अनुसूचित जनजाति की दर, अनुसूचित जनजातियों का सकल दाखिला अनुपात और जनसंख्या आदि तालिकाओं का विश्लेषण किया गया है।

सम्बन्धित साहित्य का अध्ययन – विगत सौ वर्षो से कुछ प्रांतीय सरकारों ने दलित वर्गो की स्थिति सुधारने के लिए कुछ ठोस कदम उठाये। वर्ष 1885 में मद्रास सरकार ने ग्रांट इन कोड बनाकर इन वर्गो के लोगों की वित्तीय सहायता और शिक्षा संस्थानों में विद्यार्थियों की मदद का प्रावधान किया। राष्ट्रीय स्तर पर 1919 में दलित वर्गो की स्थिति में सुव्यवस्थित सुधार हेतु कदम उठाये गये। सन् 1935 में भारत सरकार के अधिनियम 1935 में इन वर्गो के लिए मिश्रित व्यवस्था की गई। स्वतन्त्रत भारत में जब 1950 में देश का संविधान बना तो इन वर्गो के सामाजिक व शैक्षणिक पिछड़ेपन को ध्यान में रखकर उनके लिए विशेष प्रावधान किए गये। अनुसूचित जाति व अनुसूचित जनजाति के लिए अनुच्छेद 335 व 338 में आरक्षण की व्यवस्था की गई।'[4] वर्ष 1971-81 के दशक में सामान्य जनसंख्या की साक्षरता दर 6.78 प्रतिशत थी जो 1981-91 के दशक में 16 प्रतिशत बढ़ोतरी हुई लेकिन अनुसूचित जनजाति की साक्षरता दर में क्रमश: 5.05 प्रतिशत से बढ़कर 13.25 प्रतिशत हुई। जबकि 2001-2011 में 24 प्रतिशत बढ़ोतरी रही।'[5]

शर्मा ब्रह्मदेव (1976) के अध्ययन के अनुसार कई राज्यों में जनजातिय बच्चों को वही पाठ्यक्रम और पुस्तकें पढ़ाई जाती है जो शेष राज्यों व शहरी व ग्रामीण बच्चे को पढ़ाई जाती है जो जनजाति बच्चों को प्रभावित नहीं करती क्योंकि उनकी सांस्कृतिक पृष्ठभूमि अलग होती है। रमेश वर्मा – जनजाति परिवारों में विसंगतियाँ जिससे औपचारिक शिक्षा के प्रति कम रूझान पाया जाता है।

* प्राध्यापक, शासकीय महारानी लक्ष्मीबाई स्नातकोत्तर कन्या महाविद्यालय, इन्दौर (म.प्र.) भारत

तालिका क्रमांक 1

शैक्षणिक स्थिति की तुलनात्मक दर

क्र.	वर्ष	साक्षरता का प्रतिशत	
		सामान्य श्रेणी के साक्षरता प्रतिशत	अनु. जनजाति में साक्षरता प्रतिशत
1.	1971-81	6.78	0.05
2.	1981-91	16.00	13.25
3.	1991-2001	35.00	29.05

स्त्रोत : शिक्षा विभाग, मानव संसाधन, नई दिल्ली

तालिका क्रमांक 2 (देखे)

तालिकाओं का विश्लेषण - तालिका क्र. 1 के विश्लेषण से स्पष्ट है कि, सामान्य श्रेणी व अनुसूचित जनजाति में साक्षरता का प्रतिशत लगातार बढ़ता जा रहा है। लेकिन यह प्रतिशत सामान्य श्रेणी की तुलना में कम है इसका कारण अनुसूचित जनजातियों की निम्न आर्थिक स्थिति जीवन यापन के साधनों की कमी होने के कारण वे बच्चों को काम पर ले जाते हैं इसके अतिरिक्त अंधविश्वास व रूढ़ीवादिता तथा शिक्षा के प्रति नकारात्मक सोच भी शिक्षा के मार्ग में बाधक कारण बताये।

तालिका क्र. 2 के विश्लेषण से स्पष्ट है कि अनुसूचित जनजातियों में सफल दाखिला अनुपात में प्रगति की रफ्तार लगातार बढ़ रही है। और यही स्थिति लड़कियों के सकल दाखिला अनुपात व संख्या पर भी लागू होती है। चर्चा में पाया गया कि अनुसूचित जनजातियों की शिक्षा पर दी जाने वाली स्कॉलरशिप व अन्य योजनाओं से दाखिले की रफ्तार तो बढ़ी है किन्तु वे अपनी शिक्षा पूर्ण करने के स्थान पर केवल स्कालरशिप प्राप्त करने के लिए दाखिला लेते हैं। किन्तु शिक्षा पूरी नहीं करते और अध्ययन बीच में ही छोड़ देते हैं। इसका कारण जानने पर पाया गया कि जनजाति समाज में यह धारणा व्याप्त है कि शिक्षा से लड़के लड़कियों उददड़ हो जाते हैं, समाज से कट जाते हैं, भटक जाते हैं। पढ़ लिखकर अच्छी नौकरी हासिल कर परिवार से सम्बन्ध तोड़ लेते है। इस लिए कुछ लोगों में शिक्षा के प्रसार का विरोध किया। चर्चा में यह भी पाया गया कि जनजाति परिवार बेरोजगारी व गरीबी का शिकार है।

निष्कर्ष - नई आर्थिक व शिक्षा नीति के अनुसार शिक्षा समाज के उपेक्षित व शोषित वर्ग को अधिक सम्पन्न व कारगर बनाने का माध्यम है। इसलिए सदियों से कुचले गये दलित समाज को उठाने के लिये उनकी शिक्षा पर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता शिक्षा को प्रशिक्षण व कौशल के साथ रोजगारोन्मुखी बनाने की जरूरत है। जनजाति परिवार कृषि बुनकर, व मजदूर की पृष्ठभूमि से है उनकी संस्कृति व आवश्यकता भिन्न है। अत: स्थान व आवश्यकता को ध्यान में रखकर पाठ्यक्रम तैयार किये जाय और पाठ्यक्रम में शिल्प, खेती, संगीत, तीरंदाजी, श्रम महत्व के पाठ्यक्रमों को शामिल किया जाय। इससे शिक्षा के प्रति रूझान बढ़ेगा तथा सामाजिक परिवर्तन के साथ आर्थिक सुधार भी होंगे।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची :-

1. कुमार विजय - हाशिए पर खड़ा समाज - शोध आलेख - हिन्दुस्तान, 22 जुलाई 2005, पृ.सं. 5
2. शर्मा ब्रह्मदेव - रोजगार गारन्टी और आदिवासी जनसत्ता, 2 सितम्बर 2005, पृ.सं. 4
3. तिवारी अंजली - आर्थिक सुधारों के परिप्रेक्ष्य में दलितों की स्थिति - 'उदारीकरण, भूमण्डलीकरण एवं दलित' 2009 पृ.सं. 140 से 147
4. जनजातीय उपयोजना वार्षिक रिपोर्ट, भारत सरकार, ग्रामीण विकास मंत्रालय, 2003-04, पृ.सं. 59
5. मोहती डी.पी. - भारत में जनजाति शिक्षा रोजगार समाचार दिसम्बर 2005, पं.सं. 1 से 3 व 20 से 22
6. सिन्हा अर्चना एवं त्यागी, ओ.एस. निर्बल और दलित वर्गो के उत्थान के प्रति बढ़ते कदम - कुरूक्षेत्र दिसम्बर 1999, पृ.सं. 29 से 31
7. आर्य जियालाल - दलित समाज आज की चुनौतियाँ आलेख शोध पत्रिका, पृ.सं. 38

तालिका क्रमांक 2 - शैक्षणिक स्थिति की तुलनात्मक दर

स्तर वर्ष	सामान्य जनसंख्या			अनुसूचित जनजाति		
	लड़के	लड़कियाँ	कुल	लड़के	लड़कियाँ	कुल
1980-81 पहली से पाँचवी 6 से 11	95.8	64.1	85.5	94.2	45.9	70.0
छठी से आठवी 11-14	54.3	28.6	41.9	28.2	10.8	19.5
1990-91 पहली से पाँचवी 6 से 11	114.0	85.5	100.1	126.8	78.6	103.4
छठी से आठवी प्रगति की रफ्तार पहली से पाँचवी तक	76.6 18.7	47.0 29.2	62.1 23.8	51.3 35.8	27.3 49.0	39.7 43.0
प्रगति की रफ्तार छठी तक	25.2	26.3	25.7	33.4	26.8	30.5

स्त्रोत : चुने हुए शैक्षणिक आंकड़े 1995-96 शिक्षा विभाग (मानव संसाधन, नई दिल्ली)[3]

कृषि वानिकी में ग्रामीण महिलाओं की कार्य सहभागिता

प्रेमलता एक्का *

प्रस्तावना – किसान की घनिष्ठ सहयोगी उसकी पत्नी, बेटी या मां होती है। ग्रामीण महिला पुरुष के साथ कंधे से कंधा मिलाकर प्रतिदिन 8 से 9 घंटे खेतीबाड़ी के अनेक कार्यो में हाथ बटाकर अपने परिवार का बोझ हल्का करती हैं। प्रसिद्ध कृषि वैज्ञानिक डॉ.एम.एस स्वामीनाथन लिखते हैं कि- 'इतिहासकारों का मानना है कि नारी ने ही सर्वप्रथम खाद्यान्न फसलों के पौधों को अपनाया और घरेलू बनाया। जब मनुष्य भोजन की तलाश के लिए शिकार पर जाते तो नारी घर के आसपास के बीज इकट्ठा कर बो दिया करती थी। इस प्रकार खाद्यान्न फसलों को अपनाने का कार्य हुआ।'

भारत की कृषि अर्थव्यवस्था में महिलाएं मुख्य कार्यबल हैं। कुल जनसंख्या का लगभग 48 प्रतिशत हिस्सा महिलाओं का है। जिसमें लगभग 75 प्रतिशत ग्रामीण महिलाएं हैं। महिलाएं घरेलू कार्यो में 8 से 9 घंटे व्यस्त रहती है, किंतु घर से बाहर कार्य करने वाली महिलाओं का प्रतिशत विशेषकर संगठित क्षेत्रों में मात्र 13 प्रतिशत महिलाएं ही कार्य करती है। कार्यकारी महिलाओं की सबसे अधिक संख्या असंगठित क्षेत्रों में है। प्रत्येक 10 महिलाओं में 09 महिलाएं असंगठित क्षेत्रों में काम करती हैं।

कृषि में आर्थिक रुप से क्रियाशील महिलाओं में 4/5 हिस्सा प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष रुप से रोजगार में लगा है।

प्रस्तुत शोध पत्र बघेलखण्ड के रीवा, सीधी, सतना, शहडोल, उमरिया जिलों में कृषि वानिकी पर महिलाओं की सहभागिता पर निर्भर है। बघेलखण्ड के सभी जिले मूलत: कृषि अर्थव्यवस्था पर आधारित है और कृषि वर्षा पर निर्भर रहती है। सिंचित जमीन का रकवा अत्यंत कम है। ऐसी स्थिति में ग्रामीण अर्थव्यवस्थाओं में महिलाओं की भागीदारी बढ़ जाती है। वर्तमान अध्ययन में ग्रामीण महिलाओं की कृषि वानिकी में भागीदारी एवं जागरुकता को केन्द्र बिंदु बनाया गया है।

अध्ययन के उद्देश्य- प्रस्तुत शोध पत्र में कृषि के सहायक व्यवसाय कृषि वानिकी के विस्तार, महत्व एवं उसमें महिलाओं की सहभागिता की परख की गयी है। इसके अध्ययन के मुख्य दो उद्देश्य हैं-

1. कृषि वानिकी में महिलाओं की सहभागिता का अध्ययन।
2. कृषि वानिकी के क्षेत्र में महिलाओं की जागरुकता की जांच करना।

अध्ययन विधि- प्रस्तुत अध्ययन सतना जिले के ग्राम सोहौला पर केन्द्रित है। इस ग्राम के चयन का मुख्य कारण यह है कि यहां पर किसान मेला एवं किसान गोष्ठियों का आयोजन कृषि वानिकी केन्द्र सतना द्वारा किया जाता रहा है और साथ ही यहां पर एन.जी.ओ. द्वारा ग्रामीण एवं युवकों को कृषि वानिकी के क्षेत्र में जागरुक किये जाने का कार्य किया जा रहा है।

न्यादर्श- ग्राम सोहौला जिला सतना के 100 महिलाओं के न्यादर्श का चयन दैव निदर्शन द्वारा किया गया है। चयन करते समय यह ध्यान में रखा गया है कि चयनित महिलाएं कृषि एवं वन संबंधित कार्यो में लगी हो और उनसे परिचित हो।

अध्ययन में पाया गया कि ज्यादातर महिलाएं अशिक्षित थी, संयुक्त परिवार की सदस्य थी एवं उनका सामाजिक व आर्थिक स्तर भी निम्न था। किन्तु और अधिक कमाने की रूचि, परिवार के अच्छे भरण-पोषण की इच्छा एवं और अधिक सहयोग कर परिवर्तन की लालसा तीव्रता से देखी गयी।

अध्ययन ग्राम की महिलाओं में खेती-बाड़ी के कार्यो में पुरूष के साथ सहभागिता उच्च स्तर पर देखी गयी। यहां तक कि निढाई, गुड़ाई, कटाई, भंडारण, खेतों में खाद डालना, जंगल से लकड़ी व चारा लाने आदि कार्यो में महिलाओं की भीगीदारी लगभग 80 प्रतिशत पायी गयी। साथ ही घरेलू कार्यो में इनकी सहभागिता 100 प्रतिशत देखी गयी। अध्ययन क्षेत्र की महिलाओं का कृषि कार्यो में भागीदारी एवं गतिविधियों का प्रतिशत निम्न सारिणी क्र.-1 में देखा जा सकता है-

सारिणी क्र.-1

खेती-बाड़ी में ग्रामीण महिलाओं की भागीदारी

क्र.	कार्य	भागीदारी का प्रतिशत
1.	बीज उपचार	38 प्रतिशत
2.	बुवाई	89 प्रतिशत
3.	उर्वरक डालना	18 प्रतिशत
4.	निराई-गुड़ाई	90 प्रतिशत
5.	पक्षियों से रखवाली	28 प्रतिशत
6.	कटाई एवं मड़ाई	90 प्रतिशत
7.	भंडारण	52 प्रतिशत
8.	जंगल से लकड़ी एवं चारा इकट्ठा करना	42 प्रतिशत

स्त्रोत - आर्थिक समीक्षा 2011-12

ग्रामीण महिलाऐं एवं कृषि वानिकी – अध्ययन क्षेत्र में कृषि वानिकी के प्रति जागरूकता का परीक्षण किया गया। ग्रामीण महिलाओं में कृषि वानिकी शब्द के प्रति अनभिज्ञता देखी गयी किंतु कृषि वानिकी से संबंधित कार्यो से किसी न किसी रुप से परिचित रहने वाली महिलाओं का प्रतिशत उच्च पाया गया

कृषि वानिकी के प्रति अध्ययन क्षेत्र की महिलाओं की जागरूकता एवं उसका प्रतिशत निम्न सारिणी क्र. 2 द्वारा देखा जा सकता है -

सारिणी क्र.-2

ग्रामीण महिलाओं में कृषि वानिकी के जागरूकता

* सहायक प्राध्यापक (अर्थशास्त्र) शासकीय कन्या स्नातकोत्तर महाविद्यालय, अम्बिकापुर (छ.ग.)भारत

क्र.	कृषि वानिकी के घटक	प्रतिशत
1.	वृक्षों का दवा के रुप में प्रयोग	68 प्रतिशत
2.	पेड़ों से वर्षा की निर्भरता	40 प्रतिशत
3.	ईधन, लकड़ी, चारा एवं वनोपज प्राप्त करना	80 प्रतिशत
4.	मिट्टी की उर्वरता में वृद्धि एवं क्षरण	45 प्रतिशत
5.	पर्यावरण सुधार	52 प्रतिशत
6.	मेड़ पर वृक्ष लगाना	48 प्रतिशत
7.	पौधशाला संबंधी जागरूकता	21 प्रतिशत
8.	फसलों के मध्य वृक्ष लगाना	8 प्रतिशत

स्त्रोत - आर्थिक समीक्षा 2011-12

उक्त सारिणी से ज्ञात होता है कि अध्ययन क्षेत्र की महिलाओं में कृषि वानिकी के कुछ घटकों जैसे- ईधन, लकड़ी, चारा एवं वनोपज प्राप्त करना, वृक्षों का दवा के रुप में प्रयोग, पर्यावरण सुधार आदि कार्यो के प्रति जागरूकता 50 से 80 प्रतिशत के बीच पायी गयी। जबकि फसलों के मध्य वृक्ष लगाना, पौधशाला संबंधी कार्यो के प्रति जागरूकता कम पायी गयी। जिसे बढ़ाने की आवश्यकता है।

ग्रामीण महिलाओं में कृषि वानिकी से संबंधित जागरूकता में कमी पायी गयीं उनकी मुख्य समस्या सिंचाई हेतु जल की कमी, वित्त की कमी, अच्छे वृक्षों के पौध उपलब्ध न होना, जानवरों द्वारा चरने की समस्या, अशिक्षा एवं सरकारी विभागों की उदासीनता आदि मुख्य समस्याएं रही हैं।

क्या होना चाहिए - कृषि वानिकी की सफलता ग्रामीण महिलाओं की शिक्षा, नेतृत्व एवं जागरूकता पर निर्भर करती है। यह एक विरोधाभास है कि कृषि उत्पादन में जहां पर 60 प्रतिशत कृषि कार्य महिलाओं द्वारा किया जाता है जबकि कृषि वानिकी विस्तार कार्यक्रम में महिलाओं की संख्या अत्यंत कम है। आवश्यकता इस बात की है कि कृषि वानिकी विस्तार कार्यक्रम का नेतृत्व महिलाओं के हाथ में दिया जाए। साथ ही प्रसार कार्यक्रम जैसे- गोष्ठियां, प्रक्षेत्र भ्रमण, वन महोत्सव एवं महिला समूहों का गठन आदि के द्वारा प्रशिक्षण देकर ग्रामीण महिलाओं को कृषि वानिकी के प्रति जागरूक किया जा सकता है।

निष्कर्ष के रुप में कहा जा सकता है कि ग्रामीण महिलाओं की कृषि कार्य एवं कृषि वानिकी के प्रति जागरूकता एवं सहभागिता उनके आर्थिक एवं सामाजिक आत्मनिर्भरता के लिए अत्यंत आवश्यक है। विशेषकर कुटीर उद्योगों की संभावनाएं बढ़ेगी और ग्रामीण महिलाओं को रोजगार के अवसर उपलब्ध होगें। अत: सरकार का दायित्व है कि वह सहभागी प्रबंधन एवं महिलाओं की नेतृत्व क्षमता का उपयोग नीति निर्धारण, योजना प्रबंधन एवं क्रियान्वयन में 80 प्रतिशत से अधिक महिलाओं की सहभागिता सुनिश्चित कर करे।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. सिन्हा वी.सी., 'भारतीय आर्थिक नीति', मयूर पेपरवैक्स, नोएडा, 2008 सुंदरम्, 'भारतीय अर्थव्यवस्था', एस चन्द एवं कं. न्यू दिल्ली, 2009
3. मिश्र एवं पुरी, 'भारतीय अर्थव्यवस्था' हिमालया पब्लिसिंग हाउस, नई दिल्ली, 2009
4. डॉ. माहेश्वरी पी.डी. एवं डॉ. गुप्ता शीलचंद, 'भारतीय आर्थिक नीति', कैलाश पुस्तक सदन, 2006
5. प्रतियोगिता दर्पण 'भारतीय अर्थव्यवस्था' विशेषांक 2013
6. आर्थिक समीक्षा 2011-12
7. आर्थिक समीक्षा 2010-11

****

भारत में उपयुक्त कृषि पद्धतियाँ

डॉ. रीतू राजपूत *

प्रस्तावना – राष्ट्रीय आय में लगभग 22 प्रतिशत का योगदान देने वाला कृषि क्षेत्र अर्थव्यवस्था के लिए भी उतना ही महत्व रखता है जितना आज से 60 वर्ष पूर्व भारत की जनसंख्या का 70 प्रतिशत भाग आज भी गाँव में निवास करता है। जहाँ मुख्य व्यवसाय कृषि है तथा कार्यशील जनसंख्या का 58 प्रतिशत कृषि से आजीविका प्राप्त करता है। भारत जैसे देश के लिए इसकी समृद्धि एवं उन्नति अति आवश्यक है। यह कहना भूल होगा कि कृषि केवल जीविकोपार्जन का साधन मात्र है। राष्ट्र की समृद्धि, योजनाओं की सफलता, विदेशी मुद्रा की प्राप्ति, आर्थिक एवं स्थायित्व इत्यादि सभी कृषि के विकास पर निर्भर है। कृषि उत्पादन में कृषि वृद्धि तभी सम्भव है, जब कृषक को यह विश्वास रहे कि उसके परिश्रम का लाभ उसी को मिलेगा, इसके लिए जरूरी है कि जीत का आकार लाभदायक हो और वैज्ञानिक ढंग से खेती की जाए। इस सम्बन्ध में कृषि सुधार समिति का सुझाव था कि कृषि पद्धति का भावी स्वरूप ऐसा होना चाहिए ताकि व्यक्ति को अपने व्यक्तित्व के विकास का अवसर मिले, कोई शोषण न होने पाए, उत्पादकता अधिकतम हो तथा व्यवहार में यह प्रणाली सुगमतापूर्वक लागू की जा सके। इन सिद्धान्तों के सन्दर्भ में विभिन्न प्रकार की कृषि प्रणालियों पर विचार करना उचित होगा।

कृषि पद्धति का अर्थ – कृषि पद्धति से तात्पर्य कृषि का सामाजिक एवं आर्थिक प्रबन्ध के आधार पर वर्गीकरण करने से है जैसे व्यक्तिगत कृषि, राजकीय कृषि, सहकारी कृषि आदि। सरल शब्दों में कृषक द्वारा जिस ढंग से खेती की जाती है। उसे कृषि पद्धति अथवा कृषि प्रणाली कहते है। यदि हम इतिहास का अवलोकन करें तो हमारे देश में कृषक द्वारा स्वयं या अपने परिवार की सहायता से खेती की जाती है। खेती करने का यह एक तरीका है। इसे हम व्यक्तिगत कृषि या पारिवारिक कृषि कह सकते है। भारत में कृषि की विभिन्न पद्धतियाँ प्रचलित हैं उन्हीं में से यह एक व्यक्तिगत कृषि पद्धति भी है।

व्यक्तिगत या पारिवारिक कृषि – इस प्रणाली में भूमि का स्वामी कृषक होता है और भूमि पर कृषि स्वयं एवं परिवार की सहायता से करता है। यदि भूखण्ड बड़ा हो तो कृषक श्रमिक रखकर भी कार्य करवा लेता है। इसकी पद्धति की एक महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि कृषक और सरकार के मध्य कोई मध्यस्थ नहीं होता है। सीधा सम्बन्ध सरकार और कृषक के बीच होता है। कृषि जनित जो भी कर होते हैं, वे सरकार वसूल करती है। इस पद्धति को हम कृषक स्वामित्व कृषि भी कह सकते हैं। यह भारत में संयुक्त परिवारों में मिलती है। भारत के 85 प्रतिशत कृषि भाग पर इसी पद्धति से कृषि की जाती है।

संयुक्त कृषि पद्धति – यह कृषि संगठन का एक रूप है। इस पद्धति में दो या अधिक कृषक साझेदारी (सहकारी आधार पर नहीं) के स्वरूप में अपने कृषि साधनों को संयुक्त करके कृषि कार्य करते हैं। इस पद्धति के प्रयोग से जो लाभ या उत्पादन होता है उसे पूर्व निर्धारित अनुपात अथवा बराबर में बांट लिया जाता है। यह पद्धति उत्तरप्रदेश, कर्नाटक, हरियाणा, केरल, मध्यप्रदेश, उड़ीसा, दिल्ली, पंजाब और राजस्थान आदि राज्यों में प्रचलित है।

सामूहिक कृषि पद्धति – सामूहिक कृषि प्रणाली के अन्तर्गत सरकारी योजना के अनुसार छोटे-छोटे भूखण्डों को मिलाकर एक बड़ा भूखण्ड बना दिया जाता है। ऐसे भूखण्ड पर सभी सदस्य कृषि का कार्य करते हैं तथा उनको पारिश्रमिक श्रम के आधार पर बांटा जाता है। यह प्रणाली सोवियत रूस में पर्याप्त सफल रही है।

पूँजीवादी कृषि पद्धति – इस प्रणाली के अंतर्गत सरकार द्वारा भूमि को अधिग्रहित कर पूँजीपतियों, कम्पनियों व कार्पोरेशन को नीलाम कर दिया जाता है अथवा वे स्वयं क्रय कर लेते हैं। ये पूँजीपति बड़े-बड़े भूखण्डों पर मजदूरों की सहायता से आधुनिक तकनीक एवं साधनों का प्रयोग कर भूमि का अधिकतम उपयोग करते हुए खेती करते है। भारत में यह प्रणाली चाय-कॉफी, रबड़ के बागानों में देखने को मिलती है।

राजकीय कृषि पद्धति – जब सरकार द्वारा सभी भूमियों का स्वामित्व प्राप्त करके सभी श्रमिकों की सहायता से व सरकार, कर्मचारियों के माध्यम से खेती की जाती है तथा जिस प्रक्रिया को अपनाया जाता है। उसे हम राजकीय कृषि कहते है। ये प्रणाली राजस्थान, उत्तरप्रदेश में प्रचलित है।

सहकारी कृषि – सहकारी कृषि से तात्पर्य उस पद्धति से है जिसमें अपने छोटे-छोटे खेतों तथा साधनों को एकत्रित करके संयुक्त रूप से खेती करते हैं। उपज से जो आय प्राप्त होती है उसका वितरण भूमि के अनुपात व श्रम के आधार पर होता है। इस पद्धति में सम्पूर्ण खेती की व्यवस्था और देखभाल भू-स्वामियों के द्वारा नियुक्त एक समिति करती है।

सहकारी कृषि की विशेषताएँ –

1. सदस्यों को पारिश्रमिक देने के पश्चात् कुल लाभ में से सुरक्षित कोष का अंश निकाल कर शेष सदस्यों में बांट दिया जाता है।
2. प्रजातांत्रिक प्रबंध प्रत्येक सदस्य अपना मत देकर प्रबंध मण्डल का चुनाव करते हैं। वही प्रबंध मण्डल कृषि का सम्पूर्ण कार्य करता है।
3. सहकारी कृषि पद्धति में समिति का गठन किया जाता है।
4. भूमिहीन व पूँजीपति भी समिति के सदस्य बन सकते हैं। श्रमिक को मजदूरी पूँजीपतियों को ब्याज और भूस्वामियों को लगान मिलता है।
5. संयुक्त प्रबंध कृषकों द्वारा खेती का प्रबन्ध संयुक्त रूप से होता है।

अनुबंध कृषि – अनुबंध कृषि पद्धति वह पद्धति है जिसमें कृषि उत्पादकों एवं ग्राहकों के बीच अग्रिम अनुबंध के तहत कृषि/बागवानी उपजों के उत्पादन तथा आपूर्ति की एक व्यवस्था है।

भारत में सहकारी कृषि की प्रगति – भारत में स्वतंत्रता प्राप्ति से पूर्व ही सहकारी कृषि की कल्पना की गई थी। इस संबंध में अपने विचार व्यक्त करते हुए महात्मा गाँधी जी ने 1942 में कहा था, कि 'सहकारी कृषि से भूमि की शक्ल ही बदल जाएगी।'

भारत की ग्रामीण अर्थव्यवस्था को सुधारने के लिए पंचवर्षीय योजनाओं में सहकारी खेती को काफी महत्व दिया गया है। पहली पंचवर्षीय योजना में

* अतिथि विद्वान (अर्थशास्त्र), शासकीय महाविद्यालय, सतवास, जिला - देवास (म.प्र.) भारत

यह आशा की गई थी कि सहकारी संयुक्त खेती देश में छोटे तथा मध्यम वर्ग के कृषकों के लिये बड़े खेतों को अस्तित्व में लाएगी, जिससे कृषि में अधिक निवेश होगा, वैज्ञानिक ढंग से खेती होगी तथा उत्पादन में वृद्धि होगी। पहली पंचवर्षीय योजना के अन्त पर भारत में 1400 सहकारी खेती समितियाँ थी। दूसरी पंचवर्षीय योजना में सहकारी खेती के विकास के लिए प्रबंध किए गये। भारत सरकार ने 1959 में एक कार्यकारी दल का संगठन किया, जिस ने उन व्यक्तियों को वित्तीय तथा अन्य सुविधाएँ, तकनीकी ज्ञान तथा मार्ग निर्देशन उपलब्ध करवाना था जो कि अपनी इच्छा से सहकारी समितियाँ बनाने के लिए तैयार थे। दूसरी पंचवर्षीय योजना के अन्त पर भारत में 5501 सहकारी खेती समितियाँ थी। जो कि 583762 एकड़ भूमि पर खेती कर रही थी। तीसरी पंचवर्षीय योजनाओं में सहकारी कृषि के विकास के लिए प्रारम्भिक योजनाओं को स्थापित करने का सुझाव दिया गया। हर एक परियोजना के अन्तर्गत 10 सहकारी समितियाँ बनाई जानी थी। तीसरी पंचवर्षीय योजना के समय में 3180 सहकारी खेती समितियों के लक्ष्य के विपरीत 2749 सहकारी खेती समितियाँ बनाई गई। 30 जून 1974 को भारत में 4985 सहकारी संयुक्त खेती समितियाँ थी। यह 3.2 लाख हैक्टर पर खेती कर रही थी तथा इनके लगभग 1.22 लाख सदस्य थे। 30 जून, 1979 तक कृषि सहकारी समितियों की कुल संख्या 9108 थी, जिसके सदस्यों की संख्या 2.86 लाख थी जिने अधीन 5.5 लाख हेक्टेयर जमीन थी। वर्तमान में देश में लगभग 9750 सहकारी समितियाँ कार्यरत हैं, जिनके सदस्यों की कुल संख्या 3.26 लाख है तथा जिनके अधीन 3.25 लाख हेक्टेयर भूमि है।

1990 में सहकारी समितियों द्वारा कुल कृषि ऋणों का 43.4 प्रतिशत उपलब्ध कराया गया। अत: एक समय ऐसा आएगा जबकि सहकारी समितियाँ इतनी महत्वपूर्ण हो जाएगी कि ग्राम वित्ता के क्षेत्र में साहूकार का कोई स्थान नहीं रहेगा।

इस समिति के अधीन ग्राम क्षेत्र को उधार की मात्रा जो 1989-90 में 2790 करोड़ रूपए थी, बढ़कर 1999-2000 में 13600 करोड़ रूपए हो गयी। बैंक-उधार के ग्राम क्षेत्र की ओर प्रवाह का भी सहकारी समितियाँ से प्रवाह होने वाले कृषि उधार पर अनुकूल प्रभाव पड़ा। सहकारी उधार में लगातार वृद्धि ही हुई है। कृषि क्षेत्र और संबंधित क्रियाओं को कुल उधार जो 1994-95 में 9875 करोड़ रूपए था बढ़कर 2000-01 में 17235 करोड़ रूपए हो गया अर्थात् केवल 6 वर्षों में 76 प्रतिशत से अधिक की वृद्धि हुई है।

देश में 3.5 लाख सहकारी समितियाँ हैं जिनकी सदस्यता 17.5 करोड़ हैं और कार्यकारी पूँजी 76000 करोड़ रूपए है। सहकारी समितियों के कुल सदस्यों के 30 प्रतिशत से कुछ अधिक सदस्य प्राथमिक कृषि उधार समितियों के सदस्य हैं।

ग्राम सहकारी समितियों ने उधार, उत्पादन, कृषि संसाधन और विपणन के क्षेत्रों में महत्वपूर्ण कार्यभाग अदा किया है।

भारत में सहकारी उपयुक्त कृषि पद्धति - व्यक्तिगत अथवा पारिवारिक कृषि इस बात का परम्परागत रूप से बोध कराती है कि भारत वर्ष में परस्पर कुटुम्बों, पारिवारिक व्यवस्थाओं एवं परस्पर जीवनयापन करने में सहयोग, प्रेम, सदभाव तथा त्याग के अद्भूत स्वरूप परिलक्षित होता रहा है और संयुक्त परिवार इसकी जड़ों में निहित है। भूमि के प्रति श्रम का व्यक्तिगत या पारिवारिक कृषि का अनूठा उदाहरण है। आधुनिक सभ्यता के परिवेश में भले ही संयुक्त परिवारों में विघटन अथवा परस्पर प्रेम का अभाव परिलक्षित हो रहा है किन्तु आज भी हमारे देश में व्यक्तिगत और पारिवारिक कृषि का बोल-बाला है। यह प्रणाली इस दृष्टि से अपना महत्व रखती है कि भारतीय अर्थव्यवस्था के अनुकूल है, क्योंकि यहाँ खेतों का क्षेत्रफल छोटा है।

संयुक्त कृषि प्रणाली की अपनी अलग एक विशेषता है। भूखण्डों को मिलाकर एक बड़ा भूखण्ड कृषक बना लेते हैं और इसका प्रबन्ध एक समिति को सौंप दिया जाता है। छोटे-छोटे कृषक बड़े पैमाने के उत्पादन से लाभान्वित हो जाते हैं। कुछ राज्यों में इस प्रकार की कृषि पद्धति से संदर्भित प्रयास हुए हैं, जिनमें उत्तरप्रदेश, कर्नाटक, हरियाणा, केरल, मध्यप्रदेश, उड़ीसा, दिल्ली, पंजाब तथा राजस्थान के नाम उल्लेखनीय है।

सामूहिक कृषि का प्रयोग रूस में किया गया है। हमारे देश में जो कि भूमि के प्रति पैतृक लगाव रहता है। अत: सहज रूप में स्वीकार हो यह संभव नहीं है। पूँजीवादी कृषि प्रणाली विशेष रूप से अमेरिका व ब्रिटेन में बहुत प्रचलित है, किन्तु इसके लक्षण भारत में कॉफी, चाय, रबड़ के बागानों में देखे जा सकते हैं। जहाँ इसका प्रयोग किया जाता है।

भारतवर्ष में राजकीय कृषि प्रणाली राजस्थान और उत्तरप्रदेश में पाई जाती है। राज्य सरकारों ने कृषकों को उन्नत बीज देने के लिए इस प्रकार के फार्म स्थापित कर रखे हैं।

सरकारी कृषि प्रणाली के अन्तर्गत भूमि के स्वामी अपने मल्कीयत का अधिकार सुरक्षित रखते हैं और यह एच्छिक होती है। भारत वर्ष में इसका प्रयोग अधिकाधिक हो रहा है और सरकार भी सफलता प्राप्त कराने के लिए प्रयास कर रही है। सरकारी कृषि हमारे राष्ट्र के लिए उपर्युक्त है यह इसलिए की उपविभाजन व उपखण्डन, बड़े पैमाने की कृषि के लाभ, मशीनीकरण को प्रोत्साहन, विपणन व्यवस्था में सुधार, कृषि के नियोजन में सहयोगी, पूँजी निर्माण में वृद्धि, आर्थिक सुरक्षा में प्रगति और लोकतांत्रिक विकास करने की यदि किसी में क्षमता है तो वह सरकारी कृषि प्रणाली है। अत: सहकारी खेती ही हमारे देश के लिए उपयुक्त कृषि प्रणाली है।

निष्कर्ष - प्रत्येक कृषि पद्धति की अपनी एक विशेषता है तथा समय व परिस्थितियों के अनुसार उसके लाभ भी प्राप्त होते हैं। एक अच्छी से अच्छी कृषि पद्धति भी केवल तभी लाभप्रद सिद्ध हो सकती है, जबकि उपर्युक्त परिस्थितियाँ मौजूद हो। भारत की परिस्थिति में 78 प्रतिशत कृषि जोत सीमान्त अथवा लघु आकार की है। सीमान्त तथा लघु कृषक निम्न आय, निम्न उत्पादन के चलते आधुनिक कृषि तकनीक को अपना नहीं पाते हैं। सीमान्त एवं लघु कृषकों के विकास एवं आय वृद्धि हेतु सहकारी कृषि को अपनाया जाना अत्यन्त आवश्यक है। सहकारी कृषि का पूर्ण गंभीरता के साथ क्रियान्वयन ही भारतीय कृषि में आय असमानताओं में कमी कर सकता हैं। उपविभाजन एवं उपखण्डन, बड़े पैमाने की कृषि के लाभ, मशीनीकरण को प्रोत्साहन विपणन व्यवस्था में सुधार, कृषि के नियोजन में सहयोगी, पूँजी निर्माण में वृद्धि, आर्थिक सुरक्षा में प्रगति और लोकतांत्रिक भावना का विकास करने की क्षमता है तो वह सहकारी कृषि में ही है। अनेकों दोषों से ग्रसित भारतीय कृषि को दर्पण की तरह स्वच्छ एवं दोषरहित बनाने का एकमात्र उपाय है तो वह सहकारी कृषि पद्धति है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची :-

1. अग्रवाल एन. एल. (1996), भारतीय कृषि अर्थशास्त्र, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर।
2. दत्तारुद्र एवं सुन्दरम् के. पी. एम. (2002), भारतीय अर्थव्यवस्था, एस. चन्द एण्ड कम्पनी लि., नई दिल्ली।
3. गुप्त शिव भूषण (2007), कृषि अर्थशास्त्र, साहित्य भवन, आगरा।
4. मामोरिया चतुर्भुज, के. पी. एम. (2002), भारतीय अर्थशास्त्र, साहित्य भवन पब्लिकेशन, आगरा।
5. मिश्र जयप्रकाश एवं जैन एस. सी. (2003), कृषि अर्थशास्त्र, साहित्य भवन पब्लिकेशन, आगरा।

Challenges In The Effective Implementation Of Righ To Information Act

Mushtaq Ahmad Wani * Dr. Sulekha Mishra**

Abstract - The Right to Information Act 2005 was passed by the UPA (United Progressive Alliance) Government with a sense of pride. It flaunted the Act as a milestone in India's democratic journey. It is ten years since the RTI was passed; the performance on the implementation front is far from perfect. Consequently, the impact on the attitude, mindset and behaviour patterns of the public authorities and the people is not as it was expected to be. Most of the people are still not aware of their newly acquired power. Among those who are aware, a major chunk either does not know how to wield it or lacks the guts and gumption to invoke the RTI. A little more stimulation by the Government, NGOs and other enlightened and empowered citizens can augment the benefits of this Act manifold. RTI will help not only in mitigating corruption in public life but also in alleviating poverty- the two monstrous maladies of India.

Introduction - Information has been recognized as a power since the beginning of the human civilization. Historically tells us that restricted circulation of information has been the root cause of bureaucratic inefficiencies and corruption. Good rulers of the past, who cared for the people, recognized those and took measures with varying success. Availability to provide correct information to masses have been recognized at the antidote to these maladies.[1] Information is the ultimate ammunition in democracies. It is the currency that every citizen requires to participate in the life and governance of society. In recent years, there has been an almost unstoppable global trend towards the recognition and enactment of right to information (RTI) by various countries. Civil society and many sections of the people have invariably been behind this trend. It has been widely recognized as a fundamental human right, which upholds the inherent dignity of all human beings. The RTI, is now accepted, as a crucial underpinning of participatory democracy. It has been widely acknowledged as a prerequisite for ensuring accountability and good governance.

It goes without saying, the greater the access of the citizens to information, the greater the responsiveness of the government to community needs. Alternatively, the greater the restrictions that are placed on assist information, the greater the feelings of 'Powerlessness' and 'alienation' without information, as a matter of fact, people cannot adequately exercise their rights as citizens are make informed choices.[2]

Over the past few years, the RTI has gained increased prominence both in human rights and the democratic discourse. Since a democratic government must be sensitive to the public opinion, it is necessary that information must be made available by it to the people. Actually meaningful substantive democracy ought to be founded on the notion of an informed public that is able to participate thoughtfully in its own governance. Information and knowledge are the instruments of human transformation. Therefore, with sufficient information, representative democracy is undermined[3].

Challenges In The Effective Implementation Of Righ To Information Act - At every stage of the 'Right to Information Movement; the biggest hurdles have been created by Indian bureaucracy. Over the years, they cleverly drafted legislation to serve the objective of transparency in governance while making sure it contained enough loopholes to avoid just that. However, step by step, the loopholes were thus far removed and mounting public pressure led to Indian Parliament passing the path-breaking, Right to Information Act, 2005.

To ensure the concept of open government and accountability taking shape, the successful implementation of the Right to Information Act is directly linked with the willingness of the political leadership and bureaucracy. This, is in turn, directly correlates with their knowledge and understanding of the beneficial effects of the Right to Information Act, 2005 which will have on the overall governance.

It is, therefore, imperative that there be immediate and wide scale dissemination of knowledge about the law and also assistance provided for all the queries and concerns that will naturally arise. The burden and enormity, of the tasks ahead will be much ameliorated when civil society and government collaborate on working through strategic initiatives designed for effective implementation.

The clearly stated objective of the Right to Information Act, 2005 is to confer the right on every citizen to secure

* Research Scholar, R.D.V.V., Jabalpur (M.P) INDIA
** Prof. & Head (Political Science) MBK (Auto) College for Women, Jabalpur (M.P.) INDIA

access to information under the control of public authorities in order to promote transparency and accountability in the working of every public authority. Transparency literally means the state of being easy to see through. In functional terms, it implies an honest way of doing things that allows other people to know exactly what you are doing. Following somewhat in the same strain, "accountability' refers to the position where people have the right to criticize or ask why something has happened.[4]"

At the time of introducing the Act, it was visualized that at times, the revelation of information "in actual practice is likely to conflict with other public interests", including efficient operators of the government, optimum use of limited fiscal resources", and "preservation of confidentiality of sensitive information". In this predicament, solution was sought by realizing that "it is necessary to harmonize these conflicting interests while preserving the paramount consideration of the democratic ideal.

To prompt the paramount of democratic ideal, public authorities are specifically obliged under the Act, even without being asked, to publish all relevant facts while formulating important polices and announcing decisions which affect public.and to provide reasons for its administrative or quasi-judicial decisions to the affected persons.

The government and the bureaucracy, who have, right from the first day from the enforcement of the Act, been trying to find loopholes in the Act, are a major threat to the Right to Information Act. Continuous efforts have been flowing from the government and bureaucracy to dilute the Right to Information Act. some other challenges to the effective implementation of the Act have been discussed in the following paragraphs.[5]

Low public awarenes - Despite lots of publicity through various modes, the public awareness about significance of this Act, the modus operandi of getting the information, and the knowledge of names of PIO's/APIO's etc. is quite low. The efforts made by the public authorities and governments have not been adequate in generating mass awareness of the RTI Act. Educating the masses is absolutely essential in this regard. Even after more than four years, awareness levels are as low as twenty six percent in men and twelve percent in women.14 As far as disadvantaged communities are concerned, it has been observed that if the awareness levels are twenty seven percent for the general public, only fourteen percent other backward classes / scheduled castes / scheduled tribes are aware of the legislation.15 While thirty three percent people in urban areas knew of the Act, there was a sharp drop in rural areas with awareness levels at thirteen percent only. Among the other indicators about forty eight percent of the citizens are aware that the Act had a provision for appeal and complaints and even of these, only twenty percent used it.

Majority of the applicants who seek information lack awareness of the provisions of the RTI Act. For instance, many applicants approach the Information Commission directly for the seeking information without making any reference to the concerned PIO. In cases of refusal by the concerned PIO, the applicants approach the Information Commission without first exhausting the appeal before the First Appellate Authority in the department or public authority concerned. Similarly, a number of applicants are not aware of the proper procedure for obtaining information under the Act. They submit applications without depositing the prescribed application fee.

Not only the information seekers but also many information providers are doubtful about certain provisions of the Act. Newspapers have reported time and again that the First appellate Authorities are not functioning properly. They either do not pass orders or do not afford opportunity of hearing to the appellant, with the result that in almost all the cases the appellants have to approach the Information Commission by way of second appeal. This not only causes inconvenience but also leads to wastage of already scarce resources.

Though some steps have been taken by the government as well as the Information Commissions yet these seem to be insufficient. Administrative Training Institutes in the states are imparting training to the RTI functionaries but these institutes do not have adequate funds at their disposal. There has been no popular campaign undertaken by the government, either in the electronic or print media, to make RTI popular among the citizens. Although the non-governmental organisations and the media are doing their bit in their own small way but their efforts have proved to be inadequate.[6]

Attitude of PIOs - Information seekers often complain of the unfriendly and hostile attitude of the officers. About fifty nine percent of applicants find the PIOs lacking in basic courtesy number of applicants feel humiliated at the hands of the officers. They say that one has to be quite stubborn and indifferent to this condescending attitude of the officers to get information out of them. It is felt that such a behavior dissuades the citizens from approaching the authorities.

There have been several reports that most PIOs, especially at the district level are not co- operative and they sometimes force the applicants to withdraw their applications.19 PIOs also tend to give inadequate information and hide crucial facts at the instance of their superiors. They use ambiguous and ambivalent language in their responses. Consequently, in most cases, they follow the letter of the Act but violate its spirit in a brazen manner.[7]

Difficulty in Locating Officers - Applicants at times, have difficulty in locating officers because many public authorities, particularly at the district and block level, do not display names and details of PIO's on their notice boards. Also the policy of frequent transfer of officers makes it difficult for the applicants to locate the newly designated officer each time they visit the authority concerned.

Expensive Appeal Process - People in rural areas find the appeal process expensive as many a times there is just one First Appellate Authority for the whole department and that too is located at the capital cities. As a result they find

going to these places difficult as it involves expenditure both on terms of resources and time.[8]

Primitive Record Management - Good record management ensures a smooth and prompt flow of information. What is lacking in our system is the scientific management of records. Apart from some sporadic initiatives, the maintenance and retrieval systems for official records are primitive in our country. In some offices indexing of records is conspicuous by its absence. Annual statements and records are not maintained. Online maintenance of records and its updating is an exception rather than the rule.As a matter of fact, in thirty eight percent cases, the major reason for delay in processing RTI applications is due to ineffective record management As a consequence, whenever any demand for information is received, the offices concerned expend their energies in freshly locating and retrieving record for every individual request. The current record management guidelines at Centre and in most states are not geared to meet the requirements specified under the RTI Act. For improving this scenario, we need nothing less than total administrative reform, especially the utilisation of information technology[9].

Conclusion -The right o information since its application in the country has become like a weapon in the hands of the people through which they can fight with any of the corruption happening in any of the government organization of the country. It has been like a blessing for a normal man who always becomes the victims of the corruption the act brought a revolution in all the government organization of the country. It is hoped that RTI would narrow the gaps between administration and the people.RTI would ensure peoples participation, democracy and development. All will take part in part in activities meant for their own welfare.

References :-

1. K.M. Shrivastava, “the Right to information- A Global perspective. (2009) Lancer publishers and distributors /42 New Delhi
2. Rajvir S.Dhaka, “Right to information and good governance” Concept publishing company pvt. Ltd. January 30,2000
3. Prabhat Datta,(1997), “Indias Democracy new challenges” Kaniska publishers distributers Darya Ganj, New Delhi
4. Virendra Kumar, -Don’t dilute RT1 Act, Please-, The Tribune, August 2006, p. 13.
5. Apt Bhattacharjea, ‘’Hide and Seek”, The Hindustan Tunes, 7 August 2006, P. 8
6. Executive Summary, Understanding the Key Issues and Constraints in Implementing the RTI Act, Price water house Coopers, June 2009, p. 04.
7. Ranbir Singh, “RTI Ineffective in Haryana”, The Tribune, Chandigarh, 01 July 2009, p.
8. Shreyas Navare, “Whistling in the Dark”, The Hindustan Times, July 24 2010, p. 10.
9. Anshu jain,” Rajiv Gandhi National University of Law, Punjab December 2011.p. 315

****

Religious Harmony In India

Dr. O.P. Chack *

Abstract - India chooses demoracy and believes in democratic values. The religious harmony is the integral part of its demoratic values. There is only one holy book of reference, which is the constitution of India which provides equal opportunities and respect to the people of all religions in India. The unity and the integrity of the country are the utmost priorities. All religions and all communities have the same rights. The Constitution of India ensures their complete and total protection. Government of India does not tolerate or accept discrimination based on caste, creed and religion. Indian Constitution needs no powerful person who believes in concentration of power at one place.
Key words - Introduction, Concept, practice efforts importance and conclusion.
Method - Analytical Method of Study.

Introduction - A muslim girl Maryam Siddiqui came first among over 3000 participants at the gita championship league contest organised by the International Society for Krishna consciousness in Mumbai. She said I have always been inquisitive about religions and I aften readup on them during my free time. The more I read about different religions, the more I have realised, humanity is the most important religion that we must follow. This story inspired me a lot to know more what the humanity is about.

An other incident motivated me to move on to know more about what Govt. of India is doing for humanity and human consciousness. The Chief Justice of India planned to hold a conference on holy days i.e. good friday and easter. A sitting Judge Korean Joseph opposed it by writing a letter to Chief Justice of India H.R. Dattu, saying such an important conference should not have been held when some of us are otherwise committed on account of the holy days when we have religious ceremonies and family get-together as well. He further stated I am not striking a Communal note. Only I see institutions like ours which are otherwise bound to protect the secular ethos and project secular image as per mandate of constitution. Therefore I proceeded ahead to read more on secularism and religious harmony of India in detail as such.

Interfaith harmony and consciousness of the essential unity of all religions is the very key heart of national integration and dentity. Most Indian were, and are firmly attached to a particular religion. Relatively few Indians some years ago could have grasped the nature of a secular State or understood the need for such a thing.

India, we live in one of the most sublime secular republics. This land is the birth place of five religions, Vedic religion, Hindu religion, Budhism, Jainism and Sikhism. This land has nurtured and cradled members of three religions of semitic origin, Judaism, Christiantiy and Islam and a Persian religion, Zoroastrianism. May I say that members of these four religions are more secure in Indian soil than in the lands where they originated. Different religions have sprung up in different ethnic or cultural or geographical or historical back ground and naturally there would be different shades between the religions. Then you ask any true philosopher whether there is any difference between any two religions. There can be only one answer to it, it is 'No', we must now evolve measures to narrow down the difference between different religions.

The children in India are not trained on how to practise secularism. Each religion has tried to teach its children that their religion provides the correct way to God. What they further teach is that their religion is the only correct religion. Very aften, they also teach that other religions are wrong. If our children are brought up in this way they maintain the mental segregation that their religion is the only true religion whereas other religions are fake.

All religions teach the same thing and it is only selfish and power hungry and mischievious people who create differences. Religious harmony has been badly impaired on account of the ambitions of those in India who created vote banks as short-cuts to reach power. People are basically happy and common without the barriers of religions, but the skill of the politicians unfortunately keep them segregated. Religions are different roads converging to the same point. What does it matter (they) we take different roads, so long as we reach the same goal.

Religious harmony in India is a concept that indicates that there is love and affection in between different religions in India. The Indian constitution supports and encourages religious harmony. In India, Every Citizen has a right to choose and practise any religion. There are examples of Muslims and Sikhs building temples. In India different religious traditions "Live harmoniously". Seers of religions call for religious harmony in India. For popular film stars in India, like Salman Khan, festivals of hindus and muslims are equal. According to Dalai Lama, India is a model for religious harmony.

Even though India is predominantly Hindu its Leaders have aften included Muslims, Sikhs, Christians, Jains,

* H.O.D. (Political Science) Govt. College, Alampur, Bhind (M.P.) INDIA

Zoroastrians etc.

- **President of India –** Dr. Zakir Hussain, Mohammad Hidayatullah, Fakruddin Ali Ahmed, Dr. A.P.J. Abdul Kalam were Muslims and Gyani Zail Singh was a Sikh.
- **Army Chief –** Sam Hormushji Framji, Jamshedji Manekshaw was a Zoroastrian, Sunith Francis – Rodrigues was a Christian, Joginder Jaswant Singh and Bikram Singh were Sikh.
- **India's Richest –** Indian's richest Billionaires include Dilip Sanghavi, a Jain in the third position Azim Premji a Muslim in the fourth position and Pallonji Mistri, a Zoroastrian in the fifth position.

The late 19th Century and 20th Century Indian Guru and Yogi Sai Baba of Shirdi preached religious harmony through his teaching. To practise and promote it, he combined the celebration of the Hindu festival of Ram Navami with a Muslim Urs. Lokmanya Tilak conceptualized the programmes like Ganesh Chaturthi and Shivaji Jayanti to unite people. In Ganesh Chaturthi, Muslims used to beat dhol during the Visarjan of Ganesha Idol. The Lalbaugcha Raja of Mumbai, an annually set up, Ganesha Idol, is also worshiped by Muslims.

India is a plural society – A society consists or composed of different ethnic groups or cultural traditions or political structure of which ethnic or cultural differences are reflected.

India is a nation state – A political unit consisting of an autonomous State, inhabited predominantly by a people shairing a common culture, history and language. A sovereign state inhabited by fairly homogenous group of people feeling common Nationality, having a nature of unity in diversity in the frame work of different languages, cultures, religions, faiths castes and creeds. This is why India needs harmony among various religions and ethnic groups, so as the feeling of common nationality, can be maintained.

A Professor, says. If you succeed in reuniting the human beings, you can reconstruct the world. Religious harmony is the cement by which such a construction is possible. This is the relevance of religious harmony in a secular Republic. Let us make a beginning, opening our circle of friendship to people of all faiths, can be a good starting point. Everyone, all Indians, need to embrace a rational approach to civil life and try to understand each other better.

The ancient Indian scripture Rigveda endeavours plurality of religious thought with its mention "ekam Sadvipra bahudavadanti", means "Wise people explain the same truth in different manners, and these manners are different religions, faiths or ethnic groups.

Kheravela was the third and greatest emperor of the Mahameghavahana dynasty of Kalinga. His 17th line rock-cut Hatingumpha inscription in a cave in the Udayagiri hills near Bhubneswar, indicates, that Kheravela had a liberal religious spirit. He describes himself as a disciple of "Worshiper of all religious orders, the restorer of shrines of all Gods.

The beloved of the Gods, King of piya-dasi (Ashoka 304-232 BCE in his 12th edict) honors both ascetics and the householders of all religions and he honors them with gifts and honors of various kinds. Whoever praises his own religion, due to excessive devotion, and condemns others with the thought "Let me glorify my own religion" only harms his own religion. Contact between different religions is thus, good. One should listen to and respect the doctrines professed by others.

Religious harmony, thus holds the key to a peaceful and progressive world. Religious harmony is the need of the hour because we are the children of the same God. The holy books of various religions are filled with devine knowledge. If we are religiously tolerant and study these holy books and practise in our daily life then our world can be a lot better. Our world is a diverse one where people of different religions are spread across many nations – a religous group many be in majority in some areas and minority in other areas. Religious harmony is very important to ensure the safety of people in the diverse society.

On the contrary disharmony or intolerance, towards other religions on caste creed, colour, gender or any other ground, devitalizes a sense of Live and Let Live, plots hatred or wrong, restrains the act of sticking together with a feeling of same genus kind or family and ultimately causes to fall national unity and integrity in a very direful manner misleading to murders, riots, loots, conflicts loss of property and disastrous activities – as vehemence, injury, outrage, rape, or crimes etc.

Let's work together to create religious harmony in our world by knowing and practising our own religion, respecting other religions integrating closely with the people of different faiths and believes, not interfering in the religious matter of other people and opposing any attempt to misuse the religion and create disharmony in our society.

Religious Harmony holds centre stage for the peace and prosperity in our multi religious and multi cultural world. Let's pledge to love and respect every one in the world irrespective of one's religion, caste. creed, sect, colour ethnicity, language, gender, nationality and any other difference. Let's pledge to work towards bringing Religious harmony and co-creating a peaceful and prosperous world.

References :-

1. Agrawal Sadananda (2000) Srikheravela, Sri Digambar Jain Samaj Cuttack, Orissa.
2. Rigveda – 1, 64, 46.
3. Times of India 17, June, 2013.
4. Desai Sonavi (2003) Spiritual Masters – Sai Baba Indus Source P. 52.
5. Rajendra Ranjani (15 September 2008) Lalbaugcha Raja breaks religious barriers.
6. Desai Shweta (15 September 2008) At Agripada a lasting Ganpati tradition continues in sensitive times – Indian Express Mumbai 21 June 2013.
7. Times of India 4 April 2015.
8. India is a model for religious harmony – Dalai Lama NDTV.com2012-11-25.

भारतीय कृषि का स्वरूप एवं राजनैतिक व्यवस्थाऐं

डॉ. अलका भार्गव *

प्रस्तावना – भारत एक कृषि प्रधान देश हे। यहाँ का उत्तर भारत यदि उपजाऊ भूमि युक्त है तो नदियों का पानी भी भरपूर है। पूरे भारत में गंगा, गोदावरी, सिन्ध, नर्मदा, गोमती, शिप्रा जैसी नदियों ने भारत की भूमि को न केवल उपजाऊ बनाया है वरन् उसे सिंचाई के रूप में अच्छा जल स्त्रोत देकर कृषि को समृद्ध बनाया है। यही वजह है कि देश की 73 प्रति0 जनता कृषि से जुड़ी है।

प्राचीन समय में भारत में जनसंख्या कम एवं कृषि योग्य भूमि अधिक थी फिर यदि पिछले कुछ दशक से लेकर वर्तमान की ओर दृष्टिपात करें तो पता चलता है कि जनसंख्या बहुत तेजी से बढ़ी है, फलत: कृषि योग्य भूमि कम होती गई है, इससे एक प्रकार का असंतुलन कायम हुआ है।

चूंकि 75 प्रति0 जनसंख्या गाँवों में निवास करती है, और कृषि पर निर्भर है अत: इस विषय पर गहन सोच, शोध एवं चिंतन की आवश्यकता भी है। आज भी भारत के वित्त का 50 प्रतिशत कृषि आय पर निर्भर है अत: आजादी के बाद हमारे महापुरूषों, जैसे- महात्मा गाँधी, आचार्य विनोबा भावे आदि ने यह कहा है कि भारत के औद्योगिक के बजाय कृषि पर ध्यान देना चाहिये।

भारतीय कृषि व्यवस्था के स्वरूप पर चर्चा करे तो यहाँ अभी भी बहुसंख्यक किसान पुरातन पद्धति से कार्य करते हैं जो वर्तमान में अलायप्रद तो हैं ही, साथ ही दरिद्रता को भी बढ़ती है। खाद्यानों की कमी भी इसी वजह से बनी रहती है।

दूसरा हमारे देश में कृषि आज भी वर्षा पर निर्भर है। पानी जमा करने और उसके बेहतर उपयोग के संसाधनों का विकास आज भी नहीं हुआ है। इतनी महत्वपूर्ण कृषि जो भारतीय अर्थव्यवस्था का आधार है, उसकी ही अवहेलना, हम सोच सकते हैं कि किसानों के हित की बात करते हैं, ऋण देकर उन्हें आर्थिक लालच देते हैं किन्तु कृषि की उन्नति के वास्तविक प्रयास संतोषप्रद नहीं है। यही वजह है कि भारत जो एक विशाल भूमि का स्वामी है, को अपनी कृषि क्षेत्र में पहचान तो दूर आजतक इस क्षेत्र में कार्यरत नागरिकों का भूखा, नंगा, दारिद्रय का फिस्फोटक रूप ही देश-विदेश में रख रहा है। ये तो वही बात हुई कि जिस डाल पर बैठे उसे ही काटने का प्रयास किया जाय।

इस दिशा में सार्थक प्रयास होते तो आजादी के साठ दशक के बाद कृषि क्षेत्र में क्रांतिकारी परिवर्तन आ जाते।

हम यह नहीं कर रहे हैं कि इस दिशा में प्रयास नहीं हुये हैं, प्रयास तो हुए हैं किन्तु आवश्यकता की पूर्ति हो जाय मात्र इतने। राष्ट्रीय समृद्धि के प्रतीक के रूप में प्रयास होते तो शायद आई.टी. क्षेत्र से ज्यादा इस क्षेत्र में आगे होते।

इस देश में राजसत्ता द्वारा सर्वप्रथम 1948 में कृषि सुधार समिति गठित हुई कांग्रेस के शासन काल में। उसकी अनुशंसा के अनुसार – कृषि करने वालों को भूस्वामित्व दिया जाय। छ: वर्ष से एक जमीन जोतने वालो को मालिकाना हक, (किराये, पट्टे) से कृषि करने वालो को शासन द्वारा मदद एवं अधिक से अधिक लोगों को उपलब्धता सुनिश्चित करना1

'यह समिति ने ये अनुशंसा 1949 में प्रस्तुत की जिसमें से सबसे क्रांतिकारी कदम जमींदारी व्यवस्था का अंत था।'[2]

इसके पश्चात् हरित क्रांति का नारा दिया गया श्रीमती गांधी के द्वारा इस क्रांति की शुरूआत 1964-65 में शुरू हो गई थी। 1960 में देश के चुने हुये सात जिलों में 'गहन कृषि जिला कार्यक्रम' अपनाया गया। इस कार्यक्रम द्वारा चुने हुये जिलों के कृषकों को उनका बीज, रासायनिक खाद उन्नत औजार पर्याप्त वित्त कीटनाशक आदि वितरित कर गहन कृषि का ढाँचा तैयार किया गया। 1964-65 में इसी कार्यक्रम के संशोधित कर देश के 114 जिलों में 'गहन कृषि क्षेत्रीय कार्यक्रम' लागू किया गया। 1966-67 से यह कार्यक्रम सम्पूर्ण देश में लागू किया गया। भारतीय कृषि के इसी परिवर्तन को हरित क्रांति कहा गया।'[3]

वास्तव में भारत में हरित क्रांति की आवश्यकता कृषि समस्याओं के चलते आयी। जैसे- कृषि व्यवसाय की अनिश्चित प्रकृति, भूमि का असमान वितरण, अलामप्रद कृषि बिचौलियों द्वारा शोषण, कृषि की मौसमी प्रकृति के कारण बेरोजगारी की समस्या, जनसंख्या का विस्फोट रूप आदि थे वो सभी समस्याऐं हैं जिनके चलते देश की धुरी कृषि पिछड़ती गई, और अथक प्रयासों के बाद भी कृषकों का विकास गति नहीं पकड़ पाया है।

हालांकि इसके सुधार एवं विकास के लिये विभिन्न समयो से प्रयास किये गये हैं। सरकार, सत्ता व दलों द्वारा समय-समय पर जो उपाय हुये हैं उनमें मुख्य है-

1. **अधिक उपज देने वाले बीजों का प्रयोग** – वृद्धि होना, परिणाम स्वरूप 1970-71 में 154 लाख हेक्टेयर क्षेत्र था वह बढ़ते-बढ़ते 2003-04 में 950 लाख हेक्टेयर हो गया। पानी उन्नत बीज अधिक उपज प्राप्त हुई।
2. **कृषि उपकरणों का उपयोग**- जैसे ट्रेक्टर, पम्प, क्रेसर, हारवेस्टर विद्युत आदि का प्रयोग।
3. **रासायनिक उर्वरकों के उपयोग में वृद्धि** –
4. **बहुफसली कार्यक्रम:**।

कृषि वित्त की सुविधाऐं – जो धीरे-धीरे बढ़कर 2006-07 में कुल ऋण 2,02,614 करोड़ रू0 हो गया है ये ऋण 43 प्रतिशत सहकारी संस्थाओं एवं शेष 57 प्रतिशत व्यापारिक बैंकों द्वारा दिया गया है।

सिंचाई सुविधा प्रदान करना- वर्तमान में कुल उत्पादन के लगभग 40 प्रतिशत भाग में सिंचाई की जाती है। जिससे 1028 लाख हेक्टेयर सिंचित भूमि हुई। 2006-2007 के उपलब्ध आंकड़ों के अनुसार।

कृषि विकास के लिये निगम प्रणाली का उपयोग – 'प्रथमत: भारतीय राजकीय फार्म निगम' तथा 'राष्ट्रीय बीज निगम' आये। 1963 में

* प्राध्यापक (राजनीति विज्ञान) महारानी लक्ष्मीबाई शासकीय उत्कृष्ट महाविद्यालय, ग्वालियर (म.प्र.) भारत

'राष्ट्रीय सहकारी निगम'। 1965 के बाद 17 कृषि उद्योग निगम स्थापित किये जो कृषि मशीने उपलब्ध करता है केन्द्र व राज्य स्तर पर 1982 से कृषि व ग्रामीण विकास की राष्ट्रीय बैंक एवं भारतीय खाद्य निगम अस्तित्व में आये जिन्होंने हरित क्रांति की ओर कामयाब बनाया है। जो इस तालिका से स्पष्ट होता है। **तालिका-1 (देखे)**

तालिका से स्पष्ट कृषि हरित क्रांति शासन की नीति यह प्रयोग काफी सफल रहा है फिर जनसंख्या की विस्फोटक वृद्धि ने इस सफलता को बौना कर दिया है। हम कृषि क्षेत्र में आत्म निर्भर निर्यातक बने हैं किन्तु अब पुन: इसमें नवीन योजनाओं को संचारित करना होगा क्योंकि स्थिति स्थिर बनी हुई है।

किन्तु यहाँ वो नीतिगत बात है वास्तव में क्या हरित क्रांति के नाम पर किये गये प्रयासों का जितना अच्छा परिणाम आया है, तो पाते है कि इस हरित क्रांति को सफल बनाने के लिये जो अब तक प्रयास हुए हैं, उसमें स्वयं कानूनी रूकावटे है। कानून तो अच्छे बने पर पूर्णता का अभाव रहा एवं उससे बचने के रास्ते निकाले जाते रहे है। सरकार द्वारा बनाये कानूनों को न्यायालयों में चुनौतियाँ दी गयी है।

राजनैतिक इच्छा शक्ति की कमी- वास्तव में जहाँ से सुधार होना था वहीं रूकावट रही है । कारण एक तो अनेक कृषि क्षेत्र यानि जमींदारी क्षेत्र के है या फिर कृषि सुधार से हानि के क्षेत्र में आने वार्ले जमींदार सरकार या दलों के वोट बैंक है। प्रशासन भी नेताओं की श्रेणी में पहुंचकर बड़े भूमिपतियों का पक्षधर रहा है और कानूनों का कड़ाई से पालन न ही करवाता है, तथापि अब वर्तमान में मध्य-प्रदेश में इस दिशा में सफल कार्यवाही हो रही है, व किसानों को उनका हक दिलाने की बात जैविक खेती के फायदे का प्रशिक्षण आदि दिया जा रहा है। इस संबंध में किसानों को पूर्ण कानून का ज्ञान का अभाव व भूमि संबंधी दस्तावेजों का अभाव, उन्हें मजबूत नहीं बना पा रहा है।

इस संबंध में नवीनतम कृषि नीति जिसे राष्ट्रीय कृषि नीति की संज्ञा दी गई है की घोषणा, जुलाई 2000 को की गई है जिसके प्रमुख उद्देश्य इस प्रकार है-

1. कृषि क्षमता का अधिक उपयोग
2. ग्रामीण क्षेत्र में आधारभूत संरचना को दृढ़ बनाना
3. कृषि से संबंधित उद्योग व व्यापार को बढ़ावा देना
4. ग्रामीण रोजगार को बढ़ावा देना
5. खेतिहर किसानों को स्तर में सुधार लाना
6. भूमण्डलीकरण की चुनौतियों का समाना करना आदि-आदि है।[5]

किन्तु यह पर्याप्त नहीं है भारत सरकार एवं राज्य सरकारों को चाहिये कि कृषि क्षेत्र में नये विकास किये जाये जैसे जैविक खेती, निर्यात व्यापार यानि वे फसलें बनाई जायें जिनका अन्तर्राष्ट्रीय बाजार है। शुष्क कृषि तकनीक का विस्तार किया जाऐं क्योंकि भारत में केवल 40 प्रतिशत भाग पर सिंचाई सुविधाऐं है। शेष मानूसन पर निर्भर रहता है।

अत: शुष्क कृषि तकनीक के अनुसंधान पर जोर देने की आवश्यकता है। तभी स्थिर हुई हरित क्रांति की कामयाबी का दूसरा सोपान शून्य होगा और हम उसे द्वितीय हरित क्रांति की संज्ञा दे सकेगें, और देश की अर्थव्यवस्था की रीढ़ का कार्य कर रही कृषि देश के वित्तीय खजाने को ही मजबूत नहीं करेगी, कृषि प्रधान भारत का आम आदमी समृद्ध, ज्ञानवान व आत्मविश्वास से पूर्ण होगा।

पुन: वर्तमान में केन्द्र सरकार द्वारा भूमि अधिग्रहण मसले ने पूरे देश को एक बार सोचने को मजबूर किया है कि क्या यह मसला इतना करता है, उन्नत भारत में सहयोग करेगा, तो हमारी दृष्टि में इसमें मुआवजा बढ़ा कर देने से, मसला हल नहीं होगा; एक बात तो यह है कि किसानों को रोजगारन्मुखी हस्त शिल्प सिखाया जाय पहले; और सरकार ही उसे खरीदे और देश-विदेश में इस हेतु बाजार बनाये।

दूसरी बात यह है कि खेती को उन्नत करने के उसमें उत्पन्न फसल के लिये सरकार बड़े-बड़े गोदाम बनाये और उसे सस्ते किराये पर किसानों को मुहैया कराये ताकि खुले में रख्खे अनाज से किसानों का नुकसान न हो।

तीसरी बात किसानों को मण्डी तक खुद जाने के लिये प्रेरित करें और त्वरित गति वाले वाहन सरकारी तौर पर कम किराये पर मुहैया कराये ताकि किसानों का राज्य व केन्द्र सरकार से न केवल जुड़े वरन् सत्ता से अलग नहीं वरन् जुड़कर चल सकें ताकि 'कोई हो नृप हमे का हानि' वाली सोच से भारत की आम ग्रामीण जनता मुक्त हो, और राजनैतिक आधुनिक व्यवस्था से जुड़ सकें।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची :-

1. भारतीय समाज डॉ. अशोक डी. पारित एवं डॉ. एस.एस. भदौरिया पृ. 250
2. भारतीय समाज डॉ. अशोक डी. पारित एवं डॉ. एस.एस. भदौरिया पृ. 252
3. अर्थशास्त्र डॉ. पी.डी. माहेश्वरी, डॉ. एस.सी. गुप्ता पृ. 278
4. आर्थिक समीक्षा भारत सरकार 2007-08
5. अर्थशास्त्र डॉ. पी.डी. माहेश्वरी एवं डॉ. एस.सी. गुप्ता पृ. 266

प्रमुख फसलों की प्रति हेक्टेयर उत्पादकता किलो ग्राम प्रति हेक्टेयर

फसल	1950-51	1960-61	1970-71	1980-81	1990-91	2000-01	2006-07
सभी खाद्यान	552	710	872	1023	1380	1636	1750
चावल	668	1013	1123	1336	1740	1913	2127
गेंहूँ	655	851	1307	1630	2281	2743	2671
दालें	441	539	524	473	578	533	616
तिलहन	481	507	579	532	771	826	917
कपास	88	125	106	152	225	191	422
परसन	1044	1183	1186	1245	1833	2014	2167

स्त्रोत-आर्थिक समीक्षा भारत सरकार 2007-08

****

केन्द्रीय अभिकर्ता एवं राज्य का संवैधानिक प्रधान राज्यपाल

डॉ. अनिल कुमार जैन *

प्रस्तावना – भारतीय राज्यों के शासन के लिए संविधान द्वारा संसदीय ढांचे की सरकार को अपनाया गया है। इन राज्यों की संवैधानिक कार्यपालिका का प्रधान राज्यपाल होता है। यह एक लोकप्रिय तथा उत्तरदायी मंत्री परिषद् की सहायता एवं परामर्श पर शासन करता है। इस तरह राज्यों में भी केन्द्र के समान कार्यपालिका के तीनों रूप देखने को मिलते है, (1) संवैधानिक कार्यपालिका – राज्यपाल (2) वास्तविक परन्तु राजनीतिक कार्यपालिका– मुख्यमंत्री एवं मंत्रीमण्डल (3) वास्तविक परन्तु प्रशासनिक कार्यपालिका– लोक प्रशासन।

भारतीय संघात्मक प्रणाली में, राज्य के राज्यपाल के दो रूप है प्रथम वह राज्य का संवैधानिक प्रधान होता है, द्वितीय वह केन्द्र सरकार का राज्यों में प्रतिनिधि व अभिकर्ता होता है। राज्यपाल राज्य मंत्री परिषद् के परामर्श के अनुसार कार्य करते हुए इस तथ्य पर भी ध्यान देता है कि केन्द्र सरकार की नीति व निर्देशों तथा संविधान के प्रावधानों का राज्य में उचित ढंग से पालन हो। वह केन्द्र व राज्य सरकार के मध्य एक सेतु एवं कड़ी के रूप में कार्य करता है। राज्यपाल के अधिकार और कर्तव्य के निर्वहन की सफलता के संबंध में उल्लेखनीय तथ्य यह है कि राज्य व केन्द्र के अंर्तसंबंध बहुत कुछ उसके व्यक्तित्व पर निर्भर होते है।

भारत के संविधान के अनुच्छेद 153 के अनुसार राज्यों के लिये, राष्ट्रपति केन्द्रीय मंत्रीमण्डल की सलाह पर 5 वर्ष की अवधि के लिए राज्यपाल की नियुक्ति करता है। इस प्रकार इस सीधी नियुक्ति का अधिकार सत्तारूढ़ दल के मंत्रीमण्डल को है। प्रकारान्तर से यह राजनीतिक नियुक्ति है। इस अधिकार का मनमाना लाभ उठाकर देश की सभी केन्द्र सरकारों ने राज्यपाल पद पर मनमानी नियुक्तियां की है, जैसे उन पार्टी नेताओं को उपकृत किया गया जो चुनाव में पराजित हो गया है या किसी केन्द्रिय मंत्री को यह पद देकर मुक्त कर दिया गया है। अपने प्रिय अवकाश प्राप्त लोकसेवकों को भी राज्यपाल नियुक्त किया गया है। यह भी सत्य है कि विशिष्ट राजनीतिज्ञ या ख्याति प्राप्त व्यक्तियों को भी इस पद पर नियुक्ति का अवसर मिला है। राज्यों के पूर्व मुख्यमंत्री और लोकसभा के प्रभावी सांसदों को भी राज्यपाल बनाया गया है।

राज्यपाल वास्तव में सामान्य रूप में नाममात्र के लिये राज्य का प्रशासनिक प्रमुख होता है, वास्तविक शक्ति मुख्यमंत्री व मंत्रीमण्डल में निहित है। केन्द्र व राज्य में एक दल की सरकार होने पर तो राज्यपालों के पास सिर्फ हस्ताक्षर करने का कार्य होता था। जब देश में राज्य और केन्द्र में भिन्न–भिन्न दलों की सरकारों का गठन हुआ तब राज्यपाल को एक तरफ तो अपने नियोक्त केन्द्र सरकार का, राज्य में अभिकर्ता व प्रवक्ता होने से, हितों को महत्व देना होता है, दूसरी तरफ राज्य का संवैधानिक प्रमुख प्रधान होने से नैतिक दृष्टि से राज्य के पक्ष का प्रतिनिधित्व करना होता है, और इसके समान्तर ही स्वयं की प्रतिष्ठा एवं न्याय, नीति तथा संविधान के निर्देशों के पालन के लिये और इतिहास में अपने निर्णय के औचित्य की रक्षा भी करना होती है। इस तरह राज्यपाल जब कसौटी पर आ जाता है तो उसके लिये इस प्रकार के धर्म संकट में सिर्फ विधिवेता या अपनी खुद की आत्मा ही सहारा होती है।

भारतीय संविधान के कई अनुच्छेद यथा 155, 156, 160, 163, 167, 174, 175 (2), 200, 213, 339, 339 (2), 351, 352, 355, 356, 360 तथा 365 राज्यपाल को राज्य में केन्द्रिय अभिकर्ता एवं केन्द्र राज्य के अंतर संबंधों से संबंधित सभी आवश्यक अधिकार प्रदान करते है। इनमें अनु. 155 मुख्य रूप में राज्यपाल को राज्य में केन्द्रिय सरकार का अभिकर्ता बनाता है। यद्यपि राज्यपाल की नियुक्ति एवं पदच्युति राष्ट्रपति द्वारा की जाती है, किन्तु यथार्थ में व्यवहारिक रूप में राज्यपाल इसके लिए भारतीय प्रधानमंत्री पर आश्रित है। यही कारण है कि केन्द्र में सत्ता परिवर्तन होने पर राज्यपाल की कुर्सी पर संकट के बादल मंडराने लगते है। सन् 1967 के चतुर्थ आम चुनाव के बाद जब भारत में आधे से ज्यादा राज्यों में गैर कांग्रेसी सरकारों का निर्माण हुआ, राज्यपाल को पद से हटाने तथा इस पद को समाप्त करने तक की मांग लोकसभा में उठाई गई।

संविधान की धारा 256 व 257 की व्यवस्था है कि राज्य के कार्य केन्द्र के कार्यो की अनुकूलता में हो। ऐसा नहीं होने पर केन्द्र राज्यों को कोई निर्देश दे सकता है। किन्तु इनका क्रियान्वयन राज्यपाल की व्यक्तिगत ऐजेन्सी द्वारा नहीं किया जा सकता है। अत: अनुच्छेद 365 में उपबंधित किया गया है कि जब राज्य सरकार केन्द्र के निर्देशों का पालन नहीं करती है, उसे प्रभावशाली नहीं बनाती हैं, तो राज्यपाल का यह कथन वैधानिक होगा कि राज्य में ऐसी स्थिति निर्मित हो गई है कि राज्य का शासन संविधान के उपबंधों के अनुसार नहीं चल सकता है।

इससे स्पष्ट है कि अनुच्छेद 365 तथा अनुच्छेद 356 के आधीन राज्य में राष्ट्रपति शासन लागू किया जा सकता है। केन्द्र सरकार द्वारा यह निर्णय लेने के पूर्व राज्यपाल उन कारणों का पूरा पता अवश्य लगावेगा जिनकी वजह से राज्य सरकार ने केन्द्र सरकार के प्रदत्त निर्देशों का पालन नहीं किया।

केन्द्र सरकार संविधान के अनुच्छेद 359 (2) के अनुसार राज्यों को कई निर्देश देती हैं, जैसे अनुसूचित जनजाति कल्याण संबंधी योजनाओं का क्रियान्वयन आदि। अनुच्छेद 351 द्वारा हिन्दी भाषा के विकास के लिये भी आदेश दिये गये है।

केन्द्र व राज्य में भिन्न दलों की सरकार होने पर राज्यपाल मध्यस्थ की भूमिका निभाकर विशेष रूप से मतभेद दूर करने का कार्य भी करता है। राज्य सरकार की कठिनाईयों से केन्द्र को अवगत कराता है। केन्द्र भी राज्य के कथन की अपेक्षा राज्यपाल से प्राप्त सूचना से सहमत हो जाता है। सन् 1957–59 में केरल राज्य में कैदियों को रिहा कराने के मामले में हुए मतभेद को दूर करने में, राज्यपाल को केन्द्रिय अभिकर्ता के रूप में सफलता मिली थी। इस प्रकार के कई उदाहरण है, जो राज्यपाल के पक्ष में है।

संविधान के अनुच्छेद 258 (1) द्वारा केन्द्र और राज्य सरकारों को पारस्परिक रूप से कार्य करने की शक्ति दी गई है। किन्तु सर्वोपरिता केन्द्र को प्रदान कर दी गई है। इससे केन्द्र व राज्य में संघर्ष की स्थिति बनती रही है। इस विषय में नाराज केरल के पूर्व मुख्यमंत्री श्री निम्बूडीपाद और पश्चिम बंगाल के पूर्व मुख्यमंत्री ज्योति बसु ने यहां तक घोषणा कर दी कि वे संविधान

* सहायक प्राध्यापक (राजनीति विज्ञान) शासकीय कन्या महाविद्यालय, रतलाम (म.प्र.) भारत

को आंतरिक रूप में तोड़ देगें। उन्होंने इस संबंध में संविधान में संशोधन किये जाने की मांग भी उठाई थी। संघर्ष की ऐसी स्थिति में राज्यपाल से एक ईमानदार मध्यस्थ की भूमिका निभाने की अपेक्षा की जाती है। यह तभी संभव था जब उसकी नियुक्ति में अभिसमयों का केन्द्र द्वारा पालन किया जाता है।

संविधान के प्रभावशील होने के पश्चात् राज्यपाल की नियुक्ति के संघर्ष में कुछ परम्पराऐं बन गई थी जो उचित थी यथा – राज्यपाल प्राय: अन्य राज्य का हो तभी वह स्थानीय दलीय राजनीति से निष्पक्ष रह सकता है। राज्यपाल केवल केन्द्रिय सरकार का नामांकित व्यक्ति न होकर राज्य द्वारा भी मान्य व्यक्ति होना चाहिये। राज्यपाल की नियुक्ति पूर्व प्राय: राज्य मंत्री परिषद् से परामर्श किया जाना उचित है। यह परम्परा भी उचित थी कि अवकाश प्राप्त लोक सेवकों जैसे लोकसेवा आयोग व अन्य संवैधानिक संस्थाओं के पदाधिकारियों की नियुक्ति में प्राथमिकता दी जावें। इन अभिसमयों का उल्लंघन करते हुए केन्द्र ने कई नियुक्तियां की। बंगाल में अपने ही राज्य में डॉ. एच.सी. मुखर्जी को राज्यपाल बनाया था। इसी प्रकार राज्य सरकार के परामर्श को नहीं माने हुए श्री धर्मवीर और श्री कानूनगो की नियुक्ति हुई थी। भारी विरोध के कारण धर्मवीर को हटाना पड़ा। इससे केन्द्र व राज्यों में विवाद बढ़े थे।

इससे स्पष्ट होता है कि राज्यपाल की नियुक्ति की वर्तमान पद्धति ही उसकी स्थिति को विवादास्पद बनाने का कारण है। संयुक्त राज्य अमेरिका में राज्यपाल राज्यों के वास्तविक प्रधान होते है, क्योंकि उनका निर्वाचित राष्ट्रपति की भांति, राज्य की जनता द्वारा होता है। कनाड़ा में गवर्नर जनरल मंत्रीमण्डल की मंत्रणा पर लेफ्टिनेंट गर्वनरों की नियुक्ति करता है। आस्ट्रेलिया में किसी राज्य के गर्वनर की नियुक्ति इंग्लैण्ड के सम्राट द्वारा मंत्रीमण्डल के परामर्श पर होती थी। हमारे यहां सीधे केन्द्र सरकार को यह अधिकार है।

भारतीय राज्यों के संबंध में भी संविधान सभा की प्रान्तीय संविधान समिति ने राज्यपाल का सर्वसाधारण द्वारा निर्वाचन का सुझाव दिया था। इसे प्रारूप समिति ने अमान्य कर दिया। उसका मत था निर्वाचित राज्यपाल व विधान मण्डल के प्रति उत्तरदायी मंत्री मण्डल का सहअस्तित्व पारस्परिक संघर्ष का रूप ले सकता है। प्रारूप समिति का सुझाव था कि राज्य का विधानमण्डल चार नामों का चयन करें, जो राज्य के नहीं हो उनमें भारत का राष्ट्रपति किसी एक को नामित कर दे। यह पद्धति उचित थी किन्तु अंत में संविधान सभा ने यही निर्णय लिया कि राज्यपाल की नियुक्ति राष्ट्रपति करें। राष्ट्रपति केन्द्रिय मंत्रीमण्डल के परामर्श पर कार्य करता है। अत: राज्यपाल की नियुक्ति सहज ही केन्द्र सरकार के पाले में आ गई। यह स्थिति राज्यपालों के व्यवहार पर पक्षपातपूर्ण होने, न्याय संगत नहीं होने तथा केन्द्र के सेवक के रूप में कार्य करने के आरोपों का कारण बनी।

जब देश के अधिकांश राज्यों में केन्द्र विरोधी सरकारें बनी थी, तब से राज्यपालों के व्यवहार तथा भूमिका पर विद्वानों को सोचने के लिए मजबूर होना पड़ा है। कारण यह है कि 1966 में केरल के राज्यपाल अजितप्रसाद जैन ने प्रधानमंत्री के चुनाव में खुले रूप में भाग लिया था। 1967 में राजस्थान के राज्यपाल संपूर्णानंद पर कांग्रेस दल के नेता को मंत्रीमण्डल बनाने के लिये आमंत्रित करने पर पक्षपात का स्पष्ट आरोप लगा। बंगाल में धर्मवीर, बिहार में आयंगर और यू.पी. रेड्डी के व्यवहार काफी विवादपूर्ण रहे है। इसी प्रकार के आरोप राज्यपालों पर केन्द्रिय अभिकर्ता के रूप में कार्य करने के कारण आज तक लगते रहे हैं।

अत: राजनीतिज्ञों ने इस पद को समाप्त कर, केन्द्रिय सरकार की किसी अन्य एजेन्सी को प्रशासनिक प्रधान के सुझाव दिया। दूसरी तरफ प्रशासनिक सुधार आयोग ने भी केन्द्र राज्य संबंध के अध्ययन में सुझाव दिया है कि राज्यपालों की नियुक्ति के लिये विशेष परामर्शदात्री समिति बनाई जावें। इसका अध्यक्ष उपराष्ट्रपति हो तथा संसद के दोनों सदनों के विरोधी दल नेता, भारत के मुख्य न्यायाधीश, विभागीय मंत्री तथा राष्ट्रपति द्वारा निर्वाचित तीन व्यक्ति उसके सदस्य हो। सरकारिया आयोग का भी कहना है कि राज्यपाल चूंकि नामांकित होता हैं, अत: उसे किसी भी क्षेत्र में जानी मानी हस्ती होना चाहिए। राज्य की राजनीति में उसे सक्रिय भाग नहीं लेना चाहिये तथा केन्द्र सरकार द्वारा अपने दल से उसका चयन होने पर तत्पश्चात् से दल की सदस्यता का त्याग कर, तटस्थ तथा न्यायपूर्ण नीति का अनुपालन करना चाहिए।

राज्यपाल पद को लेकर मुख्य विवाद उसका केन्द्र सरकार का अभिकर्ता होने को लेकर ही है। केन्द्र सरकार द्वारा उसकी नियुक्ति प्राय: राजनीतिक आधार पर होने से, उसकी मानसिकता तथा कार्यकलाप राज्य में अन्य दल की सरकार होने पर प्राय: पक्षपातपूर्ण मान लिये जाते है। वह मुख्यमंत्री से सहज संबंध नहीं बना पाता तथा उसकी राज्य की विकास की दिशा की अपेक्षा राजनीति में अधिक रूचि बनी रहती है। अत: वह कभी-कभी राज्य के कार्यो में अनावश्यक हस्तक्षेप भी करता है।

पिछले 60-65 वर्षो की दलीय, क्षेत्रीय और जातीय राजनीति के दुष्चक्र न वे मूल्य सेतु ही तोड़ दिये है, जिन पर देश के लोकतंत्र को नाज था। संघात्मक शासन प्रणाली में राज्यों पर अनुशासनात्मक अंकुश रखना केन्द्र का दायित्व होता है। इसी उद्देश्य से राज्यपाल को केन्द्रीय अभिकर्ता एवं राज्य का संवैधानिक प्रधान होने का दोहरा दायित्व सौंपा गया है। राष्ट्रीय हितों पर दलों के हितों को प्राथमिकता देने के कारण राज्यपाल पद का अवमूल्यन हुआ। देश में विविध केन्द्र सरकारों के कार्यकाल में स्थापित अभिसमयों तथा परम्पराओं का खुलकर उल्लंघन हुआ। नियुक्ति व पदमुक्ति राजनीति की जोर अजमाई बन गई थी।

राष्ट्रहित में यह स्वीकार करना होगा कि राज्यपाल का पद आवश्यक ही नहीं अपरिहार्य है। आवश्यकता बस सिर्फ इतनी है कि उसकी नियुक्ति उस पद की गरिमा व महत्ता के संदर्भ में लोकतंत्रीय आदर्शो को ध्यान में रखकर हो। उसका स्वयं का आचरण और व्यवहार भी संयमित हो। वह अपनी दलीय आस्था से ऊपर उठकर राज्य व राष्ट्र के हित में लोकतंत्रीय मूल्यों की स्थापना के आदर्शो का अनुपालन करें। प्रत्येक समस्या का राजनीतिक दृष्टिकोण से उपर उठकर समाधान करें।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. सिंह वीर केसरप्रसाद : भारतीय शासन प्रणाली : ज्ञानदा प्रकाशन पटना, दिल्ली (1973) पृष्ठ 397-400
2. चतुर्वेदी डॉ.संदीप : संघात्मक शासन व्यवस्था में राज्यपाल की भूमिका : रिसर्च जरनल ऑफ सोशल एण्ड लाईफ साइसेंस रीवा, जन. से जन 2009, पृष्ठ 709
3. अवस्थी प्रो. आनंद प्रकाश : मध्यप्रदेश प्रशासन : म.प्र.हिन्दी हिन्दी ग्रंथ अकादमी, भोपाल (2007) पृष्ठ 53-55
4. कश्यप डॉ. सुभाष : दल बदल और राज्यों की राजनीति : मीनाक्षी प्रकाशन मेरठ (1970)
5. लोकसभा डिबेट्स खण्ड 40 (1989) सूचना प्रकाशन विभाग : भारत शासन दिल्ली।
6. शुक्ल राजेन्द्र प्रसाद : लोकतंत्र में राज्यपाल : प्रिंट वेल प्रकाशन : जयपुर (1998) पृष्ठ 40
7. मोदी महावीर प्रसाद : राज्यपाल और भारतीय राजनीति : विधायिनी भोपाल अक्अू. दिस. 2007पृष्ठ 8-10
8. दैनिक जागरण : ग्वालियर 03.07.2004

****

महिला अधिकार आन्दोलन में महिला अधिकारों की स्थिति

डॉ. रजनी दुबे*

प्रस्तावना – भारत में महिला को देवी स्वरूप माना जाता है, महिलाओं द्वारा समय समय पर अपनी शक्ति का रूप दिखलाया गया है। प्राकृतिक रूप से महिलाये शारीरिक बनावट के आधार पर पुरूष से नाजुक होती है। इसलिये वह अविवाहित अवस्था से वृद्धावस्था तक किसी पुरूष वर्ग के संरक्षण में रहती हैं परन्तु पुरूष वर्ग द्वारा इसके संरक्षण व कोमलता के लिये दूसरा ही रूख अपनाना शुरू कर दिया था। बालविवाह के रूप में धारणा बन गई थी कि स्त्री को कौमार्य अवस्था से ही बंधन में रखना आवश्यक है। परिवार का भार उसी पर रखा गया था, वह पुरूष पर निर्भर रहती थी।

संसार में जब सभ्यता नहीं थी। उस समय प्रत्येक बलवान व्यक्ति निर्बल पर शासन करता था, उसे अपने अधीन रखता था। महिलाओं को भी इसी श्रेणी में रखा गया, जिसका उदाहरण आधुनिक युग में भी देखने को मिलता है। आज भी नारी चाहे जितनी सबल हो परन्तु संरक्षण सुरक्षा वह हमेशा ही चाहती है। भारत में महिलाओं की स्थिति अन्य देशों की तुलना में सम्मान जनक है। पूर्व समय में महिलाओं को सम्पति में अधिकार नहीं दिये जाते थे। संयुक्त परिवार की सम्पत्ति में उसका कोई अधिकार नहीं रहता था, उसकी अपनी सम्पत्ति भी उसकी नहीं होती थी। विवाह का प्रचलन भी बहुविवाह का था, वह दत्तक ग्रहण नहीं कर सकती थी और महिला वर्ग गोद नहीं ली जाती थी, परन्तु कुछ समय बाद स्त्रियों में जाग्रति पैदा होने लगी। उन्होने भी पुरूष के समान अधिकार मांगने प्रारंभ किये।कुछ विद्धानों ने इसका सर्मथन किया,दूसरी तरफ इन्हें अधिकार दिये जाने लगे परन्तु परूष वर्ग का बंधन और कसता गया। विवाहित स्त्री को धर्मपत्नि का दर्जा दिया जाने लगा और पुरूष समाज में बहुविवाह करना प्रथागत मान लिया।

भारत में महिलाओं को समान अधिकार की बात भारत के संविधान के साथ आई और इसी बात को ध्यान में रखते हुये संविधान में नागारिक शब्द स्थापित किया गया, जो स्त्री–पुरूष दोनों का संबोधन करता है, इससे समानता अवश्य स्थापित की गई परन्तु व्यवहार में ऐसा नही है। संविधान के विभिन्न अनुच्छेदों में राज्य सरकारों को महिलाओं और बच्चों के कल्याण के लिये नियम बनाने का अधिकार दिया गया है। इसी संदर्भ में कुछ अधिनियम भी पारित किये गये।

महिलाओं के विकास और उनके अधिकारों की रक्षा के लिये संयुक्त राष्ट्र महासभा में 18 दिसंबर 1979 को महिलाओं के खिलाफ सभी प्रकार का भेदभाव समाप्त करने के बारे में प्रस्ताव पारित किया गया, जो 3 सिंतम्बर 1981 से प्रभावी हुआ। प्रस्ताव में ग्रामीण महिलाओं की विशेष समस्याओं और उनके पारिवारिक जीवन के अस्तित्व को बनाये रखने में उनके महत्वपूर्ण योगदान को भी रेखांकित किया गया। अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर अनेक समझोतों के बावजूद भी महिलाओं की स्थिति दूसरे दर्जे की है। विश्व स्तर पर प्रौढ़ निरक्षरों में दो तिहाई महिलायें है। विश्व के निर्धनां में 70 प्रतिशत महिलायें है।

अन्तर्राष्ट्रीय नागरिक एवं राजनीतिक अधिकारों की प्रसंविदा एवं अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक सामाजिक एवं सांस्कृतिक अधिकारों की प्रसंविदा में स्त्री–पुरूष को समतामूलक आधार पर मानव अधिकार उपलब्ध कराने की बचनबद्धता राज्यों ने स्वीकार की है। संयुक्त राष्ट्र संघ के आरंभिक दौर में महिलाओं के राजनैतिक अधिकारों का संगमन 1952 में हस्तांतरित किया। यह संगमन समानता के आधार पर महिलाओं को मतदान एवं निर्वाचन संबन्धी अधिकार उपलब्ध करवाता है। संघ ने 1957 में विवाहित महिलाओं की राष्ट्रीयता संबन्धी संगमन हस्तान्तारित हुआ। अब महिला अपनी स्वेच्छा से किसी भी देश की नागरिकता गृहण कर सकती है। सन् 1953 में सभी प्रकार की दासता की समाप्ति हेतु एक अन्तर्राष्ट्रीय संगमन हस्तान्तारित किया। इस संगमन द्वारा महिलाओं का उनकी सहमति के बिना विवाह नहीं करवाया जा सकता, मुद्रा या वस्तु के बदले महिला को हस्तांतारित नहीं किया जा सकता। पति की मृत्यु के बाद महिला को उत्तराधिकार प्राप्त हुआ। संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा 1962 में विवाह में दोनों की सहमति, विवाह में न्यूनतम आयु एवं विवाह के पंजीकरण की व्यवस्था हेतु एक संगमन को हस्तान्तारित किया गया। सन् 1967 में संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा 1967 से 1985 का दशक अर्न्तराष्ट्रीय महिला दशक घोषित किया गया। संघ ने 1979 में महिलाओं के विरूद्ध हर प्रकार के भेदभाव को समाप्त करने हेतु एक घोषण पत्र जारी किया। संयुक्त राष्ट्र संघ ने 1982 में अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति एवं सहयोग के प्रोत्साहन हेतु महिलाओं की भागीदारी का एक घोषण प़त्र जारी किया। विश्व शांति में महिलाओं के योगदान के रूप में महिलाओं की आर्थिक सामाजिक,संस्कृतिक,नागरिक एवं राजनीतिक मामलों में भागीदारी को अतिआवश्यक माना गया, क्योंकि अशांति या युद्ध के समय महिलायें ही सबसे ज्यादा क्रूरता का शिकार होती है।

1980 के कोपेनहेगन मे समानता, विकास एवं शान्ति के साथ उसके पुरक मुद्दों में महिलाओं हेतु रोजगार, स्वास्थ एवं शिक्षा की आवश्यकता पर बल दिया गया। महिला दशक में एक महिला आयोग स्थापित किया गया जिसे महिलाओं की प्रगति का आकलन करने का दायित्व सौंपा गया। सन 1993 में वियना में आहूत मानव अधिकारों के विश्व सम्मेलन में जिन मुद्दों पर घोषणायें एवं कार्यक्रम स्वीकार किये गये उनमें लैगिक समानता तथा महिलाओं एवं बालिकाओं के मानव अधिकार शामिल थे।

1995 में बीजिंग में महिलाओं के चौथे विश्व सम्मेलन में संयुक्त राष्ट्र महासचिव बूतरस घाली ने आग्रह किया कि 'विश्व को महिला की दृष्टि से देखो' महिला व पुरूष वर्तमान में असमान विश्व में रह रहे है लिंग भेद तथा

* सहायक प्राध्यापक (राजनीति) शासकीय कन्या स्नातकोत्तर महाविद्यालय, सागर (म.प्र.) भारत

असहनीय असमानतायें विश्व के विकसित तथा अविकसित सभी देशों में विद्यमान है। 1995 में एक भी राष्ट्र ऐसा नहीं है जहां महिला एवं पुरूष पूर्ण समानता की स्थितियों का उपयोग करते हों। विश्व के सभी हिस्सों में महिलाओं के प्रति भेदभाव के दृष्टिकोण, व्यवहार एवं प्रवृतियां जनजीवन में व्यापक स्तर पर प्रचलित है।'

भारतीय दण्ड संहिता 1860 में भी महिलाओं के विरूद्ध किये जाने वाले अपराधों की रोकथाम के लिये कठोर दण्ड की व्यवस्था की गई हैं। धारा-354 में स्त्री का लज्जा भंग, धारा-366 में अपहरण, धारा-726 में बलसंग, धारा -498(क) में निर्दयतापुर्वक व्यवहार तथा धारा 509 व 410 में स्त्री का अपमान करने को दण्डनीय अपराध घोषित किया गया। भारतीय संविधान के विभिन्न अनुच्छेदों के माध्यम से महिला के नागरिक एवं संवैधानिक अधिकारों का व्यापक प्रावधान किया गया है। संविधान के अनुच्छेद -15 में यह प्रावधान किया गया है कि धर्म, मूलवंश,जाति,लिंग या जन्मस्थल के आधार पर किसी नागरिक के साथ विभेद नहीं कर सकते चाहे वह महिला हो या पुरूष। अनुच्छेद -16 लोक नियोजन में महिलाओं को भी समान अवसार प्रदान करता है। समान कार्य के लिये समान वेतन की व्यवस्था की गई है। अनुच्छेद -21 विधायिका एवं कार्यकारिणी दोनों के अतिक्रमण से संरक्षण प्रदान करता है। अनुच्छेद-23 मानव के दुर्व्यवहार और बलात् श्रम का प्रतिषेध करता है तथा शोषण के विरूद्ध अधिकार देता है। संविधान के भाग-चर्तुथ में राज्य के अनुसरणीय कुछ नीति निर्देशक तत्व उल्लेखित है जिनमें स्त्री -पुरूषों के साथ समानता से व्यवहार करने के निर्देश है।

संविधान के भाग चर्तुथ में 42वें संशोधन (1976) के बाद 'मूलकर्तव्यों' के प्रावधान जोडे गये जिनमें एक नागरिक कर्त्तव्य 'महिला की गरिमा' का सम्मान करना भी है। अनुच्छेद-325 एवं 326 सभीं नागरिकों स्त्री एवं पुरूष दोनों को व्यस्कता के आधार पर मताधिकार देकर निर्वाचन प्रणाली में लिंगभेद का निषेध करता है। 73 वें एवं 74 वें संशोधनों के बाद महिलाओं के लिये स्थानीय निकायों में 33.3 प्रतिशत आरक्षण के बाद महिला अधिकारों की स्थिति में गुणात्मक परिर्वतन की शुरूआत देखी जा सकती है। भारतीय संवैधानिक प्रावधानों के अतिरिक्त अनेक विभिन्न अधिनियमों का निर्माण करके महिला अधिकारों को संरक्षण प्रदान करने का प्रयास किया गया है। जिसमें अनैतिकता व्यवहार निवारण अधिनियम 1956, आपराधिक विधि (संशोधन) अधिनियम 1987 विशेष विवाह अधिनियम 1954, कुटुम्ब न्यायालय अधिनियम 1956, मुस्लिम स्त्री (विवाह विच्छेद पर अधिकार संरक्षण) अधिनियम 1986 आदिह प्रमुख है।

भारत में वर्तमान समय में भी पुरूष प्रधानता व्याप्त है, जिसके चलते महिलाओं की स्थिति वर्तमान समय में भी दयनीय है और यदि भारत राज्य को नवीनता लाना है तो उसे महिलाओं के संबन्ध में उचित व्यवस्था का मार्ग प्रशस्त करना होगा तभी महिला अधिकार आन्दोलन में महिला अधिकारों की स्थिति मजबूत होगी।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. कुरूक्षेत्र मार्च 2006
2. डॉ. नन्दलाल, समान नागरिक संहिता।
3. प्रतियोगिता दर्पण 2004
4. श्रीराम माथुर, आधुनिक पारिवारिक विधि, भारत सरकार।
5. भारतीय संविधान का विकास एवं राष्ट्रीय आंदोलन-आर.सी.अग्रवाल एवं महेश भटनागर।
6. समान नागरिक संहिता - महिलाओं की स्थिति -किरण सिंह।

****

विष्यमता में समावेशी लोकतंत्र कैसे संभव हैं

सुनीता सोलंकी *

प्रस्तावना – जब तक आधी मानवता की आँखों में आसू है, मानवता पूर्ण नहीं कहीं जा सकती।

यह अच्छी बात है कि भारत नागरिक अधिकारों के मामलों में दुनिया के उच्च श्रेणी के देशों की बराबरी में है। इसलिए यदि नागरिक चाहे तो वे लोकतंत्र को श्रेष्ठतम मूल्यों से सम्पन्न कर उसकी स्थापना में अपना सर्वश्रेष्ठ योगदान कर सकते है। लेकिन राजनीतिक संस्कृति और गवर्नेस की स्थिति इस दिशा में सबसे बड़ी बाधा है और आगे भी बनती रहेगी। हालांकि 2014 के चुनावों के पश्चात अंशत: सकारात्मक बदलाव देखने को मिले है। हाँ राजनीतिक तंत्र यह देखकर तसल्ली कर सकता है कि भारत लोकतंत्र के मामले में अन्य दक्षिण एशियाई देशों के मुकाबले बेहतर स्थिति में है।

उल्लेखनीय है कि वर्ष 2014 में वैश्विक लोकतंत्र सूचकांक में भारत की रैंक 27 है। जबकि अन्य दक्षिण एशियाई देशों बांग्लादेश (85) श्रीलंका (87) भूटान (102) पाकिस्तान (108) नेपाल (105) और अफगानिस्तान (152) रही है। चूंकि भारत दक्षिण एशिया की वरिष्ठ शक्ति है और दुनिया की उभरती हुई आर्थिक ताकत है। जो कि वित वर्ष 2014-15 की आखिरी तिमाही (जनवरी – मार्च 2015) में भारत का सकल घरेलू उत्पाद 7.5 प्रतिशत की दर से बढ़ी, जबकि चीन की वृद्धि दर 7 प्रतिशत रही, जिसके साथ ही भारत दुनिया में सबसे तेज गति से वृद्धि करने वाला देश बन गया है। इसलिए इसे ऐस प्रतिमान स्थापित करना चाहिए जिसका अनुसरण केवल दक्षिण एशिया बल्कि दुनिया करे।

संयुक्त राष्ट्र के एशिया और प्रशांत क्षेत्र के लिए आर्थिक एवं सामाजिक आयोग (यूएनए स्केप) की एक रिपोर्ट के अनुसार एशिया के प्रशांत क्षेत्र में अमीर गरीब के बीच फासला बढ़ रहा है, भारत, चीन एवं इंडोनेशिया सहित कई प्रमुख अर्थव्यवस्थाओं में आय की असमानता बढ़ रही है। यह असमानता इस क्षेत्र की प्रमुख सामाजिक आर्थिक चुनौती है। आय असमानता के एक पैमानी मिनी कोइली सेंट के अनुसार 1990 के दशक की शुरूआत से वर्ष 2000 के बीच भारत में यह पैमाना 308 से बढकर 339 हो गया है जो चीन में 324 से बढकर 42.1 और इंडोनेशिया में 299 से बढकर 38.1 हो गया। कमजोर श्रम बाजार संस्थान, अपर्याप्त सामाजिक सुरक्षा प्रणाली, शिक्षा का कमजोर स्तर, ऋण एवं भूमि की अपर्याप्त पहुँच और परिसंपति का अत्याधिक केन्द्रकरण आय का बढते फासले के लिए जिम्मेदार कारको में शामिल है। इस क्षेत्र में सबसे अधिक गरीब 20 प्रतिशत आबादी का राष्ट्रीय आय में 10 प्रतिशत से भी कम हिस्सा है।

श्रम मंत्रालय की इकाई श्रम ब्यूरों के रिपोर्ट के अनुसार वित्तीय वर्ष 2013-14 में बेरोजगारी की दर पिछले वित्तीय वर्ष (2012-13) की अपेक्षा 02 प्रतिशत बढकर 49 प्रतिशत तक पहुँच गई। सिक्किम जैसे राज्य में यह दर 15.8 प्रतिशत है। वहीं जम्मू-कश्मीर में यह दर लगभग 10.8 प्रतिशत है। देश के शहरी और ग्रामीण क्षेत्र के बीच भी बेरोजगारी आंकड़े कई तरह की विषमताओं को रेखांकित करते है।

यह एक छदम् निष्कर्ष नहीं है। बल्कि भारत में इसकी तस्वीर स्पष्टतया देखी जा सकती है और पर्याप्त कारण है। हालांकि भारत में राजनीतिक संरचना और उसको निर्देशित करने वाले कारणों का खुलासा उतनी स्पष्टता के साथ नहीं हो पाता जितना कि अमेरीका जैसे देशों में हो जाता है, इसलिए या तो बहुत कुछ अस्पष्ट रहता है या फिर उसे मध्यकालीन जाति और धर्म के प्रत्ययों से जोड़ दिया जाता है। लेकिन बहुत हद तक दोनों ही जगहों पर कार्य – कारण समान है। इसलिए उम्मीद की जा सकती है वे संभवत: उससे कहीं अधिक विकृत रूप में भारत में अवश्य होगे।

21 जनवरी 2015 को दावोस में शुरू हुए विश्व आर्थिक मंच के सम्मेलन से पहले ब्रिटिश राहत संगठन ऑक्ससक्षम ने इस बात पर ध्यान दिलाया कि वर्ष 2016 तक दुनिया की एक प्रतिशत आबादी के पास इतनी संपत्ति होगी जितनी बाकी 99 प्रतिशत के पास है। अमीर और गरीब के बीच खाई भी बढ़ती जा रही है। इस विषमता बढ़ने का साक्ष्य यह है कि वर्ष 2014 में एक प्रतिशत के पास विश्व की 48 प्रतिशत संपत्ति थी। मानवाधिकार संगठनो ने वर्ष 2013 के लिए आंकलन किया था कि विश्व के 92 खरबपतियों के पास उतना धन है जितना दुनिया के गरीब आबादी के पास। वर्ष 2015 में सिर्फ 80 लोगों के पास उतना धन होगा जितना आधी आबादी के पास।

वर्षो पूर्व अमरीकी न्यायविद लुई डी ब्रेंडे ने कहा था कि किसी देश में लोकतंत्र हो सकता है या थोड़े से लोगों के हाथो में भारी संपदा का संकेन्द्रण हो सकता है। परन्तु दोनों एक साथ नहीं रह सकते। दूसरे शब्दो में जनतंत्र और आर्थिक विषमता का एक साथ रहना कठिन है। क्योंकि विषमता या तो जनमत को धीरे-धीरे नष्ट कर देती है अथवा उसे दोषपूर्ण बना देती है। यह बात पश्चिमी राष्ट्रों के साथ-साथ भारत पर भी लागू होती है। भारत में जबसे उदारवादी नीतियों को अपनाया है तब से अरबपतियों की संख्या और उनकी दौलत में नाटकीय ढंग से वृद्धि हुई है। लेकिन मानव आबादी के सबसे निचले हिस्से की स्थिति में कोई परिवर्तन नहीं आया। परिणाम स्वरूप विषमता की खाई लगातार चौड़ी होती गई।

विकास की इस रफ्तार में हर कोई हिस्सेदार नहीं है।क्योंकि भारत में अब भी गरीबी एक बड़ी समस्या है। क्या ऐसी स्थिति में समावेशी लोकतंत्र की स्थापना हो सकती है।

तकनीकी रूप से तो लोकतंत्र अपने आप में कोई पूर्ण विषयवस्तु नहीं है बल्कि यह एक विकासात्मक प्रक्रिया है जो सामाजिक जीवन के सभी क्षेत्रों

* शोधार्थी, सुमन मानविकी अध्ययनशाला, उज्जैन (म.प्र.) भारत

में क्रांतिकारी परिवर्तन के लिए ऊर्जा स्वित यांत्रिकी उपलब्ध कराती है। इसकी जड़े अपने इतिहास अपनी संस्कृति और अपनी लोकप्रिय आंकाक्षाओं में निहित हैं इसलिए सभी जगहों पर इसके विरूद्ध उठने वाले प्रश्न, शंकाएं या चिंताए समान कारणों से नहीं हो सकती है। लेकिन वर्तमान समय में जो एक चीज बहुत तेजी से विकसित हो रही है, वह है आर्थिक विषमता जिसके कारण एक तरफ लोकतंत्र कभी–कभी तो अपने अर्थो में ही कमजोर होता दिखाई पड़ने लगता है तो कभी यह एक वर्ग विशेष के लिए उपलब्धियों के रूप में सामने आता है है, तो कभी दूसरे वर्ग के लिए विकट गरीबी के रूप प्रस्तुत होता दिख रहा है।

अमरीकी थिंक टैंक 'डेमॉस' द्वारा 'स्टैक्ड डे' नाम से रिपोर्ट जारी की गई थी। जिसमें इस बात पर प्रकाश डाला गया कि किस तरह राजनीति पर अमीरों और पूंजीपतियों का कब्जा होता जा रहा है, जिसके फलस्वरूप आर्थिक गतिशीलता धीरे–धीरे समाप्त हो रही है और सामाजिक आर्थिक विकास की सीढ़ियों से नीचे से ऊपर पढ़ने में कितनी रूकावटें आ रही है। रिपोर्ट में संकेत दिया गया राजनीति के पायदान वही चढ़ सकेगे। जिनके पास धन की बाहुल्यता होगी। पूंजीवाद के साथ लोकतंत्र का घालमेल होने से जिस नवलोकनिन्त्रवाद का विकास हुआ है, उसमें आम आदमी के सरोकार कम हो गए आर पूंजीपति, उद्यमी तथा भ्रष्टजनो, अपराधियों दके सरोकारों का इजाफा हुआ।

भारत में लोकतंत्र की क्रांति कैपिटली अथवा उसके संरक्षकों के साथ पर्याप्त घनिष्ठता देखी जा सकती है। इसकी अनुमान संसद में उपस्थित प्रतिनिधियों की संख्या के आधार पर लगाया जा सकता है पंद्रहवीं लोकसभा में 543 सदस्यों में से 300 सदस्य करोड़पति थे। अरबपति (इनमें से अधिकांश अरबपति) है। भारत में इसके अतिरिक्त भी एक पक्ष जो लोकतंत्र के समक्ष चुनौती उपस्थित कर रहा है वह है आपराधिक छवि वाले लोगों का संसद में बड़ी संख्या में पहुंचना। कई सदस्य आपराधिक छवि के होते है, शेष परम्परागत राजनीतिक परिवारों अथवा राजनीतिक उच्चाधिकारियों का कब्जा है। फिर आमजन के लिए कितनी जगह शेषे रह जाती है और कहां है ? योग्यता के बावजूद यदि कोई भारतीय नागरिक इन आीर्थक अथवा अन्य उपादानों से संपन्न नहीं है तो उसका लोकतंत्र की सीढ़ियों पर चढना बहुत कठिन है। भारत का लोकतंत्र संवेदनशीली है और यह अपेक्षा करता करता है कि लोकतंत्र में प्रत्येक व्यक्ति की सहभागिता सुनिश्चित हो। प्रस्तावना में ही हम भारत के लोगों में लोकतंत्र की वास्तविक शक्ति निहित की गई। लेकिन में औपचारिक पक्ष हैं। क्योंकि लोकतंत्र की वास्तविक शक्ति उसे राजनीतिक तंत्र में निहितं हैं जो लोकतंत्र सूचकांक में कुल अंको के 50 प्रतिशत के असयवसय है। इसका कारण वर्तमान राजनीतिक संस्कृति लोकतंत्र का इस्तेमाल अपनी उत्तरजीविका को पुख्ता करने लिए करती है। अगर ऐसा न होता तो अब तक भारत से सामाजिक आर्थिक विषमता की विषबेल न जाने कब की समाप्त हो चुकी होती है।

भारत का सच यह है कि यहां लगभग आधे या आधे से अधिक लोग विकट गरीबी में बसर कर रहे है। विश्व बैंक के अनुसार भारत की लगभग 41.6 प्रतिशत जनसंख्या अन्तर्राष्ट्रीय गरीबी रेखा के नीचे है। ग्रामीण विकास मंत्रालय की ओर से गठित एन.सी. सक्सेना समिति तो यह 50 प्रतिशत बताती हैं। इन.एस.एस.ओ. के आंकडों पर ध्यान दें, तो 2011–12 (जुलाई–जून) के दौरान देश के ग्रामीण क्षेत्रो में रहने वाली पाँच प्रतिशत सबसे निर्धन आबादी का प्रति व्यक्ति मासिक औसत खर्च 5244 रूपये था और पांच प्रतिशत सबसे अमीर आबादी का 4.48 प्रतिशत निर्धन आबादी का प्रति व्यक्ति औसत खर्च 450 रूपये था। इसके विपरित शहर में 5 प्रतिशत निर्धन आबादी का प्रति व्यक्ति औसत खर्च 10.282 रूपये।

यह तो एक सामान्य तस्वीर है जो विषमता की रूपरेखा पेश करती है। लेकिन असल सवाल यह नहीं है बल्कि यह है कि ये गरीब लोकतंत्र के उस ढाँचे में किस तरह फिट बैठ पायेगे, जो अपनी जीविका चलाने में ही असमर्थ हों। क्या कोई ऐसा ऐसा फार्मूला बनेगा जिससे लोकतंत्र की सहभागिता में अमीरी या गरीबी अवरोधक न बने। यदि ऐसा नहीं होता हे तो फिर देश की कम से कम आधी आबादी लोकतंत्र के अर्थ और उसके महत्व को समझने में असमर्थ रहेगी।

सामान्यत: समावेशी लोकतंत्र की बात तब होनी चाहिए, जब पहले यह सुनिश्चित हो जाए कि हम वास्तव में लोकतंत्र को अपनाने और उचित तरीके से क्रियांवित करने में किस सीमा तक सफल हुए है। इकोनीमिस्ट इंटेलिजेंट डमोक्रेसी रिपोर्ट देखे जो पता चलता है कि दुनिया में केवल 15 प्रतिशत देश ही पूर्ण लोकतंत्र को अपनाने में कामयाब है अथवा विश्व की कुल आबादी का केवल 11.3 प्रतिशत हिस्सा ही वास्तविक लोकतंत्र के करीब है, दोषपूर्ण लोकतंत्र के अधीन है या फिर शासन के दूसरे रूपों के नीचे दबा हुआ है

'डेमोक्रेसी इंडेक्स' जो इकोनोमिस्ट इंटेलिजेन्ट यूनिट द्वारा जारी किया जाता है जो विश्व के देशों को पूर्ण लोकतंत्र, द्वेषपूर्ण लोकतंत्र हायब्रिड रिजिम, ऑथोरियम रिजीम में बांटती है। यह विश्व के 16 देशो में लोकतंत्र का आंकलन करता है। जिसमें 166 देश समाजवादी राज्य है। जिसमें 165 देश संयुक्त राष्ट्र के सदस्य देश है। इनमें लोकतंत्र को मापने के लिए 60 सूचकों का सहारा लिया जाता है।

डेमोक्रेसी, इंडेक्स में जो देश 8 से 10 स्कोर पाते है वे ही पूर्ण लोकतंत्र को अपनाने वाले देश माने गए है अथवा उन देशों में पूर्ण लोकतंत्र माना गया है। जिन देशो का स्कोर 6 से 7.9 अंक के मध्य है। वहां वास्तविक लोकतंत्र हैं न ही दोषपूर्ण लोकतंत्र है। इस संदर्भ में देखा जाये तो भारत का स्कोर वर्ष 2006 से 2014 तक 7 से 8 अंको के मध्य ही रहा है।

वर्ष	2006	2008	2010	2011	2012	2013	2014
स्कोर	7.68	7.28	7.28	7.30	7.52	7.54	7.92

स्त्रोत डेमोक्रेसी इंडेक्स 2014 द इकोनॉमिस्ट इंटेलिजेंस यूनिट

उपरोक्त तालिका को दृष्टिगत किया जाये तो भारत में दोषपूर्ण लोकतंत्र माना जाएगा। यहीं नहीं डेमोक्रेसी इंडेक्स में देखा जाए तो भारत में पिछले कुछ वर्षो से लोकतंत्र में गिरावट आई है। क्योंकि उसका स्कोर कुछ गिरा है। हांलाकि 2013 के पश्चात बढ़त दिखाई दी है। भारत में लोकतंत्र की गिरावट का कारण क्या है ? इस पर भी इकोनोमिस्ट इंटेलिजेंस डेमोकेसी इंडेक्स में प्रकाश डाला गया है।

लोकतंत्र सूचकांक में भारतीय स्कोर की श्रेणीगत स्थिति (सारणी देखे अगले पृष्ठ पर)

तालिका से स्पष्ट होता है कि वर्ष 2011 और वर्ष 2012 में भारत में लोकतंत्र की संस्थाओं अथवा उसके अनुबंधी घटको में उत्थान नहीं बल्कि पतन के लक्षण दिखे, कुछ मामलों में स्थिति भले ही यथावत रही हो , लेकिन सकल स्कोर वर्ष 2006 और 2008 के मुकाबले पतन का शिकार हुआ। अधिक चिंता के बिंदू तीन है–

- सरकार की कार्यप्रणाली।

- राजनीतिक भागीदारी।
- राजनीतिक संस्कृति।

स्पष्ट है कि सरकार की कार्यप्रणाली जिस अनुपात में दोषपूर्ण होती जाएगी। उसी अनुपात में लोकतंत्र के मूल्यों और उसकी संरचना में भी गिरावट आएगी।

लोकतंत्र सूचकांक–2014

लोकतंत्र का प्रकार	देशो की संख्या	देशो का प्रतिशत	विश्व की जनसंख्या का प्रतिशत
पूर्ण लोकल	24	14.4	12.5
दोषपूर्ण लोकतंत्र	52	31.1	35.5
हाईब्रिड शासन	39	23.4	14.4
अधिनायकवादी शासन	52	31.1	37.6

विश्व आर्थिक मंच द्वारा 28 अक्टूम्बर 2014 को जारी 'वैश्विक लेंगिक अंतराल सूचकांक' 2014 में हालांकि भारत का प्रदर्शन काफी निराशाजनक रहा। भारत का प्रदर्शन आर्थिक भागीदारी, शैक्षिक स्थिति तथा स्वास्थ्य व उत्तर जीविका में औसत से भी खराब रहा है। सूचकांक में श्रम बल भागीदारी के मामले में भारत को विश्व के 20 सबसे खराब प्रदर्शन करने वाले देशों की सूची में शामिल किया गया। हालांकि राजनीतिक सशक्तीकरण उपसूचकांक में भारत 20 सर्वाधिक अच्छा प्रदर्शन करने वाले देशो की सूची में शामिल है। पिछले कुछ वर्षो में बढती लैंगिक अंतराल यह था–

- 2006 – 98
- 2012 – 105
- 2013 – 101
- 2014 – 114

रही जों लोकतंत्र व विषमता के मध्य एक विरोधाभासी स्थिति उत्पन्न करती हैं।

संदर्भ ग्रंथ सूची :–

1. योजना – मासिक पत्रिका अंक 8 अगस्त 2013 योजना भवन नई दिल्ली।
2. क्रानिकल – मासिक पत्रिका अंक – 5 दिसंबर 2014
3. क्रानिकल – मासिक पत्रिका अंक – 8 मार्च 2015
4. बेबसाइट – www.eiv.com

लोकतंत्र सूचकांक में भारतीय स्कोर की श्रेणीगत स्थिति

वर्ष	रैंक	कुल स्कोर	चुनाव प्रक्रिया एवं बहुलवाद	सरकार की कार्यप्रणाली	राजनीतिक भागीदारी	राजनीतिक संस्कृति	नागरीय स्वंतंत्रता
2006	35	7.68	9.58	8.21	5.56	5.63	9.41
2011	39	7.30	9.58	7.5	5.00	5.00	9.41
2012	38	7.52	9.58	7.5	6.11	5.0	9.41
2013		7.54	9.58		9.41		
2014		7.92					9.41

****

वैयक्तिक अध्ययन एवं सहभागी अवलोकन जमीनी स्तर पर सामाजिक रुपांतरण एवं ज्ञान प्राप्ति की महती शोध प्रविधियाँ

डॉ. संजय जोशी *

प्रस्तावना – सामाजिक अनुसंधान में तथ्यों के संकलन एवं सिद्धांतों के निरुपण हेतु विभिन्न शोध प्रविधियों को प्रयुक्त किया जाता है[1] किन्तु सूक्ष्म स्तर पर समाज के अन्दर हो रहे सामाजिक रुपान्तरण को जमीनी स्तर तक जाकर देखने, परखने एवं शुद्ध व गहन अध्ययन के द्वारा ज्ञान प्राप्ति हेतु सहभागी अवलोकन एवं वैयक्तिक अध्ययन पद्धतियाँ की आज भी अत्यन्त उपयोगी है। सामाजिक अनुसंधानों में इनकी आज भी अत्यन्त महत्वपूर्ण भूमिका है। सामाजिक विज्ञान के क्षेत्र में जो महत्वपूर्ण पुस्तके लिखी गई हैं, जिन महत्वपूर्ण सामाजिक सिद्धांतों का निर्माण हुआ है एवं महत्व की शोध हुई है, उनमें इन दोनों पद्धतियों का ही महत्वपूर्ण योगदान रहा है।[2] कुछ प्रमुख समाजशास्त्रीय अध्ययनों में जिनमें विशेष रुप से डॉ. एस.सी. दुबे, डॉ. एम.एन. श्रीनिवास, डॉ. एन.के. मजुमदार, प्रो.ए.आर. देसाई, प्रो. योगेन्द्रसिंह, प्रो. आन्द्रे बेतई, फादर वेरियर एल्विन, प्रो.के.एल. शर्मा एवं टी.वी. नायक ने अपने ग्रामीण एवं आदिवासी अध्ययनों में इन्हीं पद्धतियों का प्रयोग करते हुए महत्वपूर्ण सामाजिक निष्कर्ष प्रतिपादित किये। समाजशास्त्र को वैज्ञानिक स्वरुप देने में आरंभिक समाजशास्त्रियों जिनमें विशेष रुप से अगस्त काम्टे, इमाईलदुर्खिम, मेक्स वेबर, पिटरिम सोरोकिन, मर्टन एवं पारसन्स ने भी सहभागी अवलोकन के द्वारा अत्यन्त महत्वपूर्ण सामाजिक सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया, जिससे समाजशास्त्र एक अत्यन्त महत्व का वैज्ञानिक स्वरुप लेकर उपयोगी व महत्वपूर्ण विषय बन सका।

यही नहीं अनेक प्राकृतिक वैज्ञानिकों ने भी इन पद्धतियों व प्रविधियों के माध्यम से अनेक महत्वपूर्ण अवधारणाओं व नवीन ज्ञान का प्रतिपादन किया है। इनमें चार्ल्स डार्विन, पाइथागोरस, प्रो.जे.सी. बसु, न्यूटन, मैलिनोवास्कि, हिपोक्रेटीज इत्यादि की खोज सर्वथा महत्व की खोजों में से एक है।

महान जीव वैज्ञानिक चार्ल्स डार्विन ने अपने सर्वाधिक महत्वपूर्ण सिद्धांत **"Struggle for the Existence & Survival of the fittest"** एवं सर्वकालिक महान ग्रंथ **"The Origin of Species & Natural Selection"** की रचना पाँच वर्ष तक जहाज पर समुद्री यात्रा व विभिन्न द्वीपों पर सहभागी अध्ययन करके ही की थी।

फ्रांस के प्रसिद्ध समाज वैज्ञानिक दुर्खिम के दो महत्वपूर्ण सिद्धांत 'आत्महत्या' व 'टोटमवाद' सहभागी अवलोकन व वैयक्तिक अध्ययन के द्वारा ही संभव हो पाए। आत्महत्या पर लिखी गई उनकी पुस्तक **"Le Suicide"** को आज भी बड़े चाव से विश्व भर में पढ़ा जाता हैं।

सात वर्षो तक यूरोप के 15 देशों के अध्ययन के उपरान्त आप ने आत्महत्या को एक सामाजिक घटना व इसके लिये सर्वाधिक जिम्मेदार कारक समाज को बताया। इसी प्रकार आस्ट्रेलिया में **अरुण्टा जनजाति** के बीच 5 वर्ष रहकर उन्होंने टोटम की अवधारणा को जन्म दिया।

श्री जॉन हॉवर्ड ने जेलों एवं कैदियों के अध्ययनके लिये अपने जीवन के सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण वर्ष कैदियों के साथ जेलों में बिताये। यहाँ तक कि जेल में ही उनकी मृत्यु हो गई। प्रसिद्ध मानवशास्त्री श्री मैलिनोवास्की ने पश्चिमी प्रशान्त महासागर में स्थित ट्रोबियान्डा द्वीप पर रहने वाली मेलेनिशियन जनजाति का अध्ययन सहभागी व वैयक्तिक अध्ययन पद्धति के माध्यम से ही किया। मैलिनोस्वकी को अंतर्राष्ट्रीय जगत में सामाजिक मानवशास्त्र के संस्थापक के रुप में जाना जाता है। मैलिनोवास्की की प्रसिद्धी सहभागी अवलोकन के क्षेत्र में है।[3]

सहभागी निरीक्षण शब्द का प्रयोग सबसे पहले श्री लिंडमैन ने 1924 में प्रकाशित अपनी पुस्तक **"Social Discovery"** में किया था। यद्यपि इससे पूर्व भी इस प्रविधि का प्रयोग होता रहा है।[4] मेडम मेरी क्यूरी ने रेडियोधर्मिता, एलेक्जेण्डर फ्लेमिंग ने पेनिसीलीन का एवं न्यूटन ने गुरुत्वाकर्षण सिद्धांत का ज्ञान इस प्रविधि का प्रयोग करके ही प्राप्त किया था। हिपोक्रेटीज को चिकित्सा शास्त्र का महान चिकित्सक एवं अनुसंधानकर्ता माना जाता है। आज भी चिकित्सा विज्ञान की पढ़ाई पूरी करने के बाद **Pass Out** पर डॉक्टर्स को 'हिपोक्रेटीज–ओथ' (शपथ) दिलवाई जाती है।

भारत के अनेक समाज वैज्ञानिकों ने इस पद्धति के माध्यम से महत्वपूर्ण सामाजिक सिद्धांत एवं अवधारणाओं एवं पुस्तकों की रचना की है। इसमें डॉ.एस.सी. दुबे द्वारा 2 वर्ष तक हैदराबाद के पास शामीरपेट गाँव का अध्ययन सहभागी अवलोकन के द्वारा कर विश्व प्रसिद्ध पुस्तक **An Indian Village** लिखी गई जिसे ग्राम्य जीवन पर सबसे विश्वसनीय पुस्तक के रुप में माना व पढ़ा जाता है।

डॉ.एम.एन. श्रीनिवास ने बैंगलोर के पास मैसूर जिले में स्थित रामपुरा गाँव में रहने वाली कुर्ग जाति का अध्ययन वैयक्तिक व सहभागी अवलोकन के द्वारा करके **Religion And Society Among the Koorgs of South India** पुस्तक व विश्व प्रसिद्ध 'संस्कृतिकरण' की अवधारणा का प्रतिपादन किया[5] जिसने न केवल प्रो. श्रीनिवास को विश्व के महत्वपूर्ण समाजशास्त्रियों के रूप में पहचान प्रदान की वरन् भारतीय समाजशास्त्र का नाम भी इससे गौरान्वित हुआ।

मैनें भी अपने एम.ए., एम.फिल. एवं पीएच.डी. के शोध प्रबंधों में इन पद्धतियों का प्रयोग कर ग्रामीण एवं जनजातीय जीवन में आ रहे सामाजिक एवं सांस्कृतिक रुपान्तरणों को देखने का प्रयास किया है। इन पद्धतियों के प्रयोग के द्वारा जो महत्वपूर्ण परिवर्तन मुझे इन समाजों में देखने को मिले वे निम्नानुसार हैं –

* विभागाध्यक्ष (समाजशास्त्र) शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, नीमच (म.प्र.) भारत

1. आदिवासी समाज में भी विशेष रुप से उन परिवारों में जो हिन्दू परिवारों से घनिष्ठ रुप से संबंधित एवं उनके नजदीक रहे उनमें वधु मूल्य के स्थान पर कन्यादान की प्रथा प्रारम्भ हो चुकी है जो आदिवासी जीवन की मूलभूत विशेषताओं में आ रहा एक अत्यन्त महत्वपूर्ण परिवर्तन है।[6]
2. आदिवासी भी अब अपने बच्चों के नाम तिथियों, वारों एवं प्राकृतिक वस्तुओं के स्थान पर हिन्दू परिवारों में विशेष रुप से शहरी हिन्दू परिवारों में रखे जाने वाले आधुनिक नाम रखने लगे है। [7]
3. ग्रामीण दलित परिवारों की महिलाओं में भी आत्म स्वाभिमान एवं निर्भयता की भावना विकसित होती हुई देखी गई है। वे अपने विवाह से पूर्व भावी ससुराल में घर में स्नानघर, स्टेडिंग किचन एवं शौचालय चाहती है। इनके अभाव में वे विवाह प्रस्तावों को ठुकराने की हिम्मत भी दिखाने लगी है।
4. ग्रामीण सामाजिक जीवन में एक नवीन स्तरीकरण की व्यवस्था देखने को मिल रही है। गाँव में जहाँ सदियों तक व्यक्ति के सामाजिक एवं आर्थिक जीवन में जाति की ही प्रमुख भूमिका होती थी वहीं अब जाति व वर्ग के स्थान पर उसकी पहचान उसकी योग्यता, कुशलता एवं कार्य की प्रकृति पर हो रही है। अब न तो उसकी जाति महत्वपूर्ण हैं न उसका नाम अब तो वह अपने गाँव में अपनी कार्य की प्रकृति से ही जाना जाता है व इज्जत प्राप्त करता है। इसे एक पुनरस्तरीकरण प्रक्रिया के रुप में समझा जा सकता है। [8]
5. ग्रामीण अध्ययनों में विशेष रुप से ग्रामीण सामाजिक परिवर्तन से संबंधित अध्ययनों में अब तक आधुनिकीकरण, वैश्वीकरण, नगरीकरण एवं ऐसे ही अन्य कारकों को ग्रामीण जीवन में परिवर्तन हेतु जिम्मेदार माना जाता था। परन्तु मैनें अपने ग्रामीण एवं जनजातीय अध्ययन में पाया कि इन समाजों में उभरा मध्यम वर्ग भी परिवर्तन का एक प्रमुख कारक है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :–

1 Goode & Hatt, 1972. Methods in Social Research, New York : Mcgraw-Hill Book Company Inl. P.32

2 Young, P.V. ,1960. Scientific Social Surveys and Research, Bombay: Asia Publishing House, P.154

3 Moser, C.A., 1961. Survey Methods in Social Investing, London : Heinemann, P.169

4 Basic, M.N., 1961. Field Methods in Anthropology & other Social Sciences, Calcutta : Book Land Private Ltd., PP. 20-21.

5 Shriniwas, M.N., 1964. Social Change in Modern India, London : Oxford University Press, P.148

6 Joshi, Sanjay, 1990. A Sociological Study of Bhil Families of Hartal Village, Unpublished Dessertation of M.A. , PP. 57-59

7 Joshi, Sanjay,1991. The Patterns of Kinship, Education, Marriage & Communication in Bhil Tribe of M.P., Unpublished M.Phil. Dessertation, PP. 121-125

8 Joshi, Sanjay,2009. The Emerging Middle Classes & Social Change among the Rural Communities of Madhya Pradesh, Unpublished Ph.D. Thesis, Submitted for Doctrate Degree to M.L. Sukhadiya University Udiapur, PP. 268-272

****

स्व सहायता समूह

डॉ. सुमित्रा वर्मा *

प्रस्तावना – भारतीय नाबार्ड बैंक (1982) द्वारा संचालित एनज़ीओ.की तर्ज पर स्व सहायता समूहों की स्थापना गाँवो तथा शहरों में की गई इस आधार पर मप्र.शासन द्वारा महिला उद्यमिता को प्रोत्साहित करने के लिए स्व सहायता समूह स्कूल में जहॉ मध्यान्ह भोजन निर्माण के लिए उद्योगों में ही, लद्यु तथा कुटीर उद्योगा में हो सिलाई, कढ़ाई, बुनाई के क्षेत्र में, अगरबत्ती, पापड़ उद्योग आदि क्षेत्रों में इन स्व सहायता समूहों ने देश के समावेशी विकास की आधारशीला रखी है।

भारतीय अर्थव्यवस्था मूलत: ग्रामीण एवं कृषि प्रधान है। देश के सर्वांगीण विकास में ग्रामीण विकास महत्वपूर्ण स्थान रखता है। भारत की कुल जनसंख्या का 74.3 प्रतिशत भाग 5.5 लाख गॉवो में निवास करता है तथा अपनी आजीविका के लिए कृषि पर निर्भर है।

प्राचीन समय से ही हमारे देश में रहने वाले लोग एक दूसरे के साथ मिलकर एवं भावनाओं को समझकर कार्य करने के तरीके को अपनाए हुए है। स्व सहायता समूह की आधुनिक संरचना का आधार इसी तरीके पर निर्भर है। स्व सहायता समूह में व्यक्ति न केवल एक दूसरे के साथ मिलकर कार्य करने की विधि को अपनाकर छोटे छोटे सहयोग से भागीदारों को उत्पादन विक्रय एवं सामाजिक कार्यो में आर्थिक सहायता प्रदान करते है बल्कि स्व सहायता समूहों गठन एवं संचालन भी इन्ही पर निर्भर होता है।

स्व सहायता समूह –

1. समूह के सभी सदस्यों की परिस्थितियॉ समान होती है।
2. समूह के सदस्य अपनी समस्याएं सुलझाने में एक दूसरे की मदद करते है।
3. जमा राशि सामूहिक निधि के रूप मे बैंक बचत खाते में स्वयं सहायता समूह के नाम पर जमा करायी जाती है।
4. ये समूह अपने सदस्यों को नियमित रूप से छोटी छोटी बचते करने के लिए प्रेरित करते है।
5. समूह के सदस्यों को सामूहिक निधि मे से ही छोटे छोटे ऋण प्रदान किए जाते है।

इस प्रकार छ: माह तक इस समूह के माध्यम से नियमित बचत करने वाले अपने सदस्यों को ऋण प्रदान करने एवं गुणवत्ता जाँच सूची के आधार पर बैंक को सतुंष्ट करने के बाद बैंक उक्त समूह को ऋण प्रदान कर सकते है। इस योजना का उद्देश्य ग्रामीण निर्धनों के लिए पूरक ऋण युक्ति रचना तैयार करना है। ग्रामीण निर्धनों में एवं बैंकों के बीच पारस्परिक विश्वसनीयता आत्म विश्वास कायम करना है। बैंकिंग कार्यकलापों में बचत के साथ-साथ ऋण को भी प्रोत्साहित करना है।

स्वयं सहायता समूह कर्त्ताओं के कई स्वरूप है और कई संस्थाए अपनी-अपनी योजनाओं के अतंर्गत समूह का गठन कर रही है समूह के माध्यम से विकास की योजनाओं एवं बैंक ऋण को निर्माण वर्ग तक सरलतापूर्वक पहुँचाया जा सकता है। समूह की संरचना – एक आदर्श समूह के लिए –

1. सदस्यों की संख्या 18-20 हो सकती है।
2. आयु 18-60 वर्ष के मध्य होना चाहिए।
3. सदस्य गरीबी रेखा के नीचे जीवनयापन करते हो।
4. समूह के सभी सदस्य निर्णय लेने में सक्रिय भूमिका निभाएं।
5. सदस्यों में स्व विकास की इच्छा हो।
6. समूह द्वारा समूह संचालन के नियम कानून बनाने चाहिए।
7. समूह को घोषणा का विरोध करने में सक्षम होना चाहिए।
8. समूह के सदस्यों को अपना नाम लिखने में समर्थ होना चाहिए।
9. सदस्यों को गरीबी की रेखा के नीचे जीवनयापन का प्रमाण होना चाहिए।

स्व सहायता समूह का नाम – स्व सहायता समूहों के गठन को तीन श्रेणियों में वर्गीकृत किया जा सकता है।

1. गरीबी उन्मूलन कार्यक्रम के अंतर्गत गठित स्वयं सहायता समूह।
2. विशेष क्रियाकलाप हेतु गठित स्वयं सहायता समूह।
3. केवल महिलाओं के लिए गठित स्वयं सहायता समूह।

स्वयं सहायता समूह के कार्य – स्वयं सहायता समूह का प्रमुख कार्य बचत एवं किफायत को प्रोत्सहित करना है। सदस्यों की बचत की आदत को नियमित करना, बचत की राशि छोटी हो। इनका उद्देश्य पहले बचत फिर ऋण है। बचत के द्वारा समूह आत्म निर्भरता की और कदम बढाकर जरूरतमंद सदस्यों को ऋण देकर वित्तीय अनुशासन की शिक्षा प्रदान करते है जो बैंक के साथ ऋण लेते समय काम आता है। ये समूह बचत राशि का उपयोग सदस्यों को ऋण प्रदान करने के लिए करते है। आतंरिक ऋण का उचित हिसाब किताब रखना, ऋण का प्रयोजन, राशि, ब्याज दर, चुकाने के तरीके का निर्धारण, भी ये समूह द्वारा ही किया जाता है। प्रत्येक बैठक में समूह, सदस्यों की समस्याओं पर विचार-विमर्श कर उनका निदान करने का प्रयास करता है। बैंको से ऋण प्राप्त करके सदस्यों में वितरित करता है। इन समूहों के माध्यम से निर्धन व्यक्तियों के जीवन में काफी परिवर्तन आ रहा है।

स्वयं सहायता समूह के गठन से एक व्यक्ति, सभी व्यक्ति, सम्पूर्ण गाँव अर्थात् अनेकता में एकता का विकास संभव हो रहा है। बैंको से आपसी सामंजस्य एवं ऋण में आसानी हुई है। विभिन्न विकास कार्यक्रमों का लाभ द्वारा सशक्तिकरण में मदद मिली है। एकता एवं सहभागिता की भावना का

* सहायक प्राध्यापक (समाजशास्त्र) शासकीय महाविद्यालय, ढाना, जिला - सागर (म.प्र.) भारत

विकास हुआ है। प्रति सदस्य आय में वृद्धि के साथ साहूकारों पर निर्भरता कम हुई है। प्रति सदस्य आय में वृद्धि के साथ जीवन स्तर में सुधार हुआ है।

आय सृजनात्मक गतिविधियों से छोटे छोटे व्यवसाय एवं उद्योगों के विकास ने आर्थिक एवं सामाजिक समस्याओं के निराकरण में सहायता मिली है। ये सभी लाभ समूह के सदस्यों की प्राप्त हुए है साथ ही इनके गठन से संस्थानों को भी लाभ पहुंचा है विकासात्मक प्रयासों को प्रोत्साहन मिलने से समायोजक तथा आर्थिक कार्यक्रमों के क्रियान्वयन में सांमजस्य उत्पन्न हुआ है। क्रेडिट प्लस दृष्टिकोण द्धारा निर्धनों तक पहुँच बढ़ी है। ये समूह बैंक तथा निर्धन के मध्य सेतु के रूप में उभरकर सामने आये है।

उपरोक्त लाभों को दृष्टिगत रखते हुए यह आवश्यक है कि इन्हें बडे संगठन के रूप में संगठित किया जाए जिससे ये अपनी प्रतिष्ठा के आधार पर अधिक .ऋण प्राप्त कर सकेंगे इन समूहों के स्वरूपों मे विविधता के साथ इनकी संख्या वृद्धि के बाद इनका कानूनी दर्जा तय करना आवश्यक होगा।

समूह की गुणवत्ता के मापदण्ड – समूह के निरंतर सक्रिय रहने के लिए यह आवश्यक है कि समय–समय पर उसकी गुणवत्ता का परीक्षण किया जाता रहे समूह गुणवत्ता मापदण्ड निम्नानुसार है –

1. आकार।
2. नियमावली।
3. बैठक।
4. बैठक की उपस्थिति।
5. उत्तरदायित्व।
6. कार्यक्रम आयोजन।
7. बचत।
8. ऋण
9. चक्रीय कोष।
10. ऋण वसूली।
11. ससांधनो का उपयोग।
12. रिकार्ड का होना।
13. समूह गान।
14. सदस्यों की सक्रियता।

मूल्यांकन –

1. एकरूपता की भावना का होना।
2. समूह गठन की जरूरत की समझ।
3. समूह गठन के उद्देश्यों के बारे मे जागरूकता ।
4. बैठकों का आयोजन।
5. बैठकों की उपस्थिति।
6. बचत की नियमितता आदि।

उपरोक्त बिन्दुओं के आधार पर एक सफल समूह की प्रगति की ग्रेडिग कर सकते है।

जहाँ इस योजना के द्धारा परिवारों की अर्थव्यवस्था को मजबूती मिली है। वही देश की बेरोजगारी, नगरीय तथा शहरी आर्थिक असमानता दूर हुई है साथ ही पुरूष तथा महिलाओं की कार्य सहभागिता का विकास हुआ है। इसके अतिरिक्त गाँवों मे रोजगार के अवसरों में वृद्धि से शहरों की ओर पलायन की गति धीमी हुई है।

इन स्व सहायता समूह योजना के उपरोक्त आर्थिक पक्ष के अतिरिक्त दूसरे सामाजिक अधिकारों तथा कर्त्तव्यों के प्रति जागरूकता बढ़ी है। महिला साक्षरता में भी वृद्धि हो रही है। महिलाओं का शोषण जैसे दहेज प्रथा, चार दीवारी मे बंद जीवन आदि तथा जाति प्रथा पर अकुंश तथा सामाजिक सौहार्द्र की भावना में वृद्धि हुई है स्व सहायता समूह योजना के अतंर्गत प्राप्त प्रशिक्षण से महिलाओं की तकनीकी शिक्षा प्राप्त हो रही है जिससे आगे चलकर कम्प्यूटर आदि के ज्ञान के योग्य हो गई है।

निष्कर्षत: स्व सहायता समूह के माध्यम से न सिर्फ परिवार, समाज क्षेत्र प्रदेश देश तथा विश्व के आर्थिक विकास में गतिशीलता प्रदान करने मे सहायक सिद्ध होगें।

संदर्भ ग्रंथ सूची :–

1. विभिन्न योजनाओं में स्व सहायता समूह – राकेश मल्होत्रा।
2. आगे आये लाभ उठाये – जन सम्पर्क विभाग मध्यप्रदेश।
3. उद्यम दर्शन – जिला उद्योग केन्द्र सागर।
4. उद्यमिता विकास केन्द्र विवरणिका सहकारी योजना 2000–01 जिला व्यापार एवं उद्योग केन्द्र।
5. दैनिक समाचार पत्र – नई दुनिया।
6. wwww.womenentrepreneurship.org
7. www. Sewa.org

****

शिक्षा का अधिकार कानून एवं सामाजिक दायित्व

डॉ. निशा जैन *

प्रस्तावना – शिक्षा किसी भी राष्ट्र या समाज के विकास की आधारशिला है। कोई भी राष्ट्र या समाज बिना शिक्षा के विकसित नहीं हो सकता। शिक्षा व्यक्ति को स्वाभिमान, निर्भिक, निर्णय लेने की क्षमता प्रदान करती है। शिक्षा नैतिक मूल्यों का विकास करने में सहायक होती है। महात्मा गांधी का कथन है कि शिक्षा बालक तथा व्यक्ति के शरीर, मन एवं आत्मा की सर्वोत्मता का सामान्य प्रकटीकरण है। शिक्षा व्यक्ति के शारीरिक, बौद्धिक, संवेगात्मक, नैतिक एवं आर्थिकक विकास से सम्बद्ध है। शिक्षित व्यक्ति विनम्र होता है। कहा गया है 'विद्या ददाति विनयम्' जो जीवन को जड़ता, कुंठा, अहंकार जैसे नकारात्मक कारकाकें से मुक्त करती है – 'सा विद्या या विमुक्तये' और जो जीवन जीने की कला एवं कुशलता सिखाती है। बालकों का व्यक्तित्व विकास सामाजीकरण की प्रक्रिया के माध्यम से होता है। सी.एच. कूले ने प्राथमिक समूहों के साथ-साथ द्वैतियक समूहों को भी व्यक्तित्व विकास में सहायक माना है। इसमें विद्यालय के महत्व को नकारा नहीं जा सकता है। भारत में स्वतंत्रता के पश्चात् शिक्षा के स्वरूप में व्यापक बदलाव आया है। ब्रिटिश शासन काल में लार्ड मैकाले की शिक्षा पद्धति थी जो देश में सिर्फ बाबू तैयार करती थी किन्तु पिछले कुछ वर्षो में लोकतंत्र में शिक्षा के उद्देश्य परिवर्तित हुए हैं। प्राथमिक स्तर के स्कूलों में शिक्षा को अनिवार्य किया जिससे ग्रामीण समाज की तस्वरी बदली है। देश की स्वतंत्रता को 67 वर्ष हो गये हैं। सरकार निरंतर शिक्षा के विस्तार हेतु प्रयास कर रही है। समस्या ग्रामीण एवं जनजातीय क्षेत्रों में अधिक है। नगरीय क्षेत्रों में शिक्षित जनसंख्या एवं कामकाजी माता-पिता होने के कारण बच्चों को उम्र से पहले ही प्ले स्कूलों एवं नर्सरी कक्षाओं में डाल दिया जाता है। डेढ़ से दो वर्ष के बच्चे जिन्हें पारिवारिक परिवेश एवं माता का संरक्षण चाहिए वे मजबूरीवश झूला घर, प्ले स्कूलों एवं नर्सरी में समय व्यतीत करते हैं। ग्रामीण एवं जनजातीय क्षेत्रों में सराकार सर्वशिक्षा अभियान के माध्यम से मिड डे मील' योजना के द्वारा बच्चों को स्कूल जाने के लिए प्रेरित कर रही है। किंतु इच्छित लक्ष्य को अभी भी प्राप्त नहीं किया जा सका है। इसी दिशा में भारत में शिक्षा का अधिकार कानून 2009 पारित किया गया जिससे प्रत्येक बालक को साक्षर बनाने की परिकल्पना की गई है।

स्वतंत्रता प्राप्ति के पूर्व प्रयास – भारत में 19 मार्च 1910 में गोपालकृष्ण ने सर्वप्रथम विधान परिषद् में अनिवार्य एवं नि:शुल्क शिक्षा के लिए प्रस्ताव पेश किया था। 16 मार्च 1911 को गोखले ने इसी प्रस्ताव को केन्द्रीय सभा में विधेयक के रूप में पेश किया जिससे ब्रिटिश सरकार हिल गई। 1917 में विट्ठल भाई पटेल ने दोबारा यह मांग रखी और शिक्षा पर पहला कानून पारित हो गया।

महात्मा गांधी भी नि:शुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा के पक्षधर थे उन्होंने लिखा है कि मैं भारत के लिए नि:शुल्क एवं अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा के सिद्धांत का दृढ़ समर्थक हूँ। बच्चों को दी जाने वाली शिक्षा ऐसी हो जिससे उनका शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक, नैतिक एवं आध्यात्मिक विकास हो सके। यह बुनियादी शिक्षा 7-14 आयु वर्ग के बच्चों के लिए हो।

स्वतंत्रता के पश्चात् प्रयास – 1964-66 में कोठारी कमीशन ने प्राथमिक एवं बुनियादी शिक्षा को राष्ट्रीय महत्व का विषय माना जिसकी जिम्मेदारी स्थानीय सरकार एवं राज्य की समझी गई। भारत के संविधान की शुरूआत में शिक्षा का अधिकार अनुच्छेद 41 के तहत् संवैधानिक अधिकार था, जिसे मौलिक अधिकार के रूप में मान्य किया गया। 1986 की शिक्षा नीति के अन्तर्गत प्राथमिक शिक्षा को सर्वसुलभ बनाने हेतु 1 किलोमीटर की दूरी पर प्राथमिक स्कूल एवं 3 किलोमीटर पर एक उच्च प्राथमिक विद्यालय खोलने की बात कही गई।

1992-93 में भारत में बाल शिक्षा के क्षेत्र में नई संकल्पनाओं का जन्म हुआ। 1993 में ....कृष्णन बनाम आंधप्रदेश मामले में सर्वोच्च न्यायलय ने शिक्षा के अधिकार का संविधान के अध्याय 3 के अनुच्छेद 21 में जीवन के मौलिक अधिकार के संदर्भ में विवेचन किया।

कानूनी स्वरूप– 2002 में 86वां संविधान संशोधन प्रस्तावित किया गया जिसमें अनुच्छेद 21 ए को शामिल किया गया जिसके तहत् 6-14 वर्ष के बच्चों के लिए अनिवार्य एवं नि:शुल्क शिक्षा का प्रावधान है। 4 अगस्त 2009 को शिक्षा का अधिकार कानून ससंद में पारित किया गया और 27 अगस्त 2009 को भारत सरकार के गजट में प्रकाशित हुआ। अप्रैल 2010 में इस कानून को लागू किया गया।

शिक्षा का अधिकारी कानून में प्रावधान

1. 6 से 14 वर्ष तक के बच्चों को अपने पड़ोस के विद्यालय में प्राथमिक शिक्षा नि:शुल्क और अनिवार्य पाने का हक होगा।
2. बच्चों को शिक्षा देना माता-पिता का कर्तव्य है।
3. निजी स्कूलों में 25 प्रतिशत सीटें गरीब बच्चों के लिए है जो सरकारी खर्च से पढ़ाई के लिए है।
4. बच्चों के लिए घर से 1 कि.मी. पर ही स्कूल का प्रावधान है।
5. छात्र शिक्षक अनुपात एवं भौतिक संसाधन .... प्रबंधन का दायित्व राज्य एवं केन्द्र सरकार का होगा।

* प्राध्यापक (समाजशास्त्र) शासकीय महारानी लक्ष्मीबाई स्नातकोत्तर कन्या महाविद्यालय, इन्दौर (म.प्र.) भारत

6. शिक्षा के गुणवत्ता को बनाये रखने के लिए योग्य .... एवं प्रशिक्षित शिक्षकों की नियुक्ति की व्यवस्था
7. विकलांग बच्चों की शिक्षा के लिए प्रशिक्षित शिक्षकों की व्यवस्था।
8. बच्चों को शारीरिक दंड एवं मानसिक उत्पीड़न पर प्रतिबंध।
9. स्कूल में प्रवेश हेतु साक्षात्कार एवं प्रतियोगिता शुल्क पर प्रतिबंध।
10. प्रारंभिक शिक्षा में किसी भी विद्यार्थी को अगली कक्षा में जाने से रोका नहीं जा सकता।
11. इस कानून में ऐसे पाठ्यक्रम निर्धारित किये गए हैं जिसमें ज्ञान क्षमता, तर्कशीलता एवं संपूर्ण प्रतिभा का विकास बच्चों में हो सके।
12. शिक्षकों को जनगणना एवं चुनाव ड्यूटी के अलावा अन्य कार्यो में ड्यूटी लगाने पर पूर्ण प्रतिबंध ।
13. विद्यालयों की प्रबंध व्यवस्था हेतु निगरानी समितियों का गठन।
14. संपूर्ण खर्च राज्य एवं केन्द्र सरकार द्वारा वहन किया जावेगा।

शिक्षा का अधिकार कानून की सफलता में बाधाऐं -

शिक्षा का कानून के उद्देश्य एवं इस कानून का स्वस्थ सामाजिक अधिकार व विकास को दृष्टिगत रखते हैं किन्तु इसकी सफलता में निम्नलिखित बाधाऐं हैं -

1. भारत में ग्रामीण एवं जनजातीय क्षेत्रों में निर्धनता प्रमुख समस्या है जिससे बच्चों से मजदूरी करवायी जाती है।
2. माता-पिता की अशिक्षा जिसके कारण वे शिक्षा के महत्व से अनभिज्ञ हैं।
3. शिक्षा के अधिकार कानून के प्रति जनजाग्रति नहीं है।
4. राजनीतिज्ञों के निहित स्वार्थ के चलते कानून सफल नहीं हो पाया है।
5. स्वैच्छिक संगठन एवं जन प्रतिनिधियों की रूचि का अभाव।

कानून को सफल बनाने हेतु सुझाव ।

1. माता-पिता को बच्चों को स्कूल न भेजने पर दंडित किया जाऐं।
2. बाल मजदूरी प्रथा पर कड़ाई से रोक लगायी जाऐं।
3. समान विद्यालय प्रणाली लागू की जाए जिससे एक ही स्थान पर सभी बच्चों को स्कुली शिक्षा एवं एक ही स्कूल में प्रवेश मिले।
4. प्राथमिक स्तर की शिक्षा मातृ भाषा में ही दी जाऐ।
5. शिक्षकों को प्रशिक्षण की उचित व्यवस्था की जाए एवं कर्तव्य निर्वहन न करने पर दंडित किया जाऐं।
6. प्रौढ़ शिक्षा केन्द्रों के माध्यम से अभिभावकों को भी शिक्षित किया जाऐं।
7. विद्यालय का पर्यावरण मनोरंजक हो जहाँ खेलकूद एवं ललित कलाओं से संबंधित ज्ञान भी छात्रों को दिया जाऐ। जिससे बच्चों की स्कूल आने में रूचि जाग्रत हो सके।

इस प्रकार हम देखते हैं कि सिर्फ कानून बना देने से ही हम लक्ष्य प्राप्त नहीं कर सकते हैं, जब तक संपूर्ण समाज एवं जनप्रतिनिधियों का इस अभियान में सहयोग नहीं होगा। हम भारत को शक्तिशाली एवं विकसित राष्ट्रों की श्रेणी में खड़ा नहीं कर सकते।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. शिक्षा क्या है - जे. कृष्णमूर्ति ।
2. हिन्दी वेब दुनिया डॉट कॉम - कैरियर प्लानिंग शिक्षा का अधिकारी ।
3. दैनिक नई दुनिया 23 सितम्बर, 2009

****

सामाजिक परिवर्तन एवं विस्थापिता आदिवासी परिवार (पुनर्वासित ग्राम पंचायत सिंगाजी के संदर्भ में)

अनिल कुमार *

प्रस्तावना – सिंगाजी पुनर्वास ग्राम पंचायत हरसूद तहसील में शामिल है। इस ग्राम की कुल आबादी 1500के लगभग इस गांव में कुल 10 वार्ड हैं स्थानीय रहवासी मुख्यत: पशुपालन और खेती किसानी करके अपना जीवन-यापन करते हैं इसके अलावा कुछ शासकीय और निजी व्यवसायों की तरफ आकर्षित हुए हैं तथा सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया में ये वैश्वीकरण से अछूते नहीं रहे हैं। औद्योगिकीकरण तथा नगरीकरण विस्थापन तथा मुख्यत: विस्थापन जैसे प्रमुख कारक सहायक की भूमिका निभाने में सफल रहेंगे। अत: विस्थापित आदिवासी परिवारों की स्थिति पर समाजशास्त्रीय परिप्रेक्ष्य में देखने का प्रयास शोध अध्ययन में किया गया है।

अध्ययन क्षेत्र व प्रविधि – अध्ययन क्षेत्र संत सिंगाजी पुनर्वास ग्राम पंचायत, हरसूद तहसील को चयनित किया गया है। जिसमें 100 विस्थापित आदिवासी परिवारों को निदर्शन में शामिल किया गया है। प्रत्यक्ष समूह चर्चा, अवलोकन, साक्षात्कार अनुसूची, एवं प्राथमिक एवं द्वितीयक तथ्यों द्वारा जानकारी प्राप्त कर शोधा प्रपत्र प्रस्तावित है।

अध्ययन उद्देश्य –

- विस्थापित आदिवासी परिवार की अवधारणा स्पष्ट करना
- सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, शैक्षणिक, व्यवसायिक इत्यादि परिवर्तित स्थिति का अध्ययन
- परिवर्तन के कारणों को जानना सकारात्मक और नकारात्मक परिवर्तन के प्रभाव को स्पष्ट करना इत्यादि प्रमुख उद्देश्य हैं हरसूद क्षेत्र अंतर्गत

संत सिंगाजी ग्राम की स्थिति एवं जानकारी – विकास हेतु परियोजना के संचालन की नीतियों का क्रियान्वयन किया जा रहा है जिसमें हरसूद भी शामिल है इसमें नये नाम छनेरा के नाम से भी संबोधित किया जाता है। इंदिरा सागर परियोजना (संत सिंगाजी जलाशय) के डूब क्षेत्र में आने वाले नगर निवासियों के सामने दो विकल्प थे – 1- सुरक्षा दीवार द्वारा हरसूद में निवास का होना। 2-पुनर्वास नीति के प्रावधानों के लाभ से विस्थापित होना। ज्यादातर निवासियों ने विस्थापित होने का विकल्प चुना तथा कुछ लोगों को विवशता व लाचारी के कारण विस्थापन की प्रक्रिया में शामिल होना पडा।

हरसूद तहसील के अंतर्गत संत सिंगाजी ग्राम – 30 जून 2004 को कई परिवार एवं आदिवासी परिवार भी विस्थापित हुए कुल प्रभावित परिवार 6166 ने पुनर्वास पैकेज का लाभ उठाया। क्षतिपूर्ति की सीमा 25 हजार से 5 लाख तक भुगतान का प्रावधान रखा जिसमें कुछ उत्साहपूर्वक शामिल हुए कुछ में उदासीनता दिखी। जिसमें आदिवासी परिवार भी शामिल रहे। हरसूद क्षेत्र में निमाड आंचल में सिंगाजी को अलौकिक व्यक्ति के रूप में पूजा जाता है यह संत कवि पांच वर्ष की आयु से पिता के साथ हरसूद में आये थे 22 वर्ष की आयु में हरसूद के रामराज के यहां चिठ्ठियां भेजने की नौकरी कर ली तथा 25 वर्ष की आयु में वैराग्य धारण कर लिया था। ये कबीर के समकालीन माने गये। खेती गृहस्थी निगुर्ण निराकार परब्रम्ह को लेकर जनसंदेश दिया। उन्होंने संतों के बीच बैठकर तो संतो ने कहा चलो नर्बदा स्नान कर ले तब उन्होंने कहा यहां एक दिन अवश्य नर्मदा मां आयेगी। जब वहां नर्मदा बांध परियोजना की गतिविधियां क्रियान्वित होने लगी। तभी विस्थापन और पुनर्वास की स्थिति निर्मित हुई जिससे वहां के निवासियों को आदिवासी परिवारों को इस प्रक्रिया में सम्मलित होना पडा।

विस्थापित परिवार की अवधारणा –

अ. विस्थापित व्यक्ति – कोई भी व्यक्ति जो उस क्षेत्र में स्थायी आ अस्थायी रूप से भूमि परियोजना के कारण जलमग्न होने की संभावना है या जिसकी परियोजना के लिए आवश्यकता है में भू अर्जन अधिनियम की धारा 4 के अधीन अधिसूचना प्रकाशन की तारीख से कम से कम एक वर्ष पूर्व से साधारणत: रहती है या कोई धंधा व्यवसाय करता है या कम से कम तीन वर्ष पूर्व भूमि की काश्त करता रहा है (पुनर्वास शासन नीति) दूसरे शब्दों में विस्थापित व्यक्ति वह है जो किसी कारणवश उस स्थान से प्रभावित कर दिया है या स्वयं विस्थापित हुआ है।

ब. विस्थापित परिवार – विस्थापित परिवार जिसमें सभी सदस्य समाहित हैं जो भू अर्जन अधिनियम की धारा 4 के अंतर्गत अधिसूचना जारी करने के दिनांक से बालिग है। एक अलग परिवार के रूप में माने गये हैं। जिन्हें पूर्व स्थान से दूसरे स्थान पर बसाया गया है। उपयुक्त अवधारणा से स्पष्ट है कि परियोजना के कारण ग्राम पंचायत के संदर्भ में सिंगाजी ग्राम के आदिवासी परिवार पर विस्थापन का प्रभाव पडा और वे सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया से बच न पाये। यहां इन्हीं तथ्यों को जानने का प्रयास किया गया है। मध्य भारत ही नहीं वरन् निमाड आंचल में मां नर्मदा के अप्रतीम योगदान को कभी भी नकारा नहीं जा सकता है। लेकिन इस ग्राम को नदी और परियोजना के कारण ही दिशा मिली जो कहीं न कहीं विकास और सामाजिक परिवर्तन की स्थिति को दर्शाती है। विस्थापन की प्रक्रिया में दो परिणाम सामने आये हैं जो निम्न हैं –

पुनर्वास	परिवर्तन
नया परिवेश एवं सृजन	विघटन की स्थिति निर्मित, पारिवारिक, सामाजिक और आर्थिक एवं बदलाव
रोजगार और अवसर	एकता, समस्या का समाधान,
सुविधा और विकास	चिंतन बदलाव
प्रगति	आत्मनिर्भरता और नई रणनीति
स्थानांतरण एवं प्रवास	सुख दुख की पहचान और चुनौतियां

* शोधार्थी (समाज विज्ञान) बरकतउल्ला विश्वविद्यालय, भोपाल (म.प्र.) भारत

जन जन की आकांक्षा है खुशहाली सुख समृद्धि विकास नयापन। वैसे विस्थापन और पुनर्वास स्वैच्छिक, स्वाभाविक एवं राजनैतिक प्रक्रिया है। इससे स्वाभाविक एवं नियोजित परिवर्तन का स्वरूप स्पष्ट होता है।

परियोजना का उद्देश्य ग्राम के संदर्भ –विद्युत उत्पादन को बढावा, कृषि क्षेत्र में वृद्धि, मत्स्य पालन, पर्यटन, पर्यावरण संरक्षण एवं बांध निर्माण एवं वनीकरण, लेकिन इन उद्देश्यों की पूर्ति हेतु परियोजनाऐं विकास के लिए लागू की जाती हैं यदि इससे डूब स्थिति निर्मित होती है तो विस्थापन और पुनर्वास जैसी स्थिति के लिए लोगों को तैयार होना पड़ता है। इस योजना के अंतर्गत 249 ग्राम एवं एक शहर हरसूद डूब से प्रभावित हुआ। कुल 249 ग्रामों की सूची में हरसूद 72 क्रमांक पर है। जिसमें हरसूद के निवासियों को विस्थापन की प्रक्रिया से गुजरना पडा। वहीं संत सिंगाजी ग्राम के आदिवासी परिवार भी विस्थापित हुए। डूब पूर्व क्षेत्र में आवागमन की स्थिति भी उत्कृष्ट थी एवं अन्य स्थितियां भी सामान्य थीं। वहां के निवासी संतुष्ट जीवन व्यतीत कर रहे थे लेकिन विस्थापन और पुनर्वास की योजना में विस्थापित आदिवासी परिवारों की स्थिति चिंतनीय देखने को मिली।

विस्थापित आदिवासी परिवारों की स्थिति संबंधी तथ्य – परिवर्तन स्वाभाविक प्रक्रिया है, सामाजिक वैज्ञानिक फीचर ने कहा है कि संक्षिप्त रूप में पहले ही अवस्था या अस्तित्व की विधि में रूपांतरण ही परिवर्तन है। ग्रीक दार्शनिक हैरा क्लीटस ने कहा है कि एक व्यक्ति के लिए एक ही नदी में दोबारा कदम रखना असंभव है। असंभव दो कारणों से पहला ठीक पहले वह नदी पहले जैसी नहीं रहेगी। दूसरा वह व्यक्ति भी ठीक पहले जैसा व्यक्ति न होगा। अर्थात् नदी और व्यक्ति में कुछ न कुछ परिवर्तन आयेगा। सामाजिक परिवर्तन एक जटिल प्रक्रिया भी है अर्थात् इस प्रकार का परिवर्तन संत सिंगाजी ग्राम के आदिवासी परिवारों तथा विस्थापितों के बीच देखने को मिला और यह परिवर्तन दो रूपों में देखा गया। पहला सामुदायिक परिवर्तन और दूसरा अनिवार्य विकास के रूप में।(विकासवादी और अनुकूलन के रूप में यह परिवर्तन देखने को मिला) ज्यादातर आदिवासी परिवार खण्डवा जिले के आसपास के ग्रामों में पुनर्वासित हुए तथा कुछ जिले से आगे की ओर भी निकल गये।

विस्थापित आदिवासी परिवारों की सामाजिक स्थिति में परिवर्तन का स्वरूप देखने को मिला जो निम्नानुसार है –

1. सामाजिक स्तर पर पारिवारिक सदस्यों का बिखराव हो गया। सामाजिक संबंधों में दूरी देखी गई नये सामाजिक परिवेश में सामंजस्य स्थापित करने में वे अपने को असहाय महसूस करते हैं खानपान जीवन शैली में परिवर्तन को स्वीकार करने की कोशिश में हैं तथा कुछ निवासी किरायेनुमा घरों में निवासरत हैं इस आधार पर 60 प्रतिशत नकारात्मक एवं 40 प्रतिशत सकारात्मक परिवर्तन का प्रभाव देखा गया।
2. आर्थिक आधार पर यह तथ्य प्राप्त हुए हैं कि ज्यादातर आदिवासी परिवार जमीनों व जंगलों से जुडे थे उनकी जीविका से अपना एवं अपने परिवार का पालन पोषण करते थे, लेकिन विस्थापन की प्रक्रिया से वे अपने मुख्य व्यवसाय से पृथक हो गये। विस्थापित स्थान पर मजदूरी , धाडकी व अन्य कार्य करने में जुटे हैं तथा कई इधर उधर भटक रहे हैं जिसमें आर्थिक शोषण की स्थिति भी स्पष्ट हुई है 50 प्रतिशत सकारात्मक एवं 50 प्रतिशत नकारात्मक परिवर्तन का प्रभाव स्पष्ट रूप से पाया गया है।
3. सांस्कृतिक शैक्षणिक व्यवसायिक स्थिति के अध्ययन से तथ्य प्राप्त हुए हैं कि आदिवासी परिवार विस्थापन की प्रक्रिया से गुजरा है, लेकिन उनकी सांस्कृतिक स्थिति में कोई बदलाव नहीं देखा गया है। उनकी सांस्कृतिक स्थिति में सामाजिकता का स्वरूप विद्यमान है नवीन सांस्कृतियों के साथ सहजता से आत्मसात करते पाये गये हैं अर्थात् सकारात्मक परिवर्तन का प्रभाव ज्यादातर अध्ययन में पाया गया। शैक्षिणिक स्थिति के आधार पर देखें तो शिक्षा का स्तर तो निम्न देखा गया। ज्यादातर ने शिक्षा के प्रति अरूचि देखी गई। 10 प्रतिशत ही अक्षर ज्ञान रखते हुए पाये गये। लेकिन अपने बच्चों को उच्च शिक्षा को दिलाने के लिए प्रेरित हैं।
4. व्यवसायिक स्थिति के आधार पर राजकीय स्तर पर वन विभाग, सहकारी समितियां कृषि मजदूरी, बांध निर्माण कार्य नर्सरी पशुपालन दुग्ध डेरी इत्यादि व्यवसाय विस्थापन के कारण संलग्न हैं। ज्यादातर मजदूरी बांध निर्माण नर्सरी से जुडे 60 प्रतिशत आदिवासी परिवार संलग्न है। व्यवसायिक स्थिति उत्कृष्टता में ज्यादा अच्छा परिवर्तन नहीं देखने को मिला है। परिवर्तन के पीछे कोई एक कारण नजर नहीं आया है वरन उसके पीछे कई कारण उत्तरदायी रहे।

1. औद्योगिकरण की प्रक्रिया
2. विकास एवं निर्माण की प्रक्रिया
3. स्वेच्छा से विकास की मुख्य धारा से जुडना
4. विवशता से प्रभावित व पुनर्वासित होना
5. मुआवजा भू आवंटन शहर से बेहतर सुविधा प्राप्त करने। (260 हैक्टेयर में तीन चरणों में विकसित तथा तीन श्रेणियों में 486 भूखण्ड विकसित नये छनेरा में दी जाने वाली सुविधा के कारण।)
6. आवास सुविधाएं एवं स्थायित्व
7. प्रशासकीय योगदान
8. आधुनिकता में शामिल करने की प्रक्रिया इत्यादि कई कारणों ने सहायक की भूमिका निभाई है। इस आधार पर मुआवजा के भुगतान व क्षतिपूर्ति हेतु प्रदाय की गई राशि से हरसूद के ग्रामवासियों द्वारा उत्साहपूर्वक 70 प्रतिशत लोग स्वेच्छा से विस्थापित हो गये तथा 30 प्रतिशत अनिच्छा से विस्थापित हुए हैं। उनकी स्थिति के अध्ययन से ग्राम के निवासियों में 40 प्रतिशत जागरूकता देखी गई तथा नवीन वातावरण में सामंजस्य स्थापित करने के लिए मानसिक रूप से अपने को तैयार करने के लिए सफल देखे गये हैं तथा उनकी प्राचीनता व परंम्परागत तरीकों में परिवर्तन का अभाव है तथा नये तरीकों और संस्कृति के साथ अनुकूलन स्थापित करने में वे अपने आप को कहीं न कहीं असहाय भी महसूस करते हैं।

शासन की रणनीतियां –

1. पुनर्वास स्थल में पहुंचने के लिए मार्ग पुलिया निर्माण एवं परिवहन की व्यवस्थाऐं उपलब्ध
2. पूर्ण जीवन स्तर प्राप्त करने का प्रयास
3. नये जीवन स्तर में प्रवेश करने में कोई परेशानी न हो ऐसी व्यवस्था की गई
4. आदिवासी परिवारों का विशेष ध्यान एवं विशेष सहायता
5. भूमि एवं वन से विस्थापित लोगों के लिए कोई भेदभाव नहीं वरन समानता का व्यवहार
6. कृषि भूमि की संपत्ति के लिए उचित कीमत पर मुआवजा

7. बसाहट इच्छानुसार
8. सुविधाएं भौतिक सामाजिक संरचना पर आधारित
9. रोजगार प्रशिक्षण नये रोजगार, नौकरी अवसर एवं सहायता
10. परियोजना निर्माण कार्य में भी रोजगार में प्राथमिकता
11. आदिवासी कल्याण विभाग द्धारा कल्याण विराम एवं सहायता हेतु योजनाओं का लाभ
12. समान ढोने की मुफ्त सुविधा एवं परिवहन भत्ता
13. 60/90 के आवास भूखण्ड यदि भूखण्ड नहीं तो बीस हजार रूपये का भुगतान
14. रजिस्ट्रेशन स्टाम्प शुल्क में माफी
15. धारा 4 के अनुसार बालिग पुत्री अविवाहित पुत्री परिवार को अलग रखा गया है नियमानुसार सुविधाएं दी गई हैं।
16. बैंक में खाता खुलवाना, सुविधाओं में पारदर्शिता शिविर कैम्प इत्यादि रणनीतियां बनाकर विस्थापित परिवारों के लिए प्रशासन एवं अधिकारियों ने विशेष योगदान दिया है। उनके काम को निरंतर गति मिलती है।

विस्थापित शहर के क्रियाकलाप – विस्थापित शहर के क्रियाकलापों में कई समितियां और संस्थाऐं तथा शासन सेवा और सहायता प्रदान कर रहे हैं जिनमें शासकीय स्तर पर और व्यक्तिगत पर शिक्षा को बढावा देना शिक्षा कार्यक्रम को जोडना, व्यवसायिक आत्मनिर्भरता वाले व्यवसाय के लिए तैयार करना ऋण देकर रोजगार और आवास उपलब्ध कराना। अध्ययन से स्पष्ट है कि कई विकास की रणनीतियों ने विस्थापित परिवारों की स्थिति को बदलने का प्रगति की राह में शामिल करने का प्रयास किया है। वैसे विस्थापन एक दुरूह कार्य है तथा लक्ष्य विकट हैं। यह एक प्राकृतिक नहीं वरन मानवीय विपदा थी, लेकिन विस्थापन का प्रभाव सकारात्मक एवं नकारात्मक रहा। संत सिंगाजी ग्राम के आदिवासी परिवारों में सामाजिक परिवर्तन का स्वरूप स्पष्ट रहा।

सुझाव – विस्थापित आदिवासी परिवारों को स्थाई रूप से व्यवस्थित करने का प्रयास किया जाये तथा आवास निर्माण कार्य में तीव्रता लाई जाये। तथा शिक्षा स्वास्थ्य रोजगार से उनकी स्थिति में संस्कृति व लोक कलाओं साहित्य आदि को सुदृढ बनाने के प्रयास में विकास कार्य को आगे बढाया जाये। उनकी कुशलता ज्ञान के आधार पर उन्हें रोजगार अनुसार रोजगार उपलब्ध कराये जायें।

निष्कर्ष – अध्ययन से निष्कर्ष ये निकलता है कि परियोजना द्धारा जो विस्थापन की स्थिति उत्पन्न की गई थी उसमें कई परिवारों की सफलता तथा इस उदासीनता की स्थिति प्राप्त हुई है। यह स्वाभाविक जान पडता है कि इनका भी एक सामाजिक मनोविज्ञान है। अधिकांश निवासियों ने नयेपन का स्वागत किया और कहा कि मां नर्मदा के आशीर्वाद से अच्छा ही होगा। शायद दुख के बादल छट गये हैं लेकिन कुछ की उदासीनता वैसी ही देखी गई जैसे किसी की आत्मा ने शरीर को छोड दिया है। कितनी भी सुख सुविधा मिले लेकिन जो जैसा है वैसा ही लुभावना होता है। अर्थात् विकास के पैमाने से जीवन स्तर का मूल्यांकन किया जा सकता है। और योजनाएं परियोजना नींव की ईंट की तरह हैं। उन्हें मजबूत रूप प्रदान करें ताकि जन जीवन भी मजबूत व उन्नत रहे। विस्थापन और पुनर्वास एक चुनौती है इसे कुशलता व्यवहारिकता, पर किया जाना चाहिये। जिसमें सामाजिक जन जीवन की क्षति न हो बल्कि विकास को उत्कृष्ट दिशा दी जाये।

संदर्भ ग्रंथ सूची :–

1. संदेश मध्यप्रदेश फरवरी 1999
2. सैयाम देवेन्द्र सिंह विस्झथापन एवं पुनर्वास एक चुनौती 2011
3. क्षेत्रीय सर्वे रिपोर्ट स्वयं के द्धारा प्राप्त जानकारी के आधार पर

****

लैंगिक अपराधों से बालकों का संरक्षण - एक विमर्श

डॉ. उषा सिंह *

प्रस्तावना – आज समाज में बलात्कार, छेड़छाड़, अश्लील हरकतों की बाढ़ सी आ गई हैं क्या युवा, क्या वृद्ध और क्या बच्चे सभी इन विकृतियों से पीड़ित है किन्तु सामाजिक और मनोवैज्ञानिक प्रभाव बच्चों पर सर्वाधिक रूप से पड़ता है। लीग ऑफ नेशन्स द्वारा सन् 1924 में जिनेवा शिखर सम्मेलन में बाल अधिकारों से संम्बधित घोषणा पत्र प्रस्तुत हुआ जिन्हें 20 नवम्वर 1959 में पारित किया गया और लगभग 20 वर्षो बाद 1979 में यह लागू हुआ अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर 174 सदस्यों द्वारा आवश्यक समर्थन मिलने के बाद इसे 2 सितम्बर 1990 में लागू किया गया और भारत ने इन प्रावधानों को सन् 1992 में अपनाया गया मूलत: पूरे अधिनियम को पढ़ने से स्पष्ट है कि अधिनियम की समस्त बातें 4 परिस्थितियों के आधार पर तैयार की गई–

1. जीने का अधिकार
2. विकास का अधिकार
3. भागीदारी का अधिकार
4. सुरक्षा का अधिकार

बाल बलात्कारों में चिंताजनक वृद्धि – सरकारी और गैर सरकारी संगठन इस ओर अपना प्रयास कर रहे हैं कि बच्चों के विरूद्ध यौन अपराध न हो पर इनकी संख्या लगातार बढ़ती ही जा रही है। पूरे देश में बाल बलात्कार के अपराधों में 17.5 प्रतिशत तथा अपहरण में 18.1 प्रतिशत की वृद्धि चिन्ताजनक है। क्राइम इन इंडिया (भारत में अपराध) नामक एक रिर्पोट राष्ट्रीय अपराध रिकार्ड ब्यूरो के कुछ वर्ष पूर्व के आकड़ों पर नजर डाल लेना आवश्यक है बाल–बलात्कार छेड़छाड और मारमीट की हरकतों में 1994 की तुलना में वृद्धि 14.2 प्रतिशत थी, 1993 में बाल–बलात्कार के मामले 3.393 थे जो बढ़कर 3.986 हो गये। इसी प्रकार अपहरण के मामलों में अचानक वृद्धि दर्ज की गई है ये अपहरण मानव तस्करी के रूप में होते हुये भीख मँगवाना, वेश्यावृत्ति कराना , बलात्कार करना आदि के रूप में परिणित होते हैं वर्ष 2010 के बाद पिछले आकडों की तुलना में 10 प्रतिशत की वृद्धि पायी गई है जो इसकी भयावहता की ओर इशारा करते हैं अब तो 6 माह की बच्ची से लगाकर 6 वर्ष की बच्चियॉ–और बच्चे भी वहशीपन के शिकार हो रहे हैं।

दैनिक समाचार पत्र नवभारत के 17 नवम्बर 2002 में श्री राहुल ने अपने लेख में 'बच्चों के जरिये यौन शोषण का धंधा' में उन्होंने स्पस्ट लिखा है कि देश में लगभग 20 लाख बच्चे यौन शोषण का शिकार हो रहे हैं। उन्होंने लिखा कि मुम्वई का ग्रांट रोड हो या कमाठीपुर दोनों बदनाम रेड लाइट इलाकों में कुछ वर्षो में यौन कुंठा के शिकार ऐसे भी ग्राहक आने लगे हैं जिनको कुंठित वासना की तृप्ति के लिए किशोर वय: के लड़कों और दस–बारह साल की कमसिन लडकियों की तलाश रहती हैं। अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन की एक रिपोर्ट तो इस संबंध में और चौंकाने वाली है रिपोर्ट के अनुसर भारत पहुँचने वाले विदेशी पर्यटको की संख्या बहुत ज्यादा है जो बालकों के यौन शोषण के चक्कर में यहां पहुच रहे हैं।

यह गंदा खेल लगभग पूरे देश में फैल गया है विशेष कर पयर्टन क्षेत्रो में संयुक्त राष्ट्र संघ ने भी भारत में बढ़ती बाल वैश्यावृति पर चिंता जताई हैं।

भारत सरकार इन बढ़ते बाल यौन शोषण से चिंतित एक कड़ा कानून बनाने की महिला संगठनों ,समाज सेवियों तथा छात्राओं ने जोर दार मांग की और विभिन्न आन्दोलन चलाये इन पर विचार करते हुये सरकार ने एक कड़ा कानून लैंगिक अपराधों में बालको का संरक्षण अधिनियम एवं नियम 2012 बनाया है।

लैंगिक अपराधों में बालकों का संरक्षण अधिनियम एवं नियम 2012– 18 वर्ष से कम आयु के बालक/बालिकाओं के लैंगिक शोषण और दुरुपयोग को जघन्य अपराध माना गया हैं। लैंगिक अपराधों से बालकों का संरक्षण अधिनियम एवं नियम 2012 बच्चों पर होने वाले लैंगिक हमले, उत्पीडन अश्लील साहित्य के लिए दुरूपयोग से संरक्षण प्रदान करता है। ऐसे अपराधी के अपराध की प्रकृति अनुसार कम से कम 3 वर्ष से आजीवन कारावास या जुर्माना या दोनों से दंडित के प्रावधान हैं।

लैंगिक अपराध यथा –

1. किसी बालक का किसी विधि विरूद्ध लैंगिक क्रियाकलाप से उत्पीडन या उत्प्रेरण।
2. वैश्यावृत्ति या अन्य विधि विरूद्ध लैंगिक व्यवसाय में बालक का शोषण।
3. अश्लील गतिविधियों और सामग्रियों से बालकों का शोषणात्मक उपयोग।
4. बालक का दुष्प्रेरण करने के लिए उकसाना/बहकाना।
5. लैंगिक उत्पीडन के लिए धमकी या बल प्रयोग।
6. अश्लील साहित्य के प्रयोजन के लिए बालक का उपयोग।
7. लैंगिक आशय के साथ बालक/बालिका के निज अंगो को छूना लैंगिक हमला माना जाएगा।
8. बालक को या तो सीधे या इलेक्ट्रॉनिक या अन्य साधनों के माध्यम से पीछा करना, देखना, सम्पर्क करना।

निम्न स्थिति में गंभीर अपराध माना जाएगा, जिसमें अपराध की प्रकृति अनुसार विशेष दण्ड के प्रावधान हैं।

1. पुलिस, सशस्त्र बल लोकसेवक, जेल रिमाण्ड होम सभी प्रकार के गृह, आश्रय गृह सरकारी एवं प्रायवेट अस्पताल हैं।
2. शैक्षणिक, धार्मिक, सेवा प्रदाता एवं अन्य संस्थाओं के न्यासी प्रबंधक, अधिकारी एवं कर्मचारी, बालक के घरेलू संबंधी रिश्तेदार।
3. सामूहिक प्रवेशन लैंगिक हमला या लैंगिक हमला।
4. कोई घातक शस्त्र, आयुध, आग्नेयास्त्र, गर्म पदार्थ का प्रयोग कर।
5. प्रवेशन लैंगिक हमला/लैंगिक हमला करते हुए जननेंद्रियों को शारीरिक रूप से नुकसान और क्षति पहुँचाना।
6. बालक पर एक से अधिक वार या बार–बार प्रवेशन लैंगिक हमला/लैंगिक हमला करना हैं।
7. 12 वर्ष से कम आयु के किसी बालक पर प्रवेशन लैंगिक हमला/लैंगिक हमला करना हैं।

* प्राध्यापक (समाजशास्त्र) शासकीय कन्या महाविद्यालय, टीकमगढ़ (म.प्र.) भारत

8. यह जानते हुए कि बालक गर्भ से हैं प्रवेशन हमला/लैंगिक हमला करना हैं।
9. बालक पर प्रवेशन हमला/लैंगिक हमला करता है और उसकी हत्या का प्रयास करना हैं।
10. सामुदायिक या पंथिक हिंसा के दौरान प्रवेशन लैंगिक हमला/लैंगिक हमला।
11. दण्डित व्यक्ति द्वारा दोबारा अपराध कारित करना।
12. बालक को सार्वजनिक रूप सें नंगा करना या प्रदर्शन करना।

अपराध की रिपोर्ट – कोई भी व्यक्ति/बालक जिसे यह आंशका है कि किसी बच्चे के साथ यौनिक हमला उत्पीडन अश्लील साहित्य के निर्माण, भण्डारण की किये जाने की संभावना है या अपराध हुआ है तो विशेष किशोर पुलिस इकाई या स्थानीय पुलिस को रिर्पाट कर सकता है।

अपराध की रिपार्ट न करने पर दंड – कोई व्यक्ति जानकारी देने में एवं पुलिस द्वारा रिपोर्ट नहीं लिखने पर 6 माह तक का दण्ड या जुर्माना या दोनों से दण्डनीय होगा।

किसी कम्पनी या किसी संख्या का भारसाधक (प्रभारी) नियंत्रणाधीन द्वारा किए अपराध की रिपोर्ट करने में असमर्थ रहता है तो 1 वर्ष का कारावास और जुर्माने से दण्डनीय होगा।

मीडिया, होटल, लॉज, अस्पताल, क्लब, स्टूडियो या फोटो चित्रण संबंधी सुविधाओं का कोई कार्मिक को बालक का लैंगिक शोषण संबंधी (जिसके अंतर्गत अश्लील साहित्य, लिंग संबंधी या बालक बालिका का अश्लील प्रदर्शन करना भी है) यथास्थिति विशेष किशोर पुलिस को जानकारी उपलब्ध कराएगा। अन्यथा 6 माह से 1 वर्ष का कारावास या जुर्माना या दोनों से दण्डित किया जाएगा।

मिथ्या (झूठा) परिवाद या झूठी सूचना के लिए दण्ड – किसी व्यक्ति को अपमानित करने,धमकाने,बदनाम करने के उद्देश्य से मिथ्या परिवाद करने या सूचना देने पर 6 माह तक का कारावास या जुर्माना या दोनों से दण्डित किया जाएगा।

देखभाल एवं संरक्षण – निराश्रित, बेसहारा एवं परिवार के सदस्यों द्वारा अपराध किये जाने पर 24 घण्टे के अंदर बाल कल्याण समिति को रिपोर्ट किया जाना होगा। बाल कल्याण समिति बच्चे के सर्वोत्तम हित में बालक को बालगृह/आश्रय गृह में रखने का निर्णय ले सकती है।

आपात चिकित्सा देखरेख – विशेष किशोर पुलिस इकाई द्वारा अपराध घटित होने पर 24 घंटे के अंदर तुरंत चिकित्सा देखरेख और संरक्षण हेतु निकटतम अस्पताल में चिकित्सा उपलब्ध करवाई जाएगी। बालिका का चिकित्सा परीक्षण किसी महिला डॉक्टर द्वारा किया जाएगा। चिकित्सा परीक्षण माता–पिता या ऐसे व्यक्ति जिस पर बालक का भरोसा है कि उपस्थिति में किया जाएगा। आपात चिकित्सा देखरेख करने के प्रक्रम पर न्याय से संबंधित सभी साक्ष्य एकत्रित किए जाने होगें।

विशेषज्ञ एवं विधिक सहायता – शासन द्वारा विशेषज्ञ का सहयोग उपलब्ध कराया जाएगा एवं परिवार सक्षम न होने पर नि:शुल्क वकील भी उपलब्ध करवाया जाएगा।

विशेषज्ञ न्यायालय में प्रकरण का विचार – शासन द्वारा माननीय जिला एवं सत्र न्यायालय को विशेष न्यायालय घोषित किया गया है एवं शासकीय लोक अभियोजन अधिकारी को विशेष लोक अभियोजक के रूप में धोषित किया गया है। विशेष न्यायालय तथा संभव अपराध को संज्ञान में लिए जाने की तारीख से 1 वर्ष की अवधि में विचार पूरा करेगें।

यथा स्थित – बालकों के संरक्षण अधिनियम व नियम कमोवेश पहले से भी किसी न किसी रूप में मौजूद थे किन्तु बढ़ती हुई घटनाओं के कारण बालकों के सरंक्षण अधिनियम 2012 के बाद भी इन अपराधो में कोई कमी नही आयी है छोटी उम्र की बच्चियाँ के साथ –2 छोटे उम्र के लडके भी इस हैवानियत की चपेट में आ रहे है यह आकडॉ बढता ही जा रहा है यदि आकड़ो पर ध्यान दे तो 2012 के संरक्षण अधिनियम के पूर्व और पश्चात कोई खास असर दिखायी नहीं दे रहा है सामाजिक और मनोवैज्ञानिक चिंतन का विषय यह है बहुत कम उम्र यथा 6 माह से 6 वर्ष तक की बच्चियॉ को भी हवस का शिकार बनाने का एक चलन चल पड़ा है। भोली भाली मासूम बच्चियाँ को शिकार बनाना बहुत आसान है और वो इतनी अनजान हैं कि अपराधी का हुलिया या पहचान के बारे में कुछ नहीं जानती और अपराधी कानून के शिकंजे से बच निकलता है। ज्यादातर मामलों में यह पाया गया है कि ऐसे काम करने वाले ज्यादातर सगे–सम्बन्धी ,पड़ौसी ,जान–पहचान के लोग होते है। जो घर की और बच्चो की हर गतिविधियाँ को अच्छे से जानते समझते हैं केवल 10 प्रतिशत अपराधी ऐसे है जो अनजान होते है जो मौका या अकेलेपन का फायदा उठाकर ऐसे घिनौने कृत्य करते हैं।

बचाव के उपाय – जिन बालकों के साथ ऐसे कृत्य होते हैं वे दीर्घ समय तक सामाजिक रूप से कटे–कटे और हीन भावना से ग्रस्त हो जाते है और सामाजिक रूप से वो सामान्य नहीं रह जाते हैं उसी प्रकार उनके भीतर मनोवैज्ञानिक रूप से ड़र इतनी गहराइयों में समॉ जाता है कि पूरी जिन्दगी उससे उबर नहीं पाते हैं समाज का रवैया और सोच भी इसके लिये जिम्मेदार है जो बच्चे उन कार्यो के लिये दोषी नहीं है समाज उन्हीं के साथ अपराधी की तरह व्यवहार करता है ऐसी स्थिति में ऐसे बच्चों को सक्षम बनाने हेतु घिनौने कार्यो से बचाने हेतु हम कुछ उपाय कर सकते है ।

1. बच्चों को अकेले न रहने दे हो सके तो घर में अपने घर के बुजुर्ग की निगरानी में ही बच्चों को रखें।
2. घर में रखी जाने वाली आया, नौकर के चरित्र का वेरीफिकेशन पुलिस से जरूर करायें साथ ही यह भी निगाह रखें कि उससे मिलने–जुलने पीछे कौन–कौन आते हैं।
3. यदि आप सक्षम है तो घर में व घर के बाहर सी. सी .टी .वी कैमरे जरूर लगवायें ताकि ऐसी स्थितियों की हम निगरानी कर सके।
4. माता पिता छोटे से ही बच्चों को समझाईश देते रहें कि किसी अनजाने से चाकलेट, बिस्कुट आदि न ले और न किसी के साथ जाये।
5. माता पिता बीच में अपने छोटे बच्चों से पूरे दिन की गतिविधियॉ की बातों बातों में जानकारी लें।
6. यदि बच्चों के साथ ऐसा कृत्य हो ही गया हो तो उसे सम्बल प्रदान करें घटना की बार–बार चर्चा न करें और सामाजिक और मनोवैज्ञानिक रूप से सक्षम बनायें।
7. यदि घर के सदस्य बच्चो के मन से भय नहीं हटा पा रहे हैं तो प्रोफेशनल बच्चों की काउसिंलिंग करने वाले, मनोचिकित्सकों का सहयोग लें।

अत : हम कह सकते है कि इस सम्बन्ध में कानून तो कड़ा बन गया है पर ऐसी घटनाओं में कमी नहीं आ पा रही है हमें सामाजिक रूप से सर्तक – जागरूक होना पडेगा तभी हम बालको के संरक्षण के अधिनियम व नियमों का पालन करने में समर्थ हो सकेगें।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची : –

1. भारत में बाल श्रम–समस्यायें और समाधान– डॉ. उषा सिंह एवं एच.पी.सिंह पृष्ठ 5, 6, 13, 14, 15
2. संयुक्त राष्ट्र संघ की वार्षिक रिपोर्ट 2009–10
3. अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन की रिपोर्ट 2010
4. दैनिक नव भारत भोपाल 17 नवम्वर 2002 मैं राहुल जी का लेख।
5. प्रसिद्ध पत्रिका 'माया' अंक 31 मार्च 1997 का आलेख।

नैतिक मूल्यो के गिरावट में परिवार एवं समाज की भूमिका

अजेन्द्र नाथ प्रजापति *

शोध सारांश – परिवार समाज की प्राथमिक ईकाई है। परिवार ही व्यक्ति की पहली पाठशाला है जिसमें वह जीवन मूल्यों को सीखता है, और सीखे हुऐ के अनुरूप समाज में आचरण करता है। समाज आज संक्रमण काल के दौर से गुजर रहा है जिसमें औद्योगीकरण, शहरीकरण, वैश्विकरण की परिवर्तन में भूमिका अहम है इसमें समाज की मूल इकाई को सकारात्मक नकारात्मक ढंग से प्रभावित किया है। सर्वाधिक प्रभाव परिवार की सरंचना व कार्यो में पड़ा है। परिवार अब एकांकी संरचना की ओर बढ़ रहा है, इसके कार्यो में परिवर्तन आऐं है वैसे ही परिवार के सदस्यो की क्रियात्मकता पर प्रभाव पड़ा है। समाज ने जीवन निर्वाह के लिए कुछ महत्वपूर्ण जीवन मूल्यों का निर्माण किया था, जिसके अनुरूप व्यक्ति को आचरण करने की मान्यताऐं निर्धारित की गई थी। आज यहीं मान्यताऐं मूल्य खोते जा रहे है। परिवार की संरचना में आऐ परिवर्तनो से मूल्यों के निर्वाह भी बदल से गऐ है अब व्यक्ति के लिए न व्यक्ति महत्वपूर्ण रहा न ही परिवार और न ही कोई मूल्य आज व्यक्ति स्वार्थी जीवन में प्रवेश कर रहा है जहॉ 'अहं ब्रहस्मी' का उदघोष हो रहा है। जो पुराने की समाप्ति व नऐ समाज की उत्पत्ति का सूचक है।

प्रस्तावना – समाज का जब विकास हुआ तब इसमें कुछ नियम कानूनो को जीवन निर्वाह व्यक्ति के विकास के लिए जोड़ा गया जिसमें नैतिक मूल्य प्रमुख थे। इतिहास से वर्तमान तक आते-आते नैतिक मूल्यों में वृद्धि होने के बजाय उसका ह्रास हुआ है। आधुनिकता की दौड़ में आज हम सब चीजे छोड़ते चले जा रहे है। आज व्यक्ति जैसे अपने आप को एक कमरे में समेटता जा रहा है वैसे ही प्रथा परंपरा, रीति, रिवाज भी सिमटते जा रहे है। नैतिक मूल्य मनुष्य के सुखी संयमित समाजोपयोगी जीवन के लिए सशक्त आधार प्रदान करते है नैतिक मूल्यों में कमी सामाजिक विघटन की और संकेत करती है। नैतिक मूल्य जितना मनुष्य समाज के लिए महत्वपूर्ण है उतना ही राष्ट्र के लिए, यदि नैतिक मूल्य ही नहीं होंगे तो मनुष्य और पशु के मध्य ज्यादा अन्तर कर पाना संभव नहीं होगा। नैतिक मूल्य ही व्यक्ति को समाज के लिए उपयोगी बनाती है और इसका विघटन सामाजिक विघटन दर्शाता है। वर्तमान समय में वह हर चीज आवश्यक है जो आगे बढ़ने में सहायक हो पुराने सहारे उस बूढ़े वृक्ष की तरह है जो वर्षो से आंधी, तुफान, वर्षा में अपने आप को सुरक्षित रखे हुऐ है और इसलिए नये को अपनाऐ पर पुराने को भी अपने से जोड़े रहे तभी सुरक्षित आगे बढ़ा जा सकता है।

परिणाम एवं विवेचना – परिवार एक सार्वभौमिक संस्था है जो सभी समाजो में किसी न किसी रूप में पाई जाती है इतना ही नहीं यह मानव व्यवहार को नियन्त्रित करने तथा उसे एक जैविकीय प्राणी से सामाजिक प्राणी बनाने में महत्वपुर्ण भूमिका अदा करती है। बच्चों को अनेक प्रकार की सीख प्रदान करता है। उन्हें सामाजिक व्यवहार करना सिखाता है। सामाजिक प्रतिमान, सामाजिक आदर्श, सामाजिक मूल्यों आदी से परिचित कराकर उसके अनुकूल बनाता है। इसलिए परिवार को प्राथमिक पाठशाला भी कहा जाता है। चार्ल्स कले ने तो परिवार को एक ऐसा प्राथमिक समूह माना है, जिसमें बच्चे के सामाजिक जीवन और आदर्शो का निर्माण होता है। (प्रेम, आत्मत्याग, कर्तव्य पालन, सहयोग, सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, शैक्षणिक, राजनीतिक सभी क्षेत्रों के सदगूणो व शिक्षा प्रदान करता है।)

इतना ही नहीं परिवार के अन्तर्गत व्यक्ति सामाजिक व्यवहारों का अनुकूलन करता है तथा रहन-सहन की कला, प्यार, प्रेम, कर्तव्य, परोपकार, सद्भावना, सहानुभूति, सेवा, अनुशासन, आज्ञा पालन, अनुनय विनय आदि अनेक सामाजिक गुणो को सिखाता है जो व्यक्ति के व्यक्तित्व के विकास के आधार स्तम्भ होते है। इसके साथ ही साथ परिवार अपने सदस्यो के व्यवहारो को नियन्त्रित एवं निर्देशित भी करता है जिससे की व्यक्ति समाज के प्रतिकुल तथा असामाजिक व्यवहार न कर सके। परिवार एक ऐसी प्राथमिक इकाई है जो मानव व्यक्तित्व के निर्माण तथा विकास के लिए ठोस आधार स्तम्भ प्रदान करती है।

संयुक्त परिवार अपने आप में एक ऐसा समुदाय है जो एक व्यक्ति की सभी भौतिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक आवश्यकताओं की पूर्ति करता है। हमारे समाज में संयुक्त परिवार का इतना अधिक महत्व है कि इसके सम्मुख अन्य नागरिक इकाइयां (यहां तक की राज्य भी) महत्वहीन हो जाते है। सर्वे के अनुसार एक व्यक्ति की पाप की सारी कमाई, चाहे दूसरे व्यक्तियों से या राज्य से गबन की गई हो, विशाल संयुक्त परिवार तथा वृहतर बान्धव समुह पर ही खर्च होती है। अत: परिवार के सभी सदस्य उसके नियन्त्रण में रहते है और इस प्रकार परिवार में अनुशासन भी बना रहता है। कर्ता अपनी शक्तियो के माध्यम से परिवार के सदस्यो में स्वच्छन्द आचरण पर रोक लगाता है। वर्तमान में संयुक्त परिवार के एकल परिवार में बदलने से परिवार के कार्या में जो परिवर्तन आये है, उससे आज के युवा जो उसके सदस्य थे उसमे भी बदलाव हुऐ है। आज के युवा की नकारात्मक मानसिकता, दूर-दूर तक को सहारा न नजर आना, स्वार्थ, सिद्धातों की आहुति, आदर्शो से किनारा कर लिया नैतिक मूल्य तक दाव पर लगा दिऐ है। जिसके परिणाम से युवाओं को प्रदुषित माहौल और नकारात्मक भावना मिली, और वर्तमान शिक्षा प्रणाली ने तो नैतिक की रीढ़ तोड़ दी है आज शिक्षा ज्ञान की नही अंको की होने लगी है बस आपको अंक कितने आते है ये मायने रखता है न की आपको कितना आता है। आज शिक्षको को छात्रो को डाटने तक का अधिकार नहीं है ऐसे भी

*शोधार्थी (समाजशास्त्र) शासकीय कला एवं वाणिज्य महाविद्यालय, इन्दौर (म.प्र.) भारत

शिक्षक जैसा चल रहा है वैसा चलने दो वाली भावना से कार्य कर रहे है। हमारी शिक्षा प्रणाली में विदेशी भाषा के लिए अलग से पीरियड है पर नैतिक, भारतीय संस्कृति, सभ्यता के लिए कोई भी पिरियड नहीं है ऐसे में बच्चा बचपन से ही गूड मॉर्निंग, गूड........ सीखेगा न की चरण स्पर्श, प्रणाम, नमस्कार जैसी संस्कारिक रीतियां। आज की शिक्षा ने नई पीढ़ी को संस्कार और समय की समझ नहीं हमारी शिक्षा प्रणाली ने मूल्यहीनता के बढ़ाने वाली साबित हुई है।

संयुक्त परिवार की ध्वस्त होती अवधारणा, अनाथ माता-पिता, फ्लेट्स में सिकुड़ते परिवार, प्यार को तरसते बच्चे, नौकरो, दाइयों एवं ड्राइवरो के सहारे जवान होती नई पीढ़ी, 14-15 वर्ष की आयु में नशे की प्रवृति, पश्चिमिकरण के अंग दिखाऊ पहनावे, धार्मिक, आध्यात्मिक क्रियाकलापों और सामाजिक कार्यो के प्रति उदासीनता, वर्तमान भौतिकवादी वातावरण मे चरित्र निर्माण की चर्चा बिल्कुल नही होना।

ये सभी कारण है नयी पीढ़ी के युवाओ में संस्कारो में कमी या जो अनैतिकता ने प्रवेश किया है, इसकी वजह नैतिक मूल्यो में कमी इसीलिए आ रही। इसका सबसे बड़ा कारण उपभोक्तावादी, भौतिकवादी संस्कृति है जिसमें जीवन आनंद उल्लास के लिए बताया है। इसमें सामाजिक उतरदायित्व शामिल नहीं है, जैसा पश्चिमी देशों में होता है, जहा बिना शादी के बच्चे होते है उनके बड़े होते होते या तो नई मॉ आ जाती है या नऐ पिता और शादी की उम्र तक तो वास्तविक माता पिता की शक्ल भी याद नहीं रहती है वहां न तो भारतीय घरो की तरह परिवार है न संस्कार और यही प्रवृति भारतीय परिवारो में आ गई है, यह धीरे-धीरे सामाजिक मूल्यों को समाप्त कर रही है जिसे हम टूटते परिवारों के रूप में देख रहे हैं आज व्यक्ति को व्यक्ति से नहीं पैसों से संबंध है और जहां रूपयों से संबंध हो वहां व्यापार होता है परिवार या समाज नहीं।

निष्कर्ष-आज की आवश्यकता युवा शक्ति का नियंत्रण है, परिवार उसकी पहली पाठशाला है, एक अध्ययन के अनुसार जिन परिवार में संस्कार होते हैं उनके बच्चे अपेक्षाकृत अधिक संयमी, मितव्ययी और अनुशासित होते हैं। ऐसे परिवेश में पले बढ़े बच्चों की देश के उच्च शिक्षा संस्थानों ने भी सर्वाधिक भागीदारी है अत: नैतिक मूल्य जीवन निर्माण के लिए पर्याय है, क्योंकि व्यक्ति अपने आचरण के लिए ही जाना जाता है। जीवन मूल्य ऐसे निर्मित करें जिसे देख दूसरे भी उसका अनुसरण करना चाहें। युवा किसी फिल्मी हीरो या संगीतकार को आदर्श न मान स्वामी विवेकानन्द जैसे महापुरूष को अपना आदर्श बताऐ तभी विश्व मंच पर पुन: भारत जगतगुरू बन पायेगा।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. ओझा,एस,के (2013) समाजशास्त्र, मेरठ : अरिहन्त पब्लिकेशन।
2. श्रीवास्तव, ए.पी. (2014) समाजशास्त्र, भोपाल : राम प्रसाद एंण्ड संस।
3. गुप्ता, एम.एल. एवं शर्मा, डी.डी. (2006) समाजशास्त्र आगरा : साहित्य भवन प्रकाशन।
4. आहूजा, आर. (1995) भारतीय सामाजिक व्यवस्था जयपुर एंड नई दिल्ली : रावत पब्लिकेशन।
5. दोशी एस.एस. एण्ड जैन. (2002) भारतीय समाज संरचना और परिवर्तन जयपुर : नेशनल पब्लिकेशन हाउस।

****

Naveen Shodh Sansar (An International Refereed Research Journal) April to June 2015, Volume - 2
ISSN 2320-8767, E- ISSN 2394-3793, Imapct Factor - 0.715 (2014)

Influence of Gender & Level of Education on Moral Values

कमलेश उपाध्याय *

Abstract – अध्ययन का उद्देश्य के 10वीं तथा 12वीं के छात्रों तथा छात्राओं के नैतिक मूल्यों के स्तर का मापन करना था। इस हेतु विद्याभारती प्रकाशन जबलपुर द्वारा निर्मित नैतिक मूल्य का परीक्षण का उपयोग किया गया। यह परीक्षण नैतिक मूल्यों को चार विभिन्न क्षेत्रो- (i) ईमानदारी (ii) गंभीरता (iii) मानवता (iv) विनयशीलता में पृथक-पृथक मापन करने के साथ ही सम्पूर्ण परीक्षण पर नैतिक मूल्यों की वस्तुस्थिति से भी अवगत करता है। अध्ययनअभिकल्प के रूप मे 2x2 कारक अभिकल्प का उपयोग किया गया। कक्षा 10वी तथा 12वी के 80 छात्रों तथा छात्राओं को यादृच्छिक रीति से प्रयोज्यों के रूप मे चयनित कर प्रदतो का संग्रहण किया गया। अध्ययनके परिणाम इस प्रकार रहे-(1) कक्षा 10वीं के छात्रों तथा छात्राओं मे परीक्षण के क्षेत्र-विनयशीलता, ईमानदारी, गंभीरता, विनयशीलता तथा सम्पूर्ण परीक्षण पर .05/.01 विश्वास के स्तर पर सार्थक अन्तर पाया गया। (2) कक्षा 12वीं के छात्रों तथा छात्राओं मे द्वितीय क्षेत्र गंभीरता मानवता तथा सम्पूर्ण परीक्षण पर .05 विश्वास के स्तर पर सार्थक अंतर पाया गया। (3) केवल छात्रों की तुलना करने पर कक्षा 10वीं तथा 12वीं के छात्रों में परीक्षण के क्षेत्र-गंभीरता, मानवता तथा सम्पूर्ण परीक्षण पर .01/.10 विश्वास के स्तर पर सार्थक अंतर पाया गया। (4) केवल छात्राओं की तुलना करने पर कक्षा 10वीं तथा 12वीं की छात्राओं में परीक्षण के क्षेत्र-मानवता, विनयशीलता तथा सम्पूर्ण परीक्षण पर .05/.10 विश्वास के स्तर पर सार्थक अंतर पाया गया। (5) अध्ययनमें सम्मिलित सभी समूहों में परीक्षण के क्षेत्र गंभीरता, मानवता, विनयशीलता तथा सम्पूर्ण परीक्षण पर .01/.05 विश्वास के स्तर पर सार्थक अंतर पाया गया है। (6) अध्ययन में सम्मिलित सभी समूहों के परीक्षण के प्रत्येक क्षेत्र में .01 विश्वास के स्तर पर सार्थक अंतर पाया गया।

Introducation – सामान्य रूप से मूल्य का प्रयोग व्यक्ति की रूचियों, प्रेरणाओं एवं अभिवृत्ति के मापन के लिए किया जाता है। व्यक्ति के मूल्य इस बात का दर्पण होते हैं कि वे अपनी सीमित शक्ति एवं समय में क्या करना चाहते हैं ? मूल्य किसी व्यक्ति के नैतिक एवं आध्यात्मिक व्यक्तित्व को आकार देते हैं। ये किसी व्यक्ति को सही कार्य करने के लिए मार्गदर्शन प्रदान करते हैं।[1] मूल्य व्यक्तियों के व्यवहार को विकसित करते हैं।[2] किशोरावस्था जीवन में उदोलन की अवस्था के रूप में स्वीकारी जा सकती है। **आलपोर्ट (1951)** के अनुसार 'मूल्य वह क्रिया है जो किसी उद्दीपक से उदीप्त होती है।' वास्तव में मूल्य भावनात्मक परिवर्तन पर आधारित क्रियाओं की ओर भी इंगित करते है। **एवंरैट (1918)** के अनुसार 'मूल्य एक भावना है जो क्रियाओं से निर्मित होती है।'[3] किशोरावस्था में व्यक्ति के समस्त मूल्य केवल सुख प्राप्ति पर आधारित होते हैं। **ब्राइटमेन (1958)** ने भी स्वीकारा है कि मूल्य में समस्त सुखदायी भावनाऐं निहित रहती है। **स्प्रेंगर** का विश्वास था कि व्यक्ति के मूल्यों के अध्ययन के आधार पर उसका व्यक्तित्व जाना जा सकता है। **स्प्रेंगर** ने अपनी पुस्तक 'टाईप्स ऑफ मेन' में छ: प्रकार के व्यक्तित्वों का उल्लेख किया है। कालांतर में आलपोर्ट, वर्नन एवं लिन्डजे ने अपने मूल्य अध्ययनमें निम्नलिखित छ: प्रकार के मूल्यों-सैद्धांतिक मूल्य, आर्थिक मूल्य, सौन्दर्यात्मक मूल्य, सामाजिक मूल्य, राजनैतिक मूल्य एवं धार्मिक मूल्य को समाहित किया है।[4]

Methodology

Objectives –अध्ययन का उद्देश्य निम्नांकित समस्याओं का अध्ययन करना था-

1. नैतिक मूल्य पर लिंग के प्रभाव का अध्ययन।
2. नैतिक मूल्य पर शिक्षा के स्तर के प्रभाव का अध्ययन।
3. नैतिक मूल्य पर लिंग तथा शिक्षा के स्तर की अंत:क्रिया के प्रभाव का अध्ययन।
4. नैतिक मूल्य परीक्षण के प्रत्येक क्षेत्र की प्रभावशीलता का परीक्षण अध्ययन में सम्मिलित सभी समूहों के लिये करना।
5. अध्ययन में सम्मिलित प्रत्येक समूह की परीक्षण के सभी चार क्षेत्रों में मध्यमानों की सार्थकता का परीक्षण करना।

Hypothesis–उपरोक्त समस्याओं के अध्ययनहेतु यह परिकल्पना की जाती है कि निम्नांकित समूहों के नैतिक मूल्य परीक्षण संबंधी मध्यमान प्राप्तांकों में सांख्यिकीय दृष्टिकोण से कोई सार्थक अंतर नहीं पाया जाएगा-

1. लिंग- छात्रों तथा छात्राओं।
2. शिक्षा का स्तर- 10वीं तथा 12वीं
3. कक्षा 10वीं तथा 12वीं के छात्रों तथा छात्राओं के नैतिक मूल्य परीक्षण संबंधी अंत:क्रियाओं के प्राप्तांकों के मध्य।
4. नैतिक मूल्य परीक्षण के प्रत्येक क्षेत्र-ईमानदारी, गंभीरता, मानवता तथा विनयशीलता की प्रभावशीलता के मध्य।
5. अध्ययन में सम्मिलित प्रत्येक समूह की परीक्षण के सभी चार क्षेत्रों के मध्यमानों के मध्य।

Sampling–वर्तमान अध्ययनका प्रतिदर्श म.प्र. के नीमच जिले के ग्राम सरवानिया महाराज से लिया गया है। कक्षा 10वीं के 40 विद्यार्थियों (20 छात्रों तथा 20 छात्राओं) एवं 12वीं के 40 विद्यार्थियों (20 छात्रों तथा 20 छात्राओं) का चयन यादृच्छिक रीति से किया गया। शहरी क्षेत्र हेतु प्रयोज्यों का चयन नीमच जिले से किया गया। इस प्रकार कुल 80 प्रयोज्यों पर प्रदत्तों का संग्रहण किया गया, जिनकी आयु सीमा 14 वर्ष से 18 वर्ष के मध्य थी।

* सहायक प्राध्यापक (मनोविज्ञान) एस.आर.जे. शासकीय कन्या महाविद्यालय, नीमच (म.प्र.) भारत

Tool Used - विद्या भारती प्रकाशन,जबलपुर द्वारा निर्मित नैतिक मूल्य परीक्षण का उपयोग प्रस्तुत शोध कार्य हेतु किया गया है। परीक्षण में कुल 60 पद हैं, जो तीन श्रेणियों में वर्गीकृत है। पदों का फलांकन स्कोरिंग–की, की सहायता से किया जाता है। परीक्षण का मानकीकरण 1450 छात्रों तथा छात्राओं पर किया गया है। परीक्षण की विश्वसनीयता अर्द्धविच्छेद विधि से .67 तथा परीक्षण पुनर्परीक्षण विधि से .62 पाई गई है तथा वैधता .61 पाई गई है। परीक्षण में प्रत्येक क्षेत्र हेतु छात्रों तथा छात्राओं के लिये जेड स्कोर, टी–स्कोर तथा शतांशीय मानक दिये गये हैं। इसके अतिरिक्त प्रयोज्य के रॉ स्कोर से भी नैतिक मूल्यों की श्रेणी का वर्गीकरण भी मैन्युअल में दी गई तालिका के आधार पर किया जा सकता है।

Analysis and Data Interpretation –

Table-1 Only X- Male &Female

Areas of the Test	Mean's	SD's	t-Cal.
Honesty	9.05 10.15	1.32 1.46	2.44 **
Sincerity	10.00 11.40	1.92 143	2.55 **
Humanity	11.40 12.40	2.29 1.15	1.56
Courtesy	10.80 12.20	1.89 1.33	2.65 **
Full Test	41.25 46.15	5.73 4.37	2.96 **

*significance level *p>.01=2.71,**p<.05=2.02 *** p<.10=1.66

Table- 2 Only XII - Male & Female

Areas of the Test	Mean's	SD's	t-Cal.
Honesty	9.85 9.75	1.88 1.73	.17
Sincerity	12.80 11.00	1.63 2.53	2.61**
Humanity	12.60 11.05	1.50 2.31	2.45**
Courtesy	11.70 10.35	1.93 3.05	1.63
Full Test	46.95 42.15	4.73 8.62	2.13**

*significance level *p>.01=2.71,**p<.05=2.02 *** p<.10=1.66

Table - 1 जो कि कक्षा 10वीं के छात्रों तथा छात्राओं के नैतिक मूल्य परीक्षण संबंधी मध्यमानो, मानक विचलनो t मूल्यो तथा उनकी सार्थकता को दर्शाती है। परीक्षण के प्रथम क्षेत्र ईमानदारी t=2.44, द्वितीय क्षेत्र गंभीरता t=2.255, चतुर्थ क्षेत्र विनयशीलता t=2.65,df=38, p>.05=2.02 विश्वास के .05 के स्तर पर सार्थक अंतर पाया गया है तथा सम्पूर्ण परीक्षण पर t=2.96, df=38, p>.01=2.71 विश्वास के .01 के स्तर पर सार्थक अंतर पाया गया है।

Table - 2 जो कि कक्षा 12वीं के छात्रों तथा छात्राओं के नैतिक मूल्य परीक्षण संबंधी मध्यमानो, मानक विचलनो t मूल्यो तथा उनकी सार्थकता को दर्शाती है। परीक्षण के द्वितीय क्षेत्र गंभीरता t=2.61, तृतीय क्षेत्र मानवता t=2.45,तथा सम्पूर्ण परीक्षण पर t=2.13, df=38, p>.05=2.02 विश्वास के .05 के स्तर पर सार्थक अंतर पाया गया है।

Table-3 Only Female- X & XII

Areas of the Test	Mean's	SD's	t-Cal.
Honesty	9.05 9.85	1.32 1.88	1.52
Sincerity	10.00 12.80	1.92 1.63	4.84*
Humanity	11.40 12.60	2.29 1.50	1.91***
Courtesy	11.80 11.70	1.89 1.93	1.45
Full Test	41.25 46.95	5.73 4.73	3.35*

*significance level *p>.01=2.71,**p<.05=2.02 *** p<.10=1.66

Table-4 Only Male - X & XII

Areas of the Test	Mean's	SD's	t-Cal.
Honesty	10.15 9.75	1.46 1.73	.77
Sincerity	11.40 11.00	1.43 2.53	.60
Humanity	12.40 11.05	1.59 2.31	2.10**
Courtesy	12.20 10.35	1.33 3.05	2.42**
Full Test	46.15 42.15	4.37 8.62	1.80***

*significance level *p>.01=2.71,**p<.05=2.02 *** p<.10=1.66

Table - 3 तालिका 3 जो कि 10वीं तथा 12वीं के छात्रों के नैतिक मूल्य परीक्षण के मध्यमानो की सार्थकता के मूल्यो को दर्शाती है। परीक्षण के द्वितीय क्षेत्र गंभीरता t=4.84, तथा सम्पूर्ण परीक्षण पर t=3.35, df=38, p>.01=2.71 विश्वास के .01 के स्तर पर सार्थक अंतर पाया गया है। परीक्षण के तृतीय क्षेत्र मानवता t=1.91, df=38, p>.10=1.66 विश्वास के .10 के स्तर पर सार्थक अंतर पाया गया है।

Table - 4 जो कि 10वीं तथा 12वीं की छात्राओं के नैतिक मूल्य परीक्षण के मध्यमानो की सार्थकता के मूल्यो को दर्शाती है। परीक्षण के तृतीय क्षेत्र मानवता t=2.10, चतुर्थ क्षेत्र विनयशीलता t=2.42 df=38, p>.05=2.02 विश्वास के .05 के स्तर पर सार्थक अंतर पाया गया है तथा सम्पूर्ण परीक्षण [a t=1.80, df=38, p>.10=1.66 विश्वास के .10 स्तर पर सार्थक अंतर पाया गया है।

Table-5–**परीक्षण के विभिन्न क्षेत्रों पर कक्षा X तथा XII की के छात्रों तथा छात्राओं विद्यार्थियों के प्रसरण विश्लेषण को दर्शाती है**

Areas of the Test	Sum of Square	Df	Mean Square	F-Ratio
Honesty	13.00 207.80	3 76	4.33 2.73	1.585
Sincerity	80.80 296.00	3 76	26.93 3.89	6.915*
Humanity	34.14 307.35	3 76	11.38 4.04	2.81**
Courtesy	42.34 367.15	3 76	14.11 4.84	2.921**
Full Test	484.95 2969.80	3 76	161.65 39.08	4.13*

***significance level*p>.01=4.04,**p<.05=2.72**

Table : 5 तालिका 5 जो कि अध्ययन मे सम्मिलित सभी समूहों के संबंध मे मध्यमानो की सार्थकता को दर्शाती है। तालिका के अवलोकन से स्पष्ट है कि परीक्षण के द्वितीय क्षेत्र गंभीरता F=6.915, तथा सम्पूर्ण परीक्षण F=4.13, df=3,76 p>.01=4.04 पर सार्थक अंतर पाया गया है। परीक्षण के तृतीय क्षेत्र मानवता F=2.81, चतुर्थ क्षेत्र विनयशीलता F=2.921, df=3,76 p>.05=2.72 पर सार्थक अंतर पाया गया है।

Table-6**– अध्ययन मे सम्मिलित सभी समूहों के विभिन्न क्षेत्रों के मध्यमानों के अंतर की सार्थकता को दर्शाती F-Ratio की तालिका**

Groups of Study	Sum of Square	Df	Mean Square	F-Ratio
Only Male	252.20 527.70	7 152	36.03 3.47	10.378*
Only Female	125.18 650.60	7 152	17.88 4.28	4.178*
Only X	184.80 454.30	7 152	26.40 2.99	8.833*
Only XII	188.97 724.00	7 152	27.00 4.67	5.668*

***significance level*p>.01=2.63**

Table : 6 जो कि अध्ययन में सम्मिलित प्रत्येक समुह के विभिन्न क्षेत्रो कि सार्थकता की सांख्यिकीय गणना को दर्शाती है। अवलोकन से स्पष्ट है कि केवल छात्रों F=10.378, केवल छात्राओं F=4.178, केवल 10वीं के विद्यार्थियों हेतु F=8.833 तथा केवल 12वीं के विद्यार्थियों हेतु F=5.668 प्राप्त होता है। जो कि df=7,152 , p>.01=2.63 विश्वास के .01 स्तर पर सार्थक है।

Inferences -

(1) केवल कक्षा 10वीं की छात्राओं में ईमानदारी,गंभीरता, विनयशीलता तथा सम्पूर्ण परीक्षण पर नैतिक मूल्यों का स्तर इसी कक्षा के छात्रों की तुलना में सार्थक रूप से अधिक पाया गया है। (तालिका क्र,1)

(2) केवल कक्षा 12वीं के छात्रों में गंभीरता तथा सम्पूर्ण परीक्षण पर नैतिक मूल्यों का स्तर इसी कक्षा की छात्राओं की तुलना में सार्थक रूप से अधिक पाया गया है। (तालिका क्र,2)

(3) केवल कक्षा 12वीं के छात्रों में गंभीरता, मानवता तथा सम्पूर्ण परीक्षण पर नैतिक मूल्यों का स्तर कक्षा 10वीं के छात्रों की तुलना में सार्थक रूप से अधिक पाया गया। (तालिका क्र,3)

(4) केवल कक्षा 10वीं की छात्राओं में मानवता तथा सम्पूर्ण परीक्षण पर नैतिक मूल्यों का स्तर कक्षा 12वीं की छात्राओ की तुलना में सार्थक रूप से अधिक पाया गया। (तालिका क्र,4)

(5) परीक्षण के क्षेत्र गंभीरता, मानवता, विनयशीलता तथा सम्पूर्ण परीक्षण पर अध्ययन में सम्मिलित विभिन्न समूहों में .01/.05 विश्वास के स्तर पर सार्थक अंतर पाया गया है। (तालिका क्र,5)

(6) अध्ययन में सभी सम्मिलित समुह में परीक्षण के विभिन्न क्षेत्रो के मध्यमानों मे ,01 विश्वास के स्तर पर सार्थक अंतर पाया गया। (तालिका क्र,6)

Recommendations-

(1) कक्षा 10वीं के छात्रों मे नैतिक मूल्य का स्तर उनके तुल्य समुह से कम पाया गया है। यह चिंताजनक है। इन्हें सुझाव दिया जाता है कि वे नैतिक मूल्यो की जीवंतता अपने भीतर बनाये रखने हेतु कुछ मात्रा मे ही सही परन्तु आत्मसंतोष की दिशा मे अग्रसर हो।

(2) कक्षा 12वीं के छात्राओं मे गंभीरता का स्तर कम पाया गया है। यह खेदजनक है। उन्हें सुझाव दिया जाता है कि स्वयं पर अनुशासन रखना सीखे एवं अपने भीतर उतरदायित्व बौध को सदैव जागृत रहने दे।

(3) कक्षा 12वीं के छात्रों में सम्पूर्ण परीक्षण पर नैतिक मूल्यों का अधिक पाया जाना प्रशंसनीय है, उन्हें सुझाव दिया जाता है कि अपने भीतर नैतिक मूल्य बनाये रखें।

(4) कक्षा 12वीं की छात्राओं में मानवता तथा सम्पूर्ण परीक्षण पर नैतिक मूल्यों का स्तर कम पाया जाना खेद जनक है, इन्हें सुझाव दिया जाता है कि जीवन में सफलता प्राप्ति का मूल आधार नैतिकता है। अत: अपने भीतर नैतिक मूल्यों को पुर्नजीवित करने का भरसक प्रयास करें।

References :-

1. Mudita Bhatnagar (2008) “Education in Human Values”, Indian Journal of Psychometry and Education, 39(2):200-203.
2. Poonam Shrivastava, Geeta Shukla and B.Nigam (2008), “Family Climate and Value of Conflict of Home science and Science faculty students”, Psycho-Lingua 38(2): 162-166.
3. डॉ.रामजी श्रीवास्तव, सम्पादक, मनोवैज्ञानिक एवं शैक्षिक मापन, प्रथम संस्करण 1991, पेज 429-431
4. डॉ. महेश भार्गव, आधुनिक मनोवैज्ञानिक परीक्षण एवं मापन, 12वां संस्करण (1999) पेज 525-526
5. विद्या भारती प्रकाशन, जबलपुर द्वारा प्रकाशित नैतिक मूल्य परीक्षण का मैन्युअल।
6. Sapana chaturvedi, “A Comparative Study of Moral values.” A filed study report submitted under my supervision in the Department of Psychology, SRJ Government Girls’ College, Neemuch affiliated to Vikram University, Ujjain. (M.P.)

****

Naveen Shodh Sansar (An International Refereed Research Journal) April to June 2015, Volume - 2
ISSN 2320-8767, E- ISSN 2394-3793, Imapct Factor - 0.715 (2014)

खिलाड़ी एवं गैर खिलाड़ी किशोरों के मानसिक स्वास्थ्य का तुलनात्मक अध्ययन

ज्योत्सना झारिया *

प्रस्तावना – मानसिक स्वास्थ्य– मानसिक स्वास्थ्य की मूल कसौटी अर्जित व्यवहार है। इस तरह के व्यवहार का स्वरूप कुछ ऐसा होता है जिससे व्यक्ति को सभी तरह के समायोजन करने में मदद मिलती है। मानसिक स्वास्थ्य एक संतुलित मनोदशा की अवस्था होती है जिससे व्यक्ति अपनी जिन्दगी के विभिन्न हालातों में सामाजिक रूप से तथा सांवेगिक रूप से एक मान्य व्यवहार बनाए रखता है। कार्ल मेनिंगर (1975) के अनुसार, 'मानसिक स्वास्थ्य अधिकतम खुशी तथा प्रभावशीलता के साथ वातावरण एवं उसके प्रत्येक दूसरे व्यक्ति के साथ मानव समायोजन है– वह एक संतुलित मनोदशा, सतर्क बुद्धि, सामाजिक रूप से मान्य व्यवहार तथा एक खुश–मिजाज बनाए रखने की क्षमता हैं। 'मानसिक स्वास्थ्य का उद्देश्य एसे सिद्धांतों या नियमों को स्थापित करना है जिन पर अमल करने से व्यक्ति मानसिक द्वन्द्वों से मुक्त रह सकता है, जीवन के प्रतिबलों से अपना बचाव कर सकता है, स्वस्थ्य व्यक्तिगत मूल्यों तथा व्यक्तिगत अभिरूचियों को अर्जित कर सकता है तथा अपने सीमित साधनों का सदुपयोग करके दूसरों को हानि पहुचाँए बिना सुखद जीवन जी सकता है।

किशोरावस्था एवं मानसिक स्वास्थ्य– किशोर विद्यार्थियों में अनेक प्रकार की मनोवैज्ञानिक समस्याएँ पायी जाती है जैसे कक्षा में उपस्थित न होना, गृहकार्य न करना, चोरी करना, चोरी छिपे सिगरेट पीना या मादक पदार्थो का सेवन करना, अश्लील चित्र या चलचित्र देखना अथवा वार्तालाप करना इत्यादि। इस तरह का व्यवहार आजकल विद्यार्थियों में सामान्य हो गया है। वे न तो अपनी शिक्षा को महत्व देते हैं और न सामाजिक एवं नैतिक मूल्यों को ही महत्व देते हैं। परिणाम स्वरूप उनमें सद्गुणों का विकास न होकर दुर्गणु ों का विकास होने लगता है और वे समस्या–ग्रस्त हो जाते हैं। एसेी परिस्थिति में मानसिक स्वास्थ्य विज्ञान ही उनके दुर्गुणों को विकसित हानें से रोक सकता है और उनकी रोकथाम करता है।

खेल एवं मानसिक स्वास्थ्य– खेलों का मानव जीवन में अत्यधिक महत्व है। जीवन के सुचारू रूप से संचालन के लिए जहाँ कार्य करना आवश्यक है वहीं खेल आमोद–प्रमोद एवं स्वास्थ्यवर्धन का साधन है। खेल बालकों को आत्म प्रेरित तथा आनन्द प्रदान करने वाली एक स्वतंत्र एवं स्वभाविक क्रिया है जो बच्चों के जीवन में प्रसन्नता, उत्साह, स्फूर्ति आदि के भाव उत्पन्न करता है। खेल का समुचित अवसर मिलने पर बच्चों के स्व तथा व्यक्तिगत का सम्पूर्ण विकास होता है तथा वे स्वस्थ मानसिक एवं शारीरिक समायोजन करने में होते है। किशोरावस्था परिवर्तन का काल माना जाता है क्योंकि इनकी रूचियों, व्यवहारों, शारीरिक दशाओं और संवेगों में परिवर्तन पाया जाता है। इस अवस्था में संवेगात्मक परिवर्तन अपनी पराकाष्ठा पर पहुचँ जाता है। इसलिए उनमें संवेगात्मक तूफान और तनाव उत्पन्न होता है। इन संवेगात्मक तनाव एवं प्रतिबलों का निष्कासन आवश्यक है। खेलों के माध्यम से वह अपने संवेगों को प्रगट करता है तथा आंतरिक ऊर्जा का निष्कासन करता है। इस उद्देश्य की पूर्ति क्रियात्मक शारीरिक खेलों से भी हो सकती है और अप्रत्यक्ष विधियों तथा पुस्तक, सिनेमा टेलीविजन के चरित्र से तादात्मीकरण करने से भी। वह चलचित्र सीरियल आदि देख करके अपने भय, चिंता, अप्रसन्नता आदि त्यागता है मुसेन एवं रदरफोर्ड (1961)। जिन इच्छाओं एवं आवश्यकताओं की पूर्ति किसी अन्य माध्यम से संभव नहीं है उसे वह खेलों के माध्यम से पूरा करता है और वह अपने दैनिक जीवन की कुण्ठाओं का निष्कासन करता है एवं मानसिक रूप से स्वस्थ्य रहता है।

उपकल्पना– खिलाड़ी एवं गैर खिलाड़ी किशोरों के मानसिक स्वास्थ्य में सार्थक अंतर नहीं पाया जायेगा।

शोध अध्ययन विधि–

न्यादर्श– प्रस्तुत शोध अध्ययन में उद्देश्यपूर्ण प्रतिचयन विधि से चावरा विद्यापीठ, नरसिंहपुर में अध्ययनरत 20 खिलाड़ी एवं 20 गैर खिलाड़ी किशोर छात्रों का चयन न्यादर्श हेतु किया गया, जिसका विवरण न्यादर्श तालिका में प्रस्तुत है।

न्यादर्श तालिका

क्र.	परिवर्त्य	संख्या	लिंग	आयु	स्थान
1	खिलाड़ी छात्र	20	पुरूष	16 से 18 वर्ष	चावरा विद्यापीठ, नरसिंहपुर
2	गैर खिलाड़ी छात्र	20	पुरूष		

प्रायोगिक अभिकल्प– प्रस्तुत शोध अध्ययन में खिलाड़ी एवं गैर खिलाड़ी किशोरों के मानसिक स्वास्थ्य के अध्ययन हतेु द्वि समूह अभिकल्प का प्रयोग किया गया है। सांख्यिकी– प्रस्तुत शोध अध्ययन में खिलाड़ी एवं गैर खिलाडी किशोरों के मानसिक स्वास्थ्य में सार्थक अन्तर की जाँच हेतु मध्यमान, मानक विचलन एवं t-test की गणना की गई है।

प्रयुक्त उपकरण– प्रस्तुत शोध अध्ययन हेतु डॉ. कमलेश शर्मा द्वारा निर्मित MHS Mental Health Scaleपरीक्षण प्रपत्र का उपयोग किया गया है। स्केल की विश्वसनीयता .86ए .88 एवं वैधता .79 है।

आँकड़ों का संकलन– आंकड़ों के संकलन हेतु चावरा विद्यापीठ नरसिंहपुर के एक कक्ष में प्रयोगशालीय वातावरण निर्मित कर परीक्षण सम्बन्धी आवश्यक निर्देश देकर विद्यालय के 20 खिलाड़ी एवं 20 गैर खिलाड़ी किशोर छात्रों पर MHSपरीक्षण का प्रशासन किया गया।

* सहायक प्राध्यापक (मनोविज्ञान) शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, नरसिंहपुर (म.प्र.) भारत

परिणाम – प्रस्तुत शोध अध्ययन में प्राप्त परिणाम, परिणाम तालिका में अंकित है।

परिणाम तालिका

क्र.	प्रयोज्य	मध्यमान	SD	t का मान	df (38)	विशेष विवरण
1	खिलाड़ी	87.75	9.53	0.06	0.05% पर t का मान	सार्थक अन्तर
2	गैर खिलाड़ी	87.55	10.39		2.02, 0.01% पर t का मान 2.71	नहीं है

प्रस्तुत शोध अध्ययन में खिलाड़ी एवं गैर खिलाड़ी किशोरों के मानसिक स्वास्थ्य का मापन किया गया जिसमें खिलाड़ी किशोरो के मानसिक स्वास्थ्य का मध्यमान 87.75 एवं मानक विचलन 9.50 प्राप्त हुआ। इसी तरह गैर खिलाड़ी किशोरो के मानसिक स्वास्थ्य का मध्यमान 87.55 एवं मानक विचलन 10.39 प्राप्त हुआ। मध्यमान एवं मानक विचलन के आधार पर दोनों ही समूहों के मानसिक स्वास्थ्य में आंशिक अंतर पाया गया। प्रस्तुत शोध में t का मान 0.06 प्राप्त हुआ है जो 38 df पर 0.05% पर प्राप्त t के मान 2.02 एवं 1.01% पर प्राप्त t के मान 271 से कम है। अत: कहा जा सकता है कि खिलाड़ी एवं गैर खिलाड़ी किशोरों के मानसिक स्वास्थ्य में सार्थक अंतर नहीं पाया गया।

विवेचना एवं निष्कर्ष– प्रस्तुत शोध अध्ययन में प्राप्त परिणामों के आधार पर कहा जा सकता है कि खिलाड़ी एवं गैर खिलाड़ी किशोरों के मानसिक स्वास्थ्य में सार्थक अंतर नहीं पाया गया है।

मैकोवर (1990) ने अपने अध्ययनों के आधार पर स्पष्ट किया है कि यदि व्यक्ति को उसकी इच्छानुसार पर्याप्त खेल एवं मनोरजंन के साधन उपलब्ध होते हैं तो उनमें मानसिक प्रफुल्लता पायी जाती है। और उनका मानसिक स्वास्थ्य अच्छा रहता है। खेलों के अलावा किशोरों के मानसिक स्वास्थ्य को कई कारक प्रभावित करते हैं। जैसे– शारीरिक स्वास्थ्य, प्रमुख आवश्यकताओं की संतुष्टि, किशोरावस्था की समस्याओं का समाधान व समाधान का तरीका, संवेगात्मक एवं अध्यात्मिक बुद्धि, पीयर ग्रपु , परिवार की स्थिति, परिवार के सदस्यों का शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य सामाजिक आर्थिक स्तर, मनोरजंन इत्यादि। प्रस्तुत शोध अध्ययन में खिलाड़ी एवं गैर खिलाड़ी किशोरों के मानसिक स्वास्थ्य में अंतर नहीं पाया गया है ऐसी संभावना है कि उपरोक्त में से कोई कारक इसके लिए उत्तरदायी हो सकता है। इसके अलावा एक और महत्वपर्णू तथ्य यह है कि वर्तमान में शिक्षा का मूल उद्देश्य बालकों का सर्वागीण विकास हानो है, जिसमें बालकों के बौद्धिक विकास के साथ–साथ शारीरिक, मानसिक, संवेगात्मक, आध्यात्मिक, नैतिक एवं सामाजिक विकास आदि को भी महत्व दिया जाता है। शासन की एसी मंशा है कि प्रत्येक विद्यालय एवं महाविद्यालय में शिक्षा के इस उद्देश्य की पूर्ति की जाये। और प्रत्यके शिक्षालय इस हेतु प्रयासरत् हैं, जिसके परिणाम स्वरूप बालकों का सर्वागीण विकास हो रहा है, जब बालकों का सर्वागीण विकास होता है तो वे मानसिक रूप से स्वस्थ्य रहते है। निष्कर्ष स्वरूप कहा जा सकता है कि खिलाड़ी एवं गैर–खिलाड़ी किशोरों के मानसिक स्वास्थ्य में सार्थक अंतर नहीं पाया गया। अत: प्रस्तुत लघु शोध हेतु बनाई गई उपकल्पना को स्वीकृत किया जाता है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :–

1. आलम काजी गौस, रामजी श्रीवास्तव एवं अन्य (2002) आधुनिक विकासात्मक मनोविज्ञान, प्रकाशक–मोतीलाल बनारसी दास वाराणसी तृतीय संस्करण, पेज–500, 316, 319
2. सिंह अरूण कुमार (2005) उच्चतर नैदानिक मनोविज्ञान, प्रकाशक–मोतीलाल बनारसीदास दिल्ली, तृतीय संस्करण, पेज–531
3. सुलमोन मुहम्मद, मुहम्मद तौवाब (2008) असामान्य मनोविज्ञान विषय और व्याख्या, प्रकाशक–मोतीलाल बनारसी दास दिल्ली, द्वितीय संस्करण, पेज–584

****

प्राचीन भारत में स्त्री समाज

डॉ. प्रज्ञा आचार्य *

प्रस्तावना – स्त्री समाज की आधारशिला है। माता और भार्या के रूप में वह जिन कर्तव्यों एवं उत्तरदायित्वों का संवहन करती है। उन्हीं पर समाज का उत्कर्षाकर्ष अविलम्बित है। पुरूष के व्यक्तित्व का अंकुरण माता के अंक में ही होता है। वही उसका प्राथमिक एवं सर्वप्रधान शिक्षालय है। स्त्री की सामाजिक स्थिति में संपूर्ण समाज प्रभावित होता है। बहुधा ऐसा देखा गया है कि उसकी उन्नति अवनति का इतिहास समस्त समाज की उन्नति अवनति का इतिहास बन जाता है। इस दृष्टि से स्त्री सामाजिक का उत्कर्षाकर्ष का मापदण्ड है, परन्तु यह विडम्बना ही है कि प्रत्येक देश और प्रत्येक काल में पुत्री की अपेक्षा पुत्र ही वांछनीय रहा है। यह नितान्त स्वाभाविक है। क्योंकि शारीरिक संगठन की जन्मजात विशेषताओं के कारण पुत्री की अपेक्षा पुत्र अधिक बलशाली होता है। पुत्र वंश की साम्पतिक वृद्धि करने में वह अपने पिता को महत्वपूर्ण योग देता है।

ऋग्वेद में अनेक स्थानों पर पुत्र प्राप्ति के लिए प्रार्थनाऐं की गई है। 'ऋग्वेद' में एक स्थान पर एक ऋषि शक्तिवान, मनोरंजक, यजी, धनद तथा शत्रुहन्ता पुत्र के लिये प्रार्थना करता है। अन्य स्थानों पर पुत्र को अपने पिता के कार्य संपादन में सहायक एवं आज्ञाकारी बताया गया है। इस प्रकार के अनेक उदाहरण अथर्ववेद में भी मिलते है। ऐतरेय ब्राह्मण में एक स्थान पर पुत्र को तो दिव्य ज्योति कहा गया है परंतु पुत्री को कृपण बताया गया है।

संतान प्राप्ति की लालसा का कारण विशेषतया धार्मिक तथा याज्ञिक था। इस चतुर्दिक पुत्र प्राप्ति की लालसा के अधिकाधिक प्रसार ने स्वभाविक रूप से पुत्री के पद को निम्नतर कर दिया। अथर्ववेद में पुत्री जन्म पर खेद प्रकट किया गया है। ऐतरये ब्राह्मण की भांति महाभारत में पुत्री को 'आपत्ति' कहा गया है।[7] 'वेस्टरमार्क महोदय ने ऋग्वेद का एक उदाहरण देते हुए वैदिक काल में नवजात कन्या के बहि: क्षेप की प्रथा सिद्ध करने की चेष्टा की है।[8] परन्तु वह अंश केवल अविवाहित कन्या की अवैध संतान के बहिक्षेप का उल्लेख करता है उसमें कहीं भी विवाहित दम्पत्ति की वैध नवप्रसूत कन्या के बहि:क्षेप का वर्णन नहीं है।

वैदिक काल में पुत्र और पुत्री के सामाजिक एवं धार्मिक अधिसकारों में बहुत अधिक अन्तर न था। पुत्र की भांति पुत्री भी उपनयन शिक्षा दीक्षा एवं यज्ञादि की अधिकारणी थी। अत: इनके एकमात्र पुत्र की ही आवश्यकता न थी। ये धार्मिक एवं यज्ञादि कार्य पुत्री द्वारा भी संपादित हो सकते थे। स्वयंबर एवं विधवा विवाह के प्रचलित होने के कारण उसके प्रति संरक्षकों का उत्तरदायित्व बहुत कुछ कम रहता था। महाकाव्यों में बाल विवाह का उल्लेख किया गया है। महाभारत के अनुसार 30 वर्ष की आयु का व्यक्ति 10 वर्ष की कन्या से तथा 21 वर्ष का व्यक्ति 7 वर्ष की कन्या से विवाह कर सकता है। परंतु ऐसा ज्ञात होता है कि यह प्रणाली व्यवहाररूप में कभी भी कार्यान्वित न हुई थी। विवाह के जितने भी उदाहरण उपलब्ध होते है। वे सब वयस्कावस्था के है।

शकुन्तला, देवयानी, सत्यवती, दमयन्ती, कुन्ती, सुभद्रा, द्रौपदी आदि सब कुमारियों का विवाह पूर्ण यौवनावस्था में हुऐ थे। यौवनावस्था में विवाह होने के कारण कन्याओं को शिक्षा दीक्षा मिलने के लिए पर्याप्त काल मिल जाता था। यह शिक्षा गृह कार्य संबंधी होने के कारण सर्वतोमुखी होती थी। माता पिता के साथ दीर्घकाल तक रहते हुये पुत्रियों को गृहस्थी जीवन के दैनिक कार्यों में विशेष दक्षता प्राप्त हो जाती थी। कन्या को दुहिता भी कहा गया है। 'ऋग्वेद में गाय दुहती हुई तथा तथा दही और मक्खन तौर करती हुयी कन्याओं का वर्णन उपलब्ध होता है।'[9] उसी ग्रंथ में एक स्थान परर अपाला का उल्लेख है जो अपने माता पिता के कृषि कार्यो का निरीक्षण करती थी।'[10] गृह कार्यो के लिए कन्यायें कूपों से जल लाती थी तथा अवकाश मिलने पर कताई, बुनाई और सिलाई का कार्य करती थी।' [11] वैदिक साहित्य में स्त्रियों का उल्लेख रजयित्री, विडलकारी, पेशस्करी आदि के रूप में हुआ है। इन घरेलू धंधों में घर की कन्याओं को अनिवार्यत: शिक्षा दी जाती होगी। कालान्तर में गृह कार्यों में कुशल स्त्रियों को 'स्त्रीप्रज्ञा' का विशेषण दिया गया। उपनिषद काल में याज्ञवल्कय की स्त्री कात्यायनी इसी नाम से संबोधित हुई है। वैदिक साहित्य में अनेक ऐसे उल्लेख प्राप्त होते हैं जिनसे ज्ञात होता है कि गृहस्थ कार्यों के अतिरिक्त महिलाओं को संस्कृति के अन्य प्रधान उपांगों में भी पर्याप्त शिक्षा दी जाती थी। इनमें संगति एवं नृत्य विशेष महत्वपूर्ण थे। 'ऋग्वेद में गाती हुई स्त्रियों का वर्णन मिलता है।'[12] इसी प्रकार विदर्भ (सभा) में एकत्र हुई महिलाओं को भी हम ऋट्क कान गरते हुये पाते हैं।'[13] संगीत का नृत्य के साथ घनिष्ठ संबंध है। अत: निश्चित है कि दोनों कलाओं की शिक्षा साथ साथ होती होगी। ऋग्वेद में कतिपय स्थानों पर नृत्य कुशलता स्त्रियों का उल्लेख मिलता है।[14]

शतपथ ब्राह्मण का कथन है कि स्त्रियां संगीतविद् तथा नृत्यविद् व्यक्ति में सुगमतापूर्वक अनुरक्त हो सकती है।'[15] उसी ग्रंथ में अन्य स्थान पर कहा गया है कि साम-गान स्त्रियों का विशेष कार्य है।'[16] इसी प्रकार 'तैत्तिरीय संहिता' ओर 'मैत्रायणी संहिता'[18] में भी स्त्रियों को संगीत नृत्याभिरूचि का उल्लेख प्राप्त होता है।

गृहस्थ कार्यो एवं ललित कलाओं के अतिरिक्त कन्याओं को वैदिक शिक्षा का भी अधिकार था। वैदिक काल में पुत्री की शिक्षा उतनी ही आवश्यक समझी जाती थी। जिनती पुत्र की। ऋग्वेद में शिक्षित स्त्री पुरूष के विवाह की उपयुक्तता बताई गई है।

प्रारम्भ में पुत्रों की भांति पुत्रियों का भी उपनयन संस्कार होता था और तत्पश्चात् वे ब्रह्मचारिणी के रूप में शिक्षा प्राप्त करती थी। वास्तव में कन्या का यह ब्रह्मचर्य काल उसके आगामी गृहस्थ काल के लिये तैयारी मात्र था। इसमें वह अपनी शारीरिक एवं बौद्धिक शक्तियों को विकसित करती हुई संस्कृति एवं धर्म के उन समस्त उपकरणों से भिज्ञ हो जाती थी। जिनकी उसे गृहस्थ जीवन में आवश्यकता होती थी। यही कारण है कि अथर्ववेद में पति

* अध्यापिका, शासकीय माध्यमिक विद्यालय, बघाना - जिला इन्दौर (म.प्र.) भारत

प्राप्ति के हेतु कन्या के लिये ब्रह्मचर्य को अत्यधिक महत्वपूर्ण बताया गया है।'[19] इस ब्रह्मचर्य काल में वे पुरूषों की भांति शिक्षा प्राप्त करती थी। वैदिक साहित्य में अनेक विदुषियों के उल्लेख मिलते हैं जो पुरूषों की भांति ही अपने अपने विषय में पारंगत थी। इनमें से लोपामुद्रा (ऋट .1.179) विश्ववारा (ऋट 5.28) सिकता (ऋट .2891) निशवरी (ऋट . 1.81) और घोषा (ऋट .10.39.80) ने तो ऋषियों की भांति ऋचाओं की भी रचना की थी।

वैदिककाल में शिक्षा का आधार मूलत: याज्ञिक एवं धार्मिक था। उस समय स्त्रियों को यज्ञ करने का अधिकार था।'[20] अत: मन्त्रपाठ की शुद्धता के लिये वेदाध्ययन आवश्यक था। उपनिषद् काल में जब दार्शनिक विचारधार का उदय हुआ तो उसमें भी विदुषी महिलाओं ने महत्वपूर्ण योग दिया। वैदिककाल में ललित कलाओं के अतिरिक्त कन्याओं को अन्य शिक्षा दी जाती थी। आवश्यक पड़ने पर ये उपयोगी धंधें जीविकोपार्जन में सहायक होते थे।'[21] धम्मपद टीका में अनेक स्त्रियां अपना कृषि कार्य करती सूत कातती तथा कपड़ा बुनती प्रदर्शित की गई है।'[22] जैन साहित्य में स्त्री शिक्षा के विषय में अत्यल्प सामग्री उपलब्ध होती है। परन्तु जैन शिक्षा प्रणाली को देखकर यह स्पष्ट हो जाता है कि उसमें स्त्रियों के लिये भी पर्याप्त स्थान एवं अवकाश था। अनुयोगद्धार सूत्र के अनुसार शिक्षा का ध्येय मनुष्य को लौकिक एवं लोकोत्तर दोनों के प्रकार के विषयों का ज्ञान देता है।'[23]

इस प्रकार समस्त ब्राह्मण बौद्ध, जैन तथा विदेशीय साक्ष्यों के आधार पर यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि ऋग्वेद से लेकर ईसा की प्रथम शताब्दी तक कम से कम स्त्री समाज के उच्च अभिजात एवं धर्म प्रवृत्त वर्ग में शिक्षा का सम्यक प्रसार रहा प्राचीन भारत में मूलतया स्त्री शिक्षा की अनेक प्रणालियां थी। प्रथम प्रणाली के अंतर्गत कन्याओं की शिक्षा घर पर ही माता पिता एवं भाई-बहनों के बीच में होती थी। वैदिक काल में शिक्षा का उद्देश्य मन्त्रोच्चार एवं याज्ञिक विधि में शुद्धता प्रदान करना था और इसकी पूर्ति घर पर ही सफलतापूर्वक हो जाती थी। उस समय प्रत्येक कुटुम्ब में पिता अथवा गुरूजन यज्ञादि का कार्य भी किया करते थे। उनका यह ज्ञान परंपरानुगत उनके पुत्र पुत्रियों को भी प्राप्त होता रहता था। इस प्रकार शिक्षा प्राय: घरेलू थी। परंतु जैसे जैसे वैदिक साहित्य एवं याज्ञिक विधि निषेधों का विकास एवं संवर्द्धन होता गया। वैस ही वैसी शिक्षा में विशेषीकरण तथा असाधारणतया आती गई। अब पाठ शुद्धता तथा याज्ञिक क्रिया कुशलता उन्हीं व्यक्तियों के अधिकार की वस्तु थी जो अनवरत अध्ययन के पश्चात् उसमें विशेष योग्यता प्राप्त करते थे। याज्ञिक साहित्य के पश्चात् एवं उपनिषद् काल में दार्शनिक साळितय का उदय हुआ। तो उसमें विशेष अधिकार कतिपय दार्शनिकों के हाथ मे रहें। यद्यपि इसके प्रारम्भिक साक्ष्य उपलब्ध नहीं होते, परन्तु यह नितान्त स्वभाविक ही जान पड़ता है' कि उच्च स्तर की शिक्षा के लिये मनुष्य अपने पुत्रों के समान पुत्रियों को भी ऋषियों तथा महापंडितों के पास भेजते होंगे। ऐसी दशा में बालक बालिकाऐं एवं युवक युवतियां योग्य निर्देश एवं नियंत्रण के अंतर्गत सह शिक्षा प्राप्त करते थे। पंरतु शायद सामाजिक, राजनैतिक बदलावों के कारण ईसा की प्रथम शताब्दी तक आते आते स्त्री शिक्षा का परित्याग होने लगा। तक्षशिला तथा नालन्दा के विश्वविद्यालयों में जहां सहस्त्रों विद्यार्थी अध्ययन करते थे वहां हम एक भी महिला का उल्लेख नहीं पाते। स्त्रियों का उपनयन संस्कार समाप्त हो गया। पतिसेवा ही उनका अध्ययन और गृह कर्म ही उनकी धार्मिक क्रियाऐं बन गई।

उपर्युक्त समस्त कारणों के परिणाम स्वरूप हम देखते हैं कि वैदिक काल के पश्चात् अधिकाधिक बल के साथ स्त्रियों के लिये विवाह संस्कार की अनिवार्यता का प्रतिपादन होने लगा। शतपथ ब्राहमण का कथन है कि मनुष्य अपूर्ण है उसकी पूर्णता के लिये स्त्री प्राप्ति तथा पुत्र प्राप्ति परमावश्यक है।'[24] अविवाहित पुरूष को यज्ञ का अधिकार नहीं है।

प्राचीन भारतीय व्यवस्था में भी स्त्री को विशेष महत्व दिया गया है। शतपथ ब्राह्मण का कथन है कि स्त्री, बालक तथा ब्राह्मण की हत्या करने वालों को मृत्युदंड मिलना चाहिये।'[26] माता के रूप में स्त्री की सम्मानता प्राय: प्रत्येक व्यक्ति ने स्वीकार की है। शतपथ ब्राह्मण के अनुसार शिशु के हेतु माता गुरू का कार्य संपादित करती है। तैत्तिरीय उपनिषद् में माता देवता के समान बतायी गयी है। इस प्रकार हम देखते है कि प्राचीन समाज में नारी का विशेष महत्व था। वह स्वयं लक्ष्मी है। सत्कार्य होने से वह विभूतिदायिनी बन जाती है। मनु ने भी भारतीय विचारधार का अनुकरण करते हुये एक स्थान पर स्पष्टतया लिखा है कि जहां नारी की पूजा होती है। यहां देतवा निवास करते है। जिस कुटुम्ब में स्त्री को दु:ख मिललता है वह शीघ्र नष्ट हो जाता है।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची :-

1. गुरूणां चैव सर्वेषां माता परम को गुरू: - महा. 1.196.16
2. ऋग्वेद - 1.91.20, 3.1.23, 10, 85, 25
3. ऋग्वेद - 6, 33, 1
4. ऋग्वेद - 1.105, 3
5. अथर्ववेद - 6.2.3.8.6.25
6. आत्मा पुत्र: सखा भार्या कृच्छ दुहिता किल - महा. 1.159.113
7. भर्तुरर्थीय निक्षिप्तं न्यासं धात्रा महात्मना-महा 1.157.35
8. ऋ. - 226.1 आरेमत्कर्त रहूसखिाग:
9. ऋ. - 1.135.7
10. ऋट 8.80
11. ऋट 2.3.6 - तन्तुं ततं संवयन्ती समीपीं यज्ञस्य पेश: सुदुधे पयस्वती।
12. ऋट 2.32.4 - सीत्यत्वय: सूच्याच्छिपमानया ददातु वीर शतदायभुय्यम्।
13. ऋट 9.66.8-समुत्वा धीमिरस्वन्हिन्वती सप्तजामय: विप्रमाजा विवस्वत:
14. ऋट 10.71.11 - ऋचां त्वं पौषमास्ते पुपुएवान्गायत्रं त्वो गायति शक्करीष
15. ऋट 1-92.4-अधिपैशांसि वपेतनृतूरिवापोणुर्तु वक्ष उस्त्रेव वर्जहमू।
15. शतपथ ब्रा. - 3.2.3.6 - तस्माथ एवं नृत्यति यो गायति तस्मिन्नेवैता निम्लिएटतमा इव।
16. शतपथ ब्रा. - 14.3.9.35- पत्नीकमैव व तेडत्र कुर्वीन्त यदुद्गातार:।
17. तैत्तिरीय संहिता :- 6.1.6.5.1
18. मैत्रायणी संहिता :- 3.7.3
19. अथर्ववेद - 11.5.18. ब्रह्मचर्येण कन्या युवानं विन्दते पतिम।
20. ऋट - 8.91.1 कन्या वारयावती सोममपि स्युता विदत्। अस्तं भरन्त्यब्रवीदिन्द्राय सुनवैत्वा।।
21. अंगुतरनिकाय 3 पृष्ठ - 293- कुसलाहं गहपति कप्पासं कतितुं वेणि मौलिखितु सवकाहंगहयति तवच्चयेन दारके पौसितुम।
22. धम्मदटीका 113
23. अनुयोगद्धार सूत्र अध्याय 18
24. शतपथ ब्राह्मण - 5.2.1 10-ऊर्धो ह वा एष आत्मनो यज्जाया तस्मात् यावज्जायां न विन्दते नैव तावप्प्रजायते असर्वो हि तावत्भवति। अथ सदैव जायां विन्दत अथ प्रजायते तर्हि हि सर्वो भवति।
25. अयज्ञीयो वषथां यलीक : शतपथ ब्राह्मण 5.1.6.10
26. जा.तक 6 पृष्ठ 553

नारी के उत्थान में डॉ. अम्बेड़कर की भूमिका

डॉ. जितेन्द्र चांवरे *

प्रस्तावना – डॉ. अम्बेडकर की मान्यता थी कि नारी की प्रगति के बिना समाज की प्रगति सम्भव नहीं है। समाज में नारी की स्थिति को अम्बेडकर समाज की प्रगति का मापदण्ड मानते थे। उनका कहना था की 'मैं किसी समाज की प्रगति इस आधार पर मापता हूँ कि उस समाज में नारी ने किस सीमा तक प्रगति की है।' डॉ. अम्बेडकर नारी संगठन के बहुत हिमायती थे। उनका विश्वास था कि यदि एक बार नारी की समझ में आ जाये और वह निष्चय कर ले तो समाज की बुराइयों को दूर करने और समाज को सुधारने में वह बहुत कार्य कर सकती है। इसलिये दलितों की मुक्ति के लिये काम आरंभ करने के समय से ही अम्बेडकर स्त्रियों को पुरूषों के साथ ले कर चले।[1] वास्तव में डॉ. अम्बेडकर अपने गुरू बुद्ध की भाँति जीवन में स्वतंत्रता एवं समानता को बहुत महत्व देते थे। स्वतंत्रता एवं समानता उनके जीवन के न केवल कोरे सिद्धांत थे बल्कि व्यवहार के नियम भी थे। इसलिये जैसा ऊपर कहा गया है कि उनहोंने दलितोत्थान संबंधी अपने संघर्ष में पुरूषों के साथ स्त्रियों का भी आह्वान किया।

मार्च 19-20, 1927 को महाद के चौबदार ताल सत्याग्रह में भाग लेने हेतु डॉ. अम्बेडकर ने पुरूषों के साथ दलित महिलाओं का भी आह्वान किया। उनका कहना था कि 'तुम्हारी कोख से जन्म लेना आज पाप समझा जाता है। तुम हमारी माँ और बहनें हो, हमें अगर हीन समझा जाता है तो क्या तुम्हें बुरा नहीं लगता। समाज में तुम्हें जो कष्ट भोगने पड़ रहे हैं, उन्हें तुम स्वयं भी अच्छी तरह जानती हो, अतः तुम्हें स्पष्टतः यह तय करना है कि इस सत्याग्रह में भाग लेना है अथवा नहीं, क्योंकि संघर्ष के बिना कुछ नहीं मिल सकता।'[2]

महाद सत्याग्रह की भाँति डॉ. अम्बेडकर के आह्वान पर नासिक के कालाराम मंदिर तथा पूना, कानपुर, लखनऊ एवं मद्रास आदि स्थानों पर हिन्दू मंदिरों में प्रवेश हेतु आंढोलनों में पुरूषों के साथ महिलाओं ने भी बढ़-चढ़ कर भाग लिया। भूमिहीन कृषकों में कृषि योग्य भूमि आवंटित किये जाने हेतु डॉ. अम्बेडकर द्धारा संचालित आंदोलनों में भी दलित महिलाओं ने पुरूषों के साथ भारी संख्या में भाग लिया। इन आंदोलनों में भाग लेने वाली महिलाओं में शांता बाई दाणी, गीता बाई गायकवाड़ तथा श्रीमती मनोबल शिवराज के नाम विशेषरूप से उल्लेखनीय हैं।[3]

दलित महिलाओं को संबोधित करते हुये डॉ. अम्बेडकर ने कहा कि आप स्वच्छता से रहना सीखें। सभी प्रकार के दुराचारों से दूर रहें। आपको अपने बच्चों को अच्छी से अच्छी शिक्षा देनी चाहिये और उनके मस्तिष्क में यह बैठाना चाहिये कि उन्हें महान बनना है। आपको चाहिये कि आप उपने बच्चों के दिमाग से सभी प्रकार के हीन भावों को दूर करे। संक्षेप में डॉ. अम्बेडकर का सोचना था कि दलित समाज की उन्नति के लिये महिलाओं को भी पुरूषों के समान आगे आना चाहिये। दलित महिलाओं को चाहिये कि वे अपने बच्चों का अच्छी शिक्षा प्रदान करें। पति हो या भाई अथवा बेटा यदि शराब पीता है तो उसे शराब न पीने दें। स्त्रियों को भी पुरूषों की भाँति शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये।[4]

20 जुलाई 1942 को अखिल भारतीय दलित महिला अधिवेशन को संबोधित करते हुये डॉ. अम्बेडकर ने दलित महिलाओं को सलाह दी कि वे विवाह की जल्दी में न पड़े। विवाह एक दायित्व है। अपने बच्चों पर विवाह तब तक न थोपें जब तक वे विवाह संबंधी आर्थिक जिम्मेदारियों को वहन करने में समर्थ न हो जायें। जो विवाह करे वे यह ध्यान रखे कि अधिक संतान पैदा करना एक अपराध है। माता-पिता का दायित्व यह है कि वे अपनी संतान को अपने से अच्छा आरंभ दे। इन सबसे बड़ी बात यह है कि जो लड़की शादी करती है वह अपने पति के समक्ष खड़ी हो। उससे मित्रता और समानता का दावा करे। उसकी दासी बनने से साफ इंकार कर दे। उनका विश्वास था कि यदि दलित महिलायें ऐसा करती हैं तो इससे न केवल उनका वरन् पूरे दलित समाज का सम्मान बढ़ेगा।[5] सभा में बीस हजार महिलाओ की उपस्थिति को लक्ष्य करते हुए अम्बेडकर ने कहा कि स्त्रियॉ किसी भी समाज की प्रगति का दर्पण होती हैं। आज मैं अपने समाज के प्रगति के पथ पर अग्रसर होते देखकर सुख का अनुभव कर रहा हूँ।[6]

डॉ. अम्बेडकर महिलाओं में वैश्यावृत्ति को बहुत बुरा मानते थे, किन्तु वैश्याओं के प्रति उनका दृष्टिकोण सुधारवादी था। तात्पर्य यह है कि गॉधी की भॉति अम्बेडकर भी व्यक्ति से नहीं वरन् उसकी बुराई से घृणा करते थे।[6] जून 1936 को बम्बई में दलित वैष्याओं की एक सभा को संबोधित करे हुए उन्होंने कहा कि 'यदि आप हम सबके साथ रहना चाहती है तो अपनी जीवन पद्धति को बदलें। आप विवाह कर समाज की अन्य महिलाओं की भांति सम्मानपूर्वक पारिवारिक जीवन व्यतीत करें। वैश्यावृत्ति के घृणास्पद जीवन के अलावा आजीविका कमाने के समाज में सैकड़ों तरीके हैं। जब तक आप वैश्यावृत्ति के घृणास्पद जीवन का परित्याग नहीं करती तब तक समाज में आपको उचित सम्मान प्राप्त नहीं हो सकेगा।'[7]

नारी संबंधी सामाजिक विधान – नारी के पतन से समाज का पतन होता है और नारी की उन्नति से समाज की उन्नति होती है। भारत में जब नारी की स्थिति उन्नत थी भारतीय समाज भी उन्नति के शिखर पर था, किन्तु जब नारी आत्मोन्नति व आत्मविकास के अवसर से वंचित हो घर की चाहर दीवारी में कैद हो गई तो भारतीय समाज भी अंधकार के गर्त में डूब गया। रूढ़िग्रस्त जर्जर भारतीय समाज को सुधारने के लिये सर्वप्रथम नारी की दशा को सुधारना आवश्यक था। इसलिये राजा राममोहन राय, हरविलास शारदा, ईश्वरचन्द्र विद्यासागर आदि ने भारतीय नारी की दिशा में सुधार हेतु सती प्रथा निषेध, बाल विवाह निषेध एवं विधवा पुनर्विवाह के कानूनी मान्यता प्रदान किये जाने हेतु कार्य किया। स्वतंत्रोपरान्त नारी को परंपरात्मक नियोग्यताओं से

* इतिहास, शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, रामपुरा (म.प्र.) भारत

मुक्त करने एवं उन्हें पुरूषों के बराबर कानूनी अधिकार दिलाने में डॉ. अम्बेड़कर ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। परंपरात्मक भारतीय समाज में नारी अनेक निर्योग्यताओं से ग्रस्त थी। उसे शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार नहीं था। वह वयस्क होते हुये भी अपनी इच्छानुसार अपनी जाति या सम्प्रदाय से बाहर किसी व्यक्ति से विवाह नहीं कर सकती थी। पुरूष तो एक से अधिक विवाह कर सकता था। वह अपनी पत्नि अथवा पत्नियों को त्याग भी सकता था। उन पर अत्याचार कर सकता था, वह अपनी पत्नि अपने पति को त्याग नहीं सकती थी और न पुनर्विवाह कर सकती थी। कोई स्त्री न तो किसी की दत्तक संतान बन सकती थी और न ही किसी को गोद ले सकती थी। स्त्री को अपने पिता, पति अथवा पुत्र की सम्पत्ति पर कोई अधिकार भी नहीं था। तात्पर्य यह है कि नारी समाज में पूर्णतया असहाय और अबला थी।

समाज में नारी पुरूष के समान स्वतंत्र एवं अधिकार सम्पन्न हो इसके लिये अम्बेडकर ने अविस्मरणीय कार्य किया। उनके नेतृत्व में बने संविधान में लिंग के आधार पर पुरूष और स्त्री के बीच सामाजिक भेदों को समाप्त किया गया। संविधान ने स्त्री व पुरूष में कोई भेद न मानते हुए दोनों को समान दर्जा प्रदान किया। संविधान के माध्यम से बच्चों व स्त्रियों की बिक्री तथा उनसे बेगार लेने पर भी प्रतिबन्ध लगाया गया।[8] संविधान द्वारा नारी को स्वतंत्रता एवं समानता का अधिकार प्रदान किये जाने से सिद्धांततः नारी की सामाजिक स्थिति में सुधार तो अवश्य आया किन्तु स्वतंत्रता एवं समानता की संवैधानिक प्रत्याभूति मात्र से सदियों से उपेक्षित नारी को परम्परात्मक दासता से मुक्ति मिल जायेगी, अम्बेड़कर को इस पर संदेह था। उनका सोचना था कि विवाह और सम्पत्ति पर अधिकार संबंधी प्रचलित कानूनों में क्रांतिकारी परिवर्तन लाये बिना नारी की मुक्ति संभव नहीं है। अपने इस विश्वास को मूर्त रूप देने की दृष्टि से उन्होंने एक व्यापक सामाजिक विधान की रूपरेखा निर्मित की, जिसे हिन्दू कोड बिल के नाम से जाना जाता है। हिन्दू कोड बिल में कन्या के विवाह की निर्धारित तत्कालीन न्यूनतम आयु में वृद्धि, एक विवाह का अनिवार्य किया जाना, अन्तर्जातीय विवाह को मान्यता, स्त्रियों को पुरूषों के समान तलाक का अधिकार, तलाकशुदा स्त्री को अपने पति से भरण-पोषण प्राप्त करने का अधिकार, विधवा पुनर्विवाह को मान्यता, स्त्री को पुत्री, पत्नि एवं मॉ के रूप में पारिवारिक सम्पत्ति पर अधिकार, स्त्री को गोद लिये जाने एवं गोद लेने के अधिकार आदि का प्रावधान था। कानून मंत्री के रूप में हिन्दू कोड बिल को डॉ. अम्बेडकर ने संसद के सम्मुख सर्वप्रथम 5 फरवरी 1951 को प्रस्तुत किया, किन्तु बिल पर चर्चा पूरी नहीं हो सकी। बिल का औचित्य दर्शाते हुये डॉ. अम्बेडकर ने संसद में कहा कि ' यदि आप हिन्दू व्यवस्था, हिन्दू संस्कृति और हिन्दू समाज की रक्षा चाहते हैं तो इनमें जो दोष पैदा हो गये हैं उनको सुधारने में आपको तनिक भी झिझक नहीं होनी चाहिये। हिन्दू कोड बिल हिन्दू व्यवस्था में केवल उन्हीं अंशों में सुधार चाहता है जो विकृत हो गये हैं। उनसे अधिक कुछ नहीं। अतः आप इसका समर्थन अवश्य करें।[9]

संसद में कांग्रेस दल भारी बहुमत में था। कांग्रेसी एवं विपक्षी सांसदों सहित आम जनता में बिल को लेकर अत्यधिक विवाद पैदा हो गया। परंपरावादी विचारधारा के लोग बिल का विरोध कर रहे थे, जबकि प्रगतिशील इसका समर्थन। बिल पर सांसदों में मतभेद को देखते हुये कांग्रेस दल ने अपने सांसदों को इस बात की स्वतंत्रता प्रदान की कि वे अपनी इच्छानुसार बिल पर मतदान करें। 17 सितम्बर 1951 को बिल संसद में पुनः प्रस्तुत किया गया। बिल के पक्ष में डॉ. अम्बेडकर जो उस समय कानून मंत्री थे, ने एक बयान जारी किया। इनका कहना था कि 'हिन्दू कोड बिल इस देश में विधानसभा द्वारा हाथ में लिया गया सबसे महत्वपूर्ण समाज सुधार है। कोई भी कानून जो इस देश में पारित हुआ अथवा जो संभवतः पारित होगा, महत्व की दृष्टि से, हिन्दू कोड बिल की तुलना में कहीं नहीं ठहराता। वर्ग-वर्ग, लिंग-लिंग के बीच असमानता की उपेक्षा करके, जो हिन्दू समाज का मूलाधार है, आर्थिक समस्याओं के संबंध में कानून बनाया जाना हमारे संविधान का उपहास और गोबर के ढेर पर महल बनाये जाने के समान। हिन्दू कोड बिल का इतना महत्व है जिसे मैं उसके साथ जोड़ता हूँ। इसी बिल के खातिर मतभेद होते हुये भी मैं मंत्रिमण्डल में बना रहा। अतएव यदि मैंने कोई गलती की है तो इस आशा से कि कोई शुभ परिणाम निकले'।

संसद और संसद के बाहर रूढ़िवादी तत्वों के विरोध के कारण हिन्दू कोड बिल मूल रूप से पारित नहीं हो सका, उसे स्थगित करना पड़ा। हिन्दू कोड बिल के प्रति तत्कालीन प्रधानमंत्री पण्डित जवाहरलाल नेहरू एवं कांग्रेसियों के उदासीन एवं नकारात्मक रूख तथा कतिपय अन्य नीतिगत विषयों पर असहमति के कारण डॉ. अम्बेड़कर ने 27 सितम्बर 1951 को कानून मंत्री के पद से नेहरू मंत्रिमण्डल से त्याग पत्र दे दिया। आगे चलकर अलग-अलग अधिनियमों के रूप में हिन्दू कोड बिल संसद में पारित कर दिया गया। जिससे हिन्दू (बौद्ध, जैन, सिख,सहित) नारी की द्रुत सामाजिक प्रगति का मार्ग प्रशस्त हुआ। भारत में हिन्दू नारी की विमुक्ति में डॉ. बाबासाहेब अम्बेड़कर का यह योगदान चिरस्मरणीय रहेगा।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. अम्बेडकर, डी.डी, हिन्दू नारी का उत्थान और पतन, श्री वर्धन अनूदित द राइस एण्ड काल ऑफ हिन्दू वूमेन, लखनऊ, बहुजन कल्याण प्रकाशन, सन्1979 पृष्ठ 193
2. रावत,डी.डी, नारी उत्थान आंदोलन के अग्रगण्यदूत डॉ. अम्बेडकर विधायिनी 6(4) सन् 1989, पृष्ठ 74
3. रावत,डी.डी, नारी उत्थान आंदोलन के अग्रगण्यदूत डॉ. अम्बेडकर विधायिनी 6(4) सन् 1989, पृष्ठ 74
4. रावत,डी.डी, नारी उत्थान आंदोलन के अग्रगण्यदूत डॉ. अम्बेडकर विधायिनी 6(4) सन् 1989, पृष्ठ 74
5. अम्बेडकर, डी.डी, हिन्दू नारी का उत्थान और पतन, श्री वर्धन अनूदित द राइस एण्ड काल ऑफ हिन्दू वूमेन, लखनऊ, बहुजन कल्याण प्रकाशन, सन्1979 पृष्ठ 193-194
6. रावत,डी.डी, नारी उत्थान आंदोलन के अग्रगण्यदूत डॉ. अम्बेडकर विधायिनी 6(4) सन् 1989, पृष्ठ 75
7. अम्बेडकर, डी.डी, हिन्दू नारी का उत्थान और पतन, श्री वर्धन अनूदित द राइस एण्ड काल ऑफ हिन्दू वूमेन, लखनऊ, बहुजन कल्याण प्रकाशन, सन्1979 पृष्ठ 193
8. रावत,डी.डी, नारी उत्थान आंदोलन के अग्रगण्यदूत डॉ. अम्बेडकर विधायिनी 6(4) सन् 1989, पृष्ठ 73
9. जाटव, डी.आर, डॉ. अम्बेडकर व्यक्तित्व एवं कृतित्व, जयपुर, समता साहित्य सदन सन् 1988 पृष्ठ 186

****

भारत में महिला साक्षरता एवं शैक्षणिक प्रगति : प्राचीनकाल से वर्तमान तक "शिक्षा में महिलाओं की स्थिति"

राजेश कुमार मौर्य *

प्रस्तावना – लोकतंत्र में समानता की बात करते समय हम सभी ने देखा है कि अनेक सन्दर्भो में असमानता पाई जाती है। एक आवश्यक सन्दर्भ है स्त्री शिक्षा का । महिलाओं को हम समाज में वह दर्जा नहीं दे पाये जो पुरूषो को मिला है। प्रत्येक दम्पति की लालसा पुत्र प्राप्त करने की होती है। जन्म के बाद बालक-बालिका में कुछ लोग भेद करते है। उनकी शिक्षा में भी विषमता दृष्टिगोचर होती है। समाज का एक वर्ग बालिका को पढ़ाना ही नहीं चाहता है, क्यों? जबकि भारतीय संस्कृति में स्त्रियों की स्थिति महत्वपूर्ण होती है। आज हम प्राचीन काल से वर्तमान तक महिलाओं की शिक्षा में स्थिति को जानने का प्रयास करेगें।

प्राचीन काल – वैदिक काल में स्त्रियों को शिक्षा प्राप्त करने का पूर्ण अधिकार था। नारियों को पुरूषों के समान स्वतंत्रता प्राप्त थी। ऋग्वेद के आधार पर घोषा, गार्गी, आत्रेयी, शकुन्तला, उर्वशी, अपाला आदि उस समय की विदुषी महिलाऐं थी। वेदो का अध्ययन एवं पुरूषों के साथ यज्ञ में भाग लेती थी। किन्तु उनके लिए पृथक विद्यालयों की व्यवस्था नहीं थी। लेकिन बालिकाओं को धर्म और साहित्य के अतिरिक्त नृत्य, संगीत, काव्य रचना, वाद-विवाद आदि की शिक्षा प्राप्त होती थी ।

बौद्ध काल – लगभग 200 ईसा पूर्व से बालिकाओं की विवाह की आयु कम करके उनकी शिक्षा प्राप्ति के मार्ग में अवरोध उत्पन्न कर दिया गया। परंतु गौतम बुद्ध ने संघ में बालिकाओं को प्रवेश की आज्ञा देकर उनकी शिक्षा को नवजीवन प्रदान किया। किन्तु वह आज्ञा कुलीन व व्यवसायिक वर्गो की बालिकाओं को ही दी गयी। इससे बहुसंख्यक सामान्य बालिकाऐं शिक्षा से वंचित रही ।

मध्य काल – मुस्लिम काल में स्त्रियों की शिक्षा की कोई व्यवस्था नहीं थी। मुसलमानों में पर्दा प्रथा का प्रचलन होने के कारण अधिकांश बालिकाऐं शिक्षा से वंचित रहती थी। तुर्क अफगान शासन काल में शहजादियों को व्यक्तिगत रूप से शिक्षा का प्रबन्ध किया जाता था। मुगलों के आक्रमण के कारण स्थिति और भी बिगड़ गई। विदेशी आक्रान्ताओं की पाशविक प्रवृत्तियों के भय से स्त्रियों ने पठन-पाठन बंद कर दिया। उनकी आत्म निर्भरता लुप्त हो गयी। अब वह पुरूष की सहयोगिनी न रहकर आश्रित हो गयी।

ब्रिटिश काल – भारत वर्ष में अंग्रेजों के आगमन के साथ युग ने करवट बदली। स्वतन्त्रता पूर्व बालिका शिक्षा के संबंध में विभिन्न आयोगो एवं समितियों में सर्वप्रथम 'वुड के घोषणा-पत्र' में यह संस्तुति की गयी थी। भारत में स्त्री शिक्षा के लिये सरकार से पूर्ण सहायता प्राप्त करने एवं स्त्री शिक्षा की व्यवस्था की सिफारिश की गयी ।

1. **हन्टर शिक्षा आयोग (1882)** ने महिला शिक्षा को अधिक प्रगतिशील बनाने के लिए आवश्यक सुविधाऐं जुटाने की बात कहीं। लड़कियों के लिए कन्या नार्मल स्कूल खोलने, उनकी संख्या बढ़ाने, पाठ्यक्रम को सरल और उपयोगी बनाने पर बल दिया। सन् 1901 तक मिशनरियों का प्रभाव बढ़ने लगा। इसी समय 1901 में रवीन्द्रनाथ टैगोर ने शांति निकेतन में स्त्री शिक्षा विभाग की स्थापना की। सन् 1904 में श्रीमति ऐनी बेसेन्ट ने बनारस में सेन्ट्रल हिन्दु बालिका विद्यालय की स्थापना की।
2. **गोखले विधेयक (1911) –** गोपाल कृष्ण गोखले पहले नेता थे। जिन्होंने ब्रिटिश संसद में भारतीय नागरिकों के लिए अनिवार्य शिक्षा की मांग की। जिसकी मुख्य बातें निम्नलिखित है –

- अभिभावकों के लिए 6 से 10 वर्ष तक की आयु के बालकों को प्राथमिक विद्यालयों में भेजना अनिवार्य हो। इस नियम का उल्लंघन करें तो उन्हें दंड दिया जाये।
- कालान्तर में बालिकाओं के लिए भी प्राथमिक शिक्षा अनिवार्य कर दी जाये।
- जिस अभिभावक की आय 10 रूपये मासिक से कम हो उससे शिक्षा शुल्क न लिया जाये।

  लार्ड कर्जन ने स्वीकार किया था कि भारत में स्त्री शिक्षा बहुत-बहुत पिछड़ी हुई दशा में है। इसके लिए शिक्षा नीति संबंधी सरकारी प्रस्ताव बनाया गया। जिसमें स्त्री शिक्षा की ओर ध्यान दिया गया। सरकारी प्रस्ताव में निम्न सिद्धांत निर्धारित किये गये –

- बालिकाओं को जीवनोपयोगी शिक्षा दी जाये जिससे वह समाज में उचित स्थान ग्रहण कर सके।
- बालिकाओं को बालकों से भिन्न शिक्षा दी जाये एवं परीक्षाओं को महत्व न दिया जाये।

हर्टाग समिति (1927) इस समिति ने बालिका शिक्षा संबंधी विविध संस्तुतियां प्रस्तुत की –

- बालक-बालिकाओं के लिए समान रूप से शिक्षा व्यवस्था की जाये।
- बालिका विद्यालयों के निरीक्षणार्थ निरीक्षकाओं की संस्था बढ़ायी जाये।
- ग्रामीण क्षेत्रों में अधिकाधिक बालिका विद्यालय स्थापित किये जाये।

1921 से 1937 तक बालिका शिक्षा में व्यक्तिगत एवं सरकारी प्रयासों द्वारा उन्नति हुई। इस समय 'शारदा अधिनियम' तथा भारतीय महिला संघ का निर्माण किया गया और 1927 में अखिल भारतीय स्त्री शिक्षा सम्मेलन आयोजित किया गया। 1937 में वर्धा शिक्षा योजना के अनुसार 6-14 वर्ष

* शोधार्थी, सेंट पॉल कॉलेज ऑफ एज्युकेशन, भंडारिया रोड़, खण्डवा (म.प्र.) भारत

तक के बालक-बालिकाओं के लिए बेसिक अनिवार्य शिक्षा की नि:शुल्क व्यवस्था पर बल दिया गया। 1937 से 1947 तक विशेष रूप से स्त्री शिक्षा में तीव्र प्रगति हुई। 1947 में स्त्रियों के लिए सामान्य व विशिष्ट शिक्षा के लिए 16,951 संस्थाऐं थी, जिनमें 3,55,05,503 लड़कियां शिक्षा का लाभ उठा रही थी।

वर्तमान काल – स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात स्त्री शिक्षा में तेजी से विकास हुआ। क्योंकि भारतीय संविधान में पुरूष और महिला दोनों के लिये समान अधिकार देने की बात कही गयी। अनुच्छेद 15(1), 16(1), 16(2) में उल्लिखित है, किसी भी नागरिक से लिंग के आधार पर भेदभाव नहीं किया जायेगा। इसके अतिरिक्त पंचवर्षीय योजनाओं में स्त्री शिक्षा के विकास हेतु लक्ष्य निर्धारित किये गये। समय-समय पर विभिन्न शिक्षा आयोग एवं शिक्षा समितियों में महिलाओं की शिक्षा पर विशेष बल दिया गया जैसे – राधाकृष्णन कमीशन(1948), मुदलियार कमीशन(1953), राष्ट्रीय महिला शिक्षा समिति(1958), हंसा मेहता स्त्री समिति(1962), भक्त वत्सलय समिति(1963), कोठारी आयोग(1966), राष्ट्रीय शिक्षा नीति(1968), राष्ट्रीय शिक्षा नीति(1986), राष्ट्रीय महिला आयोग(1990) तथा महिला शिक्षा पर आवश्यकतानुसार गोष्ठी का आयोजन किया जाता रहा है।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति(1986) में महिलाओं की समानता हेतु अधिक बल दिया है। शिक्षा का उपयोग महिलाओं की स्थिति में बुनियादी परिवर्तन लाने के लिए एक साधन के रूप में किया जायेगा। अतीत से चली आ रही विकृतियों और विषमताओं को समाप्त करने के लिए शिक्षा व्यवस्था का स्पष्ट झुकाव महिलाओं के पक्ष में रखा गया। राष्ट्रीय शिक्षा नीति की संशोधित कार्य योजना(1992) में महिलाओं की शिक्षा को उच्च प्राथमिकता दी गयी है, क्योंकि यह समानता के लिए एक कारक है। शिक्षा विकास का एक प्रमुख कारक है। इस दृष्टि से औपचारिक तथा गैर औपचारिक शिक्षा प्रणाली में लड़कियों के नामांकन तथा उन्हें कक्षा में बनाये रखने, ग्रामीण अध्यापिकाओं की भर्ती तथा पाठ्यचर्या से लैंगिक पक्षपात को हटाये जाने पर बल दिया गया और इसके साथ ही समाज, उद्योग तथा व्यवसाय की बदलती हुई आवश्यकताओं के अनुरूप विद्यालय, विश्वविद्यालय तथा कॉलेज स्तर पर महिला शिक्षा को सार्थक बनाने का प्रयास किया गया।

एसौचैम की एक ताजा रिर्पोट के अनुसार पिछले दस सालों में देश में प्राइमरी स्कूलों की संख्या में सालाना 3.2 फीसदी की वृद्धि हुई है। किन्तु 42 फीसदी छात्र ही पूरा करते है। हाईस्कूल, स्कूल छोड़ने वालों में लड़कियो का अनुपात 64 फीसदी है।

एम,एच,आर,डी तथा यूनिसेफ के सर्वे अनुसार मध्यप्रदेश में 51 जिलों में से 47 जिलों में महिला साक्षरता की स्थिति बहुत दयनीय है। इस प्रदेश में साक्षरता प्रतिशत बढ़ाने के लिए सरकार को युद्ध स्तर पर प्रयास करने होगें।

साक्षरता के बारे में राष्ट्रीय आंकड़े दशकवार निम्न लिखित सारणी द्धारा दर्शाये गये है –

भारतीय महिला साक्षरता का प्रतिशत – साक्षरता प्रतिशत में गत दशक में पर्याप्त वृद्धि हुई है। यह स्थिति भविष्य में शत-प्रतिशत साक्षरता की आशा बंधाती है।

स्त्री शिक्षा का महत्व और आवश्यकता – लोकतन्त्र में राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक और आर्थिक दृष्टि से स्त्री शिक्षा का बहुत अधिक महत्व है। यदि स्त्री पुरूषों के समान योग्य और शिक्षित हो तो वह अपने राष्ट्र, समाज, परिवार और व्यक्तिगत समस्या पर चिंतन करके उनके हल प्रस्तुत कर सकती है। कुछ ही शिक्षित महिलाऐं इस संबंध में अपना स्वतन्त्र निर्णय लेती है, जबकि अधिकांश इस प्रकार के उत्तरदायित्व को बड़ी उदासीनता से निभाती है। इसलिये यह आवश्यकता अनुभव होती है, कि स्त्री शिक्षा का समुचित प्रसार किया जाना चाहिये। सामाजिक क्षेत्र में स्त्री जाति सामाजिक सुधार की आधारशिला होती है। वह परिवार का सृजन और निर्माण करने वाली होती है। स्त्री बालक की सबसे पहली और महत्वपूर्ण शिक्षक होती है। यदि वह अशिक्षित हुई तो वह बालक का शैक्षिक तथा सामाजिक विकास उपयुक्त रूप से नहीं कर पायेगी। स्त्री समाज की शक्ति होती है। इसलिए स्त्री शिक्षा की आवश्यकता और महत्व का अनुभव किया जाता है। स्त्री देश की संस्कृति, धर्म, साहित्य, कला एवं ज्ञान-विज्ञान का स्तम्भ होती है। उसे शिक्षित बनाकर उनकी सृजनात्मक क्रियाशीलताओं को प्रबुद्ध, शुद्ध और समुन्नत बनाया जा सकता है। राष्ट्र में स्त्रीत्व का विकास करने के लिए स्त्री शिक्षा महत्वपूर्ण स्थान रखती है। एक शिक्षित माता शिक्षा जानती है, कि वह अपने बच्चों की प्रवृत्ति, रूचि, क्षमता आवश्यकता के अनुरूप कैसे शिक्षा दे। आज के बच्चे कल के नागरिक होते है। जिनका निर्माण माता के हाथ में होता है। अत: स्त्री शिक्षा के विकास की महती आवश्यकता प्रतीत होती है।

निष्कर्ष – शिक्षित स्त्री पुरूष से किसी भी कार्य क्षेत्र में पीछे नहीं रही। कुछ क्षेत्रो में तो वह पुरूषों से भी अधिक कुशल सिद्ध हुई है। जैसे-चिकित्सा, शिक्षण और परिचर्या के क्षेत्र में महिला की तुलना कभी भी नहीं कर सकता। यदि महिलाओं को समुचित मार्ग-दर्शन और शिक्षा उपलब्ध करायी जाये तो वह कुशल इंजीनियर, शिक्षक, चिकित्सक, परिचायक, अधिवक्ता, कारीगर, पायलट, अधिकारी आदि बनकर राष्ट्र की समृद्धि में भारी योगदान दे सकती है और राष्ट्र कि सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, अध्यात्मिक, व्यवसायिक, सांस्कृतिक और शैक्षिक क्षेत्रों को उन्नत बनाया जा सकता है। किन्तु भारत में अभी भी पुरूष वर्ग अपने को स्त्री वर्ग से श्रेष्ठ समझता है। यहां पूंजीवादी वर्ग की उच्चता बनी हुई है। धीरे-धीरे समानता के प्रयास हो रहे है। लेकिन समाज में कुछ वर्ग तो रहते ही है। आवश्यकता इस बात की है कि इन वर्गो को उच्चता एवं निम्नताओं की भावनाओं से दूर रखा जाये। जिससे शत-प्रतिशत समानता का अनुभव हो। स्वतन्त्र भारत में महिला जाति को पूर्ण रूप से अबला से सबला बनाने के लिए इसका शारीरिक, बौद्धिक, मानसिक, अध्यात्मिक और सामाजिक विकास करने के लिए उपयोगी शिक्षा की व्यवस्था करनी होगी। तभी सम्पूर्ण मानव जाति का विकास संभव हो सकेगा।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. पाण्डेय,रामशकल (2007) उद्दीयमान भारतीय समाज में शिक्षक, आगरा-2, विनोद पुस्तक मंदिर।
2. पाण्डेय,रामशकल (2007) उभरते हुये भारतीय समाज में शिक्षा, आगरा-2, विनोद पुस्तक मंदिर।
3. त्यागी,गुरसरनदास,नंद,विजयकुमार(2011) उद्दीयमान भारत में शिक्षा, आगरा-2, अग्रवाल पब्लिकेशन।

भारतीय महिला साक्षरता का प्रतिशत

वर्ष	1901	1911	1921	1931	1941	1951	1961	1971	1981	1991	2001	2011
महिला साक्षरता	0.6	10.6	12.2	15.6	24.9	24.9	34.9	39.5	46.9	63.86	75.8	5.46

****

निमाड़ के फारुकी राजवंश के प्रमुख शासक

अंतिम मौर्य * शताब्दी अगल्चा **

प्रस्तावना – भारतीय इतिहास प्राचीनकाल से बहुत समृद्ध रहा है। प्रारंभ से लेकर वर्तमान तक समय के साथ साथ इसमें कई परिवर्तन हुये हैं। समय-समय पर भारत पर कई विदेशी आक्रमणकारियों ने भारत पर आक्रमण किये। जिन्होंने पृथक-पृथक उद्देश्यों को लेकर अभियान किये थे। इन विदेशी शक्तियों में से कुछ तो वापस अपने देश चली गई तो कुछ ने भारत में अपना आधिपत्य स्थापित कर राज्य करने लगे। इसी प्रकार भारत के मध्यकाल के इतिहास में दिल्ली सल्तनत में मुस्लिम सत्ता का अधिकार था। परन्तु कालान्तर में समय के साथ विभिन्न अलग-अलग स्थानों पर कई नवीन राजवंशों की नींव रखी जाने लगी थी। इस प्रकार निमाड़ क्षेत्र का फारुकी राजवंश प्रमुख है। इस वंश में मलिक रजा, आदिल खान द्वितीय, दाउद खान, आदिल खान तृतीय, मीरन मोहम्मद खान, मुबारक खान द्वितीय, मीरन मुहम्मद तथा रजा अली खान प्रमुख शासक हुये हैं। जिन्होंने समय समय पर अपनी योग्यता के बल पर फारुकी राजवंश को आगे बढ़ाने तथा विकसित करने का कार्य किया।

फारुकी राजवंश के प्रमुख शासक-

1. **मलिक रजा** – निमाड़ में मलिक रजा को फारुकी राजवंश का संस्थापक माना जाता है। इनके पिताजी का नाम खानजहां था। मलिक रजा के पूर्वज खिलजी और तुगलक वंश के अलाउद्दीन खिलजी तथा मुहम्मद तुगलक के सामन्तों में शामिल थे।

मलिक रजा को प्रारंभिक वर्षों में कई कठिनाइयों व समस्याओं से संघर्ष करना पड़ा था। उन्होंने दिलावर शाह की पुत्री से वैवाहिक संबंध स्थापित किये थे। इन्होंने गुजरात पर भी सैन्य अभियान किया था। परन्तु इस अभियान में सफलता प्राप्त नहीं हो सकी। इस असफलता के बाद मलिक रजा ने अपने राज्य के विकास में कार्य की ओर ध्यान दिया। मलिक रजा शांतिप्रिय स्वभाव वाले व्यक्ति होने के कारण उन्होंने हिन्दु सम्प्रदाय के लोगों के प्रति भी उदारता की नीति अपानाई थी। इस तरह से उन्होंने अपनी प्रजा के जीवन स्तर को सुधारने के लिए कृषि और उद्योगों को प्रोत्साहन दिया था। 1399 में इनकी मौत हो गई और अपने बड़े पुत्र नासिर खान को उत्तराधिकारी नियुक्त करने के कारण बाद में इफ्तिखार से अर्थात् दोनों भाईयों के मध्य संघर्ष प्रारंभ हो गया था।

2. **आदिल खान द्वितीय** – मलिक रजा के बाद इस वंश में आदिल खान प्रमुख शासक हुआ। इनका राज्याभिषेक 1457 में हुआ था। इन्होंने अपनी योग्यता और साहस के बल पर आसपास के राज्यों के शासकों को कर देने के लिये बाध्य किया, इतना ही नहीं इन्होंने गुजरात राज्य को कर देने से इंकार भी किया था। इस तरह इस वंश को स्वर्णिम युग प्रारंभ होता है। आदिल खान ने अपने राज्य को सुरक्षा प्रदान करने के लिए मैत्रीपूर्ण नीति गुजराज राज्य के साथ स्थापित की। आदिल खान ने सफल सामरिक अभियान झारखण्ड तक किये थे। अपने राज्य चोर और डकैतों से प्रजा को राहत दिलाई और यातायात की व्यवस्था में भी सुधार करवाया था। बुरहानपुर का दुर्ग, मस्जिद के साथ-साथ कई दर्शनीय स्थलों का निर्माण भी करवाया था।

3. **दाउद खान** – दाउद खन, आदिल खान की मौत के बाद उत्तराधिकारी बना। इसने अहमद निजाम शाह के आक्रमण के भय से मांडू सुल्तान की अधिनता में चला गया। दाउद खान के पुत्र के मौत के बाद राज्य अराजकता फैल गई थी, क्योंकि इसका कोई पुत्र नहीं था।

4. **आदिल खान तृतीय** – आदिल खान तृतीय जो गुजरात के महमूद बेगड़ा के पौत्र था ने इस राज्य को छीन लिया था। यह अपनी प्रजा में बहुत लोकप्रिय था। आदिल खान तृतीय एक दूरदर्शी व साहसी शासक था, जिन्होंने विभिन्न कठिनाइयों के बाद भी गुजरात से वैवाहिक संबंधों के माध्यम से स्थापित किया था।

5. **मुबारक खान द्वितीय** – इसके समय मुगलों के द्वारा राज्य को बहुत क्षति पहुंचाई गई। मुगलों ने तमाम प्रकार के अत्याचार किये और राज्य में खूब लूट-खसौट किया। जब मुगल सैनिक लूट में प्राप्त हुई सामग्री को लेकर लौट रहे थे तो खानदेश और मालवा के शासकों ने मिलकर मुगल सैनिकों का मौत के घाट उतार दिया और मुगल सेना के सेनापति को नदी में डुबा कर मार दिया गया। इस समय तक मुगल बादशाह अकबर ने बीजापुर के किले पर अपना आधिपत्य स्थापित कर लिया था। मुबारक खान स्थिति को देखते हुये व समझते हुये उन्होंने अपनी पुत्री का विवाह मुगल बादशाह से करके संधि कर ली और साथ में एक किला भी दहेज के रूप में प्रदान किया। इस संधि के तहत राज्य की विदेश नीति अब दिल्ली के हाथ में चली गई और मुबाारक खान आवश्कता पड़ने पर सैनिक सहायता भी प्रदान करेगा।

6. **मीरन मुहम्मद** – मुबारक खान द्वितीय के बाद मीरन मुहम्मद द्वितीय को शासक बना। मीरन मुहम्मद द्वितीय का शासनकाल अब तक सबसे संकटग्रस्तता का काल है। अंतत: 1576 में इनका निधन हो गया।

7. **रजा अली खान** – मीरन मुहम्मद मृत्यु के पश्चात रजा अली खान शासक हुये। ये मीरन मुहम्मद के भाई थे। इन्होंने शाह की उपाधि को त्याग दिया था और अपने को मुगल सम्राट के अधीन कर दिया था। इन्होंने मुगलों से वैवाहिक संबंध स्थापित किये थे। और सामरिक अभियानों में मुगलों का साथ दिया था। रजा अली खान प्रतिभावान, दूरदर्शी, न्यायप्रिय, बुद्धिमान आदि गुणों से युक्त व्यक्तित्व का धनी था।

कालांतर में रजा अली खान के उत्तराधिकारी बहादुर खान हुऐं। बहादुर खान ने प्रसिद्ध असीरगढ़ के किले अपना अधिकार स्थापित कर अकबर की आज्ञा का उल्लंघन किया। इस समय अकबर बुरहानपुर डेरा डाले हुऐं था। जब

* शोधार्थी, शहीद भीमा नायक शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, बड़वानी (म.प्र.) भारत
** शोधार्थी, शहीद भीमा नायक शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, बड़वानी (म.प्र.) भारत

अकबर को बहादुरखान के कार्य का पता चला तो उसने एक शाक्तिशाली सैना को असीरगढ़ अभियान के लिए भेजा था। इस अभियान में कई सैन्य चौकिया स्थापित की थी। लंबे समय तक घेराबंदी चली और अंतत: अकबर का अधिकार दे कर अपने पुत्र दानियाल का खानदेश, मालवा, गुजरात राज्यों सूबेदार नियुक्त किया था।

इस प्रकार फारुखी राजवंश ने दीर्घकाल तक निमाड़ और निकटवर्ती क्षेत्र में अपने वर्चस्व को बनाये रखने में सफलता प्राप्त की। मध्यकाल में निमाड़ को केन्द्र बनाकर शासन करने वाला यह प्रमुख राजवंश था। सामान्यत: इस दौरान निमाड़ पर अन्य क्षेत्रों के सत्ताधीशों का प्रभाव रहा।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. भारतीय गजेटियर, मध्यप्रदेश, पश्चिमी निमाड़ जिला, जिला गजेटियर विभाग, मध्यप्रदेश, भोपाल, प्रथम संस्करण- 1973
2. अकबर दि ग्रेट मुगल लेखक विसेंट स्मिथ।
3. मध्यकालीन भारत, लेखक- व्ही.डी. महाजन, प्रकाशक-एस. चंद एण्ड कंपनी, नई दिल्ली, 1990.
4. मुगलकालीन भारत का राजनैतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास, लेखक- बी.एन. लुणिया, प्रकाशक- माणकचंद बुक डिपो. उज्जैन, 1971.
5. मध्यकालीन भारत लेखक- हरिश चंद्र वर्मा, प्रकाशक- हिन्दी कार्यन्व निदेशालय, दिल्ली,

****

जनवादी विचारधारा और कथा साहित्य

डॉ. विमला मिंज *

प्रस्तावना – हिन्दी साहित्य में जनवादी आन्दोलन प्रगतिशील आन्दोलन का ही विकसित रूप है किन्तु 'जनवाद' शब्द उतना नया नहीं हैं क्योंकि जनवाद का जन्म सामंतवाद के विरूद्ध संघर्ष करते पूंजीवाद के उदय के साथ हुआ । जबकि हमारे देश में जनवादी व्यवस्था का वर्तमान स्वरूप साम्राज्य विरोधी, सामंतवादी विरोधी, स्वतंत्रता संग्राम के दौरान उस संग्राम के नेता पूंजीपति वर्ग द्वारा आम जनता के विभिन्न हिस्सों को साथ लिये उनके साथ संयुक्त मोर्चा बनाने के दौरान, विकसित हुआ । किन्तु स्वातंत्र्योत्तर काल में भारत में जो व्यवस्था स्थापित हुई, उसने पूंजीपति वर्ग को पूर्ण संरक्षण दिया, परिणाम स्वरूप स्वतंत्रता संग्राम के दौरान विकसित जनवाद खंडित हो गया क्योंकि 'जनवाद की रक्षा सर्वहारा वर्ग के नेतृत्व में सामंतवाद, साम्राज्यवाद और एकाधिकारी पूंजीवाद के विरूद्ध समस्त जनता के संयुक्त मोर्चे द्वारा ही संभव है। कहने का तात्पर्य यह कि जनवाद का नेतृत्व सर्वहारा के हाथ में होता है और वह समाज में सभी प्रकार के शोषण को समाप्त करने के लिये सामंतवादी साम्राज्यवादी तथा पूंजीवादी शक्तियों का विरोध करता है। अत: स्पष्ट है कि जनवादी साहित्य सर्वहारा वर्ग का पक्षधर साहित्य है और वह समाज को सभी प्रकार के शोषण, अन्याय और उत्पीड़न से मुक्त करने का स्वर मुखरित करता है। मुक्तिबोध के शब्दों में जनवादी साहित्य में जनता के परिष्कार, उसके आदर्श, मनोरंजन से लगाकर उसे क्रांतिपथ पर मोड़ने वाला साहित्य, मानवीय भावनाओं का उदात्त वातावरण उपस्थित करने वाला साहित्य, जनता का जीवन-चित्रण करने वाला साहित्य, मन को मानवीय और जन को जन-जन करने वाला साहित्य, शोषण और सत्ता के घमंड को चूर-चूर करने वाले स्वातंत्र्य और मुक्ति के गीतों वाला साहित्य, प्राकृतिक शोभा और स्नेह के सुकुमार दृश्यों वाला सभी प्रकार का साहित्य सम्मिलित हैं बशर्ते कि वह मन को मानवीय, जन को जन-जन बना सके और जनता को मुक्ति-पथ पर अग्रसर कर सके।' इस मुक्ति-पथ का अर्थ राजनीतिक मुक्ति से लगाकर अज्ञान से मुक्ति तक है।

जहॉ तक आन्दोलन के रूप में जनवादी कहानी के उदय का प्रश्न है, जनवादी कहानी का उदय सातवें दशक के अंतिम वर्षो में माना जाता है। लेकिन उसका वास्तविक विस्तार आठवें दशक में देखने को मिलता है। वस्तुत: जनवादी कहानी आन्दोलन समूचे जनवादी आन्दोलन से जुड़ा हुआ है। दिल्ली विश्वविद्यालय में 1977 में जनवादी विचार मंच की स्थापना हुई तथा इसी मंच के तत्वाधान में 14-15 अक्टूबर 1978 को दिल्ली में हिन्दी के लेखकों का एक शिविर आयोजित किया गया, जिसमें दिल्ली, उत्तरप्रदेश, राजस्थान, पंजाब, हरियाणा, बिहार, मध्यप्रदेश, पश्चिम बंगाल के लगभग 250 लेखकों ने भाग लिया । शिविर का केन्द्रीय विषय था – '1967 से 1977 तक जनवादी साहित्य के उसे वर्ष' इसी शिविर में जनवादी कहानी पर दो निबंध पढे ग़ये जनवादी कथा - रचना की समस्याऍ (असगर वजाहत) तथा जनवादी कहानी : स्वरूप और समस्यायें (चारू मित्र, प्रदीप मांडव) । इसी शिविर में यआज का कथा साहित्य : सार्थकता की तलाश शीर्षक से डॉ0 कुंवरपाल सिंह ने भी एक निबंध पढ़ा जिसमें उन्होंने जनवादी कहानी तथा उपन्यास पर समग्र रूप से विचार किया।

इस शिविर को हम जनवादी कहानी - आन्दोलन की भूमिका मान सकते है किन्तु इस आन्दोलन की तीव्र गति 1982 में 'जनवादी लेखक संघ' की दिल्ली में स्थापना के साथ मिली। 13-14 फरवरी, 1982 को दिल्ली में जनवादी लेखक संघ का प्रथम राष्ट्रीय अधिवेशन हुआ, जिसमें इस संघ का संविधान भी स्वीकृत हुआ । इस अधिवेशन के पश्चात् जनवादी कहानी पर 'कलम' (कलकत्ता), 'कथन' (दिल्ली), 'उत्तरगाथा' (मथुरा), 'कंक' (रतलाम) जैसी पत्रिकाओं में व्यापक रूप से चर्चा प्रारंभ हो गयी । हम जनवादी आन्दोलन का प्रारंभ जनवादी लेखक संघ की स्थापना के साथ ही मान सकते है।

स्वातंत्र्योत्तर काल में नयी कहानी आन्दोलन समर्थ संभावनाओं के साथ उभरा था तथा यह आन्दोलन अपने प्रारंभिक दौर में प्रेमचन्द की परम्परा का ही विकास था । किन्तु धीरे-धीरे नयी कहानी पर व्यक्तिवादी प्रवृत्तियॉ हावी होती गयी और नयी कहानी अकहानी की ओर प्रयाण कर गयी, किन्तु रांगेय राघव, भैरव प्रसाद गुप्त, मार्कण्डेय, भीष्म साहनी, अमरकांत जैसे लोग प्रेमचन्द की परम्परा को ही विकसित करते रहे। इस बीच यह दुर्योग रहा कि अनेक सशक्त रचनाकार इन आन्दोलनों (अकहानी, समान्तर कहानी आदि) में नये पन के आकर्षण में शरीक हो गये । इसके बावजूद भी हमारे देश को राजनीति और सामाजिक परिस्थितियों में देखे जा सकते है। यह वही दौर था जब कि कम्युनिस्ट पार्टी के भीतर वर्ग सहयोगवाद पनपा और उसके विभाजन की स्थिति पैदा हुई तथा जनांदोलन मंद और कमजोर पड़ने लगे जनता की सामाजिक चेतना को समुन्नत करने के इस गंभीर क्षण में इस परिस्थिति में शासक वर्गो को मूल्य संभ्रम की स्थिति पैदा करने का मौका दिया।

यह संभ्रम अकहानी तथा समान्तर कहानी आन्दोलन का आधार बना अकहानी का सारा विद्रोह स्त्री पुरूष संबंधों में डूब गया जबकि समान्तर कहानी में मौजूदा व्यवस्था के कुत्सिक और अमानवीय पहलुओं की आलोचना अपनी प्रकृति में प्रतिगामी ही है । इस दौर में सामने आये मधुकर सिंह, जितेन्द्र भाटिया, दामोदर सदन, कामतानाथ आदि की कहानियॉ इसकी मिसाले है। इनकी कहानियों के 'आम आदमी' मध्यवर्गीय दंभ से आक्रांत है

* सहायक प्राध्यापक (हिन्दी) शासकीय कन्या महाविद्यालय, कटनी (म.प्र.) भारत

या फिर पराजित और बेजान है। अत: यह आन्दोलन अपने आप को अप्रासंगिक घोषित कर चुका है।

किन्तु समान्तर आन्दोलन से जुडे रमेश उपाध्याय, इब्राहिम शरीफ, सतीश जमाली जैसे अनेक कथाकारों को जिनकी कहानियॉ सामाजिक बदलाब की प्रक्रिया से सही तौर जुड़ी थी इसीलिये इनकी तथा काशीनाथ सिंह, ज्ञानरंजन, स्वयं प्रकाश, इसराइल, हेतु भारद्धाज आदि की कहानियॉ 'जहॉ कहानी की मुख्यधारा को विकसित करती है, वहीं दूसरी ओर मौजूदा जनवादी कहानी आन्दोलन के लिये एक पुख्ता जमीन तैयार करती हैं।'

समान्तर कहानी भी आम आदमी के संघर्ष को केन्द्र में रखकर चलती है किन्तु इस आन्दोलन में व्यावसायिकता को कथा – साहित्य में प्रोत्साहित किया जिसमें कहानीकारों की यथार्थवाद विरोधी दृष्टि स्पष्ट थी। 'इस प्रकार यह आन्दोलन एक तो समाज के भीतर की जनवादी शक्तियों के बीच पिटकर हारा, दूसरे, उसी दौर कुछ कहानीकारों ने भी उसे वैचारिक स्तर पर शिकस्त दी ।'

स्वतंत्रता से पूर्व विदेशी शासन के तहत प्रेमचन्द ने कहानी ही नहीं, अपने सम्पूर्ण लेखन में जनवादी मूल्यों की स्थापना की। 'पूस की रात' व 'कफन' जनवादी कहानी की आधारशिला बनकर उभरी।'

निराला तथा नागार्जुन ने प्रेमचन्द की जनवादी परम्परा को विकसित किया। जनवादी कहानी की परम्परा 'परदा' (यशपाल), 'गदल' (रांगेय राघव) 'श्रम' 'हड़ताल' (भैरवप्रसाद गप्त), 'हंसा जाई अकेला' 'बीच के लोग' (मार्कडेय), 'चीफ की दावत' 'चाचा मंगलसेन' (भीष्म साहनी), 'दोपहर का भोजन', 'डिप्टी कलेक्टरी' (अमरकांत), 'कोसी का घटवार', 'बोझ' (शेख जोशी) आदि की कहानियों से नयी कहानी के दौर में समृद्ध हुई। अकहानी, सचेतन कहानी तथा समान्तर कहानी के दौर में जनवादी कहानी की परम्परा को उक्त कहानियों के लेखकों के साथ 'घंटा', फेंस इधर– 'उधर' (ज्ञानरंजन), 'लाल किले के बाज', सुबह का डर' (काशीनाथ सिंह), फर्क', 'पंच' (इसराइल) ने अनवरत रखा।

इसके बाद तो जनवादी कहानी को समृद्ध करने में एक पूरी पीढ़ी सक्रिय हो गयी जिनमें रमेश उपाध्याय (देवी सिंह कौन, कल्प वृक्ष) रमेश बतरा (कत्ल की रात, जिन्दा होने के खिलाफ), स्वयं प्रकाश (आस्मां कैसे–कैसे, सूरज कब निकलेगा), हेतु भारद्धाज (सुबह–सुबह अब यही होगा) नमिता सिंह (राजा का चौक, काले अंधेरे की मौत), असगर वजाहत (दिल्ली पहुंचना है, मछलियां), उदय प्रकाश (मौसा जी, टेपचू) राजेश जोशी (सोमवार, आजू की आँख) सुरेन्द्र मनन (षड्‌यत्र, खून की लकीर), धीरेन्द्र अस्थाना (लोग हाशिये पर, सूरज लापता है) आदि के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। इसके अतिरिक्त नीरज सिंह, इसराइल, कांतिमोहन, सतीश जमाली, सुरेश कांटक, विजय कांत इत्यादि लेखकों की रचनाओं की भी शामिल किया जा सकता है। आज भी पुरानी तथा नयी पीढ़ी के कहानीकार जनवादी कहानी की परम्परा को विकसित कर रहे हैं तथा इस आन्दोलन के पक्षधरों का मानना है कि यही हिन्दी कहानी की प्रतिनिधि धारा है क्योंकि 'समकालीन जनवादी कहानी ऐतिहासिक विकास क्रम में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही है। उससे आगे और भी संभावनाएॅ है।'

जनवादी कहानी की कथा – प्रवृत्तियॉ – जनवादी कहानी अपनी मूल प्रकृति में सामान्य जन के संघर्ष की पक्षधर है तथा उसका वैचारिक आधार मार्क्सवाद है। समान्तर कहानी के पक्षधर भी वामपंथी शब्दावली लेकर आन्दोलनों में जुटे थे किन्तु उनके पास एक व्यापक जीवन दृष्टि का अभाव था। इसलिये वह अधिक दिन जीवित न रह सकी : पर उसकी छद्म प्रगतिशीलता से गंभीर मुठभेड़ करनी पड़ी है। 'इसके साथ ही जनवादी कहानी के समक्ष एक महत्वपूर्ण चुनौती 'एक ऐसे संसार का निर्माण भी करना था जो फूहड़ और रोमानी कहानियों की बाढ़ में सार्थक और महत्वपूर्ण रचना का आस्वाद देने की तमीज न भूला हो।' इसके साथ ही य नयी कहानी से लेकर अकहानी तथा अनुभव की प्रामाणिकता का और अद्धितीयता का जो दौर हिन्दी में चला था, उसने एक खास किस्म के अनुभववाद के तहत गलत अनुभवों का ऐसा जाल रचने की प्रक्रिया को आगे बढाया, जो यथार्थ के केन्द्र से सामान्य को हटाकर असामान्य को प्रतिष्ठित और गौरवन्वित कर रही थी और निश्चय ही ज्ञानरंजन, इसराय, काशीनाथ सिंह ने अपनी कहानियों के द्धारा यह किया तथा इस सिलसिले को रमेश उपाध्याय, असगर वजाहत, नमिता सिंह, स्वयं प्रकाश, हेतु भारद्धाज जैसे कहानीकारों ने आगे बढ़ाया। पिछले दो दशक में कहानी फिर से व्यापक यथार्थ के बीच चली गयी है और अपना जनवादी स्वरूप गढ़ रही है। उसने पुन: अपने को प्रेमचन्द की परम्परा से जोड़ा है और प्रेमचन्द की परम्परा से जुड़ने का अर्थ प्रेमचन्द की कहानी में लौट आना नही बल्कि प्रेमचन्द की परम्परा को आगे बढ़ाना है। कहने का तात्पर्य यह है कि जनवादी कहानी प्रेमचन्द की कहानी – परम्परा का विकास है।

प्रेमचन्द की अधिसंख्यक कहानियों का कथ्य मध्यमवर्ग का जीवन है किन्तु उनका मध्यम वर्ग सर्वहारा के अधिक निकट है। 'मध्यम और सर्वहारा के बीच निकटता अनुभव करना प्रेमचद की ऐतिहासिक समझ का परिणाम था।' क्योंकि 'मध्यमवर्ग को अगर शक्ति मिल सकती है और अगर वह शक्ति दे सकता है तो केवल सर्वहारा को ।' जनवादी कहानी ने इस ऐतिहासिक सत्य को स्वीकार किया कि मध्यमवर्गीय का भविष्य सर्वहारा के साथ है और उसे सर्वहारा ही बल प्रदान कर सकता है। जनवादी कहानी का सर्वाधिक बल – मध्यमवर्ग तथा सर्वहारा द्धारा किये जा रहे शोषण के विरूद्ध संघर्ष पर है। यह संघर्ष बहुआयामी है। 'जनवादी कहानी के मध्यमवर्ग के कई आयाम खुलते दिखायी देते है – मध्यमवर्गीय संस्कारों के मोह–भंग, आत्मा लोचन , सामाजिक विसंगतियों के प्रति तीव्र असंतोष और सर्वहारा के निकट जाने की लालसा ।' 'फेंस के इधर–उधर' (ज्ञानरंजन) कहानी में मध्यमवर्गीय संस्कारों की जकड़न के टूटने की पीड़ा है तो 'विश्वास' (हेतु भारद्धाज) कहानी में एक मजदूर के अंधविश्वास के टूटने की वेदना के साथ उच्च वर्ग की मानसिकता पर चोट है।

जनवादी कहानी में संघर्ष पात्र निर्णय लेने की स्थिति में है तथा वे अपने संघर्ष की दिशा को अच्छी तरह समझते हैं। जीवन मूल्यों के संघर्ष में अग्रणी भूमिका निभाने के लिये कृतसंकल्प है। 'भैरवप्रसाद गुप्त की 'हनुमान' कहानी का नायक साधारण मजदूर है वह अपने अधिकारों के प्रति पूर्ण सजग और संघर्षरत है। वह पूंजीवादी व्यवस्था से टक्कर लेता है किन्तु जनवादी कहानी यह भी जानती है कि मजदूरों की यह लड़ाई उनके अपने अंतर्विरोधों से ही कमजोरी होती है। विजयकांत की 'पहली हार' कहानी में मजदूरों की हड़ताल टूटने पर है किन्तु वहां तमाम कठिनाईयों के बावजूद मजदूर अन्याय और शोषण उत्पीड़न के विरूद्ध एकजुट है। हेतु भारद्धाज की 'गलत इतिहास' कहानी का नायक रामस्वरूप मजदूरों की विवशताओं से परिचित है तथा वह हड़ताल तुड़वाने में नेता बस्तीराम की झूठी मध्यस्थता से व्यथित है। 'कल्प वृक्ष' (रमेश उपाध्याय), 'सनीचरा' (आनंद भारती), 'समाधान' (नमिता सिंह) आदि कहानियों में मजदूरों की संघर्षशील का सफल चित्रण हुआ है।

'जनवादी कहानी की मूल प्रवृत्ति श्रमजीवी वर्ग के प्रति सहानुभूति है और यह अंतर्चेतना के निरंतर विकास का ही परिणाम है।' इसका कारण यह भी है कि जनवादी कहानी मूलत: जनवादी विचारधारा से (मार्क्सवादी विचारधारा) संबंद्ध है । वह प्रतिबद्ध साहित्य के अंतर्गत आती है तथा यह जानती है कि उसे वार कहां करना है। जनवादी कहानी का स्वर 'अनुभव और वैचारिकता के स्तर पर अपेक्षाकृत स्पष्ट और सशक्त नजर आता है।' जनवादी कहानीकार विचारधारा को अपने अनुभव का अंग बनाकर कहानी रचना कर रहा है, उसके पास सही यथार्थवादी दृष्टि है। 'यह विचार अपने आप में गलत है कि केवल मजदूरों और किसानों पर लिखी गयी कहानी ही जनवादी कहानी होगी । यदि लेखक के पास समाजवादी यथार्थवादी दृष्टि है उसे जीवन का अनुभव है, तो पूंजीवादी वर्ग के अंतर्विरोधों तथा उनके घृणित रवैये को वह कलात्मक ढ़ग से अभिव्यक्ति कर सकता है और इस तरह जनवादी कहानी ही लिखी जायेगी।' यसुधीर घोषाल' (काशीनाथ सिंह), 'धर' (मनमोहन), 'वहिर्गमन' (ज्ञानरंजन), 'दूसरा आदमी' (नीरज सिंह), 'सूरज कब निकलेगा' (स्वयं प्रकाश) 'बूढी आग' (हेतु भारद्वाज) आदि ऐसी कहानियॉ है जिनमें अनुभव और विचार का सामंजस्य जीवन की समस्याओं के संदर्भ में देखा जा सकता है।

'व्यक्तिगत स्तर पर सत्य, ईमानदारी, परहित आदि मूल्यों के लिये संघर्षरत् चरित्र भी जनवादी कहानी में उपलब्ध है।' 'चक्रव्यूह टूटेगा' (नीरज सिंह) का थाना प्रभारी सेठ और ठाकुर दोनो से टकराता है। किन्तु जनवादी कथाकार यह भी जानता है कि पूंजीवाद, साम्राज्यवाद और सामंतवाद से संघर्ष करने के लिये तथा जीवन -मूल्यों की रक्षा के लिये किसान, मजदूरों का संगठित होना आवश्यक है। 'डीजल' (हेतु भारद्वाज) कहानी का हीरा सारे किसानों का संग कर सत्ता से संघर्ष करता है। 'सनीचरा' (आनंद भारती) कहानी में सनीचरा के उत्पीड़न पर अनेक शोषित लोग संगठित होकर उठ खड़े होते है। मार्कडेय की 'बीच के लोग' कहानी में नयी पीढी अन्याय के विरूद्ध एकजुट हो जाती है । वहां नयी पीढ़ी खेत जोतने वाले किसान का पक्ष लेती है और जमींदार का विरोध करती है। संजीव की 'अपराध' कहानी आज की समूची न्याय-व्यवस्था पर प्रहार करती है और 'मानव अधिकारों के लिये हिंसक कार्यो में रत युवकों को अपना समर्थन देती है।' लेकिन कुछ अपवादों को छोड़कर जनवादी कहानियों में व्यक्ति वर्ग-संघर्ष हिंसक नहीं है लेकिन वह बिल्कुल अहिंसक भी नहीं है। उसमें उग्रता और आक्रामकता भरपूर है, लेकिन वह बौद्धिक समझ से अनुशासित हैं।

जनवादी कहानी ने अपने आस-पास की दुनिया से अपना सच्चा रिश्ता स्थापित किया । इसके लिये उसने 'सबसे पहले जादूगरी भाषा को तिलांजलि दे दी । सीधी-सादी, क्रूर-फूहड और बिलकुल सामान्य भाषा के मुहावरे कहानी में आने लगे ।' जनवादी कहानी की भाषा आम आदमी की बोलचाल की भाषा है। क्योंकि 'चारों ओर जो जीवन बिखरा हुआ है वही कहानी का मसाला है। पात्रों की कमी नहीं है। शिल्प के लिये परेशान होने की जरूरत नहीं है। कत्य का अपना शिल्प होता है, उसी को रखते चले जाओ। किसी प्रकार का चमत्कार दिखाना कहानी का कार्य नहीं है।' कहने का तात्पर्य यह है। कि आम जीवन को उसी भाषा में अभिव्यक्त करने का कार्य जनवादी कहानी करती है।

जनवादी कहानी के केन्द्र में निम्न मध्यवर्ग का संघर्ष है किन्तु यह संघर्ष बनावटी न होकर वास्तविक जीवन का है। जनवादी कहानी की सबसे बड़ी उपलब्धि यही है कि वह जीवन के वास्तविक स्पंदन को बहुत सहज ढ़ग से रूपायित करती है। यह समान्तर कहानी की तरह आम आदमी के संघर्ष की कथा गढ़ती नहीं, प्रत्युत समस्याओं को जीवन में उठाती है और उसे जीवन की भाषा में ही अभिव्यक्त कर देती है ।

जनवादी कहानी वैचारिक दृष्टि से मार्क्सवादी विचारधारा का पोषण करती है किन्तु यह विचारधारा को रचनाकार के अनुभव का अंग बनाकर अभिव्यक्त करने में विश्वास करती है। वहां विचारधारा की अनुभव से अलग सत्ता नहीं है। विचारधारा तो लेखक के अनुभव को और पुष्ट करती है तथा सर्वहारा के संघर्ष में उसका मार्ग प्रशस्त करती है।

जनवादी कहानी किसान-मजदूर के संघर्ष की कहानी है तथा वह इस संघर्ष को बहुत सूक्ष्मता के साथ उभारती है। जनवादी कहानी जीवन के यथार्थ के संदर्भ में सत्य की पराजय दिखाकर भी सत्य की ओर आकर्षित करने का कार्य करती है क्योंकि वह दृष्टिकोण ओर विचारधारा को समग्रता के साथ चित्रित करती है। जनवादी कहानी पाठक को दिशा देती है, उसमें आशा का संचार करती है, क्योंकि जनवादी कथाकार को जीवन की प्रगतिशील शक्तियों पर पूरा विश्वास है और लेखक परिवेश तथा पात्रो के प्रति ईमानदार है।

जनवादी कहानी ने एक ऐतिहासिक कार्य किया है कि उसने हिन्दी कहानी की विकास परम्परा को प्रेमचन्द से जोडते हुये रेखांकित कर हिन्दी कहानी की सच्ची परम्परा को समृद्ध किया है। अत: यह एक संकीर्ण आन्दोलन मात्र न होकर हिन्दी कहानी का एक व्यापक आन्दोलन है जिसकी जड़े जीवन और इतिहास में है।

जनवादी कहानीकार की रचना - सातवें दशक के अंत में यह महसूस किया जाने लगा कि इस दशक के बीच में आने वाली कहानियों में आम आदमी की घोर उपेक्षा हुई है। तमाम घोषणाओं के बावजूद उसकी आर्थिक स्थिति गिरती गयी थी । सामाजिक और शासकीय तंत्र में उसकी स्थिति निहायत उपेक्षणीय होती गयी, सुविधाजीवी वर्ग हर तरह से देश की अधिकाधिक सुविधाओं पर कुंडली मारता गया । हमारे नेताओं ने किसानों और मजदूरों के महत्व को उछाला जरूर किन्तु व्यवहार में उन्हें कुछ दे नहीं सकें। इधर साहित्य भी इस आम आदमी के प्रति उदासीन ही रहा। उसकी मूल्य-निषेध वाली दृष्टि मध्यवर्गीय जिन्दगी की यौन विकृतियों तथा अन्य विसंगतियों को उभारने में संलग्न रही । 'सचेतन' कहानी ने मूल्य निषेध का निषेध कर मूल्यों के प्रति अपना लगाव जरूर जाहिर किया किन्तु उसकी भी दुनिया लगभग वही रही जो अकहानी की है। वह भी आम आदमी की आर्थिक अभाव, संघर्ष और तंग संबंधों तथा समस्याओं को नहीं पहचान सकी। इसलिये समाजवादी चेतना फिर साहित्य में तेजी के साथ उभरने लगी । प्रगतिवाद पुनर्जीवित होने लगा । कविता और कहानी दोनों ही क्षेत्रों में ऐसे लेखकों की जमात उभरती हुई दिखाई पड़ी जो आम आदमी की राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक समस्याओं से बनी दुनिया की पहचान करने लगे और जिनके लिये मार्क्सवाद फिर से अत्यंत प्रासंगिक हो उठा । सामाजिक चेतना के वे कवि और कहानीकार भी फिर अत्यंत संजग हो उठे जो साठ के पहले से सामाजिक संदर्भो और दृष्टि की कहानियॉ लिखते आ रहे थे, किन्तु अकहानी के आन्दोलन के प्रभाव से थोड़ी बहुत अंतर्मुखता और एबसर्डिटी की ओर उन्मुख हो गये थें । इन कहानियों को सामूहिक रूप से 'आम आदमी' की कहानियॉ कह सकते है'।

आम आदमी की कहानियॉ प्रमुख रूप से आम आदमी (जिसमें निम्न मध्यवर्ग और निम्न वर्ग दोनों ही शामिल हैं) के अर्थमूलक यथार्थ को

उद्घाटित करती है। अर्थमूलक यथार्थ की दुनिया सरल दुनिया नहीं है, बहुत जटिल है । इसमें राजीनति, धर्म, सामाजिक व्यवस्था, संबंध, मूल्य सभी सम्मिलित है। ये कहानियॉ किसी तटस्थ दृष्टि से यथार्थ को उद्घाटित नहीं करती, वरन्, अपनी पक्षधरता भी व्यक्त करती है। इसलिये ये आम आदमी के संघर्ष, गुस्सा, विद्रोह और वर्गीय समझ को उजागर कर एक नये सामाजिक बदलाव की आहट भरना चाहती हैं। नयी कहानी के यातना-बोध की जगह इनमें आक्रोश है। आम आदमी के जीवन की संवेदनाओं से निर्मित इन कहानियों की दृष्टि मार्क्सवादी है या मार्क्सवाद के आसपास है। निर्मल वर्मा की परम्परा से जुड़ने वाली 'अकहानी' की रहस्यमयता और निर्लक्ष्य अहेतुक विद्रोहलीला के स्थान पर इनमें ठोस सामाजिक कारणों से उत्पन्न मूर्त पीड़ा, संघर्ष और सामाजिक बदलाव उपस्थित करने वाली विद्रोह दृष्टि है। इसलिये इन कहानियों में परिवेश रोमांटिक न होकर संघर्षरत जीवन के आसपास का खुरदरा परिवेश है, चरित्र धूमिल और रहस्यमय नहीं है, गहन होकर भी अपनी प्रकृति में स्पष्ट है। भाषा में भी आम जीवन की भाषा की ऊर्जा और खुरदरापन है, आधी मुंदी और आधी खुली पलकों की भंगिमा नहीं है, बल्कि आस-पास के यथार्थ की समझ का खुलापन ओर वनज है। इसका तात्पर्य यह नहीं कि ये कहानियॉ अपनी संरचना में सपाट या सरल है। इनमें गहरी सांकेतिकता और संश्लिष्टता है जो यथार्थ के दबाव से उत्पन्न हुई है, वाक्छल से या नकली दुरूहता से नहीं। ये कहानियॉ सामाजिक यथार्थ की कहानियॉ है, किन्तु ये 'नयी कहानी' और 'अकहानी' की संरचनात्मकता का अपने ढ़ग से इस्तेमाल भी करती है। इसलिये ये प्रगतिवाद के पहले दौर की कहानियों की तरह कटी-छंटी और निष्कर्षवादी कहानियॉ नहीं है, इनमें उन कहानियों की तरह एक घटना गढ़कर मार्क्सवादी कहानियॉ नहीं है, इनमें उन कहानियों की तरह एक घटना गढ़कर मार्क्सवादी दृष्टिकोण की निष्पति नहीं की गयी है, वरन् ये अपने आस-पास के जीवन के प्रसार में रमी हुई है। ये परिवेश से निर्मित होती हुई चलने वाली, कथाहीनता के शिल्प का भी इस्तेमाल करने वाले कहानियॉ है, जो कहानी की अपेक्षा हमारी जिन्दगी ज्यादा लगती है।

आम आदमी की जिन्दगी से संबंधित कहानियों में कुछ कहानियां है - 'अक्षरों के बीच', 'भावुक' (रामनारायण उपाध्याय), ' प्रथम पुरूष' , 'पुल' (सतीश जमाली), 'दुश्मन' (डॉ माहेश्वर), 'बाढ़' (मधुकर सिह), 'दिग्भ्रमित', 'पूर्वाभास' (इब्राहिम शरीफ), 'पानी की लकीर', 'सममतल', 'अपने बीच' (रमेश उपाध्याय), 'अश्वरोही' (स्वदेश दीपक), 'ताजी रोटी की महक', 'अंतिम प्रजापति' (राकेश वत्स), 'विस्फोट' (मणि मधुकर), 'गुजलक' (हृदयेश), 'अंधेरे का फैलाव' (से0रा0 यात्री), 'सुबह का डर' (काशीनाथ सिंह), 'एक और हत्या' (मिथिलेश्वर), 'कांटा' (गिरीशचन्द्र श्रीवास्तव)। इसके अतिरिक्त अनेक लेखक है जो सामाजिक चेतना को लेकर कहानियॉ लिख रहे है या लिख चुके हैं। - मसलन सुरेन्द्र अरोड़ा, वल्लभ सिद्धार्थ, विभु कुमार, जितेन्द्र भाटिया आदि।

इन कहानीकारों के अतिरिक्त वे कहानीकार भी इस लेखन में सम्मिलित है जो शुरू से ही सामाजिक चेतना और दृष्टि के कहानीकार रहे है। इधर उनकी भी ऐसी अनेक कहानियॉ आयी है जिनमें आम आदमी की तकलीफ और सोच मूर्त हुई है। इन कहानीकारों और उनकी कहानियों की चर्चा नयी कहानी के संदर्भ में राजनीतिक-सामाजिक प्रसंगों में हो चुकी है। इस लेखन में उनका सम्मिलित होना और निरंतर सशक्त कहानियॉ देना यह सिद्ध करता है कि हम लेखन का इतिहास बदलते हुये समय की चेतना के साथ जोड़कर काफी दूर तक नये-पुराने का अलगाव तो कर सकते हैं लेकिन बहुत साफ तौर पर नये लेखन का संबंध मात्र नयी पीढ़ी के साथ जोड़कर पहले से लिखती आने वाली पीढ़ी को उस लेखन से एकदम खारिज कर देना असंभव है और एक साहित्यिक षड्यंत्र भी। कम शक्ति वाला नया लेखक भी दो-चार चीजें लिखकर चुक जाता है और अधिक ताकत वाला लेखक निरंतर समय के बदलाव का दबाव झेलता हुआ। अपने लेखन को प्रासंगिक बनाये चल सकता है। यदि एकदम नये लेखक में एक छोटे नये अनुभव की ताजगी होती है तो समर्थ लेखक में अनुभव का सघन विस्तार होता है। ताजगी थोड़े समय के बाद चुक जाती है किन्तु अनुभव का सघन विस्तार जीवित रहता है।

संदर्भ ग्रंथ सूची : -

1. जनवादी कहानी पृष्टभूमि से पुनर्विचार तक - रमेश उपाध्याय, वाणी प्रकाशन नई दिल्ली।
2. जनवादी साहित्य के दस वर्ष।
3. जनवादी चेतना का ऐतिहासिक विकास - अवधेश श्रीवास्तव।
4. जनवादी कथा रचना की समस्याऍ - वजाहत असगर - रामप्रसाद एन्ड संस दिल्ली।
5. आठवें दशक की जनवादी कहानी - बृजमोहन शर्मा - मयूर प्रकाशन दल्ली।
6. जनवादी कहानी स्वरूप और सीमायें - चारू मित्र।

****

ईसुरी की फागों में होली के रंग

डॉ. गायत्री वाजपेयी *

प्रस्तावना – भारतीय संस्कृति उत्सव प्रधान है यहाँ वर्ष भर पर्व, उत्सव और त्यौहार मनाये जाते हैं। भारतभूमि में आनंद का संचरण करने वाले ये पावन पर्व अपने गर्भ में धर्म, दर्शन और संस्कृति के गौरवमय इतिहास को समाहित किए हुए हैं वैसे तो प्रत्येक पर्व व त्यौहार का अपना आध्यात्मिक , पौराणिक एवं सांस्कृतिक महत्त्व है लेकिन वसंत ऋतु के फाल्गुन मास में मनाये जाने वाले पर्व होली की अपनी एक विशिष्ट पहचान है। होली आनंद एवं उल्लास का पर्व है। यह भारत का प्राचीनतम उत्सव है इसका प्रारम्भिक रूप होलाका था, जो कालान्तर में होली हो गया। चैत्र कृष्ण पक्ष प्रतिपदा को यह पर्व मनाया जाता है। रंग और उमंग के इस पर्व में मानव मन की भावनाएँ प्रेम व माधुर्य से सिक्त हो उठती हैं बालक, वृद्ध, युवा, अमीर, गरीब, सवर्ण और निम्नवर्ण सभी एक रस हो मौज मस्ती से झूम उठते हैं और गा उठते हैं –

आओ होली को त्यौहार , फूले टेसू कचनार ।
भौंरा करत गुंजार , करैं मोर हूँ गुहार ।
झूमे अमवा की डार , कहै कोकिल पुकार।
चहुँ दिसि है बहार , फाग खेले नर– नारि।
अरे उड़े रे गुलाल , अरे बरसे रे रंग।[1]

होली ऐसा त्यौहार है जो सदा से ही साहित्यकारों की रचनाओं में स्थान पाता रहा है । क्या आधुनिक, क्या प्राचीन, क्या शिष्ट साहित्य, क्या लोकसाहित्य सभी साहित्य सर्जकों की कविता में होली के सतरंगी रंग, अबीर और गुलाल से रंग रंगीले वातावरण के बीच ढोलक , झांझ, मंजीरे पर गूंजती स्वर लहरियों के साथ अंकित हुए हैं। ब्रजप्रदेश में राधाकृष्ण व गोप–गोपिकाओं की होली से संबंधित वर्णन के साहित्य भरा पड़ा हैं। बुन्देली लोक साहित्य की सर्वाधिक लोकप्रिय विधा फाग में होली के जीवन्त चित्र उकेरे गये हैं। फाग वाचिक परम्परा के अन्तर्गत आने वाली एक अत्यन्त प्राचीन काव्य विधा है इसका उत्स संस्कृत और अपभ्रंश की रचनाओं में उपलब्ध होता है। फाग शब्द की व्युत्पत्ति के संबंध में श्री श्याम सुन्दर बादल लिखते हैं कि – 'संस्कृत में फल एक धातु है, जो निष्पति (फलना , सफल होना) परिणाम निकालना और पकना आदि अर्थो में प्रयुक्त होती है। पाणिनी के फलि पाटिनमि जनां गुक पटिनाकिधतश्च सूत्र के 'फल+गुक् =फल्गु शब्द बनता है। यही फल्गु कालान्तर में क्रमश: रूपान्तरित होता हुआ फल्गु–फग्गु– फागु – फाग बन गया ।[2] श्री कान्ति लाल बल्देवराम व्यास 'फागु' शब्द की उत्पत्ति संस्कृत के फाल्गुन शब्द से मानते हैं उनके अनुसार इस शब्द का विकास क्रम इस प्रकार हैं संस्कृत फाल्गुन – अ0 फग्गु – गु0 रा0 फाग है।[3]

फाग वसंत ऋतु में गाया जाने वाला एक विशिष्ट गीत है।

श्री हेमचन्द्र ने 'फग्गु महुच्चणे फल ही बबडी फसुल कंसुला मुक्के कहकर फाग शब्द को वसन्तोत्सव के रूप में ग्रहण किया है।'[4] वसंत ऋतु में गाये जाने वाले इस उत्सवगीत को विभिन्न लोकरागियों में निबद्ध कर गाने की एक सुसमृद्ध परम्परा बुन्देलखण्ड में मिलती है। लोककवि ईसुरी ने इस गीत को नवीन रूप प्रदान किया है जिसे चौकड़ियाँ फाग कहते हैं। इसमें चार कड़िया रहती हैं कहीं कहीं अधिक भी हो जाती हैं। छन्द की दृष्टि से इसे नरेन्द्र और ललित पद की श्रेणी में रखा जाता है। जिसमें 16 और 12 मात्राओं पर विश्राम होकर पूरी 28 मात्राएँ होती हैं अन्त में दो गुरू होते हैं। चौकड़ियाँ फाग में प्रथम पंक्ति के पूर्वार्द्ध में तथा उत्तरार्द्ध में दोनों बंद अत्यन्त प्रभावोत्पादक होते हैं। प्रथम बंद का समर्थन द्वितीय बंद द्वारा होता है, जो श्रोताओं को मंत्रमुग्ध कर देता है। वसन्तऋतु के मदनोत्सव के अवसर पर गाये जाने वाले इस फाग गीत का मूलाधार सौन्दर्य है । ईसुरी रसज्ञ कवि थे। प्रेम के सच्चे उपासक और सौन्दर्य के कुशल पारखी थे यही कारण है कि उन्होंने अपनी फागों में प्रेम और सौन्दर्य के अदभुत् चित्र उकेरे हैं होली विषयक उनकी फागों में श्रृंगार रस की सुन्दर योजना हुई है। फागुन का मन मोहक वातावरण , महकती आम्रमंजरी, कोयल की कूक, बेला, चमेली, टेसू व कचनार आदि पुष्पों की बहार , लहलहाती फसलें और शीतल, मंद सुगन्धित बयार सभी के मन में उल्लास , उत्साह और उमंग का संचार ही नही करती वरन मदमस्त कर देती है ऐसे मन मोहक वातावरण में होली का उत्सव मानव मन में अनूठा उन्माद भर देता है। ब्रजप्रदेश में राधा कृष्ण एवं गोप गोपिकाएँ होली खेल रहे हैं चहुँओर अबीर गुलाल एवं केशरिया रंग की बहार है। आकाश एवं धरती रंग बिरंगे हो रहे हैं। ईसुरी का मन भी ऐसे रंग बिरंगे वातावरण में रंगायित हो उठता है –

ब्रज में खेलें फाग कन्हाई , राधे संग सुहाई ।
चलत अबीर रंग केसर को, नभ अरूणाई छाई।
लाल लाल ब्रज लाल लाल वन, बीचन कीच मचाई।
ईसुर नर नारिन के मन में, अति आनंद सरसाई ।[5]

ब्रज की होली की ख्याति सर्वत्र है इसका कारण हैं वहां स्वयं रस रासेश्वर राधा – माधव होली खेल रहे हैं । सभी ब्रजवासी इस उत्सव में सम्मिलित होने की तैयारी कर रहे हैं। लोककवि ईसुरी इस नयनाभिराम दृश्य का मनोहारी चित्रण इन शब्दों में करते हैं –

ब्रज में भई होरी की त्यारी, त्यारी हो गई भारी ।
भारी भीर परी सखियन की, संग राधिका प्यारी।
प्यारी लिये गुलाल हात में, मुख मीड़त गिरधारी ।
गिरधारी ने ऐसी तक कैं, भर मारी पिचकारी।
पिचकारी की लगन ईसुरी, चोर बोर भई सारी।[6]

नटवर नागर श्री कृष्ण तो लीलाधर हैं उनकी चपलता जगजाहिर है। राधिका जी के साथ वे होली खेल रहे हैं। रंग की घनी धारें गिर रही हैं। नादों में केशर घोली गई है। पिचकारियों से इत्र वर्षा हो रही है। झोलियों में भर – भर

* प्राध्यापक (हिन्दी) शासकीय महाराजा स्नातकोत्तर स्वशासी महाविद्यालय, छतरपुर (म.प्र.) भारत

कर गुलाल उड़ेली जा रही है ईसुरी कवि राधा–कृष्ण की इस रंग बिरंगी होली का वर्णन करते हुये कहते हैं –

खेले श्री कृष्ण जी होरी, संग राधिका गोरी।
रंग की धारे गिरे घनेरी, नांदन केसर घोरी।
घलत हजारा है अतरन के, और गुलालन झारी।
अधर राय से कात, ईसुरी धन्न धन्न जा जोरी।[7]

राधिका जी को श्री कृष्ण ने ऐसा रंग दिया है कि वे रंग से सरावोर हो भीगी फिर रही हैं। ब्रजमंडल में राधा–कृष्ण अपनी टोली के साथ घूम रहे हैं। तरह – तरह के मदमस्त कर देने वाले द्रव्यो का सेवन किया जा रहा हैं– कोई माजूम का नशा कर रहा है, कोई धतूरा खा रहा हैं, कोई भांग के नशे में मतवाला हो रहा है। सब नशे में अपने होश खो रहे हैं उन्हें अपने तन मन एवं वस्त्रों की भी सुध–बुध नही हैं। ईसुरी लिखते हैं –

भींजी फिरै राधका रंग में, मनमोहन के संग में।
दध की धूमर धाम मचा दई, मजा उड़ावत मग में।
कोउ माजूम धतूरे फाँके, कोड छका दई भंग में।
तन कपड़ा गए उघर ईसुरी करी ढाँक सब ढँग में।[8]

ब्रजभूमि में नन्दबाबा के द्वार पर होली की धूम मची हुई है। गिरिवर धारी नटनागर श्रीकृष्ण जी ने राधिका जी को लक्ष्य कर ऐसी पिचकारी चलाई है कि राधा जी की साड़ी रंग से सरोबोर हो गई है उन्होंने कमर झुकाकर बचने का भरपूर प्रयास किया है लेकिन वे अपने को बचा न सकी। ईसुरी कवि नंदबाबा के द्वार पर खेली जा रही होली का वर्णन करते हुए लिखते हैं कि –

तक के भर मारी पिचकारी, तिन्नी तर गिरधारी।
निउरी भौत घूमाओ करया, हात लगा कै हारी।
सरोबोर हो गई रंग में, ब्रज वनिता बेचारी।
ईसुरी फाग नंद के ढोरे, देखे हँसे दै तारी।[9]

श्री कृष्ण तो लीलाधर हैं तथा सोलह कलाओं में निष्णात हैं। होली के खेल में भी वे परम प्रवीण हैं। उन्होंने अपनी पिचकारी में रंग भरकर ऐसा निशाना साधा है कि रंग की धार पड़ते ही साड़ी लौट गई और रंग की धार तिन्नी के भीतर तक पहुँच गई। साड़ी सम्हालते हुए राधिका जी घर के भीतर चली गई, लेकिन कन्हैया जी तब भी नहीं माने उन्होंने रंग और गुलाल उलीचना प्रारम्भ कर दिया। सम्पर्ण वातावरण रंग रंगित हो गया है। वृन्दावन की इस होली का वातावरण कैसा मनोहारी है। ईसुरी की इन पंक्तियों में दृष्टव्य है –

मोहन भर पिचकारी खीचें, मारें जाँग दुबीचे।
लगतन धार लौट गई सारी, गई तिन्नी के नीचे।
हात लगाय भुअन के भीतर, चली गई दृग मीचे।
तेई पै स्याम पर गए पीछे, रंग गुलाल उलीचे।
विन्द्रावन में भई ईसुरी, रंग केसर की कीचे।

श्री कृष्ण का पिचकारी चलाना विस्मय विमुग्ध करने वाला है उन्होंने ऐसी पिचकारी चलाना न जाने कहां से सीखा है? राधिका जी के कामदार जरी के सुन्दर वस्त्र भीग गये हैं। श्री कृष्ण तो भीगे ही हैं सभी ब्रजवालाओं को भी रंग से तरबतर कर दिया है। राधा जी पर तो उन्होंने ऐसा निशाना साधा है कि पिचकारी की धार साड़ी की तिन्नी के छोर को स्पर्श करती हुई छाती तक चली गई है तथा गालों पर जाकर छूट गई है। आज मनमोहन ने समस्त गोप बालाओं को रंग से सराबोर कर बेहाल कर दिया है। लोककवि ईसुरी होली के इस मनोरम दृश्य का वर्णन करते हुए कहते हैं कि –

ऐसी पिचकारी की घालन , कहाँ सीख आये लालन।
तिन्नी छोर छुअत गई छाती , पीक छूट गई गालन।
भींग गये बड़ बड़ के कपड़ा, जडे हते जर तारन।
ईसुर कअत नंद के दौरे , कर डारी बेहालन।[11]

फाल्गुन मास और होली का मदमस्त कर देने वाला वातावरण है। ब्रज हो अथवा कोई अन्य अंचल सभी जगह आनन्द और उल्लास बिखर जाता है। बाल, वृद्ध, एवं युवा सभी एक अनोखे आनन्द में डूब जाते हैं चारों ओर बरसती रंग की फुहारों से आसमान रंगीन हो जाता है। अबीर और गुलाल की फुहार तथा होली का उन्माद, किन्तु विरहणी के लिए सभी कुछ व्यर्थ है क्योंकि उसके जीवन में रंग भरने वाला उसका प्रियतम तो परदेश में है तो उसके लिए तो सारा जग उदास व सूना है उसे सभी तरफ अंधकार ही अंधकार दिखलाई पड़ता है। ईसुरी रचित इस फाग में विरह व्यथित नारी के अन्त:करण की अत्यन्त मर्मस्पर्शी भाव व्यज्ंना हुई है –

हम पै नाहक रंग न डारौ, घरे न प्रीतम प्यारौ ।।
फीकी फाग लगत बालम बिन, मन में तुमई बिचारौ ।।
अतर गुलाल अबीर न छिरकौ , पिचकारी न मारौ ।।
ईसुर सूजत प्रान पती बिन, मोय मन में अंधियारो ।।[12]

सन्दर्भ ग्रंथ सूची :–

1. डॉ. उषा सक्सेना – लोक साहित्य एवं लोक संस्कृति पृ. 194
2. डॉ. श्याम सुन्दर बादल– बुन्देली फाग साहित्य पृ. 32
3. कान्ति लाल वल्देव राम व्यास – वसंत विलास प्राक्कथन पृ. 38
4. हेमचन्द्र देशी नाममाला (6–82) पृ. 43
5. डॉ श्याम सुन्दर बादल – बुन्देली फाग साहित्य पृ. 58
6. रमेश गुप्त – वसंत के रंग पृ. 39
7. घनश्याम कश्यप – ईसुरी की फागें पृ. 58
8. पूर्वानुसार, पृ. 58
9. पूर्वानुसार पृ. 60
10. पूर्वानुसार पृ. 60
11. रमेश गुप्त – वसंत के रंग पृ. 39
12. डॉ. उषा सक्सेना – लोक साहित्य एवं लोक संस्कृति, पृ. 196

****

माँ ! मुझे दुनिया में आने दो

डॉ. वन्दना जैन *

प्रस्तावना – '**माँ ! मुझे दुनिया में आने दो**' मातृत्व को चुनौती देने वाला यह वाक्य किसी और का नहीं, बल्कि नारी के गर्भ में पल रही एक मासूम कन्या भ्रूण की आवाज है, जो अपने जीवन का अधिकार चाहती है। माता का गर्भाशय गर्भस्थ शिशु का विकास स्थल है जहाँ वह जन्म के पूर्व सुरक्षित रहता है। उसी जगह यदि नारी कन्या भ्रूण की हत्या करवाती है तो वह, जघन्य अपराध करती है। अजन्मी बेटियों का भविष्य सिर्फ माँ के हाथ में है, और स्त्री का अस्तित्व भी इसी पर टिका है।

मुझे खेद है कि बूचड़खानों में जानवरों की हत्या संसार में आने के बाद होती है, परन्तु मानव इतना क्रूर हो गया है कि अपने ही अंश एवं वंश की हत्या, संसार में कदम रखने से पहले ही कर देता है। अगर माँ की कोख से कत्ल का यह सिलसिला ऐसा ही चलता रहा, तो विश्वव्यवस्था चरमराकर ढह जायेगी। इसका कौन जिम्मेदार होगा? यदि नारी संकल्प ले तो यह समस्या हल हो सकती है।

ध्यान से सोचें तो चाहे दबाव में ही क्यों न हो औरत ही औरत को मिटा रही है अर्थात् कन्या भ्रूण हत्याओं की यथावत दशा बदलने का दायित्व समाज व घर से ज्यादा माँ पर है। एक मजबूत माँ अपनी दृढ इच्छा शक्ति से अपनी बेटी को कोख में ही खत्म नहीं होने देगी। एक अजन्मी बेटी, अपनी माँ से करूण स्वर में निवेदन करते हुए कहती है –

माँ, मुझे दुनिया में आने दो,
ब्राह्मी, सुन्दरी, सीता, लक्ष्मी, दुर्गा, अहिल्या बन नाम कमाने दो।
सबका प्यार पाने दो,
मैं रचुंगी क्रान्ति का नया इतिहास,
जिसमें होगा सुख, शान्ति और प्यार।
मुझे कमला, किरण, कल्पना, सानिया, सुनीता की तरह भरने दो उड़ान।
मुझे मत समझो अभिशाप,
मैं तो हूँ, सृष्टि की अनुपम कृति, और धरा की शान।
माँ, मुझे खिलने से पहले मुरझाने मत दो,
माँ, मुझे दुनिया में आने दो।

उच्चवर्ग, मध्यवर्ग या निम्नवर्ग के किसी भी घर में झांक कर देखे तो अलग–अलग स्वरूपों में एक ही तस्वीर देखने में आयेगी भले ही महिला अशिक्षित हो, शिक्षित हो, गृहिणी हो, या कामकाजी उस पर आधिपत्य घर के पुरूष का ही रहता है। उसके जीवन, उसके सपने, उपलब्धियाँ, नजरिए, इन सभी पर नियम एवं निर्देश बनाने या देने का अलिखित अधिकार पुरूष का ही है। जब तक महिलाएँ गर्भपात करवाती रहेगी तब तक अजन्मी बेटी को मृत्युदण्ड मिलता रहेगा, इसलिए माँ को आजाद होना होगा बेटी को जन्म देने के लिए।

हम देखते है कि आधुनिक युग में विज्ञान ने जितनी प्रगति की है मनुष्य ने अपने नैतिक स्तर को उतना ही गिरा दिया है। हर अच्छे अविष्कार को उसका सदुपयोग न करके दुरूपयोग ज्यादा किया गया, जिससे मनुष्य का अस्तित्व ही खतरे में पड़ गया। इसका सर्वोत्तम उदाहरण है – गर्भजल परीक्षण द्वारा भ्रूण का लिंग ज्ञात करना और लिंग ज्ञात कर उसे वही समाप्त करने का अभियान शुरू करना।

गर्भ जल परीक्षण (एमिनोसन्टेसिस) की शुरूआत वंशानुगत रोगो विकृतियों तथा गुणसूत्रों में दोषों का पता लगाने के उद्देश्य से किया गया था। यह एक वैज्ञानिक उपलब्धि थी। जिसके माध्यम से 72 असाध्य एवं वंशानुगत रोगो या दोषों को गर्भकाल में ही दूर कर स्वस्थ शिशु जन्म ले सके यह प्रयत्न करना था।

भ्रूण का लिंग परीक्षण कराने के बाद जो भी गर्भपात अथवा भ्रूण हत्या करायी जाती है उनमें प्राय: सभी लड़कियाँ ही होती है लड़के नहीं। ऐसा क्यों? मैं आपसे कुछ प्रश्न पूछना चाहती हूँ? क्या लड़की कोई ऐसी निष्प्राण वस्तु है, जिसकी हत्या हिंसा की श्रेणी में नहीं आती? क्या लड़की होना ऐसा अपराध है, जिसकी हत्या कानूनन अनुमति है? क्या लड़कियाँ कोई अनावश्यक वस्तु है? क्या लड़कियों में मानवीय गुणों प्रतिभा व कार्यक्षमता की कमी होती है?

उत्तर होगा बिलकुल नहीं। लड़की में भी माता–पिता का उतना ही अंश होता है जितना लड़के में। लड़की में भी जान होती है जितनी लड़के भ्रूण में। निरापराध लड़की की हत्या कराने वाले एवं करने वाले को भी उतना ही दण्ड मिलना चाहिये, जितना मानव की हत्या करने वाले को। गर्भपात द्वारा हत्या तो फांसी से भी क्रूर है। फांसी किसी भयंकर अपराध करने वाले को दी जाती है जबकि गर्भपात का शिकार शिशु बिलकुल निर्दोष है। यदि इन निर्दोष मासूम बच्चों को किसी न्यायालय में प्रस्तुत होने या न्यायालय में अपनी याचिका दायर कर केस लड़ने का अधिकार होता तो इन गर्भपात के शिकार बच्चों के माता–पिता व गर्भपात कराने वाले डॉक्टरों को विश्व की कोई शक्ति फांसी के फंदे से नहीं बचा पाती। विश्व जननी मदर टेरेसा के अनुसार – 'गर्भपात आज विश्व शान्ति को नष्ट करने का सबसे बड़ा कारण है। इसके अतिरिक्त किसी को चाहे वह माँ हो, बाप हो, डॉक्टर हो, कोई संस्था हो, या चाहे कोई सरकार हो, गर्भपात द्वारा जीवन लेने का कोई अधिकार नहीं है। अहिंसा का सन्देश देने वाले गौतम बुद्ध, भगवान महावीर, अहिंसा के पुजारी महात्मा गाँधी के देश में इस प्रकार गर्भ में हिंसा करना अशोभनीय प्रतीत होता है।

परिणाम यह निकला कि लिंग परीक्षण के बाद गर्भपात में 97 प्रतिशत गर्भस्थ बालिकाओं की ही हत्या की गई। एक आंकड़े के अनुसार पिछले पाँच सालों में बालिका भ्रूण को खत्म करने की संख्या लगभग 200 प्रतिशत बढ़ी

*प्राध्यापक एवं विभागाध्यक्ष (हिन्दी) शासकीय कालिदास कन्या महाविद्यालय, उज्जैन (म.प्र.) भारत

हैं। इस अमानवीय प्रवृत्ति ने स्त्री पुरूष की संख्या के अनुपात में गहरा असन्तुलन पैदा कर दिया है। जनसंख्या का नवीनतम लिंगानुपात का जो आंकड़ा प्रस्तुत किया है –

वर्ष 2011 की जनगणना के अनुसार हरियाणा में 877, दमन में 591, पंजाब में 893 तथा उत्तराखण्ड में 963 स्त्रियाँ प्रति 1,000 पुरूष है जो बहुत कम है। स्त्री अनुपात की यह घटती हुई संख्या बहुत चिन्ताजनक है क्योंकि इससे समाज में अनैतिकता और व्याभिचार को बढ़ावा मिलेगा। बालिकाओं के घटते अनुपात में समाज से नई प्रकार की समस्याएँ जन्म लेगी और विद्रूपता आयेगी। जैसे बहु पति विवाह प्रथा, वेश्यावृत्ति, बलात्कार, अनमेल विवाह आदि को प्रोत्साहन मिलेगा। जिसके परिणाम स्वरूप एड्स जैसी महामारी गंभीर रूप में बढ़ेगी।

आज समय की मांग के अनुरूप सरकार ने केन्द्रीय महिला एवं बालविकास मंत्रालय ने हाल में आध्यात्मिक गुरू श्री रवि शंकर, माता अमृतानंदमयी, सहित प्रख्यात योग गुरू बाबा रामदेव को पत्र लिखकर कन्याओं को बचाने का नेतृत्व करने का आग्रह किया है। इसी सन्दर्भ में जैन धर्म के ख्याति प्राप्त सन्त आचार्य श्री विद्यासागरजी, आचार्य श्री ज्ञानसागरजी, मुनि श्री तरूण सागरजी, मुनि श्री जिनरत्न सागरजी, मुनि श्री रश्मिरत्न विजयजी ने तो कन्याओं बचाओ अभियान कई वर्षो पूर्व से प्रारम्भ कर दिया है। वे अपने प्रवचनों, आलेखों व पुस्तकों के माध्यम से जनता का ध्यान इस ओर आकर्षित कर रहे है। सरकार का मानना है धर्म गुरू अगर यह अभियान चलाते हैं, तो जनता पर निश्चित रूप से असर पड़ेगा और लोग कन्याओं को लेकर संवेदनशील होगें। सरकार ने तय किया है कि सभी धर्म गुरूओं को जनसंख्या में बालक बालिका अनुपात के आंकड़े उपलब्ध करावाए जाएगे ताकि वे अपने प्रवचनों के दौरान इनका उपयोग कर लोगों को कन्याएँ बचाने के लिये प्रेरित कर सके। इसके अलावा महिला एवं बालविकास मंत्रालय कन्या भ्रूण हत्या की हानियों के प्रति लोगों को जागरूक करने के लिये 11वीं पंचवर्षीय योजना में विशेष अभियानों और योजनाओं पर भी काम कर रहा है। गरीबी के चलते कन्याओं से परहेज करने वाले अभिभावकों को आर्थिक मदद देने, लड़कियों के लिये विशेष पालना घर खोलने और लड़कियों की नियमित स्वास्थ्य जाँच व्यवस्थाओं पर सरकार सोच रही है।

कन्याओं की रक्षा हेतु मेरे कुछ सुझाव निम्नलिखित है–

1. बचपन से ही माता–पिता कन्याओं के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण अपनाते हुए उन्हें प्रत्येक क्षेत्र में समान अवसर उपलब्ध कराएँ।
2. आर्थिक सम्पन्नता हेतु कन्याओं की भागीदारी को सहजता से स्वीकारना आज की अनिवार्यता बन चुकी है, फिर क्यों न बेटियों को भी प्रारम्भ से ही घर के साथ बाहरी क्षेत्र में भी आत्मनिर्भर बनाया जाए।
3. कन्याओं में आत्मबल व आत्मविश्वास पैदा करे जो विपरीत परिस्थितियों से जूझने व जोखिम पूर्ण कार्य को सफलतापूर्वक पूर्ण करने में सहायक सिद्ध हो।
4. बेटी के गरीब माता–पिता पुत्र–पुत्री का भेदभाव न करे तभी बेटियाँ बेटों से किसी भी कार्य में पीछे न रह सकेगी।
5. बेटी के गरीब माता–पिता को शासन आर्थिक मदद प्रदान करे ताकि वे बेटियों को उच्चशिक्षा दिलाकर स्वाबलम्बी बना सके।
6. माता–पिता, पुत्र–पुत्री का भेदभाव न करें तभी बेटियाँ बेटों से किसी भी कार्य में पीछे न रह सकेगी।
7. कन्या भ्रूण हत्या करने वाले स्वीकृत या अस्वीकृत संस्थानों निजी क्लिनिकों के डॉक्टरों को जिन्होनें ऐसे घृणित कार्य करके लाखों रूपये कमाए, उन्हें शासन द्वारा कड़ी से कड़ी सजा अवश्य मिलना चाहिए ताकि कन्या रत्न की रक्षा की जा सके।

नारी तो सृष्टि की जननी व पुरूष की प्रेरणा शक्ति है। इतिहास साक्षी है कि नारी ने न केवल अपने को पुरूष के समकक्ष अपितु उनसे भी श्रेष्ठ सिद्ध किया है असुरों का संहार करने वाली माँ दुर्गा, त्याग और तपस्या की मूर्ति सीता यमराज को पराजीत करने वाली सती सावित्री, शास्त्रार्थ करने वाली मैत्रैयी, गार्गी, कुशल शासिका अहिल्याबाई, रानी लक्ष्मीबाई, इन्दिरा गाँधी, किरण बेदी, मदर टेरेसा, सुधा मूर्ति, कल्पना चावला, सुनीता विलियम्स आदि नारियों ने सिद्ध कर दिया है कि वे साहस कार्यक्षमता प्रतिभा आदि किसी भी क्षेत्र में कम नहीं है। इन सभी नारी रत्नों ने अपने वंश व माता–पिता का नाम रोशन किया। महाकवि कालिदास व सन्त तुलसी दास को महान साहित्यकार बनाने वाली नारियाँ ही थी। यह कथन सत्य है कि –

नारी कल भी भारी थी, आज भी भारी है,
पुरूष कल भी आभारी था, पुरूष आज भी आभारी है।

पिता जिसे आकाश से भी ऊँचा कहा गया है और माँ जिसे पृथ्वी से भी अधिक भारी यानि सन्तान के प्रति अगाध ममता, निस्वार्थ त्याग की भावना के कारण देवी देवताओं से भी ऊँचा स्थान दिया गया है। उन्हें अपने पितृत्व एवं मातृत्व की गरिमा बनाये रखने के लिए यह दृढ़ निश्चय करना होगा कि बालिका भ्रूण हत्या को बढ़ावा देने वाले भ्रूण लिंग परीक्षण को न स्वयं करायेगें और न अन्य लोगों को कराने की सलाह देगे। प्रत्येक पति–पत्नी ऐसा दृढ़ निश्चय कर ले तो विश्व की कोई भी शक्ति उनकी गर्भस्थ कन्या सन्तान की हत्या नहीं कर सकता। अब वक्त आ गया है कि हम सभी को मिलजुलकर कन्याओं की रक्षा करने का बीड़ा उठाना है और उन्हें विशाल आकाश प्रदान करना है ताकि वे सपनों को साकार करे।

नारी को दृढ़ निश्चय कर संकल्प करना होगा –

उठो! हम प्रण लेगें, ये पाप नहीं होने देगें।
एक नन्हीं मासूम। पवित्र कली को, यूँ नहीं सोने देगें।
एक नहीं तीन–तीन हत्यारे है,
एक माँ, कराया गर्भपात,
दूसरा पति, जिसने किया प्रेरित,
तीसरा डॉक्टर, किया क्रूर कार्य।
यदि स्त्री ही समाप्त हो जायेगी,
तो पुरूष भी कहाँ शेष बचेगें?
बहनों ! तुम्हें आगे आना होगा,
दृढ़ संकल्प लेना होगा,
बालिका–भ्रूण–हत्या के विरूद्ध
एक व्यापक अभियान छेड़ना होगा।
समाज को नये ढाँचे में ढालना होगा।
राष्ट्र को 'बेटियाँ बचाओ' आन्दोलन चलाना होगा।

संदर्भ ग्रन्थ सूची :–

1. हिन्दुस्तान टाइम्स दिनांक 16–04–1994
2. बचाओ ? बचाओ लेख – मुनि रश्मिरत्न विजयजी महाराज।
3. गर्भपात – उचित या अनुचित फैसला आपका – श्री गोपीनाथ अग्रवाल।
4. नारी दशा और दिशा – आशारानी व्होरा।
5. महान नारियाँ – डॉ. वन्दना जैन।

****

प्रेमचंद उत्कर्ष काल की सर्वोत्कृष्ट प्रमुख कहानियां (कथानक)

डॉ. गुलाब सोलंकी * प्रो. वीणा बरडे **

प्रस्तावना – हिन्दी कहानी क्षेत्र में युग प्रवर्तक के नाम से प्रसिद्ध प्रेमचंद का वास्तविक नाम धनपतराय और चाचा ने नवाबराय से पुकारा। प्रेमचंद ने सर्वप्रथम उर्दू में कहानी लिखना आरंभ किया।

प्रेमचंद ने हिन्दी कहानी को बाह्‌य घटनाओं के जंजाल से मुक्त करके मानव हृदय के रहस्योद्घाटन का माध्यम बनाया उन्होंने लगभग 262 कहानियां लिखी कहानियां भारतीय जीवन का चिट्ठा हैं, इसमें गांव से लेकर शहर तक झोपड़ी से लेकर महल तक खेतों से लेकर खाने तक पंचायत से लेकर कचहरी तक, पाठशाला से लेकर कॉलेज तक तत्कालीन मानव समाज का चित्रण किया हैं।

प्रेमचंद की उत्कर्ष कालीन कहानियां प्राय: वैज्ञानिक अनुभूतियों की सुदृढ़ नींव पर स्थित हैं इस काल की कहानियों में गरीबी की अनुभूति का सजीव चित्रण, शोषण की अनुभूति का चित्र, आर्थिक विषमता का मार्मिक निरूपण और कहीं विद्रोह एवं क्रांति की अनुभूति का सजग चित्रण हुआ हैं। कफन, पूस की रात और मंत्र। कहानियों का कथानक का सर्जन मनोविज्ञान की अनुभूति के धरातल पर हुआ हैं। संवेदना का सूत्र संपूर्ण कथानक की सृष्टि में प्रयुक्त हुआ हैं कफन कहानी के कथानक में मूल संवेदना आधुनिक आर्थिक विषमता, बेरोजगारी और निकम्मी समाज व्यवस्था के कारण सर्वहारा वर्ग कितना स्वार्थी, कामचोर, और जड़ हो जाता हैं वह अपनी मृतक पुत्रवधु औंर पत्नी के कफन के लिए एकत्र चंदे के धन को शराब पीने में व्यय कर डालता हैं, अपने कुकृत्य का समर्थन करने के लिए समाज के रीति रिवाज को कोस्ता हुआ कहता हैं कि कैसा बुरा रिवाज हैं, जिसे जीते जी तन ढकने को चिथड़ा भी न मिले उसे मरने पर क्या चाहिए। कफन तो लाश के साथ जल जाता हैं।

कफन कहानी के कथानक का आरंभ घीसू और माधव की दीन–हीन एवं कारूणिक समस्या से होता हैं, जिसमें माधव की पत्नी को बच्चा होने वाला हैं, वह प्रसव पीड़ा से छटपटा रही हैं। जबकी झोपड़ी के द्वार पर घीसू और माधव दोनों बाप–बेटे अलाव के सामने चुपचाप बैठे यह इंतजार कर रहे हैं कि कब माधव की पत्नी मरे घर में शांति हो। कथानक में उत्तेजक घटना कोठरी में माधव की पत्नी मर जाती हैं।

दोनों (घीसू–माधव) कफन और लकड़ी के लिए चंदा इक्ठठा करते है। औंर कफन खरीदने के लिए कई दुकानों के चक्कर लगाते कुछ नहीं खरीदते औंर शाम हो जाती हैं।

कथानक में चरम सीमा आती हैं जहां दोनों किसी देवी प्रेरणा से शराबखाने के सामने पहुंचते हैं और कफन के पैसे से, तली मछलियाँ, चिखौना खाकर पेटभर शराब पी जाते हैं, और कहते हैं –कौनसा बहु के साथ जाता हैं, वह चिता में जल जाता हैं यदि लोग पूछेंगे तो कह देंगे, पैसा कमर से कही खिसक गया और ढूढने पर नहीं मिला। दोनों शराब के नशे में चूर होकर गाने नाचने लगते हैं उछलते कूदते हैं, गिरते मटकते हैं और नशे में मदमस्त होकर गिर जाते हैं। कहानी में ग्रामीण जीवन की अव्यवस्था, रूढ़िग्रस्तता, बेकारी, गरीबी, नाशखोरी, महिलाओं की दुर्दशा का चित्रण सफलतापूर्वक किया हैं। पूस की रात कहानी का कथानक मनोवैज्ञानिक अनुभूति के धरातल पर निर्मित हैं। कथानक हल्कू नायक ऋणग्रस्त किसान की दयनीय स्थिति से आरंभ होता हैं, जिसने पेट काटकर तीन रूपये कम्बल लेने के लिए बचाए हैं परन्तु साहूकार की गालियों के भय से रूपया उन्हें दे देता हैं।

पूस की अंधेरी रात में हल्कू ठिठुरता हुआ खेत की रखवाली करने पहुंचता हैं, अनेक बार चिलम पीकर अपने को गर्म रखने का प्रयास करता हैं। किन्तु जाड़ा किसी पिशाच की तरह उसकी छाती पर चढ़ ही चला जाता हैं। अपने को कुत्ते को चिपटाकर लोटने पर भी जाड़ा दूर नही होता।

कथानक में उत्तेजक घटना हल्कू पत्तियों की राख के पास चादर ओढ़कर बैठ जाता हैं कुछ गर्मी आती हैं, शीत के प्रकोप के साथ आलस्य भी बढ़ने लगता हैं। तभी खेत में नीलगाएं आ जाती हैं। कुत्ता बार–बार भौंक कर सूचना दे रहा हैं, हल्कू वहां से नहीं उठता सारी फसले नीलगाएं चर जाती हैं। सुबह पत्नी मुन्नी आकर हल्कू को जगाती हैं तुम यहां सो रहे हो औंर उधर खेत का सत्यानाष हो गया हैं। हल्कू संतोष के साथ कहता हैं–'रात की ठण्ड में यहां सोना न पड़ेगा।' कहानी में किसान की मजबूरी, गरीबी और ऋण आदि समस्यों कस चित्रण मिलता हैं। किसान वर्ग के संबंध में कहा जाता हैं कि किसान ऋण में पैदा होता हैं और ऋण में ही मर जाता हैं चरितार्थ होता हुआ दिखाई देता हैं।

मनोवैज्ञानिक अनुभूति के धरातल पर निर्मित कहानी मंत्र भी डॉ.चड्ढा के गोल्फ खेलने के लिए शाम को तैयार होते समय एक गरीब आदमी अपने बच्चे को लेकर आता हैं डॉक्टर चड्ढा उसे फटाकर देते हैं और खेलने चले जाते हैं। बीमार बच्चा संसार से चल बसता हैं।

कहानी के विकास क्रम में उत्तेजक घटना डॉक्टर के इकलौते पुत्र की वर्षगाँठ हैं उत्सव मनाया जा रहा हैं। उनके लड़के ने अनेक सांप पाल रखे हैं एक काला नाग लड़के को डस लेता हैं जिससे वह बेहोश होकर गिर जाता हैं। उस पर विष का भयंकर प्रभाव हो जाता हैं।

कथानक में घात प्रतिघात आता हैं लड़के को बचाने के लिए अनेक उपचार होते हैं किन्तु सभी असफल हो जाते हैं। अंत में बुढ़े भगत को बुलाया जाता हैं, जिसके बच्चे का डॉ.चड्ढा ने ईलाज नहीं किया था औंर वह संसार से विदा हो गया था। चेतन और अचेतन के संघर्ष और अन्तर्द्वन्द के पश्चात वह बुढ़ा डॉ.चड्ढा के बच्चे को बचाने उसके घर पहुंचता हैं, और अपने मंत्र द्वारा बच्चे को बचा लेता हैं।

* प्राध्यापक (हिन्दी) शासकीय महाविद्यालय, धामनोद, जिला – धार (म.प्र.) भारत
** सहायक प्राध्यापक (राजनीति विज्ञान) शासकीय महाविद्यालय, धामनोद, जिला – धार (म.प्र.) भारत

कथानक चरम सीमा एवं अंत की ओर डॉक्टर उसे बुढ़े को पुरस्कार देना चाहता हैं किन्तु वह चुपचाप घर लौट आता हैं। वह डॉक्टर चड्डा के घर का तम्बाकू तक नहीं पीता हैं।

अंत में डॉ.चड्डा को अपनी भूल का ज्ञान होता हैं, वह पश्चाताप करता हैं। उस बुढ़े भगत को ढूंढकर एवं उनके पैरो पर गिरकर उससे क्षमा मांगने का निश्चय करता हैं। कथानक पूर्णतया सुसम्बद्ध हैं रोचक हैं तथा आदि, मध्य एवं अवसान से पूर्णतया सुव्यवस्थित हैं।

कहानी में गरीब व्यक्ति की हृदय विशालता एवं अमीरी की हृदय विशालता एवं अमीरी की हृदय संकुचता एवं अहंभाव का प्रभाव दिखायी देता हैं। इसलिए समाज में यह कहा भी जाता हैं, कि 'गरीब का दिल बड़ा होता हैं, वह अहं ये दूर एवं मदद करने में आगे रहता हैं जबकि अमीर दिल का छोटा अहं से भरा एवं मदद एवं सेवा भावों से कोसो दूर रहता हैं।'

प्रेमचंद ने अपनी कहानियों में सामाजिक, धार्मिक एवं संस्कृतिक क्षेत्रों से सामग्री लेकर कथानको की रचना की हैं। जीवन के विविध पक्षों की कथानक के माध्यम से संजोया हैं जिससे सरसता, स्वाभाविकता एवं यथार्थता का समावेश हो गया हैं। जिससे जिज्ञासा एवं कौतूहल को जागृत करते हुए मानव जीवन का सच्चा रूप प्रस्तुत किया हैं।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. प्रेमचंद साहित्य।
2. प्रेमचंद की कहानियां।

****

साहित्य - भाषा की पृष्ठभूमि : लोकभाषा

डॉ. सुभाष शर्मा *

प्रस्तावना – लोकभाषा का सीधा-सीधा अर्थ होता है - लोक की भाषा ! लोकभाषा उस व्यापक जनसमूह की भाषा का नाम है, जो लोकांचलों की पगडंडियों, चौपालों, खेत-खलिहानों, नगरपालिका, जनपदों से लेकर नगरीय-राजपथों तक फैला होता है, हमारे घर वाले, जान-पहचान वाले, अड़ोसी-पड़ोसी, गाँव वाले, गाँव की गलियों में गिल्ली-डंडा खेलते छोटे-छोटे बच्चे चौबीस घण्टे जिस भाषा में अपना संवाद किया करते हैं, उस भाषा को लोकभाषा कहते हैं, यह भाषा उस भाषा से सर्वथा भिन्न होती है जिसके विषय में पाणिनि ने लिखा है -

'एक: शब्द: सम्यक् प्रयोक्तव्या
स्वर्ग लोके कामधुकं च भवेत् '

लोकभाषा न तो स्वर्ग की ओर ले जाने वाली भाषा है, और न स्वर्ग की भाषा है, लोकभाषा इसी लोक की भाषा है, इसी धरती की भाषा है जिस पर हम रहते हैं, यह धरती की कोख से ठीक वैसे ही पैदा होती है जैसे घास पैदा होती है, कॉस पैदा होती है, जैसे पौधे उगते हैं, जैसे पेड़ों का जन्म होता है,

धरती की कोख से पैदा होने के कारण धरती की धूल-मिट्टी, उसका कूड़ा करकट भी, धरती की इस भाषा में घुला मिला होता है, किंतु धन्य है यह धरती की धूल, जिसमें रंग बिरंगे फूल खिलते हैं,

कहने को तो लोकभाषा अनपढ़, निरक्षर, अशिक्षित लोगों की भाषा होती है, जिन्हें आजकल की भाषा में 'वैकवर्ड' कहकर हम अपमानित करते हैं, किंतु अपने भाषाशास्त्र के ये इतने बड़े शास्त्री होते हैं, अपनी भाषा का इन्हें इतना अधिक व्याकरण आता है जिसके आगे बड़े-बड़े वैयाकरण भी विस्मय -विमूढ़ हो जाते हैं, प्रसंगवश एक प्रसंग मैं आपके सामने रखना चाहूँगा, बात उस समय की है जब संस्कृत भाषा लोकभाषा हुआ करती थी, अनपढ़ एवं पढ़े-लिखे- सभी संस्कृत बोलते थे, एक दिन महर्षि पाणिनि कहीं घूमने निकले थे, मार्ग में उन्होंने देखा, कि फूलों का एक खेत है, खेत की मेढ़ पर बैठी एक माली की लड़की माला बना रही है, माला में वह कॉच, मणि और सोने के मनियों को एक ही सूत्र में पिरो रही थी, पाणिनि घोड़े से उतरे, उस लड़की के निकट गये और पूछा —

'कांच मणिं कांचन मेकसूत्रे
गृथ्नासि वाले तव क: विवेक: ?'

ए लड़की, तेरा यह कौन-सा विवेक, कौन-सी बुद्धिमत्ता है, कि तू एक ही सूत्र में कॉच , मणि और कांचन के मनियों को गूँथ रही है, यदि माला ही बनाना है तो कॉच ही कॉच के मनियों की माला बना या मणियों की ही माला बना या सोने की ही माला बना, यह खिचड़ी माला क्यों बना रही है ? उस लड़की ने उत्तर दिया -

'महामतिर्पाणिनि मेकसूत्रे
श्वानं युवानं मधवान् माह,'

महामति पाणिनि ने भी तो श्वान, युवान और मधवान को एक ही सूत्र में गूँथ दिया है, कहाँ कुत्ता और कहाँ इन्द्र ! किंतु पाणिनि ने उन्हें एक ही धागे में बाँध दिया है, लड़की का उत्तर सुनकर पाणिनि दंग रह गये, वह लड़की नहीं जानती थी कि वह जिस आदमी से बातें कर रही है, वे महर्षि पाणिनि ही हैं, पाणिनि ने संज्ञा प्रकरण में संज्ञा का उदाहरण देते हुए श्वान, युवान और मधवान को एक सूत्र में लिखा है,

कहने का अर्थ यह है कि लोकभाषियों के व्यावहारिक ज्ञान का आधार पोथियाँ नहीं होती, किंतु पोथियों में जो लिखा जाता है, उसका ज्ञान उन्हें बहुत पहले से होता है,

लोकभाषा को लेकर पोथियाँ लिखी जाने लगती है, साहित्य जब अपनी अभिव्यक्ति लोकभाषा में कर उठता है, तो लोकभाषा साहित्य की भाषा बन जाती है और भाषा का सामाजिक इतिहास, साहित्यिक इतिहास में बदल जाता है,

कहने वालों ने साहित्य की भाषा को 'कूप-जल' और 'लोकभाषा' को 'बहता नीर' कहा है, कूप-जल और वहता-नीर — ये दोनों व्यंजक हैं, कूप-जल का अर्थ है ठहरा हुआ पानी, एकत्रित पानी, रुका हुआ पानी और 'बहता-नीर' की व्यंजना है, प्रवाहशीलता, निरंतरता, नवीनता, पवित्रता,

जब हम तीर्थों को जाते हैं, तो हम किनारों का ठहरा हुआ, रुका हुआ, सड़ा हुआ गंदा जल भर कर नहीं लाना चाहते, धारा का बहता हुआ नीर भर कर लाना चाहते हैं, हम अपने घर प्रवाह लेकर आना चाहते हैं, पवित्रता लेकर आना चाहते हैं, ताकि हमारा घर भी पवित्र हो जाये, हमारा घर एक तीर्थ बन जाये,

अपनी बात की पुष्टि के लिये में आपको ग्यारहवीं शताब्दी की ओर ले जाना चाहता हूँ, जब भारत में संस्कृत और अपभ्रंश - दो भाषाएँ प्रचलित थी, संस्कृत, जिसे देश के एक कोने में बैठे कुछ मुट्ठी भर पढ़े लिखे, संभ्रांत लोग ही बोला करते थे, दूसरी ओर अपभ्रंश थी, जिसे देश के एक छोर से लेकर दूसरे छोर तक फैले वे तमाम लोग बोला करते थे, जो पढ़े लिखे नहीं थे, जो अशिक्षित, निरक्षर और गॅवार थे, संस्कृत जिनकी समझ में नहीं आती थी, उनके शब्द उनकी समझ में नहीं आते थे, देश के वृहद जनसमूह के लिये संस्कृत एक अजनबी भाषा बन गयी थी,

जब कोई भी भाषा देश की जनता के लिये अजनबी भाषा बन जाती है, उसकी अभिव्यक्ति जब लोगों की समझ में नहीं आती है, वह भाषा एक

* प्राचार्य, शासकीय महाविद्यालय, विजयपुर, श्योपुर (म.प्र.) भारत

दिन मर जाती है और पन्द्रहवीं शताब्दी तक आते-आते संस्कृत का राम नाम सत्य हो चुका था,

किंतु अपभ्रंश का 'वहता-नीर' निरंतर बहता गया, छलांगें भरता हुआ, छल-छल करता-सा , एक प्रदेश से दूसरे प्रदेश में, तीसरे प्रदेश से चौथे प्रदेश में, अंततः समूचे देश में फैल गया, भिन्न-भिन्न प्रदेशों में अपभ्रंश ने भिन्न-भिन्न रूप धारण कर लिये, 'प्राकृत-चंद्रिका' में अपभ्रंश के सत्ताईस भेद गिनाये है -

'ब्राचड़ी लाट वैदर्भा वुपनागर नागरौ
बार्बरावन्त्य पांचाल टाक पांड्य कैकया:।।
गौडी द्वैव पाश्चात्य पांड्य कौंतल सैंहला:
कालिंग्य प्राच्य कर्णाट कांचन द्राविड़ गौर्जरा:।।
अभीरो मध्यदेशीय सूक्ष्मभेद व्यवस्थिता
सप्तविंशत्यपभ्रंशा: वैतालादिप्रभेदत:।।'
-प्राकृत चंद्रिका

अपभ्रंश के भिन्न- भिन्न भेद पंद्रहवीं शताब्दी तक आते-आते भिन्न-भिन्न प्रदेशों में पहुँच कर भिन्न-भिन्न बोलियों में बदल गये, राजस्थान की प्रचलित मौखिक अपभ्रंश, जिसे विद्धानों ने 'शौरसेनी-अपभ्रंश' कहा है, तेरहवीं शताब्दी तक आते-आते उसने 'पिंगल' नाम धारण कर लिया, राजस्थान और मालव के कवियों द्धारा जिस में प्रभूत मात्रा में रचना की गयी, पिंगल की अनुकृति पर राजपूताने में मारवाड़ के आधार पर 'डिंगल' बनी, जैन और भाटों का भदंत इसी भाषा में है, उस समय गीतियाँ और चर्चरियाँ जन-जन में अधिक प्रचलित थी, इसीलिये जैन मुनियों ने उन्हीं को पकड़ा, रसीली गीतियों और चर्चरियों को गा-गाकर ये जैन-धर्म का उपदेश जनता को देते थे, जैन मुनियों द्धारा इन्हीं गीति और चर्चरी संज्ञक लोक-छन्दों में लिखी गयी उपदेशात्मक-रचनाएँ शनै:-शनै:च 'रास' बनती गयी, हिन्दी साहित्य के इतिहास में जो 'धर्मरास' के नाम से अंकित हैं, चारण और भाट भी जनता से अधिक जुड़े थे, इसीलिये इन्होंने भी जो कुछ कहना चाहा था वह जनता की भाषा में ही कहा, किंतु चारण, भाटो और जैन मुनियों की लोक-सम्पृक्ति में थोड़ा-सा अन्तर है, जैन मुनि जनता के बीच जाकर भजन गाते थे और भाट थे, जो जनता के गुण गाते थे, राजस्थान और उत्तर मध्यप्रदेश के गाँवो में आपको आज भी कुछ भाट मिल जायेंगे, जो गाँव-गाँव जाकर विरुदावली गाते फिरते हैं, ये जनाश्रित भाट है, कुछ राज्याश्रित भाट भी थे, जिन्होंने अपने आश्रयदाता राजाओं के गुणों को गाया है और रासो-ग्रंथों की रचना की है।

यह वह समय था, जब एक ओर रासो लिखे जा रहे थे, दूसरी ओर नाथ और सिद्धों के रहस्यवादी पद भी थे, नामदेव रचना कर रहे थे, मुल्ला दाऊद भी प्रेमाख्यान लिख रहे थे, मिथिला में पौराणिक संस्कृति के अनुरूप कृष्ण-धारा का उत्स फूट पड़ा था और मैथिल-कोकिल की कूक ने मिथिला की अमराइयों को मूर्च्छना से भर दिया था, अपनी जन्मभूमि से विकसित होकर शौरसेनी अपभ्रंश की परिष्कृत बोली -बृजभाषा का रूप धारण कर राजस्थान, मालवा, मारवाड, और गुजरात क्या सारे उत्तर भारत की लोकप्रिय भाषा बन गयी थी, कृष्ण-भक्त कवियों ने जब इस भाषा को अपनी बॉसुरी में भरकर गाया है, तो पक्षियों ने भी अपना गाना बंद कर दिया है, परिन्दों के 'स्वर' बंद और 'पर' बंद हो गये हैं, कृष्ण-भक्ति का प्रवाह जब इन कवियों के कण्ठ से वहा है, तो क्षण-भर के लिये यमुना का प्रवाह भी जैसे रुक गया है, सूरदास का सूरसाग बृजभाषा के माधुर्य का सागर है, इस सागर की एक बूंद को भी जिसने चखा है, उसे लगा है जैसे उसने अपने मुँह में माखन और मिश्री को रख लिया है, कहते हैं, सूरसागर श्रीमद्भागवत का काव्यानुवाद है किंतु भागवत लिखने वाले की आत्मा मुझे क्षमा करे, जो माधुर्य, जो सौंदर्य, जो सारल्य सूर के पदों में है, वह भागवत के श्लोको में कहीं नहीं है -

और रीतिकवियों ने बृजभाषा में इतना सलौना लिखा है कि जो भी उसे पढ़ता है, उस पर जादू और जो उसे सुनता है उस पर टोना हो जाता है, श्रृंगार के गुलाल की एक मुट्ठी भरकर इन्होंने जिधर भी फैक दी है, उधर का क्षितिज लाल हो गया है,

रीतिकाल को लोगों ने श्रृंगार-काल ही नहीं कलाकाल भी कहा है, श्रृंगार यदि रीतिकवियों के आगे हाथ जोड़कर खड़ा है, तो कला उनके चरणों में साष्टांग होकर पड़ी है, हिन्दी साहित्य के इतिहास में यह पहली बार हुआ है, जब कविता ने कला की पूजा की है और कवि ने यह जाना है कि वह कलाकार भी होता है,

मैं रीतिकाल के इन कलाधरों को नमन करता हूँ , उनकी कला को प्रणाम करता हूँ , किंतु कहना चाहता हूँ, कि जिस कला में उसके काल की प्रवृत्ति, उसके समाज की सम्पृक्ति, उसके जीवन की प्रतिकृति नहीं होती, वह कला का पुतला तो बन सकती है किंतु प्राण नहीं,

रीतिकाल में अपनी समस्याऐं थी, अपने सवाल थे, अपने संघर्ष थे, किंतु रीतिकवियों को जैसे, वे सवाल सुनायी ही नहीं दिये, जिसका उत्तर वे अपनी कविता में खोजते, उन्हें वे संघर्ष दिखाई ही नहीं दिये, जिनके लिये उनकी लेखनी संघर्ष करती, वे जीवन-भर काव्यशास्त्र की गुत्थियों को सुलझाते रहे, समाज की गुत्थियों को सुलझाने की बात ही उन्होने कभी नहीं सोची,

वह कला - जो अपने समाज की समस्याओं को नहीं सुलझाती, उसकी गुत्थियों में स्वयं को नहीं गूँथ देती, जो अपने समाज के प्रश्नों के उत्तर नहीं देती या देना नहीं चाहती, वह कवि तो पैदा कर सकती है किंतु महाकवि नहीं।

दुनिया की कोई भी भाषा हो, कला हो, कविता हो जब वह पंडितों के पींजड़े में बंद हो जाती है, 'लोक' के आसन से हटकर 'साहित्य' के सिंहासन पर बैठ जाती है, अपने लोकधर्म को भूल जाती है, वह भाषा जो अपने लोगों से बात नहीं करती, अपने लोगों की बात नहीं करती, अपने लोगों के संघर्ष का नेतृत्व नहीं करती, उस भाषा का नेतृत्व भी जनता नहीं करती है, भाषा के इतिहास से तो क्या, धरती के इतिहास से उसका नाम मिट जाता है।

जनता से कट जाने से रीति कविता ने भी अपना जनाधार खो दिया और रीति कविता इतिहास के अँधेरे में कहीं खो गयी।

आज खड़ीबोली को जनादेश मिला हुआ है, वह हिन्दी-साहित्य के क्षितिज पर गर्वोन्न्त होकर खड़ी है और अपने 'खड़ीबोली' नाम को सार्थक सिद्ध कर रही है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. नई कविता नये कवि विश्वम्भर मानव 1968
2. आधुनिकता के पहलू - विपिन कुमार अग्रवाल 1972
3. कविता के नये प्रतिमान - नामवर सिंह।
4. काव्य बिम्ब - डॉ. नगेन्द्र।
5. चेतना के बिम्ब - डॉ. नगेन्द्र।
6. आलोचना की आस्था - डॉ. नगेन्द्र।
7. अनुसंधान हिन्दी काल में रूप विधान - डॉ. नगेन्द्र।

****

जितना तुम्हारा सच है, उतना ही कहो

डॉ. रत्नेश विष्वक्सेन *

शोध सारांश – अज्ञेय की संपूर्ण रचनाधर्मिता प्रयोगवादी रही है। सौंदर्यशास्त्रीय तर्कों पर कलावादी इन दोनों स्तर पर 'राहों का अन्वेषी' होना रचना और अज्ञेय के हक में है। प्रगतिवादी सामाजिकता और वास्तविकता के करीब-करीब विद्रोह की चेतना जो विकसित होती हैं वह अज्ञेय की रचनाधर्मिता में फलीभूत होती है। अज्ञेय रचना प्रक्रिया के पथिक हैं इसलिए भाषा और भाषिक व्यंजना के प्रति नवीनता और प्रयोग के आग्रह हठ की हद तक है। तसल्ली इसी बात की है कि वह हठ नितांत सृजनात्मक है।

शब्द कुंजी – रचनाधर्मिता, प्रयोगवाद, व्यक्तित्व, द्वीप, अस्मिता, अन्वेषण, उन्मेष।

प्रस्तावना – रचना का स्थापत्य और व्यक्तित्व का आग्रह क्रमश: भाषा की खोज और अनुभव की अद्वितीयता के द्वन्द्व से विकसित होता है। पहली खोज अभिव्यक्ति की है, संप्रेषण की है। संप्रेषण सत्य का करना है, इसलिए मुक्तिबोध के शब्दों में कहें तो 'जड़ीभूत सौंदर्याभिरूचि' के विरूद्ध भाषिक नवीनता की खोज इस स्तर पर होती कि

'ये उपमान अब मैले हो गए हैं,
देवता इन प्रतीकों के कर गए हैं कूच।

अब सत्य का संप्रेषण करना है, इसलिए उसके साधनो को ठीक करना होगा। कहना होगा कि 'भाषा' उसकी पहली अनिवार्य शर्त है, इसलिए परम्परा में चले आ रहे प्रतीकों और उपमानों को निकालना होगा, ताकि अभिव्यक्ति का तेवर और स्वर बदल सके, निखर सके।

भाषा के बदलाव पर अज्ञेय का इतना ज्यादा ध्यान क्यों है। रचना में परिवर्तन की आहट भाषा की धमक से मिलती है। परंपरा ने शब्दों को, सौन्दर्य के प्रतिमानों को बार-बार प्रयुक्त करके उसकी शक्ति को परास्त कर दिया है। अज्ञेय का रचना विवेक भाषा और व्यक्तित्व के सहारे क्रमश: अभिव्यक्ति और अस्मिता की खोज है। छायावाद में व्यक्ति है, प्रगतिवाद में समाज है, जो क्रमश: कल्पना और वास्तविकता से बनता-बढ़ता है। इस समीकरण को जरा ध्यान से देखें तो अज्ञेय का प्रयोग समझ में आता है। व्यक्ति की कुंठा और समाज की वर्जना थोड़ी लचीली होकर जो बनती है वह व्यक्तित्व की निर्मिति है। कल्पना की रसवत्ता और वास्तविकता की मूल्यवत्ता इस निर्मित व्यक्तित्व की अस्मिता है। अब समीकरण को पूरा करें तो कुंठा एवं वर्जना का रस एवं मूल्य ये दोनों मिलकर अज्ञेय की रचनाधर्मिता में अभिव्यक्ति और अस्मिता के काव्य प्रतिमान बनते हैं और यह कहते हैं कि –

'यह अद्वितीय अनुभव, जो मैंने जिया, सब तुम्हें दिया।

यह अद्वितीय अनुभव व्यक्तित्व का है। यह व्यक्तित्व समाज के छायावादी विद्रोह से नहीं बनता है, न ही समाज की प्रगतिवादी गलबाँही से। यह व्यक्तित्व इन दोनों की संधि बिंदु पर खड़ा है। हाँ यह जरूर कि अज्ञेय इस व्यक्तित्व निर्माण की यात्रा में व्यक्ति की तरफ है, इसलिए उनमें नदी (समाज) और द्वीप (व्यक्ति) के इस संसार में द्वीपत्व की रक्षा का स्नेह बार-बार उमड़ता है।

शहर का मध्यवर्गीय युवा त्रिशंकु की तरह है। पुरानी मान्यताओं को तोड़ना तो चाहा है पर नई चुनौतियों के खतरे उठाना शायद उतना आसान नहीं। इस द्वन्द्व में हरकतें बहुत है, मानसिक उठा-पटक कम नहीं, परंतु मुक्तिबोध के शब्दों में कहें तो 'कमजोरियों से लगाव' तोड़ना कठिन है। हदें जब इस द्वन्द्व को पार कर मानसिक विक्षोभ में बदलती है तो कुछ इस बेदिली और कोफ़्त के साथ कि-

पर प्यार में अभिमान की कसक, मुझको रोने नहीं देती।

यह अभिमान व्यक्ति का है, यह अहंभाव द्वीपत्व की रक्षा का है। निरपेक्ष होने का सारा दावा झूठा है, पर आश्चर्यजनक रूप से यह रचना के हक में चला जाता है।

निविड़ एकांत में गहन व्यथा का चयन सार्थक है। अज्ञेय के यहाँ मृत्यबोध बहुत है। यह मृत्यु काव्य के स्तर पर जीवन हो सकती है, पर वास्तविकता घिग्घी बँधाने वाली है। विश्वयुद्ध ने आदमी की कीमत कम कर दी। अस्तित्व पर यह आकस्मिक संकट गहराता चला गया। कविता व्यथा में और व्यक्ति एकांत में गहनतर होता चला गया। क्षण महत्वपूर्ण हो गया।

बाकी सब समय पराया है,
बस उतना क्षण अपना,
तुम्हारी पलकों का कँपना।

जब जिन्दगी के धनुष की डोरी इतनी कमजोर हो जाए कि प्रत्यंचा चढ़ाते ही टूट जाए, तब यह जरूरी हो जाता है कि साँसो के प्रत्येक उतरती-चढ़ती तनावों पर, क्षणों की कविता रची जाए। सार्त्र के अस्तित्ववाद और फ्रायड के मनोविज्ञान से लेकर आर्नलैंड एवं टी0 एस0 इलियट की निर्वैयक्तिकता का प्रभाव अज्ञेय पर बौद्धिक रहा है, पर अज्ञेय ने इन सिद्धांतो और प्रभावों को कई बार तोड़ा है। अपने-अपने अजनबी के मृत्युबोध को जिजीविषा से तो शेखर एक जीवन में भोक्ता रूप को लगाव से जोड़कर अज्ञेय ने मूलत: पश्चिमी अवधारणाओं का भारतीयकरण किया है। रामस्वरूप चतुर्वेदी अज्ञेय साहित्य के मर्मज्ञ विद्वान रहे हैं। अज्ञेय पर विचार करते हुए लिखा है 'अज्ञेय के कृतित्व में यह आधार वस्तु अपने विभिन्न पक्षों और संदर्भो में अंकित हुई है, और विडंबना यह है कि मृत्यु के अस्तित्ववादी

* सहायक प्राध्यापक (हिन्दी) स्नातकोत्तर, राँची कॉलेज, मोहराबादी, राँची (झारखण्ड) भारत

आतंक के समक्ष अनंत भारतीय जीवन प्रियता की मूल वस्तु को प्रतिपादित किया है।'

निष्कर्ष – जिस तरह 'कामायनी' प्रसाद की और 'राम की शक्तिपूजा' निराला की महत्वाकांक्षी रचना है ठीक उसी तरह अज्ञेय की असाध्य वीणा उनकी समस्त रचाव क्षमता के चरम का निदर्शन है। मुक्ति बोध 'अंधेरे' में अभिव्यक्त के सूत्र तलाश रहे हैं साहस के साथ, तो अज्ञेय अस्मिता के अन्वेषण में साधना-रत है। वीणा रूपी जीवन को साधने के लिए स्वयं का समर्पण या अहं की निष्कृति जरूरी है। काव्य के अंत में यह बात और महत्वपूर्ण हो जाती है कि –

'श्रेय नहीं कुछ मेरा,
मैं तो डूब गया था स्वयं शून्य में–
वीणा के माध्यम से अपने को मैंने
सब–कुछ को सौंप दिया था।
सुना आपने जो वह मेरा नहीं,
न वीणा का थां
वह तो सब–कुछ की तथता थी।'[2]

काव्य साधना के अंत में कवि साधकवत् सत्य की अनिर्वचीयता को महसूस कर पाता है और यह अनुभूतिमयता व्यक्त हो, कहाँ पाती है। इस चरम उपलब्धि के लिए 'तथता' शब्द का प्रयोग सार्थक है। ठीक इसी स्तर पर रचना खत्म न होकर फिर से आरंभ हो जाती है। रामस्वरूप चतुर्वेदी ने ठीक कहा है कि 'बड़ी रचनाओं का आरंभ अंत में समा जाता है और अंत आरंभ में।'[3] अज्ञेय के शब्दों में उनकी शिष्यता का मार्ग इसी साधना से होकर गुजरता है। अपने भीतर के उन्मेष से हमेशा सीखो, अहं को विगलित करते हुए, क्योंकि महत्वपूर्ण परिणाम नहीं प्रक्रिया है।

संदर्भ ग्रंथ सूंची :–

1. नयी कविताएँ एक साक्ष्य–रामस्वरूप चतुर्वेदी, पृ0–68–69, लोकभारती प्रकाशन, प्रकाशन वर्ष–1976
2. आंगन के पार द्धार–अज्ञेय।
3. नयी कविताएँ एक साक्ष्य–रामस्वरूप चतुर्वेदी, पृ0–70, लोकभारती प्रकाशन, प्रकाशन वर्ष–1976

****

Themes of identity crisis in Kamala Markandaya's Nowhere Man and The two Virgins

Rajni Aseri *

Introduction - Kamala Markandaya (1924 – May 16, 2004) was a pseudonym used by Kamala Purnaiya Taylor, an Indian novelist and journalist. A native of Mysore, India, Markandaya was a graduate of Madras University, and afterwards published several short stories in Indian newspapers. After India declared its independence, Markandaya moved to Britain, though she still labelled herself an Indian expatriate long afterwards.

Known for writing about culture clash between Indian urban and rural societies, Markandaya's first published novel, Nectar in a Sieve , was a bestseller and cited as an Library American in 1955. Other novels include Some Inner Fury (1955), A Silence of Desire (1960), A Handful of Rice (1966), The Nowhere Man (1972), Two Virgins (1973), The Golden Honeycomb (1977), and Pleasure City (1982/1983).

Kamala Markandaya belonged to that pioneering group of Indian women writers who made their mark not just through their subject matter, but also through their fluid, polished literary style. "Nectar in a Sieve" was her first published work, and its depiction of rural India and the suffering of farmers made it popular in the West. This was followed by other fiction "Some Inner Fury" that dramatized the Quit India movement in 1942, the clash between East and West and the tragedy that resulted from it, or the problems facing ordinary middle-class Indians—making a living, finding inner peace, coping with modern technology and its effects on the poor. Markandaya passed away on May 16, 2004. Due to the impact of globalization profound changes have been noticed in the local, regional and national practices. Diaspora has served as a breeding ground for new sociological concepts. Diaspora has penetrated into the society and has provided a new way of thinking.

Diasporic writing as creative genera encapsulates the shared psychological preoccupations of the whole dispersed generations and their off springs within the new literature that has emerged. Diaspora is used as a social and political tool for expressing the grievances which are related to the quest for identity and individuality. With respect to the Jewish people the word 'diaspora' was first employed, as it suggests the idea of dispersal and fragmentation; and in much of the literature there is a presumed relationship between the diasporic community and the land which they left and to which the possibility of return always subsists, or what we are apt to term 'motherland' or 'home'.

In the words of Victor Ramraj this ambivalent, complex and dialectical relationship between diasporas and homelands is:

"concerned with the individual's or community's attachment to the centrifugal homeland. But this attachment is countered by a yearning for a sense of belonging to the current place of abode" 1

A change in US immigration law introduced in 1965 has had an unexpectedly widespread and long-term impact on the numbers of women and men arriving from South and East Asia. Now a small but significant, and growing, is the number of those women who have entered the literary field with their works in English. A literary genre began to adopt the language –English and slipped out across national boundaries and their writings began to be termed as diasporic writing. While some writers returned to India if not in person then in their writings others stayed away. Then there are others who would return to India or move between countries.

The emergence of this endeavor has reworked the language of representation. Women authors have brought about differences in their narratives. South Asian women writers are creating a new way of representing their collective and individual and collective identities. The South Asian women have arrived like storm troopers into the diasporic English literary scene. Titles by South Asian women dominate shelf space at bookstores in a way South Asian men's never did. To name some are Lalithambika Antherjanam, Ismat Chugtai, Kamala Markandaya, who migrated to the United Kingdom in 1948. Anita Desai,Jhumpa Lahiri,Indira Ganesan, Indu Sundaresan, Arundati Roy,Bharti Mukherjee and Monica Ali who wrote diasporic literature.

Kamala Markandaya, who migrated to the United Kingdom in 1948, became perhaps the pioneer among South Asian women writers to use English as her medium .While her very first novel "Nectar in the Sieve" (1954) was about the struggles of Indian peasants, her latter book, "The Nowhere Man" (1972), is an original diasporic novel of Indian immigrants struggling with perennial racism in the country they have adopted.

She excels in recording the inner workings of the minds of her characters, their personal perplexities and social confrontations. She endeavoured to portray them as individuals growing into themselves, unfolding the delicate

* Guest Faculty, Govt. College, Satwas, Distt. Dewas (M.P.) INDIA

processes of their being and becoming.

Salman Rushdie, in Shame (1983), talks about the reaction of the oppressed who take to extreme violence, and later in The Satanic Verses he describes race riots in Britain. Markandaya's novel, set in 1968, talks not only about the violence of racism but also about other diasporic realities. All of Markandaya's novels reveal her deep preoccupation with the changing Indian social and political scene, her careful, conscious craftsmanship and her skilful use of the English language for creative purposes.

Her Nectar in a Sieve, said to be reminiscent of Thomas Hardy's novels, was published in 1954 and made her widely known. It is a restrained as well as a touching account of the life of an Indian peasant woman, Rukmani, and her struggle for survival and her abiding love for her husband, Nathan.

Markandaya's novel, The Nowhere Man set in 1968, talks not only about the violence of racism but also about other diasporic realities - educational degrees that are not given accreditation, the resistance of immigrants to the expectations of the host culture, chasms of communication between generations, cultural values and needless cultural baggage... The main diasporic issue that one finds in the novel is the warning it gives us, and especially our children who think they are American or Canadian. When Srinivas, after thirty years in England (ten years longer than he had spent in his native India), during which time he has sacrificed a son to England's war, is heckled by racist hoodlums to go back to your country, he is bewildered,

"But this is my country. No matter what we ourselves may feel about our present homeland, too many see us only as aliens who belong elsewhere, not here."2

However, in "The Nowhere Man" Markandaya is more concerned with unfolding the sense of alienation of Srinivas, or the modern man. In this novel political consideration occupies a secondary place, the primary purpose being to highlight the isolation of the individual soul and expose the pathos of the human condition. Markandaya succeeds in achieving the delicate balance between unfolding the individual's psychological and social predicaments and portraying a wider cultural and political setting which create these crises. This balance is the hallmark of her success as a novelist and it highlights her distinctive art in the choice of her themes and her skilful craftsmanship.

Though Kamala Markandaya (1924-2004) spent most of her life as a writer in England, her eleven novels (beginning with Nectar in a Sieve, 1954), were set almost exclusively in India, typically depicting traditional life and values and the ways they came into conflict with modernity. Her seventh novel, The Nowhere Man (1972), is the only story with an English setting, though there are flashbacks to India. It was also her favorite — of all her works — no doubt because the story was something she had observed frequently in her adopted country: racism.

By addressing that issue frontally, she paved the way for novelists from the Indian subcontinent (especially Salman Rushdie and Nadeem Aslam) who would subsequently take the issue to more upsetting levels of confrontation.

As the story begins, Srinivas, an elderly Brahmin, has lived most of his adult life — nearly thirty years — in London, outliving his wife and one of his sons. It's 1968, and both of his sons fought for the British in the war, but only one returned. Ironically, the surviving son also lives in London but Srinivas was never close to him. Communication between the two is virtuallynon-existent.

Srinivas rattles around in the attic of the house he has lived in for years, since he's rented out the first two floors. Not many years ago when his wife died, he was about to be arrested for throwing her ashes into the Thames. "The river's not the place for rubbish," a policeman tells him. But Srinivas' response — "It was not rubbish… It was my wife."2 — brings a moment of compassion from the man, the last time that anyone will treat him decently.

Britain is changing colour because of all the immigrants who have arrived from its colonies. Whole neighbourhood suddenly looks different and — as has happened so many times in other Western countries — those at the bottom are threatened, fearing that their jobs will disappear (to the much harder-working immigrants) and that these new foreigners will soon get rich. Observing the incipient hostility, Srinivas briefly considers returning to India but finally concludes,
"He had no notion of where to go to in India, or what to do when he got there." He knows that the country has changed. He also thinks to himself, "This is my country now."3

In some ways he has become more English than the English around him. Much later he will realize, "If he left he had nowhere to go." He's a nowhere man.

So they bought a house, a gaunt old building in south London,which was not difficult to do in that nervous year before the Second World War, when there were more sellers than buyers. Vasantha selected it, basing her requirements with an eye to the future when her sons, at this point aged thirteen and fourteen, would be grown up and married. Then the loving mother-in-law would allocate one upper floor to each son and wife, and the ground floor reserved for them, ageing parents who would be past climbing the stairs. All this, despite certain distinct possibilities, which she accepted, and having done so sailed serenely past the rubble. What had to be, would be: meanwhile one had to plan. ... So the house was acquired, under whose rafters Srinivas now sat. A house with basement and attic which they had not wanted, which were immutably linked with two-storey structures. ... When the deed was done, and No. 5 Ashcroft Avenue was theirs and the building society's, and they sat among their cases in the front reception whose bay was hung with soot-heavy trusses of tattered ecru, Vasantha said with pride:

'At last we have achieved something. A place of our own, where we can live according to our lights although in alien surroundings: and our children after us, and after them theirs.'(Markanday)3

If Kamala Markandaya were alive today she would no doubt be horrified by the millions of refugees throughout the world who, for one reason or another, have nowhere to go.

They're often stateless, caught in political limbo, the result of overthrown governments, wars, famine, and — most recently — climate change. How ironic, then, that Srinivas is not the product of any of these cleavages but simple home grown racism. Hard to determine which is worse?

As incidents of British racism impact upon his life, Srinivas remembers earlier racial incidents from his past, when he was still a student, and experienced similar slights under British colonialism. He fled India as a young man because of a number of humiliations he had experienced at the university because of that racism. Thus, there's a kind of continuum of discrimination from the same people — first in his own country and later in theirs.

How surprising (or perhaps not) that the worst acts of violence inflicted on him are from the loutish young man who lives in the house next door. He's unemployed, hardly more than a punk, though married with several children and living under the roof with his mother, who considers Srinivas one of her friends. Yet Srinivas — an old man and clearly no threat to anyone — becomes the focal point of his racism because Fred Fletcher can't take his eye off his neighbor, turning his life into hell. But the hellish ending of Markandaya's novel you will need to discover for yourself — along with its many rewards as a compelling narrative.

Some of her novels seem to be autobiographical though she is reticent in talking about herself; they at least present the first person omniscient narrator. Nectar in a Sieve and The Nowhere Man are her finest creations, which will ensure her a place among the modern Indo-English novelists of distinction. Markandaya's entire canon of ten novels was produced over a period of three decades. She has not produced any novels in the past 22 years.

Nectar in a Sieve is a relatively short novel that introduces Western students to life in rural India and the changes that occurred during that country's British colonization. Although easy to read, the novel is lyrical and moving and can be read on a variety of levels. On the most basic level, it is the story of an arranged but loving marriage and rural peasant life. On another level, it is a tale of indomitable human spirit that overcomes poverty and unending misfortune. Finally, it is a novel about the conflicts between a traditional agricultural culture and a burgeoning industrial capitalistic society. The novel touches on several important social phenomena: the importance of traditional cultural practices, people's reluctance to change, and the impact of economic change

'This book deals with the plight of women of earlier times - India's struggle with modernity and the unbelievable acts of woman for her family. Many literary analysts such as Meena Shirdwadkar have suggested that the value of suffering is an important component of Markandaya's novels because she portrays her positive woman characters as ideal sufferers and nurturers.

Writing by diasporic Indians was rarely published by Western publishers because a generation of editors and publishers had been brought up in an era of racial segregation. The immigrants experience a sense of uprootedness and unbelonging in the foreign countries. Diaspora marked a different sense of belonging, extending beyond, but also within, the borders of the nation state. The writers faced alienation, brutalisation and racism in their new 'home'.The early writers had to struggle hard to find their voice. It will take time for the immigrant writers to develop their communities and raise communal voices. Taste of diasporic literature is developing at a slow pace.

South Asian writers today constitute a diaspora not because they are exiles, banished from their homes, but because they possess the financial means and cultural vocabulary to have two homes. Today's post-colonial authors are those who confidently occupy a terrain charted by the rise of global capitalism and culture. Immigrants are today a window onto global economics rather than global politics and so we can conclude that the literature of immigration is a window only onto the sunny side of the new economic order-thus diasporic literature has a bright future lying ahead.

Kamala Markandaya is one of the finest and most distinguished Indian novelists in English of the post colonial era. Issues and problems related to women find an important place in her novels... A woman's quest for identity and redefining her self finds reflection in her novels and constitutes a significant motif of the female characters in her fiction. In Two Virgins, The characters of Lalitha and Saroja symbolize the two different attitudes to life. Lalitha's character is a warning to young girls not to be misguided by their beauty, who, conscious of her beauty becomes a prey to narcissism. Search for identity has been seen in the Indian women, and especially in the rural lass where they are easily lured by the pomp and show of the city life and thus tend to flee from the village to the cities. The mentality of the village girls that has been portrayed in the novel "Two Virgins" written in 1977 is prevalent in 2009 also. They are easily caught in the web of fake people like Mr. Gupta of "Two Virgins" and thus suffer drastic consequences.

Women, especially the women in the Indian scenario have always been the centre of concern in the novels of Kamala Markandaya. She tries to portray her native people in her novels in all their glory and human frailty. Contrast between old and new, east and west, static and change is clearly established in many of her novels. A woman's search for identity is a recurrent theme in her fiction. She excels in recording the inner workings of the minds of her characters, their personal perplexities and social confrontations. She endeavored to portray them as individuals growing into themselves, unfolding the delicate processes of their being and becoming.

Kamala Markandaya is one of the finest and most distinguished Indian novelists in English of the post colonial era who is internationally recognized for her masterpiece 'Nectar in a Sieve' published in 1954. Endowed with strong Indian sensibility, issues and problems related to the women are very deeply and aptly portrayed in her novels. It seems that she has delved into each and every character or has observed them very closely. A woman's quest for identity and redefining her self finds reflection in her novels and she

has been able to successfully portray a realistic portrait of the contemporary women. She explores and interprets the emotional reactions and spiritual responses of women and their predicament with sympathetic understanding. Markandaya aptly portrays the good and the bad in both modes.

The chief protagonists in most of her novels are female characters who are in constant search for meaning and value of life. The struggles of the protagonists who wish to search their own identity are portrayed in her novels, which refuse to submit to their individual self. In doing so they are faced with much pain and suffering. Most of the time they are defeated in their endeavor but this is the truth that can be seen in the present world. In her novels Kamala Markandaya traces a woman's journey from self-sacrifice to self-realization, from self-denial to self-assertion and from self-negation to self-affirmation. Her novels are marked with a feminist tone. Many of her novels are mainly a product of her personal experience in rural living.

Her eighth novel 'Two Virgins, (1977) portrays the encroachment by the modern Western values on the traditional beliefs and old established relationships within the family and the village. Markandaya has presented the story of two virgins or girls, Lalitha and Saroja, in this novel. It is a picaresque tale of growing up, of love and conflict between parents and children and the lure of the big cities leading to temptations. The need for individual freedom is the central concern of this novel. The female characters so deeply rooted in the Indian culture, struggle to be free and pure human beings.

The characters of Lalitha and Saroja have been presented to symbolize two different attitudes to life. The beauty of Lalitha lures her towards the city and leads her to live a modernized life. Her character is a warning for the girls not to be misguided by the pomp and show of the city life as well as their beauty. She is over conscious of her beauty and thus she is lead astray and fall a prey to narcissism as well as the modern western culture.

"Lalitha had status. She had no husband yet, but everyone could see when she did she would have more than her fair proportion." (P.13)

Lalitha plays the role of a more brave and daring girl and is much prettier than her sister Saroja. Lalitha has an intense desire to sore high. Lalitha is too egoistic about her beauty as can be seen from her statement

"it is a pity, some people are pretty, some people are plain, said Lalitha, examining herself languidly in her hand mirror.' (P, 13)

A lavished living had always fascinated her and Lalitha always commented that all these luxuries were present in the city not in the villages. She yearned for the city life and the comfort it provided

"It's barbaric, not having a fridge, said Lalitha. She also continued saying that everyone in the city had a fridge". (P.26).

This gives an insight into her as craving for all the luxuries. That she dislikes simplicity that her sister Saroja possesses is evident from the following fact "You have to be quick, you have to seize your opportunity before it passes you by, and you have to be quick with your answers if you want to get anywhere". (P, 77)

She finds herself at the top of the world when her teacher Miss Mendoza praises her for her beauty and also certifies that she is suitable to become a star. This elevates her. In the novel, through the character we find a reflection of the village girls, who like Lalitha have feminine desirability and sexual parlance dominating in every single moment of their life.Lalitha was vindictive, epically towards her sister Saroja. Kites were bought for them by their cousins which Saroja managed to sail in the first attempt but this was not so with Lalitha. Feeling jealous of Saroja she goes to the extent of calling her a demented child. She trampled on the kite until the green tissue paper tore.

"She was vindictive, trampled on the kite until the green tissue paper tore. Later still she was sorry, wept tears on the tattered remains and said she couldn't understand how she could be so horrid to her own brothers."(P 54)

Greatly fascinated by the westernized outlook of Mr. Gupta, a film director, Lalitha, the heroine, displays her revolt against all the conventional ideals and values of traditional Hindu society. Lalitha is more beautiful and charming and ambitious than Saroja, her sister, therefore she becomes an easy prey to the temptations of Mr. Gupta who allures her, enjoys with her and ultimately leaves her when she is pregnant. She had gone to the city in search of her identity, a name and fame by becoming a film star. Her quest proves hollow. She loses completely whatever she had in her village. She had some identity, a home, a name and fame for her beauty which was appreciated by all as long as she belonged to the village. However, to her utter disgust and shock, all that is lost now, devoured by city monsters or devils in the disguise of Mr. Gupta, who roam about the city in search of their easy prey like Lalitha. Out of frustration she even tries to commit suicide, but is prevented from doing so by her younger sister Saroja. She is so much shocked that she leaves her house and village which fail to restore her lost name and identity. In fact, she has nowhere to go now. The author seems to suggest in the novel that a woman can experience safety and security in her home where she is deeply rooted. Once she becomes a victim to the lust of a male like Mr. Gupta, she is uprooted from her home and village and becomes a nowhere woman, losing her identity "Lalitha's life is a living example of the tragedy of the modern woman particularly in India" (Bhatnagar: 89),

It is what that is prevalent in the society that finds a place in the novel through the character of Kamala Markandaya The modern western values of urban life destroy Lalitha's self and annihilate her personality completely. In this novel Markandaya has presented the existential struggle of a girl, Lalitha, who refuses to flow along the wave and denies surrendering herself. However, in her effort to find a new self and identity, she gets completely lost. She undergoes much pain & agony and displays a kind of insecurity on account of her traumatic experience and due to the collapse

of one value system & the dearth of any sustaining values.

Lalitha is a free adventurous spirit but unfortunately she is portrayed as a helpless character that, despite the western education is easily led astray and caught in the web that has been laid by Mr. Gupta. There exist many characters like Mr. Gupta who lure innocent girls and lead them astray. However the girl is shown to be tough as steel who is unaware of the trauma that she has undergone and plunges into the open world alone. She looses her child but tells Saroja,

"the thing to remember, my sweet, is never to cry over spilt milk". (P.232)

Not all the girls have the courage to face life like Lalitha but she is shown to be a tough girl. Perhaps is unable to live with the conventional attitudes of the village and that is why she leaves a note behind for her father and leaves and goes.

"It said she couldn't face going back to the village; it stifled her, her talents, her ambition. She intended to stay in the city where she belonged. She could look after herself. They weren't to search for her, which in any case would be a waste of time because they would never find her". (P.236) A deep insight into the female psyche has lead Markandaya to portray the character of Lalitha very aptly and correctly. Lalitha and Saroja are in some respect alike and yet, in certain other respect, the author makes them different, so that the sisters have their individual self knowledge by the end of the knowledge.

As far as the schooling of the two sisters are concerned they go to different schools-Lalitha to an expensive and "superior " school run by Miss Mendoza, while Saroja goes to a traditional school in the same village. The father's liberalization, whose seed was sown in him in the days of national struggle during the pre-Independence period, makes him more inclined towards Lalitha. This is perhaps one of the reasons why she is different from her sister. While going to the superior school she imbibes cheap sophistication which has a tinsel quality about it in the shabby social life in a village.

Combined with this was her physical attractiveness. Moreover her ambition to become stardom lured her to abandon the village life and take to the city life which brought about her pitfall.

However, all these traumatic experiences teach a lesson to Saroja, the younger sister who returns to her village to be secure there and not to be led astray like her sister. Rukmani, Val, Ravi and Srinivas are the other characters in the various novels of Kamala Markandaya who are uprooted by natural and worldly forces which are beyond their control. But Lalitha is uprooted by her own weakness, her ambition to become a film star and thereby get a new name, fame and identity. Her ambition displays the uprooting of human values and culture in Indian society. Not that this situation which was prevalent years ago has changed. It remains in the society even now and one can say that the character of Lalitha in Markandaya's Two Virgins is an apt portrayal of the modern generation where the fascination of the city life tends to attract the girls from the villages who plunge into this world. They crave for fame and this leads to their downfall. Markandaya very beautifully portrays the village girls through the characters of Lalitha and Saroja.

Parmeshwaran's views on this matter are worth reproducing : "The simple fact of the matter is that an Indo – English novel need not have an Indianness in its prose style anymore than a British or American novel need have some distinctive prose style that proclaims its country of origin. We know that the replicas of the statue of liberty sold in souvenir shops at the foot of the statue are all made in Japan. A tourist is usually disappointed when he notices this. But take away that tell - tale tag and the souvenir is seen to be what it is a replica of the statue of liberty, which landmark he just visited, and will recall each time he sees the replica. The main point is whether or not the replica is well made. So also with a novel. Prose style is to a novel what the replica is to the tourist who has visited the statue - an aid to focus on an experience. If it is a model drawn to scale, it has scale, it has a certain value. If it is a model that only approximates the mariginal proportions but is in itself a piece of art, it has a different kind of value".

Kamala Markandaya's contribution to the style of Indo -English fiction should be seen in the fact that though English happens to be her acquired language, she has made it an appropriate vehicle of her creative writing. In a world where it is fashionable to have an Indian flavour in English. Markandaya continues to be an orthodox perfectionist who maintains the inviolable purity of her language. Though Markandaya admirably portrays Rukmani's special understanding - a decidedly Indian point of view – she sometimes exceeds the bounds of belief and fails to limit Rukmani's powers of comprehension and observation.Markandaya has had to step out of her own personality rather drastically to adopt the persona of a rural woman and her great leap has its advantages such as intimacy, objectivity and disadvantages of sentimentality, inability to identity totally.

References :-

1. Markandaya,Kamala.Two virgins, Tarang Paperbacks, Ghaziabad.1973.
2. The Nowhere Man , Penguin India , Delhi . 2012
3. Bhatnagar, Anil K., Kamala Markandaya: A Thematic Study, Sarup & Sons.
4. Dhawan,R.K .,Indian Women Novelists ;An Anthologyof Critical essays in 18 Vols.New Delhi: Prestige Books.
5. Iyengar,K.R.S ., Indian Writing in English: Bombay;Asia Publishing House, 1962.
6. Uma Parmeshwaran 'A Study of Representative Indo - English novelist'. New Delhi, Vikas,1976, p. p .119-120.

****

History To Modernety- Treatment Of Myth, Mythology And Folk Vore In Hayavardana And Nagamandala

Aparna Ray *

Abstract - Girish Raghunath Karnad is a contemporary writer playwright, Poet, Screenwriter, Actor and Director critic and translator in Kannada language. Recipient of 1998. Jnanapitha Award, the highest literary honor conferred in India. He was also conferred Padma Shri and Padam Bhushan by the government of India winner of four film fare Awards for three, he received Best Director Kannada and one film fare for Best Screenplay, Karnad has been composing out standing play in both Karnad and English. His famous Plays are Hayavadana, Naganandala, Bali, The Sacrifice Agni mattu male (the fire and the Rain) yayati, Taglaq Odakala Bimba (Broke Images), Tippuvina Kanasugalu (The Drams of Tipu Sultan) and many. He has tried to explore inner turmoil and indecision through mythical characters of Mahabharata and folklore. As gifted playwrite he has discovered materials from myths and legends and have employed it creatively. Myths and legends serve as surrogate for his plays. Karnad extensively resorts to myth and folklore in his plays. As for him myth is not just a device to look back into past but also as an instrument to analyse the present and contemplates the future.

Keywords - Myth, Mythology , Folklore, Indian Scenario

Introduction - The inexhaustible lore of myth, parables and legends that pattern and define our culture offers immense scope for the Indian dramatist. Girish Karnad was indebted by the most prominent of the new crop of promising dramatist and is today one of the foremost dramatists on the contemporary world stage. He has linked the fabulous history of the miraculous development and bold innovation of modern Indian stage.His themes appear to build castles in the air taking refuge in the myths and legends but gave them a new vision.

Karnad links the past and the present, the archetypal and the real. issues of the present finding their parallels in the myths and fables of the past, giving new meanings and insights reinforcing the theme. By transcending the limits of time and space, myths provide flashes of insight into life and its mystery Dhanavel says, the borrowed myths are "reinterpreted to fit pre-existing cultural emphasis" By using these myths he tried to reveal the absurdity of life with all its elemental passions and conflicts and man's eternal struggle to achieve perfection Jyoti Sahi, "Girish Karnad's art can be described as a vision of reality Karnad does not take the myths in their entirety, he takes only fragments that are useful to him and the rest he supplements with his imagination.

***Hayavadana* -** *Hayavadana* is deeply rooted in Indian myth. Based on a tale found in *Kathasaritasagara*, a collection of stories in Sanskrit dating from the eleventh century. The play opens with Devdatta and Kapila who are great friends - "one mind, one heart" as Bhagavata describes them (82). Devdatta is a man of intellect; Kapila is physically better built and is also more attractive. Their relations come under strain when Devdatta marries Padmini. Kapila is attracted to Padmini and she too starts drifting towards him. The climax approaches when the three start for the Ujjain fair through a forest and stop midway to take rest. Devdatta is consumed with jealousy and suspicion: "What a fool I've been. All these days I only saw that pleading in his eyes stretching out its arms begging for a favour. But never looked in her eyes . . . Only now - I see the depths now - I see these flames leaping up from those depths . . . Let your guts burn out - let your lungs turn to ash but don't turn away now." (96) He goes to the temple of Kali and slices off his head with a sword. After waiting for some time, Kapila goes in search of Devdatta and, finding his friend dead and fearing that he might be accused of killing Devdatta for the sake of Padmini's hand, he too beheads himself. Waiting for them long Padmini reaches the temple in search of Devdatta and Kapila. She terrified at the sight of the two beheaded bodies, she laments and she appeals to the goddess Kali for help. The goddess appears, but Here Karnad does not represent her as the fierce-looking 'Kali' of mythology but as a sleepy, bored and impatient goddess. Bored, by her she ask Padmini to skip off the story and do as she tells because she in about to collapse with sleep she says, "Actually if it hadn't been that I was so sleepy, I would have thrown them out by the scruff of their necks". She grants Padmini the two men's lives after faulting the men for their foolish lies and false sacrifices. And she asks Padmini to rejoin the heads with the bodies.Padmini afraid and unable to recognize the faces to identify the heads correctly, accidentally transposes the heads, giving to Devdatta's body Kapila's head and to Kapila's body Devdatta's head, both arise. Now the question

*Asst. Professor (English) Govt. P.G. College, Neemuch (M.P.) INDIA

now arises, "Who of the two is her husband?" To find answer the three reach a sage who proclaims that since the head is the supreme organ of the body, the man bearing Devdatta's head should be her husband. Initially, Devdatta or the head of Devdatta on Kapila's body behaves differently from the way he did before. But gradually he changes to his former self. So does Kapila. But now there is a difference: Devdatta stops writing poetry, while Kapila is troubled by the memories that lie deposited in Devdatta's body. Padmini, who was happy that she had the best of both men, is slowly disillusioned. In the end both the friends who kill each other in a duel after self-immolation of Padmini The head-body conflict, throws light on the conflict between the self and the other by means of the rejoined bodies of Kapila and Devdatta. If the old head symbolises the self, the new body symbolises the other. The self is opposed to the other, but it has to assimilate the other by bringing about a transformation in the other so that it becomes one with the self. The body of Kapila attached to the head of Devdatta transforms into the likeness of Devdatta's old body and vice versa. But it is Padmini who remains unsatisfied. Her dreams of completeness in her mate fails. Her suffering is war between head and body, intellect and emotion. Her unhappiness suggests that it is impossible to reconcile the dualities perfectly, that one has to live with these dualities,she is unable to attain the ideal state of harmony.

The play also explores the obscure and unreliable nature of the notion of an essential self and its givenness. The self may be (re)created and modified, since it is not a definite, coherent and fixed. Individual identity is not an entirely free consciousness or a stable universal essence but a situated construction. The old self dissolves and a new self gradually replaces it after the transposition of heads. Kali's temple is significant as the place where the process begins. When the three characters reach the temple in the midst of a dark and dense forest, they have left their previous selves behind. Kali is the female embodiment of primordial time. She is also the goddess of obscurity and her passivity in the play challenges the popular myth, as the sanctity of her conventional representations is exposed to ironic and critical observation erasing the difference between the modern and the mythical consciousness. Kali may also be seen as signifying Mother India, with Kapila, Padmini and Devdatta deriving their identities from her. However, the identities so derived are inescapably caught in dualities.

Naga-Mandala - Karnad's *Naga-Mandala* is based on two oral tales from Karnataka in his "Introduction" to Three Plays: … these tales are narrated by women- normally the older women in the family-while children are being fed in the evenings in the kitchen or being put to bed. The other adults present on these occasions are also women. Therefore these tales, though directed at the children, often serve as a parallel system of communication among the women in the family Naga-Mandala is not the name of a human character, but it is that of a snake. It revolves around a woman and a serpent.The serpent plays an important role as in most such narrations all over the world. "We are forced to believe that there exists a theory that the mothers of great men in history such as Scipio, Alexander the great, and Augustus Ceasar were all impregnated by serpents". It is believed that snake myths are found extensively in Brahmanism, Buddhism, Lamaistic and Japanese writing.

The *Naga-Mandala* probes into the female and male growth into selfhood, and their mature adjustment with the social roles appointed for them by the traditional society. Myths and folk tales in a patriarchal society represent primarily the male unconscious fears and wishes and are patriarchal constructs and male-oriented. In these stories the women's experiences *Nagamandala* is a story within a story the king condemned the play wright to death if he is unable to stay awake the whole night in return for the abused mass of sleep that he induced in his audience. The *Sutradhar* of the play, the playwright, the Man, is trying to keep awake in a dilapidated temple, when he hears female voices approaching. To his surprise, he witnesses a group of naked flames walking towards the temple, talking animatedly. Each flame has a story to tell, weaving a pattern of stories within stories. One of the flames tells the incident of the Story and the Song who pop out of the mouth of an old woman who has kept them confined, not narrating them further. This story has taken the form of a young woman and the song that of a sari. The story is born to be kept alive by repeated narration. It must grow both vertically and horizontally. Story too reaches there and the flames offer to listen to her, but Story is despondent because the flames cannot pass her on. The Man then comes forward and offers to repeat story. Story starts narrating the story of Rani, who is married to Appanna (any man). Appanna treats Rani cruelly, locking her up in his house and visiting the house only to have his bath and lunch. Karnad hints at the double standards of patriarchal institutions where men are not accountable for their social/ moral conduct while a woman always is. A woman is expected to be faithful even to a husband who treats his wife cruelly and is unfaithful to her. Rani's dreams of a blissfull married life are shattered. She begins to dream of rescurer who would free her from clutches of her demon husband. Girish Raghunath Karnad is a contemporary writer playwright, Poet, Screenwriter, Actor and Director critic and translator in Kannada language. Recipient of 1998. Jnanapitha Award, the highest literary honor conferred in India. He was also conferred Padma Shri and Padam Bhushan by the government of India winner of four film fare Awards for three, he received Best Director Kannada and one film fare for Best Screenplay, Karnad has been composing out standing play in both Karnad and English. His famous Plays are Hayavadana, Naganandala, Bali, The Sacrifice Agni mattu male (the fire and the Rain) yayati, Taglaq Odakala Bimba (Broke Images), Tippuvina Kanasugalu (The Drams of Tipu Sultan) and many. He has tried to explore inner turmoil and indecision through mythical characters of Mahabharata and folklore. As gifted playwrite he has discovered materials from myths and legends and have employed it creatively. Myths

and legends serve as surrogate for his plays. Karnad extensively resorts to myth and folklore in his plays. As for him myth is not just a device to look back into past but also as an instrument to analyse the present and contemplates the future.

Kurudavva comes to know of Rani's predicament, she gives her an aphrodisiac root to lure Appanna back. Rani mixes the root with his food but seeing its blood-red color is horrified and throws the gravy on the ant-hill in which Naga, the cobra, lives. The cobra is smitten with love for Rani and starts visiting her in the guise of her husband. The relationship between the animal (snake) and the human suggests a certain continuum and a relation between the two. Firstly, it suggests that man is equally vicious like a snake. Secondly, if we discard the human lens, a relation of equality and independence can be perceived between the animal and the human. She is quite surprised to find him in a mood for idle talk and caresses. But Naga wins her over with patience and compassion. Rani begins to enjoy his company and affection, and waits for him every night. One afternoon she tries to talk to Appanna, who snubs her again, making Rani suspicious that the incident of the previous night exists only in her fantasy. She keeps on oscillating between the twin poles of credulity and knowledge. The question is whether it is just Rani who oscillates between truth and fiction or whether it is a general human predicament.

In Hayavadana, the horse-man, embodies the duality at the heart of contemporary Indian subjectivity. The horse-man theme anticipates the entire play It also embodies the constituent duality of the human being, that is the duality between the animal and the human. The head and body conflict has been used by Karnad to explore the central dilemma faced by a contemporary Indian between various contradictory constituents of subjectivity such as the spiritual and the materialist, the mental and the bodily, the rural and the urban, the pre-colonial and the colonised, the traditional and the modern.

In Nagamandla, the lock signifies the whole patriarchal discourse of chastity confine to women. Appanna visits his concubine needs no proof his fidelity. Karnad gives double standards of patriarchal institutions where men are not accountable for only woman. The relationship between human and animal suggest that man is equally vicious like a snake. The ideology of animal human continuity undercuts the humanist idea of man as crown of all creation.

Conclusion - For Karnad myth is not just a device to look back into the past, but it is also an instrument to analyse the present and contemplate about the future. His subjects are not just men and women from an ancient race but people like us. Both the plays are centred around the conflict in mind of a female who is so entangled in the patriarchal discourses of chastity and duty, that she is unable to make a choice between the husband and the ideal lover.In *Hayavadana*, there is a juxtaposition, a taking over by the ideal lover, the role of the husband. In *Nagamandala*, it is done through the shape-shifting of a cobra, Naga, into Appanna. In *Hayavadana*, this brought about by transposing the heads of Kapila and Devdatta. Kurudavva of *Nagamandala* is compared to Kali in *Hayavadana, how* becomes the instrument of juxtaposition. But Kurudavva is not an uninterested spectator as Kali who appears bored and angry on being awaken on the contrary, she takes interest in the marital bliss of Appanna and Rani. The shift in *Hayavadana comes at the end* which suggests Padmini cannot keep both men (body and mind) She must be content with one. Here Karnad is challenged by looking at the human world without illusions.In *Nagamandala*, Rani gets to keep both the devoted husband and the besotted Naga in the coils of her hair. Actually two ending in first Naga dies and in second he lives in Rani's consciousness.

Both the plays in their limitations as a work of art. The playes are attuned to its contradictions with regard to women's experience of desire and the modes of self expression available to them within existing discourses, these contradictions lie at the hears of myths.

The Mythical elements have been used by the dramatist to portray the socio cultural problems and evils of society.

References :-

1. Babu, Mnachi Sarat 1997. Indian Drama today ; A study in the theme of cultural deformity New Delhi: Prestige Book.
2. Three Plays by Girish Karnad. Oxford University press.
3. Chandra K.M. 1999 "Mythifying a folktale Girish Karnad's Nagmandalal".
4. Dharwadker, Aparna Bhargava 2005: "Introduction". Collected Plays: Tughlaq, Hayavadana, Bali: The Sacrifice, Nagmandalal Vol One. By Girish Karnad Oxford University press.
5. Shastri, J.L., ed., *Ancient Indian Tradition andMythology,* Vol. 1: "The Shiva Purana", Delhi:Motilal Banarsidas, 1970, , pp. 229-230.

****

Indian Woman's Inner World As Presented In Anita Desai's Cry the Peacock

Dr. Seema Sharma *

Introduction - English and India cannot be separated as in the field of literature, technology and social media. English has become a part of India's life. It is not in a negative way but in a positive way, English has opened the windows of knowledge in every field before the whole world. After Independence, Indian writing in English has become an important aspect of all literature in English. It was only after world war II says Srinivasa Iyengar "that women novelists of quality have begun enriching Indian fiction in English."(1) Among the popular Indo-Anglican novelists Mulk Raj Anand, R. K. Narayan, are the prominent writers. Among the women novelists of twentieth century Kamala Markandya, Ruth Prawar Jhabvala, Anita Desai, Nayantara Sahgal, Shakuntala Srinagesh, Anita Choudhary, Arundhati Roy and Shobha De are prominent.

Indian women writers have made a mark for themselves in the world of literature. Arundhati Roy got a prize for her first novel - "The God of small things", Anita Desai's first novel - 'Cry the Peacock' won the Sahitya Akademi Award. Kamala Markandaya was awarded the National Association of Independent Schools Award (U.S.A.) in 1967 and the Asian Prize in 1974.

Among these writers, Anita Desai's contribution is remarkable. Anita Desai was born in 1937 in Mussoorie but spent much life in Delhi. She made her debut as a novelist with 'Cry the Peacock'. She was specially noted for her sensitive portrayal of female characters and the alienating of the middle class women in India. A fellow of the Royal society of Literature, she has taught at Girton College, Cambridge and has been Purington Professor of English at Mount Holycke College U.S.A. She is now Professor Emeritus, Creative Writing, at the Massachussets Institute of Technology, U.S.A.

The twentieth century Indian writers have presented the India after Independence before the world. The problems of middle class woman is the centre of presentation for the new generation. The Indian woman, the centre point of the Indian families is on the path of development but still assigns traditional roles to the woman. Still the woman is facing the conservatory outlook of the male dominated society.(2)

The twentieth century woman in India feels herself imprisoned in the four walls of the house when there is no one else to share her grief. Anita Desai's novels reflect the inner world of an Indian woman. The social and cultural norms are so interwoven that a woman tries to liberate herself from it and fails to do that. The society seems to be progressing from outside but it is very hard for a woman to come out of this webs of society and prove her identity. This search for an identity can be very easy for primitive social structure but very difficult for a progressing one.

This struggle to search for an identity is clearly seen in Anita Desai's 'Cry the Peacock'. Maya, the central character of this novel, is married to an advocate who is practical and mature in work and in thinking, Maya is a sensational woman suffering from a feminine psyche from childhood to her untimely death as a youth. "Cry, The Peacock, published in 1963 is Desai's first novel. It broke new grounds and is considered to be a trend-setter in feminist writing. .... There is no denying the fact that Maya receives a comfortable upbringing. She has no shortage of material comforts, but the high intensity of pain she faces at mental level takes her to tragic end."(3)

Maya feels for herself as "trapped" and she continues this feeling till the end when ultimately she ends her life. Maya represents the 'educated' woman of India, trying hard to build a balance between her upbringing and the married life afterwards. The "marriage" is not a feature it is a 'success' in the world's eye bt inside Maya's mind, an undercurrent of thoughts continuously flows. This style of "sub conscious" thoughts was well developed by Virginia Woolf who wrote novels reflecting the inner world of a woman.

Virginia Woolf (1882-1941) was an English writer and one of the foremost modernists of twentieth century. Her most famous works include the novels Mrs. Dalloway (1925), To the Night House (1927) and the book-length essay 'A Room of one's own (1929) with its famous dictum, "A woman must have money and a room of her own if she is to write fiction."

"In Mrs. Dalloway, all the action, aside from the flashbacks takes place on a day in June. It is an example of stream of consciousness. Woolf, blurs the distinction between direct and indirect speech throughout the novel freely alternating her.

Mode of Narration - In Literary criticism stream of consciousness is a narrative mode or device that seeks to depict the multidinous thoughts and feelings which pass

* **Professor (English) Govt. Sanskrit College, Ujjain (M.P.) INDIA**

through the mind. Another term for it is 'interior monologue". The terms was first coined by William James in 1890 in his "The Principles of Psychology" in 1918 May Sinclair first applied the term stream of consciousness in a literary context. (4)

We can see this style of stream of subconsciousness in Anita Desai's 'Cry The Peacock', while Maya recalling her old childhood days thinks about his father's tenderness towards her :

"Around this pretty tale he builds for me, he hopes to compose my dreams for the night, for it is the doctor's orders that I must be permitted no anxieties, no excitements. "Yet once I fall asleep, the dream dissolves quickly into a nightmare, in which a row of soft, shaggy,frail footed, bears, shamble through a dance routine to the dry rattle of the trainer's tambourine. Then suddenly behind the bears, an entire row of trainers riseup and begin to dance too, with greater vigour. They kick up their legs, displaying cleft feet, grin hugely and role up their clothes and rub their bellies and bay at the moon. By a grotesque transformation the bears are rendered into a lovely hounded herd of gentle, thoughtful visitors from a forgotten mountain land, and the gippering cavorting human being are seen as monsters from same prehistoric age, gabbling and gesticulating....

Yes now that I over in my mind, my childhood was one in which much was excluded ..... in which I lived as a toy process in a toy world. But it was a pretty one."(5)

When we read these lines four points can be analysed-

1. Imagination.
2. Style of flowing words
3. Hidden subconscious mind reflected
4. Childhood memories, a treasure for a married woman.

What an imagination of a fairy world of a child described in poetic words. Fragile words describe the unforgettable days of childhood in a married woman's eye. The subconscious mind is reflected in a beautiful way.

Here the sensitive approach to the childhood memories of a woman is seen in Desai's novel. Here somewhat mentally retarded characters are highlighted. Regarding the choice of character she observes :

"I am interested in characters who are not average but have retreated or been driven its some extremity of despair and so turned against on made a stand against, the general current." (6)

Therefore we see that Maya feels and sees more than others. Her husband Gautama is unable to reach her level. Her sensitiveness observed by a childhood prophecy of disaster prevents her from leading a normal life with husband Gautama. Her pet Toto's death is the first sign of her abnormality which involves a series of consequent reactions. The usual decaying flesh seems unusually terrific to her and it is this peculiar insight that suggests her highly emotional and hysterical response to worldly events. What disturbs her is the sense that this world is fully material, no one is affected by life both big and small.

Maya is the woman of sense and sensibility. Dance and dinner causes her headache. The ultra modern sense of enjoyment, becomes a threat to modern life she feels :

"I felt myself trapped at an oneric ball when the black masks that I had imagined to be made of paper turned out to be living flash, and the living flesh was only a mockery. Values were distorted in that machine half-light with its altering tints at an hour when these values would have been all important. (7)

This shows that for a woman of sense and sensibility parties no more provide entertainment. They are hollow parties giving detestable information. Thus in these types of families children are neglected. Thus in invitaling foreign culture we are looking morality. Thus physically weak,but morally Indian women are strong. This situation is reflected in Anita Desai's novels.

Desai's Style - Anita Desai's style is full of similes, full of poetic words as if thought process is presented before us in the form of images. Images full of vision of life. Maya looks at life in a negative way, as if she has no aim in life. It is best picturised by Anita Desai -

"So I went to change in silence, and on the dressing table, found the posy with which I had set out for the evening. A pink carnation bound to a red rose, both lifeless now, buried with the deeds and dust of the evening, already belonging to yesterday, corpses of today.... fatality .... fate - Fate - fatality, I fingered the flowers sadly, and felt much like then myself - bruised and tired, not quite alive, not quite of today. Throwing them down on the floor where they lay soft and limp.

.... The eternal flux, the eternal decay of a world of babies and butterflies. My inability to capture it, to hold it transfixed as an insect in amber". (8).

The Female Characters in the Novel - There are two other female characters, Leila. married to a T.B. patient in love and her result is depression reaching nowhere. She says to Maya :

"Pay no attention to me today, she said softening her hoarse voice, deliberatly . I don't know why I rave. She lifted one hand to her face, and with four fingers, touched the centre of her forehead. It was all written as my fate long ago. She said. (9)

Pom is another character who faces the problems of the families in India. She has to live under restrictions of the in-laws. Life for her is like "two mice in one small room not daring to creep out." (10)

Mrs. Lal's character reflects the vision in India that no family is complete without a son. She has four daughters. She pretends to be happy but longs for a male child.

The Title of the Novel - The title of the novel expresses the hidden inner feelings of a woman. Anita Desai does not go out of the house to describe any feeling. She like Jane Austen describes the homely life and penetrates deep into a woman's heart. She shares a world that is not shared at all. She probes deep inside the frustrations of a woman not able to do anything only to cry like a peacock.

"Do you not hear the peacocks call in the wilds ? Are they not blood-chilling, their shrieks of pain ? "pia, pia', they cry, Lover, lover, Mio, Mio – I die, I die'.... They spread out their tails and begin to dance, and they dance, but like Shiva's their dance of joy is the dance of death, and they dance. knowing that they their lovers are all to die.... how they stamp their feet, and beat their beaks against the rocks. They will even grasp themselves that live on the sands there, and break their bodies to bits against the stones, to ease their own pain. ..... Living they are aware of death. ..... Agony, agony, the mortal agony of their cry for lover and for death." (11)

Here Desai shows that a motherless child searches for father's love and guidance in her husband and fails to get it. At the end the split in her personality results in her loss of belief in herself. She is trapped with the fear of the astrologer's prediction that within 3 years she is going to die. She under frustration and explosion like the peacock in the frustration kills Gautama and commits suicide.

Maya urges for support at her brother and father and husband to save her from frustration and cries, "Father Brother husband! who is my savior ? I am in need of one. I am dying, and I am in love with living. I live in love and I am dying." (12)

This shows that through Maya's character Anita Desai puts forth the fact that had there been the support of even the brother or the father or the husband, Maya would have put on and to her life.

This is the quest for identity of one Indian woman presented by Anita Desai. Outwardly we may make progress but inwardly there is a lot to be changed to transfer the inner world of a woman. She is to be treated like a human being, with space and identity in the society as well as in her own world.

References :-

1. Sri Nivasa Iyengar "Indian writing in English", Sterling Publishers Private Limited, 1996.
2. Anita Desai's, Cry the Peacock - A manifesto of female predicament by Anita Sharma, Research scholar, Dept. of English, Kurukshetra University. The Criterion Antht Journal in English, ISSN 0976-8165.
3. ibid.
4. Wikipedia.virginiawoolf.
5. Desai, Anita, 'Cry the Peacock'. Orient paper backs 2014, P.No. 77- 78.
6. M. Q. Khan, A. G. Khan. "Changing faces of woman". Indian Writing in English, Creative Books, New Delhi, 1995 P. No. 43.
7. Desai, Anita, 'Cry the Peacock'. Orient paper banks 2014, P.No. 75.
8. Desai, Anita, 'Cry the Peacock'. Orient paper banks 2014, P.No. 81-82.
9. ibid. p. 54.
10. ibid. p. 55.
11. ibid. p. 83.
12. ibid. p. 84.

****

संस्कृत गद्य कवि परम्परा के भास्वर नक्षत्र महाकवि सुबन्धु, बाणभट्ट एवं दण्डी - एक समीक्षण

पं. श्रेयस श्रीधर शास्त्री कोरान्ने *

प्रस्तावना – लोकोत्तर वर्णन कुशल कवि के हृदयगतभावों का प्रतिबिम्ब ही काव्य है। कवि की आत्मसंवेदनाओं की अनुभूति एवम् उसकी अलौकिक कल्पनाओं का साक्षात्कार काव्य के माध्यम से ही होता है। काव्य की इसी विलक्षणता के कारण आचार्यों ने विधाता की लौकिक सृष्टि से भी कविनिर्मित अलौकिक काव्य सृष्टि को ही महनीय स्थान प्रदान किया है, जैसा कि आचार्य मम्मट का कथन है –

नियतिकृतनियमरहितां ह्लादैकमयीमनन्यपरतन्त्राम् ।
नवरसरुचिरां निर्मितिमादधती भारती कवेर्जयति ।।[1]

काव्याशास्त्रीय आचार्यों ने काव्य के अनेक प्रयोजनों का निरूपण किया है जिसमें कीर्त्तिलाभ, आनन्दानुभूति इत्यादि प्रमुख हैं। इन्हीं प्रयोजन को दृष्टिगत रखते हुए काव्यनिर्माण की अविच्छिन्न परम्परा भारतवर्ष में विद्यमान है । जिसकी प्रासङ्गिकता आज भी है ।

काव्य भेद विमर्श – काव्यशास्त्रीय आचार्यों ने काव्य के इन्द्रियग्राह्यता एवं रचनागत वैशिष्ट्य के आधार पर काव्य को दृश्य तथा श्रव्य इन दो भेदों में विभक्त किया है, जैसा कि आचार्य विश्वनाथ का कथन है–

दृश्य–श्रव्यत्वभेदेन पुन: काव्यं द्विधा मतम् ।[2]

रचना के आधार पर काव्य के 1. पद्य, 2. गद्य एवं 3. मिश्र – ये तीन भेद दृष्टिगोचर होते हैं।

गद्यकाव्य का स्वरूप –

सभी काव्य प्रकारों में गद्यकाव्य का अपना अनुपम वैशिष्ट्य है। कवि जब अपने हृदयगतभावों को छन्दों के बन्धन से मुक्त होकर रमणीय पदसन्तान के रूप में काव्यबद्ध करता है तो वह काव्य गद्यकाव्य कहलाता है। इस काव्य को लक्षित करते हुए महर्षिव्यास का भी कथन है कि–

अपाद: पदसन्तानो गद्यं तदपि कथ्यते।[3]

गद्यकाव्य का उद्भव एवं विकास – संस्कृत गद्यकाव्य के उद्भव के सन्दर्भ में समालोचक विद्वानों ने तीन मत प्रस्तुत किये हैं । जो कि इस प्रकार हैं–

1. गद्यकाव्य का उद्भव पद्यकाव्यों से लोककथाओं के माध्याम से हुआ।
2. ग्रीक गद्यरचनाओं के माध्यम से संस्कृत गद्यकाव्य का उद्भव हुआ।
3. पद्यकाव्य के समानान्तर ही स्वाभाविक क्रमिक–विकास के द्वारा गद्यकाव्य का भी उद्भव हुआ।

इन तीनों मतों में से प्रथम एवं द्वितीय मत का खण्डन भारतीय एवं पाश्चात्य दोनों प्रकार के समीक्षकों ने प्रबल युक्तियों से किया है तथा तृतीय मत का प्रबल प्रमाणों से समर्थन किया है, क्योंकि न केवल लौकिकवाङ्मय में वरन् वैदिकवाङ्मय में भी पद्यकाव्य के समानान्तर ही गद्यकाव्य के भी दर्शन होते हैं।

वैदिक गद्य – संस्कृत गद्यकाव्य की अपनी समृद्ध परम्परा है। जिसका प्रारम्भ वैदिककाल से माना जाता है। वैदिक संहिताओं में ही सर्वप्रथम गद्य का दर्शन हमें होता है। यजुर्वेद की अनुपम गद्यमयता सुविदित ही है, इसीलिये आचार्यों ने भी 'यजु' शब्द को परिभाषित करते हुए – **'अनियताक्षरावसानो यजु:'** एवं **'गद्यात्मको यजु'** ही कहा है। कृष्णयजुर्वेद की तैत्तिरीयसंहिता में ही प्राचीनतम गद्य निदर्शन के रूप में प्राप्त होता है। इसी वेद की काठक एवं मैत्रायाणी शाखाओं की संहिताओं में भी उत्कृष्ट गद्य के दर्शन होते हैं। इसी प्रकार अथर्ववेदीय गद्य भी मनोहर है। इस वेद का षष्ठ भाग पूर्णतया गद्यात्मक ही है।

वैदिक संहिताओं के समान मन्त्रों के व्याख्यापरक एवं याज्ञीय विधानों के प्रतिपादक ब्राह्मणग्रन्थ भी गद्यमय ही हैं। इसी प्रकार मानव जीवन के चरम लक्ष्य को गम्भीर चिन्तन के द्वारा प्रतिपादित करनेवाले आरण्यक एवं प्राचीन उपनिषद्ग्रन्थों में भी विशिष्ट संवादात्मक गद्य का ही प्राचुर्य दृष्टिगत होता है। इसी प्रकार वेदाङ्गों से सम्बद्ध प्रातिशाख्य इत्यादि ग्रन्थ भी प्राय: गद्यात्मक सूत्रशैली में ही निबद्ध हैं।

वैदिक गद्य अनेक विशेषताओं से मण्डित है। इसकी अनन्य विशेषता इसका सस्वरपाठ विधान है । इसके उच्चारण में उदात्तादि स्वरों का प्रयोग वैदिकों द्वारा किया जाता है। इसी प्रकार वैदिक गद्य की सरलता, सहजता तथा संवादात्मक शैली भी अद्वितीय है जो कि निश्चित रूप से लौकिक संस्कृत के आलङ्कारिक गद्यकाव्य की आधारशिला है।

पौराणिक गद्य – वैदिक गद्य के अनन्तर लौकिक संस्कृत की गद्यपरम्परा के विकास का एक सोपान पौराणिक गद्य भी है। यह गद्य प्राञ्जलता, आलङ्कारिकता एवं प्रासादिकताप्रभृति गुणों से समन्वित है; जिसके प्राक्तन निदर्शन हमें महाभारत में दृष्टिगोचर होते हैं। इस पौराणिक साहित्य में पद्यभाग की बहुलता होते हुए भी विष्णुपुराण तथा श्रीमद्भागवत महापुराण के गद्यभाग भी अतीव रमणीय, भावाभिव्ञ्जक, अत्यन्त प्रौढ़ एवम् अलङ्कृत हैं। इस प्रकार पौराणिक गद्य निश्चित रूप से वैदिक गद्यधारा एवं लौकिक संस्कृत गद्यधारा का सङ्गम स्थान है।

शास्त्रीय गद्य – संस्कृत गद्यपरम्परा के विकासक्रम में शास्त्रीय गद्य का महत्त्वपूर्ण स्थान है। भारतीय चिन्तनधारा के मनीषियों ने दर्शन आदि गम्भीर शास्त्रीय विषयों के सरल एवं बोधगम्य विवेचन के लिये गद्य की सूत्रात्मक तथा संवादात्मक शैली को विकसित किया; जो कि वैदिक सूत्रग्रन्थों एवं पौराणिकवाङ्मय से पूर्णतया प्रभावित है। शास्त्रीय गद्य भी प्राञ्जलता, रोचकता, सरलता एवं बोधगम्यता आदि विशेषताओं से संवलित है।

* शोधार्थी (संस्कृत) अध्ययनशाला, विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन (म.प्र.) भारत

शास्त्रीय गद्य परम्परा के आचार्यों ने क्लिष्ट दार्शनिक विषयों को भी अनुकूल शब्दविन्यास, अर्थगाम्भीर्य, रचना कौशल तथा प्रवाहमयता के द्वारा सारगर्भित सुबोध गद्य में विवेचित किया। शास्त्रीय गद्य के उत्कृष्ट निदर्शन हमें अनेक शास्त्रीय ग्रन्थों में दृष्टिगोचर होते हैं; जिनमें महर्षिपतञ्जलि द्वारा प्रणीत व्याकरणमहाभाष्य, प्रौढ़मीमांसक-शबरस्वामी द्वारा विरचित मीमांसाभाष्य, भगवत्पादशङ्कराचार्य द्वारा रचित ब्रह्मसूत्र का शारीरकभाष्य, न्यायशास्त्राचार्य जयन्तभट्ट द्वारा ग्रथित - न्यायमञ्जरी, योगसूत्र का वैयासिकभाष्य तथा कौटिलीय अर्थशास्त्र आदि प्रमुख हैं।

इन सभी ग्रन्थकार आचार्यों ने शास्त्रीय गद्य की सरल, सुबोध, सरस, संवादात्मक तथा आख्यानात्मक शैली को विकसित करके संस्कृत गद्यपरम्परा के विकास में अनुपम योगदान प्रदान किया है।

शिलालेखीय गद्य - संस्कृत गद्यपरम्परा के विकासक्रम का अन्यतम सोपान शिलालेखीय गद्य है। इस गद्य की रचना का मुख्य उद्देश्य तत्कालीन राजाओं की आज्ञाओं का प्रचार-प्रसार था। शिलालेखीय गद्य भी मनोज्ञता, प्रौढ़ता, अलङ्कृत एवं प्रवाहमयता आदि वैशिष्ट्यों से युक्त है; जो कि संस्कृत गद्य की काव्यात्मकता की पूर्वपीठिका प्रतीत होता है।

इस गद्य के उत्कृष्ट निदर्शन हमें महाक्षत्रप रुद्रदामन् के गिरनार शिलालेख, हरिषेण की प्रयागप्रशस्ति इत्यादि संस्कृत के शिलालेखों के माध्यम से सम्पूर्ण भारतवर्ष में यत्र-तत्र प्राप्त होते हैं।

इस प्रकार संस्कृत गद्यपरम्परा की विकासयात्रा संस्कृत के शिलालेखीय गद्य साहित्य के माध्यम से ही अपने काव्यात्मक चरमोत्कर्ष की ओर अग्रसर हुई।

काव्यात्मक गद्य - संस्कृत गद्यपरम्परा का चरमोत्कर्ष हमें उसकी उत्कृष्ट, प्रौढ एवं सरस काव्यात्मक परिणिति में दृष्टिगोचर होता है। संस्कृत गद्यपरम्परा को पूर्ण विकसित करने का श्रेय मध्ययुग के गद्यमहाकवियों को ही है। भारत का यह मध्ययुग गद्यकाव्यपरम्परा का स्वर्णिम युग माना जाता है। इसी युग में महाकवि सुबन्धु, महाकवि बाणभट्ट एवं महाकवि दण्डी ने क्रमशः वासवदत्ता, हर्षचरित, कादम्बरी तथा दशकुमारचरित - इन विदग्ध गद्यकाव्यों का प्रणयन किया। इन्हीं गद्य रचनाकारों ने संस्कृत गद्य के सरस, भावाभिव्यञ्जक, अलङ्कृत एवं प्रौढ काव्यात्मक रूप की प्रतिष्ठा की और गद्यकाव्य के कथा एवम् आख्यायिकारूप भेदों के अनुपम लक्ष्यग्रन्थों का भी प्रणयन किया।

संस्कृत गद्य की कवि परम्परा के प्रतिनिधि महाकवि सुबन्धु, बाणभट्ट एवं दण्डी का व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व -

महाकवि सुबन्धु - संस्कृत गद्य की कवि परम्परा में महाकवि सुबन्धु ही सर्वप्रथम महाकवि हैं। इनकी एकमात्र उपलब्ध कृति 'वासवदत्ता' नामक कथा है। इस रचना में गद्यकाव्य का प्रौढ़ एवम् अलङ्कृत स्वरूप दृष्टिगोचर होता है। संस्कृत के प्राचीन कवियों के समान महाकवि सुबन्धु के सन्दर्भ में भी उनके देश-काल आदि के सन्दर्भ में विद्वान् एकमत नहीं हैं; तथापि इतिहासकारों ने कुछ बाह्य एवम् आभ्यन्तर प्रमाणों की सहायता से महाकवि सुबन्धु का समय षष्ठशती का अन्तिमभाग सिद्ध किया है।

वासवदत्ता - महाकवि सुबन्धु की एकमात्र उपलब्ध रचना 'वासवदत्ता' नामक कथा है। सुबन्धु की वासवदत्ता का कथानक 'उदयन एवं वासवदत्ता' की प्राचीनप्रणयकथा से पूर्णतया भिन्न है। इसमें पाटलिपुत्र की राजकन्या वासवदत्ता एवं राजकुमार कन्दर्पकेतु की प्रणयकथा का वर्णन सुन्दर श्लेषमय गद्य में किया गया है।

रचनावैशिष्ट्य - महाकवि सुबन्धु का श्लेषमय गद्यकाव्यगुम्फनकौशल अनुपम है। स्वयं को - '**प्रत्यक्षरश्लेषमय-प्रबन्धविन्यासवैदग्ध्यनिधि**' कहने वाले, इस महाकवि ने वासवदत्ता में आद्यन्त श्लेषमय काव्यरचना कौशल का उत्कृष्ट निदर्शन प्रस्तुत किया है। श्लेषालङ्कार के साथ विरोधाभास, परिसङ्ख्या, अनुप्रास, यमक तथा उपमा, मालादीपक आदि अलङ्कारों की अनुपम छटा भी सर्वत्र श्लाघनीय है।

महाकवि सुबन्धु की गणना वक्रोक्तिमार्ग के निपुण रचनाकार कवि के रूप में होती है, यथा -

सुबन्धुर्बाणभट्टश्च कविराज इति त्रयः।
वक्रोक्तिमार्गनिपुणाश्चतुर्थो विद्यते न वा ॥[4]

महाकवि सुबन्धु ने ओजोगुण से समन्वित दीर्घसामासिक पदसंरचना को ही लेखन में प्राधान्य अवश्य प्रदान किया; किन्तु कहीं-कहीं प्रसङ्गानुरूप भावाभिव्यञ्जक सरस, प्रासादिक तथा रमणीयपदावली का भी निबन्धन उन्होंने किया हैं। इस प्रकार सुबन्धुकृत वासवदत्ता कथावस्तु के स्वल्प होने पर भी वर्णन वैचित्र्य के कारण ही संस्कृत की गद्यकाव्यपरम्परा की सर्वप्रथम प्रतिनिधि रचना सिद्ध होती है।

वासवदत्ता के प्रसन्नश्लेषाश्रित परिसङ्ख्यालङ्कार का सुन्दर उदाहरण अवलोकनीय है-

'**शृङ्खलाबन्धो वर्णग्रथनासु, उत्प्रेक्षाक्षेपः काव्यालङ्कारेषु, लक्षदानच्युतिः सायकानाम्, विपपां सर्वविनाशः, कोषसङ्कोचः कमलाकरेषु न जनेषु, जातिविहीनता मालासु न कुलेषु**' - इत्यादि।

इसी कारण महाकवि बाणभट्ट ने भी सुबन्धुकृत वासवदत्ता की मुक्तकण्ठ से प्रशंसा करते हुए कहा -

कवीनामगलद्दर्पं नूनं वासवदत्तया।[5]

महाकवि बाणभट्ट - महाकवि बाणभट्ट संस्कृत गद्यकविपरम्परा के भास्वरनक्षत्र हैं। संस्कृत गद्यकाव्य का चरमोत्कर्ष हमें महाकवि बाणभट्ट की ही कृतियों में दृष्टिगोचर होता है। इनकी प्रमुख रचनाएँ - **हर्षचरित (आख्यायिका)** तथा **कादम्बरी (कथा)** ये दोनों गद्यकाव्य ही सर्वविदित एवं सुप्रसिद्ध हैं, इनके अतिरिक्त **चण्डीशतक (स्तोत्रकाव्य)**, **पार्वतीपरिणय (नाटक)** एवं **मुकुटताडितक (रूपक)** इत्यादि का भी बाणभट्ट की कृतियों के रूप में सरस्वतीकण्ठाभरण आदि ग्रन्थों में उल्लेख है।

महाकवि बाणभट्ट ही सौभाग्य से ऐसे महाकवि हैं, जिनके स्थिति काल के सन्दर्भ में कोई विवाद नहीं है; वे सम्राट् हर्षवर्धन (7वीं शती) के समकालीन थे; जिसकी पुष्टि कतिपय बाह्य एवं आभ्यन्तर प्रमाणों से भी होती है। महाकवि बाणभट्ट संस्कृत साहित्य के सर्वप्रथम कवि हैं; जिन्होंने अपनी रचनाओं (हर्षचरित, कादम्बरी) में अपना एवम् अपने वंश का ही नहीं, प्रत्युत संस्कृत-साहित्य के प्रमुख रचनाकारों का भी उल्लेख किया है।

हर्षचरितम् - महाकवि बाणभट्ट विरचित हर्षचरित संस्कृत साहित्य में उपलब्ध आख्यायिकाओं में प्राचीनतम ग्रन्थ है। इसमें 8 उच्छ्वास हैं; जिनमें प्रारम्भिक उच्छ्वासों में बाणभट्ट ने अपने वंश का वर्णन तथा अग्रिम उच्छ्वासों में सम्राट् हर्षवर्धन के जीवनवृत्त का अनुपम वर्णन किया है। दुर्भाग्य से यह ग्रन्थ अपूर्ण ही रह गया, सम्भवतः किसी कारणवश वे इस ग्रन्थ को पूर्ण नहीं कर सके।

कादम्बरी - महाकवि बाणभट्ट की काव्यकीर्तिकौमुदी को दिग्दिगन्त में व्याप्त करने का श्रेय उनकी अतिद्वयी कथा कादम्बरी को ही है। बाणभट्ट की विलक्षण काव्यप्रतिभा का चूडान्त निदर्शन इसी रचना में दृष्टिगोचर होता है। कादम्बरी की कथा पूर्वार्द्ध एवम् उत्तरार्द्ध इन दो खण्डों में विभक्त है;

जिसमें पूर्वार्द्ध स्वयं बाणभट्ट द्वारा प्रणीत तथा उत्तरार्द्ध का प्रणयन उनके पुत्र (पुलिन्द/भूषणभट्ट) ने किया।

कादम्बरी की कथावस्तु हर्षचरित की भाँति ऐतिहासिक नहीं, अपितु कवि कल्पनाप्रसूत है। यद्यपि कादम्बरी की यह कथा मूलरूप से बृहत्कथा से प्रेरित है, तथापि महाकवि ने अपनी विलक्षण काव्यप्रतिभा एवम् अनुपम कल्पनाशीलता से उसे एक पूर्णतया नूतन एवं मौलिक रूप प्रदान किया है। कादम्बरी की कथा उज्जयिनी के राजकुमार चन्द्रापीड तथा उसके मित्र वैशम्पायन के तीन जन्मों की कथा है, जिसमें नायक चन्द्रापीड तथा नायिका गन्धर्वराजकुमारी कादम्बरी और सहनायक पुण्डरीक (वैशम्पायन) और सहनायिका महाश्वेता की प्रणय कथा वर्णित है।

रचनावैशिष्ट्य– महाकवि बाणभट्ट की गद्यशैली विलक्षण एवम् अद्वितीय है जिसने अनेक गद्य कवियों को प्रेरणा प्रदान की है। महाकवि का वर्णन कौशल नितान्त सरस एवं मार्मिक है; जो कि सहज ही सहृदय पाठकों के मनों को अपनी ओर आकृष्ट कर लेता है। बाणभट्ट पाञ्चालीरीति के प्रयोक्ता महाकवि माने जाते हैं। उनके वर्णनों में न केवल उत्कलिकाप्राय गद्य ही मिलता है; अपितु प्रसङ्गानुरूप 'चूर्णक' एवं 'मुक्तक' शैली का भी गद्य उपलब्ध होता है। इसी प्रकार उनकी संवादात्मक गद्यशैली भी अनुपम है। उन्होंने अपनी कृतियों में श्लेष, विरोधाभास, उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक तथा परिसङ्ख्याप्रभृति अलङ्कारों का भी अद्भुत सन्निवेश किया हैं । उनके उज्जयिनीवर्णन, चाण्डालकन्यावर्णन, जाम्बाल्याश्रमवर्णन, विंध्याटवीवर्णन, महाश्वेतावर्णन, कादम्बरीवर्णन तथा यशोमतीचितारोहणवर्णन इत्यादि बाणभट्ट की वर्णनकौशलता के परिचायक हैं। उनके महाश्वेतावृत्तान्त की विलक्षण शोभा विशेष द्रष्टव्य है, यथा –

'**क्रमेण च कृतं मे वपुषि वसन्त इव मधुमासेन, मधुमास इव नवपल्लवेन, नवपल्लव इव कुसुमेन, कुसुम इव मधुकरेण, मधुकर इव मदेन, नवयौवनेन पदम् ।**'[6]

महाकवि बाणभट्ट की वर्णनाचातुरी वाणी ने अशेषविश्व को अपने वर्णनों में कुछ इस प्रकार चित्रित किया है कि मानो सम्पूर्ण संसार उनका उच्छिष्ट मात्र ही हो, इसीलिये साहित्यसमीक्षकों की यह उक्ति यथार्थ प्रतीत होती है '**बाणोच्छिष्टं जगत् सर्वम्**'।

महाकवि दण्डी – संस्कृत की गद्यकाव्यधारा के कवियों में महाकवि दण्डी का महत्त्वपूर्ण स्थान है। इनके स्थितिकाल के सम्बन्ध में भी विद्वानों में मतभेद है, तथापि इनकी रचनाओं के बाह्य एवम् आभ्यन्तर साक्ष्यों के आधार ऐतिह्यविज्ञों एवं साहित्यिक विद्वानों ने इनका समय सप्तमशती का अन्तिम या अष्टमशती का प्रारम्भिक भाग माना है, जो कि सर्वथा समीचीन है।

साहित्यिकपरम्परा महाकवि दण्डी के तीन प्रबन्धों के होने की पुष्टि करती है; जैसा कि 'शार्ङ्गधर पद्धति' नामक ग्रन्थ में कविवर राजशेखर के नाम से एक श्लोक उद्धृत है –

त्रयोऽग्नयस्त्रयो देवास्त्रयो वेदास्त्रयो गुणा:।
त्रयो दण्डिप्रबन्धाश्च त्रिषु लोकेषु विश्रुता:।।

यद्यपि दण्डी के तीन प्रबन्धों का नामोल्लेखपूर्वक वर्णन राजशेखर ने अन्यत्र कहीं नहीं किया है; तथापि परम्परा '**काव्यादर्श**' (काव्यशास्त्रीय ग्रन्थ), '**दशकुमारचरित**' (गद्यकाव्य) तथा '**अवन्तीसुन्दरीकथा**' (गद्यकाव्य) – इन रचनाओं को कविवर दण्डी की रचनाओं के रूप में मान्यता प्रदान करती है। कतिपय विद्वान् 'द्विसन्धान', 'छन्दोविचित' तथा 'कलापरिच्छेद' इन अप्राप्य ग्रन्थों को भी दण्डी द्वारा रचित ही मानते हैं।

दशकुमारचरितम् – आचार्य दण्डी के विलक्षण कवित्व का द्योतक उनका 'दशकुमारचरित' नामक गद्यकाव्य है। यह घटना प्रधान काव्य अनेक कौतूहलपूर्ण एवं रोमाञ्चकारी आख्यानों से परिपूर्ण है। इस गद्यकाव्य में आठ उच्छ्वास हैं, जिसका कथानक – **पूर्वपीठिका (भूमिका)**, **दशकुमारचरित (मूल अंश)** तथा **उत्तरपीठिका (पूरकभाग)** इन तीन खण्डों में विभक्त है; जिनमें पुष्पपुरी के शासक राजहंस के पुत्र राजवाहन एवं उसके मन्त्रियों के पुत्रों के विभिन्न देशों में भ्रमण तथा तत्तत् स्थानों के आख्यान सुनाने का वर्णन अतीव रोचक, उत्साहमय एवं सरस रीति में उपनिबद्ध है।

रचनावैशिष्ट्य – महाकवि दण्डी गद्य की अभिनव शैली के प्रयोक्ता माने जाते हैं। उनकी गद्यलेखन शैली न तो महाकवि सुबन्धु की तरह प्रत्यक्षरश्लेषमय है और न ही महाकवि बाणभट्ट की तरह विकटाक्षरबन्धों से संयुक्त है। महाकवि दण्डी की गद्य शैली कृत्रिम अलङ्कारों के भार से बोझिल नहीं है, अपितु उनकी शैली सहज अनुप्रास आदि अलङ्कारों की रमणीय शोभा से अलङ्कृत है। उनकी शैली की प्रमुख विशेषता लालित्यपूर्ण पदविन्यास है जो कि महाकवि दण्डी के काव्यकौशल का परिमापक है। अत: संस्कृतजगत् में '**दण्डिन: पदलालित्याम्**' यह उक्ति आज भी प्रचलित है। उनकी रीति वैदर्भी है; जो कि प्रसादगुण से सम्पन्न, सरल, सुबोध, सरस तथा भावगाम्भीर्य से संवलित है। महाकवि दण्डी का शब्दशिल्पनैपुण्य भी अनुपम है। सम्भवत: वे प्रथम ऐसे महाकवि हैं; जिन्होंने अपनी रचना का एक भाग ओष्ठ्यवर्णों से रहित प्रणीत किया है। महाकवि के गद्य की नीतियुक्त उपदेशात्मकता भी उनके गौरव को विश्वसाहित्य में वृद्धिङ्गत करती है। उनके पद लालित्य का एक उदाहरण द्रष्टव्य है–

'**रज्जुरियम् उद्बन्धनाय सत्यावादिताया विषमियं जीवितहरणाय माहात्म्यास्य, शस्त्रमियं विशसनाय सत्पुरुषवृत्तानाम्, अग्निरियं निर्दहनाय धर्मस्य, सलिलमियं निमज्जनाय सौजन्यास्य, धूलिरियं धूसरीकरणाय चारित्रस्य ।**'[7]

इसी कारण साहित्य समीक्षकों ने उनके काव्यकौशल की प्रशंसा करते हुए केवल उन्हीं को 'कवि' पद प्रदान किया है – '**कविर्दण्डी कविर्दण्डी कविर्दण्डी न संशय:।**'

निष्कर्ष – इस प्रकार महाकवि सुबन्धु, बाणभट्ट तथा दण्डी द्वारा विरचित गद्य साहित्य के द्वारा न केवल संस्कृत– साहित्य की श्रीवृद्धि की गयी है, वरन् इन महाकवियों के द्वारा विरचित गद्य–साहित्य ने सम्पूर्ण गद्य कविपरम्परा को आलोकित किया तथा परवर्ती संस्कृत गद्य कवियों का मार्ग प्रशस्त किया है, जिसके लिये सम्पूर्ण संस्कृत–साहित्य उनके प्रति अपनी अधमर्णता सदैव व्यक्त करता रहेगा।

संदर्भ ग्रंथ सूची :–

1. काव्यप्रकाश – 1.1
2. साहित्यदर्पण–6.1
3. अग्निपुराण – 337.8
4. राघवपाण्डवीय –1.41
5. हर्षचरित–1.12
6. कादम्बरी – महाश्वेतावृत्तान्त ।
7. दशकुमारचरित – लक्ष्मीवर्णन ।

****

रघुवंश महाकाव्य एवं पञ्चमहायज्ञ (धर्मशास्त्रीय अनुशीलन)

डॉ. गोपालकृष्ण शुक्ल *

प्रस्तावना – संस्कृत–साहित्य की विभिन्न विधाओं में पञ्चमहायज्ञ के विवरण उपलब्ध होते हैं। वस्तुत: भारतीय जीवन–पद्धति में पञ्चमहायज्ञ मानवीय चेतना के साथ–साथ सामाजिक चेतना एवं पर्यावरण के प्रति आस्था का निदर्शन इन कृत्यों से प्राप्त होता है। संस्कृत की कृतियों के रचनाकार वैदिक आस्था और धर्मशास्त्र के निर्देशों को यथास्थान पात्रों के चरित्र में समीकृत करते हुए दिखलाई देते हैं। पञ्चमहायज्ञ की अवधारणा एवं उसका सम्पादन वेदकालीन व्यवस्था में प्रतिष्ठित है। पञ्चमहायज्ञ में सम्मिलित हैं – 1. ब्रह्मयज्ञ, 2. देवयज्ञ, 3. पितृयज्ञ, 4. भूतयज्ञ, 5. मनुष्ययज्ञ।

वैदिककाल से ही पञ्चमहायज्ञों के सम्पादन की व्यवस्था पायी जाती है। शतपथब्राह्मण का कथन है – केवल पाँच ही महायज्ञ हैं, वे महान् सत्र हैं और वे हैं – भूतयज्ञ, मनुष्य, पितृयज्ञ, देवयज्ञ एवं ब्रह्मयज्ञ।[1]

तैत्तिरीयारण्यक[2] में आया है – वास्तव में ये पञ्चमहायज्ञ अजस्र रूप से बढ़ते जा रहे हैं। जब अग्नि में आहुति दी जाती है, भले ही वह मात्र समिधा हो, तो वह देवयज्ञ है, जब पितरों को स्वधा दी जाती है, चाहे वह जल ही क्यों न हो, तो वह पितृयज्ञ है, जब जीवों को बलि दी जाती है, तो वह भूतयज्ञ कहलाता है, जब अतिथियों को भोजन दिया जाता है तो उसे मनुष्य कहते हैं और जब स्वाध्याय किया जाता है, चाहे एक ही ऋचा हो या यजुर्वेद या सामवेद का एक ही सूक्त हो, तो वह ब्रह्मयज्ञ कहलाता है। पञ्चमहायज्ञों की सूची में महाकाव्यों में प्रधानत: देव पितृ, ब्रह्मा एवं मनुष्य के विवरण की उपस्थिति उपेक्षाकृत भूतयज्ञ के बहुलता से प्राप्त होती है। महाकवि कालिदास के रघुवंश में महर्षि वशिष्ठ ब्रह्मयज्ञ का सम्पादन करते हैं। ऋषि के अनुष्ठान के उपरान्त महाराजा दिलीप से वार्तालाप सम्पन्न होती है। धर्मशास्त्र का निर्देश है कि ब्रह्मयज्ञ में व्याप्त यतियों को प्रणाम का शिष्टाचार वर्जित है। इसी परिप्रेक्ष्य में दिलीप–सुदक्षिणा ऋषि वशिष्ठ की तभी वन्दना करते हैं जब वे अनुष्ठान से विवरित हो जाते हैं–

विधे: सायन्तनस्यान्ते स ददर्श तपोनिधिम्।
अन्वासितमरुन्धत्या स्वाहयेव हविर्भुजम्॥
तयोर्जगृहतु: पादान् राजा राज्ञी च मागधी।
तौ गुरुर्गरुपत्नी च प्रीत्या प्रतिननन्दुत॥[3]

महाकवि कालिदास का यह सूक्ष्म सङ्केत धर्मशास्त्र की मर्यादाओं का परिपालन है। धर्मशास्त्रों में कहा है कि जो व्यक्ति श्राद्ध, व्रत, दान, देवतार्चन, यज्ञ, तर्पण आदि में व्यस्त हो तो उसे प्रणाम नहीं करना चाहिये।

श्राद्धं व्रतं तथा दानं देवताभ्यर्चनं तथा।
यज्ञं च तर्पण चैव कुर्वन्तं नाभिवादयेत्॥
कृतेऽभिवादने यस्तु न कुर्यात्प्रतिवादनम्॥[4]

सर्ग पञ्चम में रघुकौत्स के उपाख्यान में महाराजा रघु वर्तन्तु शिष्य कौत्स से ब्रह्मयज्ञ में किसी भी प्रकार की कठिनाई से ज्ञान प्राप्त करने के लिये प्रश्न उपस्थित करते हैं कि आश्रम निवासी ऋषिगण एवं शिष्यगण जिन नदियों में प्रतिदिन स्नान, संध्या, तर्पण आदि का निष्पादन करते हैं कि वे जल शुद्ध एवं शान्ति पुष्टिदायक तो है–

निर्वर्त्यते यैर्नियमाभिषेको।
येभ्यो निवापाञ्जलय: पितृणाम्॥
तान्युञ्छषष्ठाङ्कितसैकतानि।
शिवानि वस्तीर्थजलानि कच्चित्॥[5]

राजा रघु आह्निक–कृत्यों की पवित्रता के लिये जो प्रशासनिक एवं राजधर्म से समन्वित प्रश्न उपस्थित करता है, उसमें जल का पवित्र होना राजधर्म का महत्त्वपूर्ण उत्तरदायित्व है। जल ऐसा तत्त्व है जिसके पवित्र न होने पर आचमन आदि क्रियाएँ न होकर अनुष्ठानकर्त्ता के शरीर धर्म को विकृत कर देता है।

सरित्सु देवखातेषु तीर्थेषु च नदीषु च।
क्रियास्नानं समुदिष्टं स्नानं तत्रामला: क्रिया॥[6]

राजकुमार अज स्वयंवर में उपस्थित होने के पूर्व शास्त्रोचित् वे क्रियाएँ जो प्रात:काल अनुष्ठित होती हैं, सम्पन्न करके ही लक्ष्य की ओर प्रवृत्त होते हैं।

अथ विधि मवसाय्य शास्त्रदृष्टं दिवसमुखोचितमञ्चिताक्षिपक्ष्मा।
कुशलविरचितानुकूलवेष: क्षितिपसमाजमगात्स्वयंवरस्थम्।[7]

यहाँ ब्रह्मयज्ञ की एवं विद्या के स्वाध्याय का समावेश है। स्वाध्याय के लिये वेद–स्वाध्याय तथा इतर शास्त्रों का स्वाध्याय कदाचित् सम्मिलित है। ऋषि वशिष्ठ के आश्रम में ब्रह्ममुहूर्त में शिष्यों द्वारा वेद–स्वाध्याय से सम्राट दिलीप का जागृत होना उपनिबद्ध है।

निर्दिष्टां कुलपतिना स पर्णशालामध्यास्य प्रयतपरिग्रहद्वितीयः।
तच्छिष्याध्‍ ननिवेदितावसानां संविष्ट कुशशयने निशां निनाय॥[8]

स्वाध्याय स्वयं में एक तपस्या है – स्वाध्यायेव तपः उपनिषदों में स्नातक को निर्देश दिया जाता है कि स्वाध्यायान्माप्रमदः अर्थात् स्वाध्याय का त्याग न केवल पापाचरण है अपितु परम्परा के प्रति अपमान की भावना की अभिव्यक्ति भी है। इसिलये शिक्षाशास्त्र में कहा है –

अनाभ्यासे विषं विद्या
आवृत्ति सर्व–शास्त्राणांबोधादपि गरियसी
द्वितीय च तथा भागे वेदाभ्यासो विधीयते।
वेदाभ्यासो हि विप्राणां परमं तप उच्यते॥[9]

* अतिथि विद्वान, वेद अध्ययनशाला विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन (म.प्र.) भारत

ब्रह्मयज्ञः स विज्ञेयः षडङ्गसहितस्तुसः।
वेदस्वीकरणं पूर्व विचारोऽभ्यसनं जपः॥
ततो दानं च शिष्येभ्यो वेदाभ्यासो हि पञ्चथा।
मित्पुष्पकुशादिनां स कालः समुदाहृतः॥[10]

महाराज रघु के दिवङ्गत होने पर अज विलाप के दृश्य में अज को सांत्वना देने के समय सभ्यजन ब्रह्मजन ब्रह्मयज्ञ की महत्ता का आश्रय लेते हुए कहते हैं कि –

ऋषिदेवगणस्वधाभुजां श्रुतयागप्रसवैः स पार्थिव।
अनृणत्वमुपेयिवान्बभौ परिधेर्मुक्त इवोष्णदीधितः॥[11]

वेदाध्यायन ब्रह्मयज्ञादि क्रिया से मनुष्य मात्र ऋषि ऋण से मुक्त हो जाता है इसलिये तुम्हारे लिये विशाद का अवसर नहीं है तथा गमन के समय शोक करना भी असङ्गत एवं अशास्त्रीय है। रामावतार के समय सप्तऋषियों के वेद स्वाध्याय युक्त ब्रह्मयज्ञ की उपासना प्रशस्त वाक्यों में प्रस्तुत है –

कृताभिषेकैर्दिव्यायां त्रिस्रोतसि च सप्तभिः।
ब्रह्मर्षिभिः परंब्रह्म गृणद्भिरुपतस्थिरे॥[12]

रघुवंश महाकाव्य के 15 वें सर्ग में उपवीत हो जाने के उपरान्त ब्रह्मयज्ञादि में संहिताओं का स्वाध्याय एवं वेदाङ्गों का परिशीलन करने का सन्दर्भ सूर्यवंशी राजाओं की दिनचर्या की समर्थ व्याख्या महर्षि वाल्मीकि के आश्रम में सीता द्वारा प्रसूत लव–कुश के शिक्षण–प्रशिक्षण सम्पादन में वेद–वेदाङ्गों के अध्ययन का उल्लेख से स्पष्ट है।

साङ्गं च वेदमध्याप्य किञ्चिदुत्क्रान्तशैशवो।
स्वकृतिं गापयामास कविप्रथमपद्धतिम्॥[13]

ऋषि वाल्मीकि के आश्रम में वेद–वेदाङ्ग का अध्ययन आश्रम की शिक्षा व्यवस्था, शास्त्रों के अध्ययन का सातत्य एवं बाल्याकाल से ही जीवन पद्धति में स्वाध्याय समावेश सूचित करता है कि भारतीय मेधा किस प्रकार से बाल्यकाल से ही वैदिक अध्ययन के प्रति समर्पण भावना जागृत करती थी।

उपनीयः गुरुः शिष्यं महव्याहृतिपूर्वकम्।
वेदमध्यापयेदेनं शौचाचाराश्च शिक्षयेत्॥
वाको वाक्यं पुराणं च नाराशंसीश्च गाथिकाः।
इतिहासांस्तथा विद्या योऽधीते शक्तितोऽन्वहम्॥[14]

उपर्युक्त सन्दर्भों के अतिरिक्त भी रघुवंश महाकाव्य में आह्निक सम्बन्धी अनेक सूत्र प्राप्त होते हैं। जिनकी समीक्षा ज्ञानार्जन के लिये आवश्यक है।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची :–

1 द्रष्टव्य धर्मशास्त्र का इतिहास, पृ. 383
2 वही
3 रघु. 1.56.57
4 ना. पु. 25/42–43
5 रघु. 5.8
6 आ.सु.पृ. 35
7 रघु. 5.76
8 रघु. 1/95
9 आह्निक सूत्रावली, पृ. 55
10 वही
11 रघु. 8/30
12 रघु. 10/63
13 रघु. 15/33
14 आह्निक सूत्रावली पृ. 65

****

कला-शिक्षा और उसमें भावी संभावनायें (चित्रकला के परिपेक्ष्य में)

डॉ. यतीन्द्र महोबे *

प्रस्तावना – 'कला शिक्षा और उसमें भावी संभावनायें' विषय पर आज चर्चा अति आश्वयक हो गई है। इन चर्चाओं के माध्यम से कला एवं कलाकार हित में पहल करना जरूरी हो गया है। वरन चित्रकला अपने शब्द के साथ लुप्त हो जायेगी, चित्रकला बड़ी तीव्रगति से इंस्टोलेशन की और बढ़ रही है जो चित्रकार के लिए चित्रकला के शब्द एवं अर्थ को जीवित रखने की चुनौति होगी।

यह विषय एक गंभीर चिंतनीय विषय है। इस आधुनिक युग में कला समाज कल्याण भावना से निरंतर दूर होती चली जा रही है। कला सिर्फ आनंद प्राप्ति का जरिया नहीं है बल्कि उसमें जन कल्याण, यथार्थता एवं प्रेरणादायक भावना का समावेश भी अनिवार्य है ।आज का आधुनिक कलाकार यह मान बैठा है कि वह स्वांत: सुखाय के लिये कला निर्मित करे। यह उनकी स्वार्थबुद्धि को दर्शाता है।

समाजिक परिवेश में संवेदनशील व्यक्ति ही कलाकार के रूप में विकसित होता है इसी परिवेश में वह अपने व्यक्तित्व एवं कृतित्व के साथ समन्वित भाव को रूपायित करता है। कलाकार का योगदान कला जगत में सदैव अग्रणी रहा है। कलाकार अपने अनुभवों से मौलिक प्रयास करके उन महान कृतियों को जन्म देता है, जो आज कला जगत में आदर्श प्रस्तुत करती हैं। चिंतनीय बात यह है कि आज कला सिर्फ आम संतुष्टि व स्वांत सुखाय नहीं रह गयी है। अपितु जीवन यापन का एक महत्वपूर्ण हिस्सा बन चुकी है। बेरोजगारी के इस युग में कलाकार को अपनी कला को बेचने के लिए मजबूर होना पडा है। लेकिन इस आधुनिक युग में कला को बेचकर उदर पूर्ति करना इतना आसान नहीं है। आज वही कलाकार ऊँचाई पर खड़ा है जिसकी पृष्ठभूमि आर्थिक दृष्टि से मजबूत है या जो मिडिया के माध्यम से प्रकाश में आ चुका है।

इसका अर्थ यह नहीं है कि बाकी कलाकार कला ज्ञान से अनभिज्ञय है या फिर उनकी सृजनशीलता में कोई कमी है। ये कलाकार कहीं न कहीं आर्थिक कमजोरी से जुझ रहे हैं।

आज हमारे देश में निरंतर कलाकारो की संख्या में वृद्धि हो रही है, कारण लोगों का कला के प्रति प्रेम या फिर बाजार में ऊँचे दामों में बढ़ती कलाकृतियों की मांग। चाहे जो भी हो लेकिन इसका दूष्प्रभाव युवा कलाकारों तथा उनके भविष्य पर साफ साफ दिखाई दे रहा है। कलाकारों की संख्या में वृद्धि होना एक खुशी की बात है, और यह देश के लिये हितकारी भी है। लेकिन आज कला के क्षेत्र में बाजारीकरण का जो माहौल है। वह युवा कलाकारों के लिये घोर चिंतनीय विषय है। अमीरी और अतिख्याति ने कलाकार को कलात्मकता से दूर कर दिया है पैसे की अतिवृष्टि उन्हें समाज विमुख, आत्मकेंद्रित ओर ठहराव का शिकार बनाती है। और वे कुछ मूल भूत जरूरी चीजों की परवाह करना भूल जाते है जो उनकी कला के विषय के लिए अति आवश्यक है। 'कला प्रदर्शनियों में घोषित पुरस्कार संबंधी निर्णय एवं नीलामी में घोषित विक्रय मूल्य, कई तात्कालिक बाह्य तत्वों से प्रभावित होने उनसे कलाकृति के दीर्घकालीन महत्व की समुचित कल्पना का कोई आधार नहीं बनता, असल में कला के इतिहास में उन्हीं कलाकृतियों की गणना सर्वश्रेष्ठ श्रेणी में की गई है। जिनमें रूपगुणों की परिपूर्णता के साथ समस्त जीवन के अंतर्गत सत्य को प्रभावी ढंग से प्रकाशित करने की सामर्थ्य होती है। यानि जिनमें रूप व अभिव्यक्ति के साथ सम्प्रेषण का भी गुण होता है।'[1]

हमारे भारत देश में कला शिक्षा को हेय दृष्टि से देखा जाता है कला क्षेत्र में बेरोजगारी की बहुत बड़ी समस्या है, यदि भारत में कला संस्कृति को संरक्षित करना है। तो कला क्षेत्र में रोजगार के अवसर तलाशना होगा। स्कूल शिक्षा से ही चित्रकला एवं संगीत जैसे विषयों को अनिवार्य करना होगा ताकि भटकते अनेक कलाकारों को रोजगार प्राप्त हो सके। परिणाम यह होगा की छात्र स्कूल जीवन से ही कला के गुण सीखेगा और एक परिपक्व नव कलाकार के रूप में समाज को नई दिशा प्रदान करेगा जो वास्तविक रूप से आधुनिकता को परिलक्षित करेगा।

यदि हम सच्चे भारतीय है और यह सोचते है कि कला सिर्फ आत्मसंतुष्टि का जरिया नहीं बल्कि सामाजिक चेतना एवं जन कल्याण की भावना का एक माध्यम भी है तो हमे पाश्चात्य अनबूझ आधुनिक कला का पिछलगू बनने की आवश्यकता नहीं है। कला प्रेरणा दायक होनी चाहिये। विषय सशक्त एवं प्रस्तुतिकरण में सहजता का समावेश परिस्थितियों में बदलाव का सूचक है। हमे चित्रकला के माध्यम से देश में पनप रही गरीबी, भूखमरी, बीमारी, बेरोजगारी, निरक्षरता, धर्मान्धता, जातिवाद, छुआछूत, भ्रष्टाचार, शोषण, अनैतिकता, आतंकवाद आदि ज्वलंत विषयों को अंकित कर भारत में क्रांतिकारी परिवर्तन की कामना करना होगा।

'वास्तव में कला की अभिव्यक्ति कलाकार के आदर्शो के सामंजस्य से मानव जगत की स्थिति का वास्तविक एवं सच्चा अवलोकन है। कलाकार की कलाकृति कलाकार एवं दर्शक पर सामान्य मानसिक एवं भावनात्मक प्रभाव छोड़ती है।'[2] आज की कला नये युग के अनुरूप तभी हो सकती है। जब इसमें नये युग की आवश्यकता और आकांक्षाओं का बोध हो, जो सरल, ओज एवं प्रवाह पूर्ण रूपों, धरातलीय, संश्लिष्ट और धनीभूत रंग योजनाओं तथा आज के युग के अनुरूप प्रतीकों का प्रयोग कर सके इसमें किसी प्रकार की अश्लीलता एवं भद्देपन का समावेश न हो।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. कला के अंतर दर्शन - र. वि साखलकर, राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी, जयपुर 2008, पृष्ठ संख्या- 134
2. कला चिंतन 'सौन्दर्यत्मक विवेचन' - विधुकौशिक- इंटननेशनल पब्लिशिंग हाउस, मेरठ-2002, पृ.सं. 34

* सहायक प्राध्यापक (चित्रकला) शासकीय महिला महाविद्यालय, नरसिंहपुर (म.प्र.) भारत

सामाजिक चेतना के सजग प्रहरी अवधेश मिश्र

सपना नीरज *

प्रस्तावना – समाज मानव जीवन का प्रथम स्वर है। जिसमें वह अपनी सांस्कृतिक सम्पदाओं का संग्रहण करता है। इन्हीं सामाजिक चेतनाओं को अवधेश मिश्र अपने सृजन संसार में अलंकृत करते हैं। जिनमें भावों का रोपण इतना सजीव होता है कि चित्र स्वयं ही श्वास लेते प्रतीत होते हैं।

अवधेश मिश्र लखनऊ में सृजनरत समकालीन कलाकार हैं। जिनका जन्म 1970 में फैजाबाद के मठगोविन्द (भोया) ग्राम में हुआ। ग्राम्य वातावरण में जन्म के कारण मिश्र जी प्राकृतिक एवं परम्परा से जुड़े कलाकार है तभी उनके चित्रों में सर्वत्र ही परम्परा का नवन्मेष दृश्यमान है। 'संस्कृति के भीतर का व्यक्ति निज संस्कृति या समूह को प्राकृतिक रूप में अनुभव करता है। व्यक्ति की सोच की सोच, कल्पना क्रिया, अंत: पारस्परिक क्रिया (Interpersonal Activities) बातचीत, खेल, रहन–सहन के मानदण्ड, तौर–तरीके एवं शिष्टाचार आदि सब संस्कृति विशेष के संदर्भ में ही होते हैं। इस प्रकार व्यक्ति की निजी संस्कृति उसके जीवन का एक घनीभूत हिस्सा हो जाता है।[1] इस तरह अवधेश जी ने सामाजिक धारा के अन्तर्गत विविध सांस्कृतिक पक्षों का भावानुकूल चित्रण किया है। मिश्र जी समाज की समस्याओं के प्रति चिन्तशील कलाकार है। फलस्वरूप उनके चित्रों के विषयों में सम्पूर्ण राष्ट्र की चाहे वह विद्यालय हो या मनुष्यों की पारस्परिक समस्याएँ सभी को यथोचित स्थान प्रदान किया गया है।

अवधेश जी ने अपने सृजन संसार में पूर्व अनुभूतियों का आदर्श संगम प्रस्तुत किया है जो उनकी सृजनात्मकता का प्रमुख आधार है। 'किसी भी समस्या के समाधान पर सोचते सा विचारते समय स्मृति अर्थात् स्मरण प्रक्रिया भी सम्मिलित होती है। पूर्व अनुभवों की स्मृतियाँ वर्तमान समस्या के उपयुक्त समाधान के लिए चिंतन एवं प्रहस्तन (Thinking and Manipulation) को दिशा प्रदान करती हैं। इसी तरह संवेग, प्रेरणा, शिक्षण एवं व्यवहार के दूसरे पक्ष भी चिंतन प्रक्रिया में शामिल हो जाते हैं।[2] इस तरह कलाकार के अंतस की भावनाएँ समाज के विविध क्रियाकलापों से अंत: सम्बन्धित होती हैं। तभी सजग कलाकार समाज के प्रति अधिक संवेदनशील हो उठता है। यह संवेदना अचानक ही उत्पन्न नहीं होती बल्कि अचेतन मन पर पडे पूर्व संस्कारों की प्रखर छवि का ही प्रतिबिम्ब बनकर उभरती है। जिसमें समाज के समस्यात्मक पक्ष गवाक्ष बनते हैं। यह सभी तत्व मानव प्रेम के सूचक हैं क्योंकि 'परम्पराओं, प्रथाओं के मोह से ऊपर उठकर ही मानव अपने निजी मानव समाज की पृथकता की भावना का पोषण करके आत्म उच्चता एवं अन्य राष्ट्रों की हीनता की भावना को तीव्र करता है। सहानुभूति, न्याय, साहस, सत्य एवं त्याग आदि के अमूर्त किन्तु उच्चतर आदर्शों को ग्रहण करके मानवों के जीवन के पूर्ण विकास का लक्ष्य सम्पादित करने के मार्ग पर चल पाता है।[3] इस प्रकार अवधेश जी अपने सृजन संसार के माध्यम से समाज में वसुधैव कुटुम्बकम् के भाव का संचार करने को प्रयत्नशील हैं जिनका प्रमुख आधार उनकी 'बिजूका श्रृंखला' रही है। 'सामाजिक संगठन का स्वरूप कभी शाश्वत नहीं बना रहता, समाज व्यक्तियों का समन्वय है और विभिन्न लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए विभिन्न समूहों में विभक्त है, अत: मानव मन और समूह की गतिशीलता उसे निरंतर प्रभावित करती रहती है। परिणामस्वरूप समाज परितर्वशील होता है। संक्रमण की निरंतरता में सदस्यों का उपक्रम, उनकी सहमति और नूतनता से अनुकूलन की प्रवृत्ति क्रियाशील रहती है।'[4]

समाज की इसी जटिलता को अवधेश जी ने अपने सृजन में बहुआयामी रूप प्रदान किया है। फलस्वरूप सामाजिक व्यक्ति के कार्य–कलापों को लोकाभिव्यक्ति माध्यम से प्रस्तुत किया है तभी उनके चित्रों में साधारण जनता एवं राजनैतिक परिदृश्य, ग्रामीण एव शहरी दृश्य, विद्यार्थी इत्यादि को महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। इन सभी के सृजन में अवधेश जी सभी स्थानों में लोक–बिम्बों को साथ लेकर ही चलते हैं क्योंकि परम्परा से विलग रहकर सफलता की कामना करना असाध्य है। मिश्र जी तो पूर्णतया परम्परा को समर्पित कलाकार हैं साथ ही वे आधुनिकता के दामन को भी अपनाते हुए सृजनरत रहते हैं तभी उनको परम्पराओं का पुनराविष्कार करने वाले कलाकार के रूप में ख्याति प्राप्त है। क्योंकि उन्होंने अपने सृजन में लोक–बिम्बों का प्रयोग आधुनिक परिप्रेक्ष्य में किया है। जो सर्वथा नवीन अर्थ प्रदान करने में उर्द्धवगामी प्रभाव लिए हुए है। अवधेश जी प्रकृति से जुड़े हुए कलाकार हैं क्योंकि उनका लालन–पोषण ही ग्रामीण परिवेश में हुआ है। 'ग्रामीण समाज की सबसे विशिष्ट पहचान उसकी कौटुम्बिकता है जिसके अंतर्गत यहाँ के तमाम परिवार प्राय: सदियों से विस्तृत होने वाले एक रक्त संबंध के दायरे में बंधे रहते हैं।[5] इस कारण अवधेश जी की कृतियों में भी वसुधैव कुटुम्बकम् का अनुग्रह परीलक्षित होता है, तभी उन्होंने विश्व की समस्याओं को चित्रित कर समाज को जाग्रत करने का प्रयास किया है। (चित्र सं. 1) कहीं कन्या शोषण, राजनैतिक कूटनीति, भ्रष्टाचार, तथा प्रकृति के क्षरण को बचाने के लिए प्राकृतिक आपदा, ग्लोबल वॉर्मिंग, सूखा इत्यादि का चित्रण किया है। जिससे समाज भविष्य में आने वाली समस्याओं के प्रति सेचत रहे क्योंकि समय रहते इन विपदाओं पर ध्यान न दिया गया तो सम्पूर्ण विश्व अपने ही बनाए मायाजाल में कालगर्त हो जाएगा। इस तरह अवधेश जी सृजन कर समाज की चेतना को जाग्रत करने का पूर्ण प्रयास कर रहे हैं। जो निश्चित ही सराहनीय है। इनके चित्रों की प्रदर्शनियाँ देश–विदेश में भी सराहनीय रही हैं। क्योंकि चित्रों के माध्यम से ज्ञान का अपार सागर प्रस्तुत करना तो स्वयं ही विद्वता का परिचायक है तभी इनके चित्र दर्शकों से स्वयं ही आत्मिक संवाद

* शोधार्थी, वनस्थली विद्यापीठ (राज.) भारत

स्थापित कर लेते हैं और सुचेष्ट दृष्टा अवश्य ही उनकी कृतियों से जुड़ जाता है। अवधेश जी ने ग्रामीण समाज का भी भावपूर्ण चित्रण किया है। जिनमें प्रकृति एवं दैनिक क्रियाकलापों को विविधता से प्रस्तुत किया है। 'ग्रामीण समाज के आर्थिक ढाँचे का आधार कृषि व्यवसाय है। ग्रामीण समाज में धार्मिक एवं सांस्कृतिक प्रतिमान से जुड़े हुए अनुष्ठान कार्य अपनी विचित्रता के लिए प्रसिद्ध हैं। जहाँ सामाजिक संबंध एक सीमित दायरे में केन्द्रित होते हैं। जिनमें गाँव के कुछ घर, चौपाल, पड़ोस एवं बिरादरी के व्यक्ति आदि के बीच सामाजिक संबंधों का ताना–बाना रहता है।'[6] यही सारी विशिष्टताएँ अवधेश जी के सृजन संसार का अलंकरण हैं। इस विशिष्टता को उनकी 'उत्सव श्रृंखला' में देखा जा सकता है। (चित्र संख्या 2) जिनमें ग्राम्य वातावरण में मनाए जाने वाले उत्सव, शादी, त्यौहार आदि की पूर्ण अभिव्यंजना की गयी है। जिनमें रंगों का चटकीलापन अपनी विशिष्ट छाप छोड़ता है। आकृतियाँ सरल होते हुए भी अपनी विशिष्टता का प्रमाण प्रस्तुत करती हैं। क्योंकि यह आकृति मात्र मस्तिष्क का मंथन नहीं अपितु मिश्र जी के हृदय की संवेदनाओं का जीता जागता भाव–सागर प्रस्तुत करते हैं। संवेदनाओं की इसी गहनता के कारण अवधेश जी सदैव ही मातृभूमि से जुडें क़लाकार है। जो परम्पराओं को पोषित करते चलते हैं। केवल आधुनिकता के प्रभाव के कारण स्वरूप में कुछ परितर्वन है। अवधेश मिश्र रहते तो लखनऊ में हैं परन्तु उनका वास्तविक जीवन वही ग्रामीण परिवेश है जहाँ उन्होंने प्रकृति को नजदीक से जाना एवं समझा है वे बचपन से ही प्रकृति के रंगों में खेले हैं, बरसात का रिमझिम सा आनन्द, काली घटाओं का आच्छादित होना, बिजलियों का कड़कना, रंगीन हरियाली, टेसू के फूलों से लदे वृक्ष, फलों के बगीचे उनके बाल्यकाल के साथी हैं जिन्हें वो आज भी याद करते हैं। इन्हीं सभी भावों से उनकी कला घनीभूत है। बिजूका बचपन की अहम् कड़ी प्रतीत होता है तभी उन्होंने उसका आधार बनाकर श्रृंखला तैयार की है। उनके कथनानुसार हम सभी में एक बिजूका (दिखावटी मनुष्य, पुतला) छिपा बैठा है। हम सभी जो दिखायी देते हैं वह नहीं है हमारी वास्तविकता तो कुछ और है।

इसी आधार पर अवधेश जी ने बिजूका को नेताओं पर कटाक्ष करने के लिए उपयुक्त आकार के रूप में प्रयुक्त किया है। (चित्र संख्या 3) इस श्रृंखला के एक चित्र में एक बिजूका बना है जिसके मुख पर आवरणों कई की परत दिखायी गयी है। जिससे यह कहने का प्रयत्न किया गया है कि नेता चाहे कितने भी आश्वासन दे एक चालाक व्यक्ति उनके भीतर है। जो अपनी इस कुटिलता पर मुस्कुरा रहा होता है। इसी गहराई को दिखाने के लिए नीले रंग का प्रयोग प्रचुरता से किया गया है। इस नीले रंग में इसी कारण से एक विचित्र प्रकार की चमक दी गयी है जो इस बात का संकेत है कि नेताओं ने राजनीति में सर्वत्र ही अपने आश्वासनों का झूठा मायाजाल फैला रखा है। इसी बात को स्पष्ट करते हुए सम्पूर्ण चित्र को पड़ी रेखाओं से ढ़का गया है। इस बिजूका के कई सिर इसी रहस्य के द्योतक हैं यह सिर मिट्टी की हांडियों के बनाए गए हैं। सबसे पीछे की ओर एक बड़ी हंडिया है जो सम्भवत: इस कारण बड़ी बनायी गयी है क्योंकि नेता के मस्तिष्क में बहुत सारे राज छिपे होते हैं। यहाँ यह उक्ति स्पष्ट प्रतीत होती है। कथनी कुछ और करनी कुछ और अर्थात् कहने और उस बात को करने में बहुत फर्क होता है। इसी कारण से बड़ी हंडिया पर काला कौआ बनाया गया है जो इसी झूठ का प्रतीक है। इसी चित्र में एक हंडिया जमीन पर गिरी हुयी बनायी गयी है जो संकेत है कि झूठ चाहे जितना बड़ा हो, उसका अन्त अवश्य होता है। नेता के इसी मिथ्या आश्वासन एवं कूटनीतिज्ञ होने के कारण आसमान पर सूरज को काला बनाया गया है। जिसमें आंशिक रूप में सफेद रंग को भी लगाया गया जो यह दर्शा रहा है कि नेताओं के झूठ एवं सत्य में से झूठ की मात्रा कितनी अधिक है और सत्य कितना कम। झूठ बोलने के कारण ही इस पुतले को काले कोट के साथ बनाया गया है। इस प्रकार हम देखते हैं कि अवधेश जी ने बिजूका के माध्यम से कितने गूढ़ सत्यों को उजागर किया है जो उनकी अद्भुत वैचारिकता को दर्शाता है। यह राज्य व्यवस्था पर सीधे ही कटाक्ष है।

(चित्र संख्या 4)इसी श्रृंखला के एक अन्य चित्र में छोटे–छोटे छ: बिजूका एक पंक्ति में खड़े हैं जिनका सिर मिट्टी की हंडिया से बना है जो श्वेत वस्त्र धारण किये हुए हैं परन्तु इनकी पृष्ठभूमि में काला रंग भरा गया है जो संकेत कर रहा है कि सत्य का आवरण पहनने पर भी वे अपनी प्रकृति का त्याग नहीं करते बल्कि यह प्रवृत्ति परछाई की तरह उनके साथ होती है। इसी चित्र में एक अन्य बिजूका भी है जो सबसे बड़े आकार में बनाया गया है जो नीले एवं सफेद रंग का लहरदार कुर्ता पहने हुए है। इसके सिर पर एक काला कौआ बना है जो यह बता रहा है कि जो सबसे अधिक चालाक होगा वही सत्ता की कुर्सी हासिल करेगा। इसी जीत को दिखाने के लिए अवधेश जी ने इस बिजूका को हवा में उड़ते हुए बनाया है। जो उसके जश्न का संकेत है। यह सबसे अधिक कूटनीतिज्ञ है इसी कारण इसके वस्त्रों को दो रंग से बनाया है तथा अन्य बिजूका से बड़ा आकार दिया गया है। आसमान काले रंग का बनाया गया है। कलाकार शायद कहना चाह रहे हैं कि इस प्रकार के नेताओं के हाथ में सत्ता जाने पर देश में अन्धकार ही फैलेगा। शेष छ: बिजूका जनता के प्रतीक भी हैं इसी कारण वे बड़े बिजूका से नीचे बनाए गए हैं जैसा कि नेता के समक्ष जनता भी होती है। पृष्ठ भूमि में नीले रंग की तानों का प्रयोग करके वातावरण को रहस्यमयी रूप प्रदान किया है जो गहराई को प्रकट कर रहा है। यह इस कारण है क्योंकि जनता इन रहस्यों को समझ नहीं पाती और शीघ्रता से झूठे वादों पर विश्वास कर लेती है। इस कारण अवधेश संदेश प्रदान कर रहे हैं कि जनता स्वयं अपने ही हाथों अपना भविष्य दांव पर लगा रही है। जनता को अपना नेता गहन विचारों से सोच–समझकर चुनना चाहिए तभी देश का भला सम्भव है। इसी कारण कलाकार का बिजूका सभी प्रकार के समय का साक्षी है। कलाकार का इन गूढ़ सत्यों का सरलतम भावों में कहना उसके राष्ट्र प्रेम को दर्शाता है। इस तरह यह कहा जाना स्वाभाविक है कि वे देश के सजग नागरिक है।

राजनीति की इसी रहस्य को मैं निम्न पंक्तियों में समझाना चाहूँगी जिससे दर्शक एवं पाठक इन चित्रों की राजनीतिक भाषा को सरलता से समझ सके –

'राजनीति नहीं एक शुद्ध आशीष
यह तो है एक कंटक राह सदृश
अन्त:करण की ध्वनि अनुसनी की जाती है जहाँ
झूठ को सत्य की मिसाल बनाकर
पेश किया जाता है यहाँ
कुटिल मस्तिष्क एकबद्ध हो
करते निरीह जनता पर वार
झूठे आश्वासन का करते सदा सत्कार
यही है राजनीति के ज्वलन्त सत्य का अम्बार
जिस पर करना होगा एक मौन विचार
तभी होगा भारतवर्ष पुन: एक आदर्श देश का आधार'

'मिश्र जी के अनुसार अमूर्त चित्र के जरिये यह अभिव्यक्ति –स्वरचित आज के समाज पर कटाक्ष है जो कुछ धोखा देते हुए पुतलों के जरिये कहा जा रहा है।'[7]

इस प्रकार मिश्र जी के 'कैनवास की रेखाएँ और रंग आधुनिकता के आवरण में भी परम्परा की तान लिए हैं। इनका टैक्सचर बेहद समृद्ध है। बारीक रेखाएँ टैक्सचर की पूरक हैं। स्पेस, माध्यम और आयाम की दीठ से इनकी बिजूका चित्र श्रृंखला सर्वथा नयेपन का बोध देती है। कैनवास के प्रचलित मुहावरों से अलग वह रंगों का अनूठा लोक रचते हैं।'[8]

निष्कर्ष – अवधेश जी स्वयं भी कहते हैं कि मैं जीवन के अमूर्त पक्ष को देखना चाहता हूँ इसी कारण जरूरी आकारों के साथ, संयोजन, पृष्ठभूमि एवं टेक्सचर आपस में लुकाछिपी खेलते हैं। कहीं तो आकार स्पष्ट हो जाते हैं और कहीं विलीन हो जाते हैं। अत: अवधेश जी आज के परिवेश में भी समाज के सजग प्रहरी की भूमिका का संजिदगी से आह्वान कर रहे हैं जिसमें उनकी पूर्व अनुभूति की स्मृतियाँ चिन्तन-मनन के पथ पर हिलोरे लेती रहीं है इस प्रकार सत्यापित है कि कलाकार की पूर्व स्मृतियाँ उसके चेतन मन की पथ प्रदर्शक होती हैं।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. मिश्र ब्रज कुमार – मनोविज्ञान : मानव व्यवहार का अध्ययन, फी लर्निंग प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली, संस्करण-2010, पृ.सं. 166
2. वही, पृ.सं. 513
3. अग्रवाल, डॉ. धर्म प्रकाश – 'प्रसाद' काव्य में भाव-व्यंजना : मनोवैज्ञानिक विवेचन, अनुराधा प्रकाशन, सूरज कुण्ड, मेरठ – 250002, प्रथम संस्करण-1978, पृ.सं. 213
4. बारोट, डॉ. नीलेश – भारतीय समाज एवं समाजवाद, रावत प्रकाशन, अंसारी रोड़, दरियागंज, नई दिल्ली, संस्करण-2014, पृ.सं.3
5. वही, पृ.सं. 22
6. वही, पृ.सं. 23, 25
7. दैनिक जागरण, अयोध्या (फैजाबाद), शनिवार 23 जनवरी, 2010
8. राष्ट्रीय सहारा, लखनऊ, रविवार, 1 अप्रैल, 2012

चित्र फलक

चित्र सं. 1

चित्र सं.2

चित्र सं. 3

चित्र सं. 4

वर्तमान समय में 'बाल-कला' का स्वरूप

प्रो. किरन सरना * प्रगति तिवारी **

प्रस्तावना – 'कला'[1] बालकों की 'आत्म-अभिव्यंजना'[2] का एक विशिष्ट माध्यम है। इसका अपना मौलिक स्वभाव तथा नियम है। बालकों की कला, वस्तुपरक यथार्थ के सिद्धान्तों से बंधी हुई नहीं होती वरन् आन्तरिक भावना से प्रेरित होती है।[3]

बालक के स्वैच्छिक कल्पना जगत का विकास करने, उसके परीक्षण करने की शक्ति तथा सामान्य भावनाओं एवं अनुशासनात्मक कार्यवाहियों को नियन्त्रित करने के लिये कला को आदर्श माध्यम माना गया है।[4]

बच्चों के चित्र और चित्र बनाने की प्रक्रिया उनके आत्मिक जीवन का ही एक अंश है। बच्चे अपने चारों ओर के संसार से किसी एक चीज़ को केवल कागज पर उतारते नहीं, बल्कि इस संसार में जीते हैं, वे इस संसार में प्रवेश करके सौन्दर्य का सृजन करते हैं और इस सौन्दर्य का रसपान करते हैं।

बच्चों का सृजनात्मक कार्य उनके आत्मिक जीवन का नितांत मौलिक क्षेत्र है। उनका सृजन उनकी आत्माभिव्यक्ति और आत्मपुष्टि का साधन है, जिसमें प्रत्येक बच्चे की अपनी व्यक्तिगत विशिष्टता प्रकट होती है। यह विशिष्टता किन्हीं भी ऐसे आम नियमों के अंतर्गत नहीं आ सकती, जो सभी के लिये एकमात्र और अनिवार्य हों।[5]

'बाल-कला' शब्द का पहली बार प्रयोग इटैलियन लेखक कोरिडो रिकी (Corido Ricci) ने 1887 में अपनी पुस्तक 'बच्चों के लिये' कला में किया।[6]

बाल-कला को प्रोत्साहित करने में सबसे महत्वपूर्ण कार्य 'ऑस्ट्रिया'[7] के शिक्षा-शास्त्री 'फ्रांज सिजेक' (Franze Cizek)[8] ने 'Juvenile Art Class'[8] प्रारम्भ करके 1897 में किया। उन्होंने कला-शिक्षा की एक क्रांतिकारी पद्धति का निर्माण किया। शिक्षा जगत को सिजेक की देन अद्वितीय है। 'चाइल्ड आर्ट' (बाल-कला) शब्द सिजेक का ही दिया हुआ है। सिजेक ने कहा कि 'बालक की कलाकृति की सबसे सुन्दर चीज़ या सबसे अच्छी बात उसकी गलतियाँ हैं। . . . और जितना इन गलतियों को शिक्षक सुधारता जायेगा, उतना ही बेजान, मंद और व्यक्तित्वहीन वह कृति बन जायेगी।' लेकिन वे यह भी कहते हैं कि 'बालक को मार्गदर्शन की आवश्यकता होती है। पूरा-पूरा स्वतन्त्र छोड़ देने से उसका विकास एक ही अवस्था तक होकर रूक जाता है। वह आगे नहीं बढ़ सकता।'[10]

सिजेक के ये विचार सार्वभौमिक हैं वे किसी देश या काल विशेष के लिये नहीं अपितु विश्व भर के बालकों व शिक्षकों पर लागू होते हैं। बच्चों की स्वतन्त्रता से सम्बन्धित यह सर्वप्रथम विचार थे। सिजेक द्वारा प्रस्तुत यह मापदण्ड सार्वभौमिक होने के साथ ही अपने आप में पूर्ण था। इसके पश्चात् पश्चिमी देशों में बाल-कला को महत्व दिया जाने लगा तथा इस दिशा में अनेक प्रयास किये गये। 'यूरोप'[11] और 'अमेरिका'[12] में अकसर सार्वजनिक स्थलों पर प्रदर्शनियाँ आयोजित की जाती है और सफल बाल-कलाकारों को पुरस्कृत भी किया जाता है। 'आस्ट्रेलिया'[13] में सन् 1980 में 51 क्षेत्रों की टेलीफोन निर्देशिका में 52 आस्ट्रेलियाई बालकों के चित्रांकन आवरणों पर छापे गये। इस प्रकार लगभग 45 लाख टेलीफोन उपभोक्ता प्राथमिक स्कूलों के बच्चों की कला से सुपरिचित हो गये।' इसी प्रकार 'सिडनी'[14] के स्कूली बच्चों द्वारा रेलवे स्टेशन की दीवार को कलात्मक व कल्पनायुक्त 'भित्ति चित्रों'[15] से सुसज्जित कर 'कला-वीथिका'[16] जैसा रूप दिया गया है।'[17] बच्चों की कला की दिशा में स्वतन्त्र भावों की अभिव्यक्ति व सार्वजनिक रूप से किये प्रयासों में यह सराहनीय प्रयास है।

पश्चिमी देशों की तुलना में भारत[18] में बाल-कला को प्रोत्साहन देने का कार्य काफी बाद में किया गया। इसके बाद भी भारत में बाल-कला को वह महत्व नहीं मिल पाया जो मिलना चाहिये था या यह कहें कि 'बाल-कला' का स्वरूप वह नहीं है जो होना चाहिये। इसका प्रमुख कारण है – 'मैकाले[19] द्वारा शुरू की गई अंग्रेजी शिक्षा प्रणाली जो आज भी भारतीय शिक्षा प्रणाली का अंग बनी हुई है। इस प्रणाली के अनुसार कला-शिक्षा में वस्तु पर पड़ी छाया और प्रकाश की छवि ठीक-ठीक बना लेना ही पाठ्यक्रम का अंग है। यह पद्धति महत्वहीन होने के साथ ही शिक्षकों व विद्यार्थियों दोनों के लिये अरूचिकर है।[20]

हमें यह समझना चाहिये कि 'बच्चों का सृजनात्मक कार्य उनके आत्मिक जीवन का नितांत मौलिक क्षेत्र है। उनका सृजन उनकी आत्माभिव्यक्ति और आत्मसन्तुष्टि का साधन है। जिसमें प्रत्येक बच्चे की अपनी व्यक्तिगत विशिष्टिता प्रकट होती है। यह विशिष्टता किन्हीं भी ऐसे आम नियमों के अन्तर्गत नहीं आ सकती, जो सभी के लिये एकमात्र और अनिवार्य हो।[21]

प्रचलित पाठ्यक्रम में बच्चे की ग्रहण शक्ति के क्रमिक विकास पर ही ध्यान दिया जाता है। प्राथमिक स्तर पर चार वर्ष के इस पाठ्यक्रम में 'साधारण वस्तु चित्रण'[22], 'प्रकृति चित्रण'[23], 'साधारण ठोस ज्यामितीय रेखांकन'[24] व 'ज्यामितीय आकारों' के पैटर्न आदि शामिल हैं। हालांकि इस बात में कोई संदेह नहीं है कि इस प्रकार के चित्रण में भी बच्चों के स्वतन्त्र भाव चित्रण को भी कुछ स्थान मिलता है। बच्चा अपनी योग्यता अनुसार उन्मुक्त चित्रण करता है लेकिन यह भी अध्यापक की सहमति और संशोधन का विषय होता है। अत: विषय का मुख्य उद्देश्य कहीं खो जाता है।[25]

औपचारिक शिक्षा पाकर अभ्यास करता बच्चा क्रमश: कला-विद्या की लीक पर आ खड़ा होता है। अब उसकी रचनायें बातूनी तो हो जाती हैं, किन्तु बहुत बोलते हुये भी थोड़ा कह पाती हैं। सभ्यता के चक्करदार रास्तों और कला-विद्या के पेचों में उसकी व्याकुलता अभिव्यक्त नहीं हो पाती। अभिव्यक्ति होती है तो पुराने घिसे-पिटे आकारों में निस्पंद या रूंधी हुई रहती है, इस तरह सीखते, बड़े होते कलाकार की संवेदनायें और जज़्बा शिथिल हो जाता है।[26]

* प्राध्यापक (दृश्यकला) वनस्थली विद्यापीठ, वनस्थली (राज.) भारत
** शोधार्थी, वनस्थली विद्यापीठ, वनस्थली (राज.) भारत

बच्चों की शिक्षा-प्रणाली में परिवर्तन की दिशा में गुजरात के 'गिजुभाई बधेका' (1885-1939)[27] का कार्य अविस्मरणीय है। वे शिक्षा में आमूल परिवर्तन के हिमायती थे। उन्होंने 1920 में 'बाल-मंदिर' की स्थापना करके नाना प्रकार के शैक्षिक प्रयोग किये।[28] अपनी जमी जमायी वकालत छोड़कर बाल-जीवन को अपना सर्वस्व समर्पित करने वाले गिजुभाई का 53 वर्षीय जीवन आज भी एक प्रेरणा बना हुआ है।[29]

बच्चों की कला के क्षेत्र में 'श्री के. शंकर पिल्लै (1902-1989)[30] का कार्य महत्वपूर्ण रहा है। उन्होंने सन् 1949 में सर्वप्रथम भारत में 'बाल-कला' प्रतियोगिता आयोजित की। सन् 1951 में अपने इस प्रयोग को सार्वभौम बनाने के उद्देश्य से इसे अन्तर्राष्ट्रीय बाल-कला प्रदर्शनी का स्थान दिया। आज भी संसार के विभिन्न देशों के बालक इस प्रतियोगिता में भाग लेते हैं।[31] इस प्रकार की अन्य प्रदर्शनियाँ भी की गईं जिन्होंने राष्ट्रीय स्तर पर पहचान बनाई और जन-मानस को प्रभावित किया। तत्कालीन राष्ट्रपति डॉ. जाकिर हुसैन ने 'अखिल भारतीय ललित कला और शिल्प परिषद' के नयी दिल्ली स्थित भवन में आयोजित एक बालचित्र प्रदर्शनी का उद्घाटन करते हुये एक बार कहा था कि इस प्रदर्शनी में रंगों की अपार विपुलता, कल्पना का प्राचुर्य और विशुद्ध ओजस्विता प्रकट हो रही है।[32]

भारत सरकार द्वारा सर्वप्रथम उल्लेखनीय प्रयास ललित कला अकादमी, के तत्वावधान में 18 फरवरी से 25 फरवरी तक सन् 1956 में एक संगोष्ठी आयोजित करके किया गया। इस संगोष्ठी में कई मूर्धन्य विद्धानों - एन.एस. बेन्द्रे, के.के. हेब्बार, पुलिन दत्ता, मुल्क राज आनन्द, आर.एम. रावल, बी.सेन आदि ने कला शिक्षा के स्वरूप, उद्देश्य तथा महत्व पर अपने विचार प्रस्तुत किये। इस संगोष्ठी में प्रस्तुत विचारों के आधार पर बाल-कला सम्बन्धी कुछ सुझाव निष्कर्ष रूप से सामने आये -

(i) 13 वर्ष तक के प्रत्येक बच्चे के लिये कला-शिक्षा अनिवार्य होनी चाहिये और विद्यालयी पाठ्यक्रम में कला शिक्षा को उचित स्थान मिलना चाहिये।

(ii) अध्यापक द्वारा बच्चे के क्रमिक विकास पर ध्यान दिया जाना चाहिये और उसी अनुसार निर्देशन करना चाहिये।

(iii) शिक्षण पद्धति में स्वतन्त्र अभिव्यक्ति पर ध्यान देना चाहिये।

(iv) बच्चे को अनुकरण करने की शिक्षा नहीं देनी चाहिये क्योंकि बच्चे के लिये चित्र वास्तविकता है और वस्तु प्रतीक।

इसके अतिरिक्त इस संगोष्ठी में बच्चों के चित्रों की समय-समय पर प्रदर्शनी करने की बात भी की गयी।[33]

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद (N.C.E.R.T.) द्वारा सन् 1975 'The Curriculum for the Ten Year School : A Frame Work** नामक दस्तावेज प्रकाशित किया। इसमें प्राथमिक शिक्षा के मुख्य उद्देश्यों में 'सृजनात्मक क्रियाओं के द्वारा अभिव्यक्ति की योग्यता विकसित करना' भी शामिल है।[34]

वर्तमान 'राष्ट्रीय शिक्षा प्रणाली' (1986)[35] के तहत् कला शिक्षा को माध्यमिक शिक्षा में एक अनिवार्य विषय के रूप में अनुशंसित किया गया है। राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद (N.C.E.R.T.) द्वारा हाल ही में विकसित 'राष्ट्रीय पाठ्यचर्या रूपरेखा-2005 (NCF-2005)'[36] की अनुशंसाओं में विद्यालयों में कला-शिक्षा के विभिन्न आयामों पर प्रकाश डाला गया है जिसके अनुसार इसे माध्यमिक स्तर तक अनिवार्य रूप से बच्चे सीखे और करे ऐसा प्रावधान है।[37]

भारत सरकार द्वारा 2009 में 'निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा का अधिकार अधिनियम'[38] पारित किया गया, जो अप्रैल 2010 में क्रियान्वित हुआ है। इसके मानदण्डों में अलग से कला-अध्यापक उपलब्ध कराने व 6 से 8 कक्षा तक के बालकों के लिये भी कला-शिक्षा का प्रावधान है।[39]

यदि हम उपर्युक्त विवेचन पर दृष्टि डालें तो पायेंगे कि स्वतन्त्रता के बाद से भारत में लगभग सभी दस्तावेजों में कला-शिक्षा को विद्यालय स्तर तथा शिक्षक-शिक्षा स्तर पर महत्व दिया गया लेकिन कभी भी वह स्थान व स्वीकृति नहीं मिल सकी जो निर्धारित की गयी थी।[40]

यह बहुत दु:ख की बात है कि यद्यपि कला का अनुभव मनुष्य की प्रारंभिक अवस्था में ही प्रारम्भ हो जाता है परन्तु 'शिशुकाल'[41] और 'बाल्यावस्था'[42] की यह सृजनात्मकता धीरे-धीरे लुप्त होती जाती है। आज के सामाजिक ढाँचे और शिक्षण पद्धति के कारण यह प्राकृतिक वृत्ति 'किशोरावस्था'[43] तक पहुँचते-पहुँचते समाप्त हो जाती है। उसे बनाये रखने के लिये और न केवल बनाये रखने के लिये बल्कि उसका उचित और स्वाभाविक विकास करने के लिये यह आवश्यक है कि शिक्षा के कुल ढाँचे को बदला जाये।[44] क्योंकि कला बालक के चरित्र-निर्माण में तथा व्यक्तित्व के निर्माण में सहयोग करती है।[45]

विद्यालयी स्तर पर कला शिक्षा का उद्देश्य बच्चों को विभिन्न कलाओं में पारंगत बनाकर उन्हें कलाकार बनाना न होकर उनमें विभिन्न कलाओं के प्रति जागरूकता की समझ, उसका रूझान, उसकी प्रशंसा और कला धरोहर को सुरक्षित रखकर उस पर गौरव का अनुभव करना होना चाहिये। यदि प्रत्येक विद्यार्थी को स्वयं की अभिव्यक्ति के लिये अवसर मिले, जिससे उनके अन्दर की असीम ऊर्जा उन्हें सृजनात्मकता के लिये प्रेरित करे तो उनमें सकारात्मकता और विश्वास पैदा होगा और जीवन के विभिन्न पहलुओं के प्रति दृष्टिकोण भी बदलेगा।[46]

मनोविज्ञान की दृष्टि से यदि बालक की कला का अध्ययन किया जाये तो कभी-कभी बड़े-बडे चौंकाने वाले तथ्य सम्मुख आते हैं। चित्रकला के माध्यम से बालक अपनी कुंठाओं के विचारार्थ बड़े अजीबोगरीब चित्र बनाता है। वह व्यक्ति चित्र में सिर बड़ा और धड़ छोटा बना सकता है। बड़े भाई से आतंकित या ईर्षालु बालक बड़ी मानवाकृति को कुरूप बनाने की चेष्टा करता है। उसमें वह अच्छे रंग नहीं भरेगा। कभी-कभी उसके हाथ में डंडा जैसी चीज थमा देगा जो इस बात का द्योतक है कि वह मारने वाला व्यक्ति है स्पष्ट है कि कला चित्रण बालक की कुंठाओं के निवारण का एक महत्वपूर्ण माध्यम है।[47]

बाल-मन किसी भी बन्धन से मुक्त, स्वच्छन्द और कल्पना युक्त होता है। वर्तमान समय में बालक के इसी मनोविज्ञान को समझने की सर्वाधिक आवश्यकता है। चाहे घर हो या विद्यालय, बच्चे को स्वतन्त्र परिवेश दिया जाये। ऐसा परिवेश जहाँ उसकी कल्पनायें उड़ान भर सके और उसके सपने साकार हो सके।

चाँदनी की नदी में नहाऊँ कभी,
बादलों की पतंगे उड़ाऊँ कभी।
तुम मुझे जो खुला एक आकाश दो,
तो परिन्दे सा उड़कर दिखाऊँ अभी।।[48] (रमेश तैलंग)

कला-प्रवृत्तियों द्वारा बच्चे की ये भावनायें सफलतापूर्वक प्रकट हो जाती है। जब ये भावनायें निकल जाती है, तब आनंद का जो अनुभव होता है, वह बड़ा महत्वपूर्ण है। बच्चे के व्यक्तित्व के विकास के लिये यह आनंद का अनुभव, जिसे तृप्ति का बोध भी कह सकते हैं, बहुत जरूरी है।[49]

सन्दर्भ ग्रंथ सूची :-

1. Jane Turner (Editor), The Dictionary of Art, Macmillan Publishers Ltd.,1996 p.- 505
2. र.वि. साखलकर, कला-कोश, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी : जयपुर, प्रथम संस्करण-1998, पृ.- 138
3. रामचन्द्र शुक्ल, बालकों में कला प्रतिभा का क्रमिक विकास (लेख) सम्पादक-एस.सी. काला, कला त्रैमासिक (बाल-कला अंक), ललित कला अकादमी, लखनऊ ,1981, पृ.- 39
4. कृष्ण चैतन्य, आधुनिक भारत की बाल-कला (लेख) संपादक-रामधारी सिंह दिनकर, संस्कृति, शिक्षा मंत्रालय: नई दिल्ली, ग्रीष्म, 1985,वर्ष-5,अंक-1, पृ.सं.34
5. योगेन्द्र नागपाल, बाल-हृदय की गहराइयाँ, पब्लिशिंग हाऊस प्रा.लि., नई दिल्ली, संस्करण-1979, पृ.सं.-70
6. Wilhelm Viola, Child Art, University of London Press Ltd. London, IInd edition– 1944, Page No.- 8
7. Oxford Encyclopedia of World Hisotry, Compiled by Market Books Ltd., Oxford University Press, New York, Ist Publication – 1988, Page No.- 51
8. Ian Chilvers and John Glaves Smith, A Dictionary of Modern and Contemporary Art, Oxford University Press, New York, IInd edition-1999, Page No.- 138
9. गणपतराम शर्मा, हरिशचन्द्र व्यास, अधिगम शिक्षण और विकास के मनोवैज्ञानिक आधार, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, चतुर्थ सं.2007,पृ.-24,
10. Herbert Read, Education for Peace, Rootleg and kegen Paul, London, 1950, Page No.- 119
11. Edmund Wright (Editor), Oxford Dictionary of World History, Oxford University Press, IInd edition-2006, Page No.- 210
12. Oxford Encyclopedia of World History, ibid, Page No. - 693
13. Oxford Encyclopedia of World History, ibid, Page No.- 49
14. Chris Summers (editor), Frommer's Australia 2007, Wiley Publishing, Inc., Page No. -99
15. र.वि. साखलकर, पूर्वोद्धृत, पृ.सं. 67
16. र.वि. साखलकर, पूर्वोद्धृत, पृ.सं. 67
17. देवनारायण चक्रवर्ती, बाल-कला साहित्य (लेख), संपादक-एस.सी. लाला, कला त्रैमासिक, पूर्वोद्धृत, पृ.सं.35
18. Oxford Encyclopedia of World History, Page No.- 322
19. डॉ. एस.एल. नागौरी, कान्ता नागोरी, विश्व इतिहास कोश, राज पब्लिशिंग हाऊस : जयपुर, प्रथम संस्करण-2011, पृ.सं. 182
20. देवी प्रसाद, शिक्षा का वाहन : कला, नेशनल बुक ट्रस्ट : नई दिल्ली, चतुर्थ संस्करण-2006, पृ.- 27-22 (भूमिका से)
21. वसीली सुखोम्लीन्स्की , बालहृदय की गहराईयाँ (योगेन्द्र यादव, अनु.) प्रगति प्रकाशन : मास्को, द्वितीय संस्करण- 1986, पृ.-70
22. र.वि. साखलकर, पूर्वोद्धृत, पृ.-110
23. र.वि. साखलकर, पूर्वोद्धृत, पृ.-185
24. र.वि. साखलकर, पूर्वोद्धृत, पृ.-71
25. Pulin Dutta, Art in the Education of Child, Seminar on Art Education (Report), Sponsored by Lalit Kala Akadami, 1956, p. - 41
26. जवाहर गोयल, बच्चों के चित्र, पिकासो और रवीन्द्रनाथ (लेख), संपादक- रमेश थानवी, अनौपचारिका (शिक्षा एवं कला अंक), राजस्थान प्रौढ़ शिक्षण समिति, झालाना डूँगरी संस्थान क्षेत्र, जयपुर से प्रकाशित, दिसम्बर-2008, वर्ष-33, अंक-12, पृ.सं.25
27. Nagendra Singh (editor), Encyclopedia of the Indian Biography, A.P.H. Publishing Corporation % New Delhi, 2000, Page No. -269
28. सुभाष शर्मा, भारत में शिक्षा व्यवस्था : अवधारणायें, समस्यायें एवं संभावनायें, वाणी प्रकाशन :नई दिल्ली, संस्करण-2004, पृ.सं.94
29. रामजी यादव (संपादक), गिजुभाई संचयन, भारतीय पुस्तक परिषद: नई दिल्ली, संस्करण-2012, मुख्य पृष्ठ से उद्धृत।
30. http://wikipedia.org
31. http://www.childrenbooktrusta.com
32. सुजीत कुमार चक्रवर्ती, बच्चे कैसे सीखें, ऑक्सफोर्ड एण्ड आई.बी.एच. पब्लिशिंग कं. नई दिल्ली,संस्करण-1971, पृ.सं.19
33. Seminar on Art Education (Report),ibid, Page No.-7
34. प्रो. एस.सी. गुप्ता, डॉ. अलका गुप्ता, भारतीय शिक्षा का इतिहास, विकास एवं समस्यायें, शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद, संस्करण-2012, पृ.सं. 301-304
35. Suresh Chandra Ghosh, Education Policy in India Since Warren Hartings, Naya Prokash, Calcutta, Ist Pub-1989, Page No.-103
36. http://www.ncert.nic.in (pdf)
37. डॉ. ज्योत्सना तिवारी, विद्यालयों में कला-शिक्षा : कुछ आयाम, अनौपचारिका, पूर्वोद्धृत, पृ.सं.20
38. अनीश भसीन, मानवाधिकार एवं शिक्षा (लेख) महेन्द्र जैन (संपादक), प्रतियोगिता दर्पण, अप्रैल-2014 , आगरा से प्रकाशित, वर्ष-36, अंक-9,पृ.सं.84
39. Country Report, Art Education in Indian by Department of education in arts and Aesthetics, NCERT, 2010, Page No. -77
40. देवी प्रसाद, पूर्वोद्ध, पृ.सं. 24-27 (भूमिका से)
41. R.S. Mcgregor (Editor), Oxford Hindi – English Dictionary, Oxford University Press, New Delhi – 2012, Page No. - 951
42. S. Arora (editor), Rajkamal Advanced Illustrated Oxford Dictionary, Verma Book Agency, New Delhi, Page No.-199
43. निर्मला शेरजंग, मनोविज्ञान का परिभाषिक शब्दकोश, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण- 2012, पृ.-15
44. देवी प्रसाद, पूर्वोद्धृत, पृ.-23
45. जयदेव आर्य, कला का अध्यापन, लक्ष्मीनारायण अग्रवाल पब्लिशर्स, आगरा, संस्करण-1968, पृ.-8
46. देवी प्रसाद, पूर्वोद्धृत, पृ.-129
47. डॉ. ज्योत्सना तिवारी, विद्यालयों में कला शिक्षा: कुछ आयाम, अनौपचारिका, पूर्वोद्धृत, पृ.-22
48. http://www.kavitakosh.org
49. देवी प्रसाद, पूर्वोद्धृत, पृ.-130

****

Online Arbitration

Prachi Tyagi *

Arbitration - It is a process wherein the parties to a dispute present their dispute or disagreement to the discernment and wisdom of an impartial person or group (known as arbitrators) nominated by the mutual/reciprocal consent, who decides the dispute in a quasi-judicial procedure and the award passed by the arbitrators is final and binding on the parties to the dispute.

Online Arbitration - If an arbitration procedure is conducted online then it is known as online arbitration. Online arbitration is a procedure of resolving disputes that has all elements of arbitration, including submission and accession to the arbitral tribunal. All the arbitral proceedings in case of online arbitration takes place through the Internet via networks, online conferencing, Voice over Internet Protocol (VoIP), chat groups, e-mail facilities, video-conferencing or any other means available over the internet, these have all evolved and instituted the IT-intense online arbitration

Arbitration is a favoured method for the resolving international business disputation or conflict for various reasons, such as:

1. Arbitration affords speedy disposal of cases than litigation.
2. Arbitrators are appointed by mutual consent of the parties.
3. There is confidentiality of the entire arbitral process.
4. The parties can independently choose the procedural & substantive rules to administer the arbitration proceedings.
5. The arbitral award is final & binding on the parties to the dispute.
6. The arbitral awards can be enforced and executed in all the member countries to the New York Convention.

Online arbitration just adds up the convenience and benefit of internet to the traditional arbitration process. As such online arbitration is nevertheless still subject to the principles and rules that govern any traditional arbitration case.The internet now and since its initiation, has propelled this era into globalization and internationalization. In this 21st century the application of technology has increased manifoldly. The expansion of the Internet affects many parts of our lives. We use the Internet in our daily lives in many areas like banking, game, shopping, teaching, communicating, study and research and even war everything is happening through the internet. The Internet has many benefits in international business transactions, it is less expensive - saves money and account for time differences. However, as the number of international business transactions grow in number we can anticipate more disputes and conflicts to arise.As such international commercial business disputes are no exception to tremendous growth of the internet; every year several thousands of commercial business contracts are concluded electronically over the internet. Tremendous use and development of the internet on international commerce has created opportunities and a favourable option for quick and cost effective dispute resolution in an online mechanism through Online Dispute Resolution (ODR).

It is well established that International Commercial Arbitration (ICA) is a tool for the final and binding resolution of commercial disputes relating to contractual or other relationship that have an international character or component. Online or cyber arbitration is a new classification of arbitration which has emerged with an increase in the use of Internet in our everyday life. Some of the institutions and establishments which provide international commercial arbitration services over the internet are:

1. The American Arbitration Association
2. The World Intellectual Property Organization
3. The Global Arbitration and Mediation Association (GAMA)
4. The International Chamber of Commerce (ICC)

Online arbitration is a new type of Alternate Dispute Resolution (ADR) mechanism. The use of internet and computers for dispute settlement is very contemporary and progressive. For illustration: If the plaintiff is in Hyderabad (India); the defendant in London and the arbitrator in New York city, then via effective use of online arbitration these parties can settle their disputes and disagreement, without leaving their cities and without seeing faces of each other. So there are no geographical limitations in online arbitration; it is cost effective; it accounts for the time difference and does not disturb the business of the parties.The main object of this article is to evaluate the various aspects of online international commercial arbitration. This article starts with the basic description of online arbitration. This will be followed by a detailed discussion on various research questions:

* Research Scholar, Brakatullah University, Bhopal (M.P.) INDIA

1. Is an arbitration agreement valid, if it has been done by emails?
2. Where is the seat of arbitration which is conducted electronically via internet?
3. Can an online arbitral award be recognized and enforced?

Validity Of Online Arbitration Agreement - In this segment, we will study whether an arbitration agreement made online bymeans of electronic communication satisfy the needs underthe existing arbitration frame that a valid and legitimate arbitration agreement must be inwritingand must be signed.

Arbitration Agreement - according to Article 7 (1) of the UNCITRAL Model Law [1] ***"Arbitration agreement is an agreement by the parties to submit to arbitration all or certain disputes which have arisen or which may arise between them in respect of a defined legal relationship, whether contractual or not. An arbitration agreement may be in the form of an arbitration clause in a contract or in the form of a separate agreement".*** Or option II ***"Arbitration agreement" is an agreement by the parties to submit to arbitration all or certain disputes which have arisen or which may arise between them in respect of a defined legal relationship, whether contractual or not*."**[2] Option 2 is a revolutionary step. It doesn't prescribe any particular form requirements.

In both national & international law it has been a long-recognized rule thata valid arbitration agreement is an essential requirement in order toinitiate arbitration. A valid and legitimate arbitration agreement must be in writingand must be signed.

This rule also finds a place in the New York Convention, 1958 which states clearly that ***"Each Contracting State shall recognize an agreement in writing under which the parties undertake to submit to arbitration all or any differences which have arisen or which may arise between them in respect of a defined legal relationship".***[3]***"The term 'agreement in writing' shall include an arbitral clause in a contract or an arbitration agreement, signed by the parties or contained in an exchange of letters or telegrams".*** [4] Against this background it would not be wrong to interpret that "exchange of letters" as stated in Article II (2) of the New York Convention, 1958 recognizes the exchange of e-mail conversations as the exchange of letters in a written form for the purpose of concluding an arbitration agreement. It is fairly clear that Article II (2) of the New York Convention, 1958 was enumerated in order to ease the practices in international trade of concluding contracts by correspondence (communication by exchanging letters).

Parallel provisions are also found in theUNCITRAL Model Law on International Commercial Arbitration which states that ***"The arbitration agreement shall be in writing."*** [5] ***"An arbitration agreement is in writing if its content is recorded in any form, whether or not the arbitration agreement or contract has been concluded orally, by conduct, or by other means."*** [6] ***"The requirement that an arbitration agreement be in writing is met by an electronic communication if the information contained therein is accessible so as to be useable for subsequent reference; "electronic communication" means any communication that the parties make by means of data messages; "data message" means information generated, sent, received or stored by electronic, magnetic, optical or similar means, including, but not limited to, electronic data interchange (EDI), electronic mail, telegram, telex or telecopy.*** [7] ***"Furthermore, an arbitration agreement is in writing if it is contained in an exchange of statements of claim and defence in which the existence of an agreement is alleged by one party and not denied by the other."*** [8]

The UNCITRAL Model Law on E-commerce also furnishes greater confidence and validity to contracts that have been concluded online and paves a way for modernizing the notion of writing and signatures in an agreement. [9] It uses the new notion of "data message" to satisfy the necessity that arbitration agreement must be "in writing".***"Data message means information generated, sent, received or stored by electronic, optical or similar means including, but not limited to, electronic data interchange (EDI), electronic mail, telegram, telex or telecopy."*** [10]

The UNCITRAL Model Law on E-commerce gives an advanced definition of "in writing" by presenting that ***"Where the law requires information to be in writing, that requirement is met by a data message if the information contained therein is accessible so as to be usable for subsequent reference."*** [11] According to Article 11 ***"In the context of contract formation, unless otherwise agreed by the parties, an offer and the acceptance of an offer may be expressed by means of data messages. Where a data message is used in the formation of a contract, that contract shall not be denied validity or enforceability on the sole ground that a data message was used for that purpose."*** [12]

The necessity of writing is as a rule attended by the need for signatures of the parties. The New York Convention expressly states that the arbitration agreement must be signed by both the parties. [13] It is however not very clear if such a need exists in cases where the arbitration agreement is concluded through exchange of telegrams or letters only. Here again it is important to keep in mind the main purpose of a signature. Signature helps in distinguishing the transaction, provides authentication & security, indicates that the said document is in final form and symbolizes mutual consent & consensus among the parties to the contract.There is thus no justification to conclude that this connotation should not be applicable to arbitration contracts or agreements negotiated via e-mails and exchange of data. In recognizing the importance or value of signatures in an arbitration agreement, a digital signature, which is an evidence to make certain and conclusive that the electronic

statement or letter cannot be sent by mistake or by any other person is widely used in E-commerce.The UNCITRAL Model Law on E-commerce states that**"Where the law requires a signature of a person, that requirement is met in relation to a data message if: (a) a method is used to identify that person and to indicate that person's approval of the information contained in the data message; and (b) that method is as reliable as was appropriate for the purpose for which the data message was generated or communicated, in the light of all the circumstances, including any relevant agreement."** [14] Digital signatures are similar to handwritten signatures &as such it should carry the same evidentiary importance.

Hence, in the light of the above discussion, the researcher would like to put forward that a very purposive interpretation must be given to the agreements which are concluded online, so that these online agreements satisfy the formal validity. As a result of these provisions and efforts at national & international levels, most online arbitration agreements/ contracts are legally enforceable and binding. It is for this reason logical to acknowledge the validity of arbitration agreementcommunicated and channelled in electronic medium.

In the case of ***Trimex International FZE Ltd. v. Vedanta Aluminium Ltd.*** [15] the Petitioner submitted an offer via e-mail for the supply of bauxite to the Respondent. The acceptance of the offer was conveyed by the Respondent through e-mail & the Parties entered into a commercial contract. The Contract included an arbitration clause to submit any future dispute between the parties to arbitration. Thereafter, the Respondent declined to honour the contract on the ground that there is no consensus ad idem in respect of various distinctive attributes of the transaction. It was held by the Honourable Supreme Court that if the parties had in the arbitration clause agreed to submit to arbitration in case of any dispute, then the dispute is to be settled through arbitration. In this case the Supreme Court has thus recognised the email conversation as a concluded and binding legal agreement between the contracting parties.Section 4 of the Information Technology Act, 2000 gives legal recognition to the transfer of communication via internet which is also admissible as evidence.

Seat Of Electronic Arbitration - In this segment, we will discuss about the seat of arbitration which is conducted electronically via internet. As cyber arbitration has only a virtual presence, aquestion that normally arises is - where or in which state or nation the online arbitration has been concluded.

Typically the parties in cyber arbitration include the plaintiff, defendant, likely three arbitrators & the arbitral institution. As such in case of online arbitration there is a possibility that all the parties could be located in different States/countries. In most online arbitration(sometimes all) the agreement to arbitrate may be concluded by e-mails and exchange of data; the arbitrators may conduct the proceedings; receive evidence online & also give the arbitral award electronically via internet. As such this multiple location of the online arbitration procedure raises an obvious question as to determination of the seat of arbitration.

Seat of arbitration - The seat or place of arbitration has a bearing to the legal rather than the physical location of arbitration. Seat of arbitration does not necessarily refer to the place where the hearings of the arbitration proceedings will be held; further it even does not necessarily reflect the laws of the arbitration contract. However, hearings of the arbitration proceedings generally physically takes place in the seat of arbitration but sometimes the parties and arbitrators may find it convenient to hold hearings in some other place. Several factors are to be taken into consideration while selecting the seat of arbitration, particularly the laws of place at the seat as these would have a direct impact on the approach in which the arbitration activity is conducted. Most importantly the seat of arbitration should be in a signatory or a certifier to the New York Convention because arbitration awards delivered in any other non-convention country might not be enforceable and applicable in other countries.An arbitration proceeding exists under the legal structure of the seat of arbitration and anarbitral award is deemed to be passed at the seat of arbitration that is to say that the seat of arbitration ordinarily provides the framework of law underlying the arbitration proceedings, giving courts of the seat regulative and supervisory jurisdiction over the arbitration proceedings.The seat of the arbitration will dictate the local mandatory measures and procedures to be followed.

Lexarbitri - Lexarbitri is the law governing and regulating the arbitration proceedings. Generally Lexarbitri is the law at the seat of arbitration.

The more obvious problem in relation to the seat of electronic arbitration is that - given that the seat of arbitration is a mere legal fiction, it is however very difficult to give a clear reason to determine the seat given the virtual nature of internet. The role of the seat of arbitration is very important in giving material assistance to International Commercial Arbitration (ICA). The idea of seat,correlative to the whole arbitration process, is dependent on party autonomy and thus the parties in dispute are free to decide on theplace/ seat of arbitration. Parties usually agree to an arbitral seat as mentioned in the arbitration clause of the relevant commerce contract.Once the parties to the dispute have decided the seat ofarbitration, all the arbitral proceedings & hearings can be held via internet electronically and the arbitrators only need to state the seat of arbitration (determined by the parties) in the award passed by them at the end of the proceedings & sign the award. In accordance with the New York Convention the arbitration award has a fundamental link with the territory or jurisdiction in which it is made. [16]

However,if the parties to the dispute fail to decide upon the seat of arbitration, in such cases the arbitrators or the arbitral tribunal would decide and establish the seat of arbitration. [17]The seat of arbitration determines the obligatory procedural rules that are to be complied with while

administering the arbitration proceedings.Anelemental difficulty arises here as the virtual nature of the internet is such that - the electronic data travels beyond territorial boundaries and jurisdictions, and hence there cannot be a single identifiable and distinguishable seat. Hence there is uncertainty as to the very foundation for determination of the seat of arbitration by the arbitral tribunal.

In the light of the uncertainty highlighted and pointed above, a conventional solution is **"Lex Loci Arbitri"**which means to decide the seat of arbitration in conformity with the location/place of the arbitrator. Nevertheless, this is not a very satisfying solution and suffers with vagueness because the arbitrator may be at different places during several distinct stages of the arbitration proceedings. Furthermore, in a large number of cases there maybe more than one arbitrator in the tribunal, this would erode the base principle of legal certainty as the parties will find it difficult to predict and estimate with certainty under which legal system the arbitral decision would be delivered or where the award would be enforced or set aside.

One other theory which arises is**"Lex Loci Server"** which means that the place or seat of arbitration to be firmly determined or resolved in accordance with the geographical location of the server computer by means of which the online arbitration proceedings are taking place. This is also not a very satisfying solution because it could be that multiple computer servers were used in the entire process of online arbitration & each such server could be located in any territory or state.

Moving on, the researcher would now try to evaluate the **"Theory of Delocalization"** in order to provide a distinct new viewpoint to settle this issue. Our above discussions are based on the various methods/theories for determining of the seat of electronic arbitration. The theory of delocalization on the other hand questions the very foundation of the seat of arbitration – it disengages or loosens international commercial arbitration from the controls levied by the laws of the seat of arbitration. The supporters of the delocalization theory assert that the international commercial arbitration should not base their proceedings on laws which differ from country to country. They support that jurisdiction should be applied by the state where the recognition of the arbitral award or the enforcement of arbitral award is sought. This theory as such completely disregards the obligatory procedural norms of the seat of arbitration

However, the theory of delocalization intervenes with the prevailing framework of the New York Convention which in Article V (1) (e) states that ***"recognition and enforcement of the award may be refused, at the request of the party against whom it is invoked, only if that party furnishes to the competent authority where the recognition and enforcement is sought, proof that: The award has not yet become binding on the parties, or has been set aside or suspended by a competent authority of the country in which, or under the law of which, that award was made."***

Enforcement Of The Online Arbitral Award - In this segment, we will try to answer the following question - Does the electronic form of the arbitral award alters its competence and efficacy?

Arbitral awards - ***"The term "arbitral awards" shall include not only awards made by arbitrators appointed for each case but also those made by permanent arbitral bodies to which the parties have submitted."*** [18]

Article I of the New York Convention asserts that an arbitral award shall be reckoned to be delivered at the seat of the arbitration. Similarly, the UNCITRAL Model Law states that ***"The award shall state its date and the place of arbitration. The award shall be deemed to have been made at that place."***[19] This presupposition applies in spite of where the arbitral proceedings and hearings were held &where the arbitral award was signed by the arbitral tribunal. The New York Convention in Article IV (1) (a) States that, ***"the party applying for recognition and enforcement shall, at the time of the application, supply the duly authenticated original award or a duly certified copy thereof."*** Here a broad interpretation of the Article is legitimate because primarily the role of an original document is actually as a point of testimonial or citation use & as a means for measuring the accuracy and exactness of the duplicate copies". In this state of affairs, an electronic arbitral award document, which is signed by the arbitrators and the integrity & fairness of which is backed by third parties & by technology itself, can be accounted as an original document. Similarly, the UNCITRAL Model Law states that, ***"The party relying on an award or applying for its enforcement shall supply the original award or a copy thereof."*** [20]

Here Article IV must be read along with Article III of the New York Convention which asserts that,***"Each Contracting State shall recognize arbitral awards as binding and enforce them in accordance with the rules of procedure of the territory where the award is relied upon."*** Thus, if the State where the arbitral award was delivered recognizes an "agreement in writing" to include an electronic form of writing, then the online award can be enforced without any hurdles. A comparable logic can also be applied to give a broad interpretation to Article IV of the Convention which presupposes that the award has been validated by the court of the State where the arbitral award was delivered, i.e. the seat of arbitration.

Therefore, if an award satisfies the procedural essential requirements, as stated in Article V of the New York Convention; and if the award was passed in a country which is a signatory to the New York Convention, then it is more than certain that such an arbitral award would be enforced in any other signatory country.

Similarly, the UNCITRAL Model Law states that if an award fulfils the procedural essential requirements in Article 36,***"an arbitral award, irrespective of the country in which it was made, shall be recognized as binding."*** [21] Further,***"the award shall be made in writing and shall be signed by the arbitrator or arbitrators."***[22] Thus, an

electronic arbitral award along with the secure digital signatures of the arbitrators satisfies therequired format or design by law & by international agreements.

Hence, in the light of the above discussion, the researcher would like to put forward that a very purposive interpretation must be given to the agreements which are concluded online, so that these online agreements satisfy the formal validity. It should be understood that online arbitration just adds up the convenience and benefit of internet to the traditional arbitration process.

Conclusion - Following the above study, online arbitration gives a new aspect to the traditional type of arbitration. Considering that online arbitration is economic, convenient, fast & efficient, it should therefore be a more desirable way of dispute or disagreement resolution between parties. Even though, online arbitration is a new technique of Alternative Dispute Resolution (ADR), online arbitration is still regulated and administered by long-established arbitration rule

In spite of the fact that several national legal systems and additionally international mediums like – the UNCITRAL Model Law on Arbitration and the UNCITRAL Model Law on E-Commerce etc. support electonization of commercial transactions, it still has to be in conformity with the provisions of the New York Convention.

The New York Convention, 1958 is severely lacking in this respect & as such there may be some unsureness& doubts, but these queries & uncertainties can be avoided by broadly interpreting the provisions of the New York Convention. In an online arbitration, the parties in dispute & the arbitrators must at all times consider the lawfulness of the arbitration agreement & the applicable procedures, the seat of arbitration, the choice of substantive and procedural law & the form in which the arbitral awards shall be made. These measures will help or serve online arbitration to work inside the legal framework of the prevailing national & international treaties/conventions.

References :-

1. as adopted by the UN Commission with amendments at its thirty-ninth session, in 2006.
2. as adopted by the UN Commission with amendments at its thirty-ninth session, in 2006.
3. Article II (1) of the New York Convention, 1958.
4. Article II (2) of the New York Convention, 1958.
5. Article 7 (2) of the UNCITRAL Model Law on International Commercial Arbitration
6. Article 7 (3) of the UNCITRAL Model Law on International Commercial Arbitration.
7. Article 7 (4) of the UNCITRAL Model Law on International Commercial Arbitration.
8. Article 7 (5) of the UNCITRAL Model Law on International Commercial Arbitration.
9. The researcher has referred to the article titled as “Can Online Arbitration Exist within the Traditional Arbitration Framework” by Hong-Lin Yu and MontassemNasir; as available on the websitehttp://www.kluwerarbitration.com /CommonUI/print.aspx?ids=ipn25191 (last visited March 25, 2014.)
10. Article 2(a) of the UNCITRAL Model Law on E-commerce.
11. Article 6 (1) of the UNCITRAL Model Law on E-commerce.
12. Article 11 (1) of the UNCITRAL Model Law on E-commer ce.
13. Article II (2) of the New York Convention, 1958.
14. Article 7 (1) of the UNCITRAL Model Law on E-commerce.
15. (2010) 3 SCC 1.
16. Article I (1) of the New York Convention states, ***“This Convention shall apply to the recognition and enforcement of arbitral awards made in the territory of a State other than the State where the recognition and enforcement of such awards are sought, and arising out of differences between persons, whether physical or legal.”***
17. Article 20 (1) of the UNCITRAL Model Law states, ***“The parties are free to agree on the place of arbitration. Failing such agreement, the place of arbitration shall be determined by the arbitral tribunal having regard to the circumstances of the case, including the convenience of the parties.”***
18. Article I (2) of the New York Convention.
19. Article 31 (3) of the UNCITRAL Model Law .
20. Article 35 (2) of the UNCITRAL Model Law as amended by the UN Commission in 2006.
21. Article 35 (1) of the UNCITRAL Model Law.
22. Article 31 (1) of the UNCITRAL Model Law.

****

Naveen Shodh Sansar (An International Refereed Research Journal) April to June 2015, Volume - 2
ISSN 2320-8767, E- ISSN 2394-3793, Imapct Factor - 0.715 (2014)

A Comparative Study of Academic Achievement and Educational Awareness of the Students of Government Primary and Private Primary Schools of Amroha District

Dr. Dharmendra Singh * Preyanka Sharma **

Introduction - The Research Scholar compare the Academic Achievement and Educational Awareness of the Students of Government Primary and Private Primary Schools of Amroha District. Because many private partner are providing primary education in cities they have established parior primary schools to cater educational needs of low socio-economic group. In the rural areas hardly two government primary schools in large village are seen except one or two private primary schools parior. They are too affecting a large fraction of children for their better education the researcher being a student and had some question mark regarding private and Govt primary schools as when there are government primary schools in adequate numbers why private primary schools are being opened. Private primary schools cater educational needs of a particular social group in their significant difference in quality of education of the two types of schools. In order to get an empirical evidence she decided to undertake a research study answering these questions.

Literature Survey - Related Literature gives us knowledge about the previous researches in this field and how much research work has been done. It's make a path for a new research.

1. **Govinda,Rangachar and N.V. Verghese(1993):** Quality of Primary Schooling in India- A case study of Madhya Pradesh,
2. **World Bank(1997):** Primary Education in India.
3. **Agarwal. R(1998):** A study of Relationship between Available Resources, Availablity of Teaching, Learning Aids and Learning Achievment of student at Primary Level.
4. **Singh, Y.P(1998)**: Parishad Vs Private Schools: A Comprative Analysis.
5. **Agarwal Yash(1999):** Trends in Access and Retention: A study of Primary School in DPEP.
6. **DRS(1999):** Study on Participation of children in Primary Education in Two District of U.P.
7. **Singh, Suman. K and Sunil Kumar(1999):** Private and Government Primary schools: A Comparison in Rural Settings.
8. **Singh Shailendra and Kala S. Sridhar(2000):** Demand for Government and Private Schools: Evidence from Rural India.
9. **ManzoorAhamadBhat(2002):** A Comprative study of schools under Private & Public Management with respect to Achievement, Quality and Funding at Elementry stage of Education in District Anantnag(J&K)
10. **Kader Zeenat(2006):** " The effect of Organizational climate on the value development of Private school & Government school" A Comprative Study.

Statement Of The Problem - The study can be stated as **" A Comparative Study of Academic Achievement and Educational Awareness of the Students of Government Primary and Private Primary Schools of Amroha District "**

Objective Of The Study :

1. To compare academic achievement of the students of Government Primary and Private Primary Schools of Amroha District.
2. To compare educational awareness of students of Government Primary and Private Primary Schools of Amroha District.
3. To compare academic achievement of the student of Government Primary and Private Primary Schools situated in urban locality of Amroha District.
4. To compare educational awareness of students of Government Primary and Private Primary Schools situated in urban locality of Amroha District.
5. To compare academic achievement of the student of Government Primary and Private Primary Schools situated in rural locality of Amroha District.
6. To compare educational awareness of students of Government Primary and Private Primary Schools situated in rural locality of Amroha District.
7. To compare academic achievement of the male students of Government Primary and Private Primary Schools of Amroha District.
8. To compare educational awareness of male students of Government Primary and Private Primary Schools of Amroha District.
9. To compare academic achievement of the female student of Government Primary and Private Primary Schools of Amroha District.
10. To compare educational awareness of female students of Government Primary and Private Primary Schools of

* H.O.D. (B.Ed Deptt.) R.B.M. Degree College, Amroha (U.P.) INDIA
** Research Scholar, Shri Venkateshwara University, Gajraula, Amroha (U.P.) INDIA

Amroha District.

Hypotheses of the study -

Following Hypotheses were formulated and tested:

1. There is no significant difference between, total academic achievement of students of Government Primary and Private Primary Schools of Amroha District.(This hypothesis is divided into four sub-hypotheses. They are mentioned below)

1.1 There is no significant difference between academic achievement in maths of the students of Government Primary and Private Primary Schools of Amroha District.

1.2 There is no significant difference between academic achievement in social studies of the students of Government Primary and Private Primary Schools of Amroha District.

1.3 There is no significant difference between academic achievement in Hindi of the students of Government Primary and Private Primary Schools of Amroha District.

1.4 There is no significant difference between total academic achievement of the students of Government Primary and Private Primary Schools of Amroha District.

2. There is no significant difference between educational awareness of the students of Government Primary and Private Primary Schools of Amroha District.

3. There is no significant difference between academic achievement of the students of Government Primary and Private Primary Schools situated in urban locality of Amroha District.(This hypothesis is divided into four sub-hypotheses. They are mentioned below)

3.1 There is no significant difference between academic achievement (maths) of the students of Government Primary and Private Primary Schools situated in urban locality of Amroha District.

3.2 There is no significant difference between academic achievement (social studies) of the students of Government Primary and Private Primary Schools situated in urban locality of Amroha District.

3.3 There is no significant difference between academic achievement (Hindi) of the students of Government Primary and Private Primary Schools situated in urban locality of Amroha District.

3.4 There is no significant difference between Total academic achievement of the students of Government Primary and Private Primary Schools situated in urban locality of Amroha District.

4. There is no significant difference between educational awareness of the students of Government Primary and Private Primary Schools situated in urban locality of Amroha District.

5. There is no significant difference between academic achievement of the students of Government Primary and Private Primary Schools situated in rural locality of Amroha District.(This hypothesis is divided into four sub-hypotheses. They are mentioned below)

5.1 There is no significant difference between academic achievement (maths) of the students of Government Primary and Private Primary Schools situated in rural locality of Amroha District.

5.2 There is no significant difference between academic achievement (social studies) of the students of Government Primary and Private Primary Schools situated in rural locality of Amroha District.

5.3 There is no significant difference between academic achievement (Hindi) of the students of Government primary and Private Primary Schools situated in rural locality of Amroha District.

5.4 There is no significant difference between Total academic achievement of the students of Government primaryand Private Primary Schools situated in rural locality of Amroha District.

6. There is no significant difference between educational awareness of the students of Government primary and Private Primary Schools situated in rural locality of Amroha District.

7. There is no significant difference between academic achievement of male students of Government Primary and Private Primary Schools of Amroha District.(This hypothesis is divided into four sub-hypotheses. They are mentioned below)

7.1 There is no significant difference between academic achievement in maths of the students of Government Primary and Private Primary Schools of Amroha District.

7.2 There is no significant difference between academic achievement in social studies of the students of Government Primary and Private Primary Schools of Amroha District.

7.3 There is no significant difference between academic achievement in Hindi of the male students of Government Primary and Private Primary Schools of Amroha District.

7.4 There is no significant difference between Total academic achievement of the male students of Government Primary and Private Primary Schools of Amroha District.

8. There is no significant difference between educational awareness of male students of Government Primary and Private Primary Schools of Amroha District.

9. There is no significant difference between academic achievement of female students of Government Primary and Private Primary Schools of Amroha District.(This hypothesis is divided into four sub-hypotheses. They are mentioned below)

9.1 There is no significant difference between academic achievement in maths of the female students of Government Primary and Private Primary Schools of Amroha District.

9.2 There is no significant difference between academic achievement in social studies of the female students of Government Primary and Private Primary Schools of Amroha District.

9.3 There is no significant difference between academic achievement in Hindi of the female students of Government Primary and Private Primary Schools of Amroha District.

9.4 There is no significant difference between Total academic

achievement of the female students of Government Primary and Private Primary Schools of Amroha District.

10. There is no significant difference between educational awareness of the male students of Government Primary and Private Primary Schools of Amroha District.

Variable Involved in the study :

1. Academic Achievement
2. Educational Awareness

Tools Used - To measure each one of the above variables the following tools, all of which are highly valid and reliable, have been employed.

1. Academic Achievement in Maths, Social Studies and Hindi in primary classes.
2. Educational awareness scale.

A details account of the tools used in this study has been presented in the following description.

Statistical technique Used - In order to achieve the objectives of the study and for testing the hypothesis the following statistical method is used -

(A) Mean of the Group - The sum of the score $\sum xj$ in each group is divided by each corresponding frequency, Nj

The mean of group

$$Xj - \frac{\sum x_J}{N_J}$$

(B) Standerd Deviation - Standard Deviation is find out with the help of following formula:

$$\sigma = \sqrt{\frac{\sum x^2}{N} - (\bar{x})^2}$$

(C) Standard Error of Difference between means - The standard error of difference between two independent means is find out by using the formula given below:

$$S_{ED} = \sqrt{\frac{\sigma_1^2}{N_1} + \frac{\sigma_2^2}{N_2}}$$

(D) t-ratio:t-ratio is find out by using the formula given below:

$$t = \frac{\overline{X_1} - \overline{X_2}}{\sqrt{\frac{\sigma_1^2}{N_1} + \frac{\sigma_2^2}{N_2}}}$$

(E) After consulting 't' table the value of 't' required for significance at 0.05 and 0.01 level of confidence are find out for dfN_1+N_2-2. These values may be denoted by t 0.05& 0.01.

(F) If the calculated value of 't' is equal or greater than the table value of 't' 0.05, it is thought to be significant . Similar is the case for 0.01 level of significance.

Findings Of The Study :

The findings of the study are:

1. I have found a significant difference in academic achievement (maths) of the student studying in government primary and private primary schools.
2. I have found a significant difference in academic achievement (social studies) of the student studying in government primary and private primary schools.
3. I have found a significant difference in academic achievement (hindi) of the student studying in government private and private primary schools.
4. I have found a significant difference in total academic achievement of the student studying in government primary and private primary schools.
5. I have found asignificant difference between educational awareness of the student studying in government primary and private primary schools.
6. I have found asignificant difference in academic achievement (math) of the student studying in government private and urban private primary schools.
7. I have found a significant difference in academic achievement (social studies) of the student studying in government private and urban private primary school.
8. I have found a significant difference in academic achievement (hindi) of the student studying in government private and urban private primary schools
9. I have found a significant difference in total academic achievement of the student studying in government private and urban private primary schools.
10. I have found a significant difference in educational awareness of the students studying in urban government private and urban private primary schools.
11. I have found a significant difference in academic achievement (math) of the student studying in rural government private and rural private primary schools .
12. I have found a significant difference in academic achievement (social science) of the student studying in rural government private and rural private primary schools.
13. I have found a significant difference in academic achievement (hindi) of the student studying in rural government private and rural private primary schools .
14. I have found a significant difference in total academic achievement of the student studying in rural government private and rural private primary school .
15. I have found asignificant difference between educational awareness of the student studying in rural primary and rural private primary schools.
16. I have found a significant difference in academic achievement (math) of the male student studying in government private and urbanprivate primary schools.
17. I have found a significant difference in academic achievement (social studies) of the male student studying in government private and urban private primary schools.
18. I have found a significant difference in academic achievement (hindi) of the male student studying in government private and urban private primary schools
19. I have found a significant difference in academic achievement of the student studying in government private and urban private primary schools.
20. I have found asignificant difference in educational awareness of the male student studying in government primary and private primary schools.
21. I have found asignificant difference in academic (maths) of the female student studying in government primary and private primary schools.

22. I have found asignificant difference in academic (social studies) of the female student studying in government primary and private primary schools.
23. I have found a significant difference in academic (hindi) of the female student studying in government primary and private primary schools.
24. I have found a significant difference in total academic achievement of the female student studying in government primary and private primary schools.
25. I have found a significant difference between educational awareness of the female student studying in government primary and private primary schools.

Result - The students of private primary schools have better total academic achievement then the students of government primary schools.The students of urban private primary schools have better total academic achievement than the students of government primary schools .The students of rural private primary schools have better total academic achievement than the students of rural government primary schools .The male and female students of private primary schools have better total academic achievement than the male and female students of government primary schools .The students of private primary schools have more educational awareness than than the students of government primary schools.The students of urban private primary schools and rural private primary schools have more educational awareness than the urban government primary schools and rural government primary schools. The male and female students of private primary schools have more educational awareness than the male and female students of government primary students.

Implementation -

1. The finding of this study are also important to manager of private primary schools. Their primary aim is to make such educational arrangements would help each pupil to make good achievement.
2. The findings of this study are also important to officers of basic education department .to overcome weakness of government primary schools they should adopt stages of private primary schools to make better performances of government private school students.
3. The finding of this study are also important to policy maker with the knowledge of these findings they can make such policies who can bring such changes in government primary education and improve its performance in society.
4. This investigation will also provide useful feedback information to the teachers of private and government primary schools of the state, which may be utilized by them to gain insight into the problem affecting their institutions that remedial and preventive measures might be taken up.
5. The findings of this study are also important to the parents .with the knowledge the findings of this study they can make an opinion about the merit and demerit of both types of institutions and send their children in better institution comparatively.

Conclusion - Academic achievement in maths,social studies, and hindi of students of private primary schools was better than students of government primary schools .total academic achievement of the students of private primary schools was better than thestudents of government primary schools.

Academic achievement in maths,social studies, and hindi of students of urban private primary schools was better than students of government primary schools .total academic achievement of the students of urban private primary schools was better than the students of urban government primary schools.Academic achievement in maths,social studies, and hindi of students of rural private primary schools was better than students of government primary schools .total academic achievement of the students of rural private primary schools was better than the students of rural government primary schools.

Academic achievement in maths,social studies, and hindi of students of private primary schools was better than male students of government primary schools .total academic achievement of the students of private primary schools was better than the male students of government primary schools. Academic achievement in maths,social studies,& hindi of students of female private primary schools was better than female students of government primary schools .total academic achievement of the students of private primary schools was better than the female students of government primary schools. Students of private primary schools are more aware towards education than the students of government primary schools.Students of urban private primary schools are more aware towards education than the students of government primary schools.Students of rural private primary schools are more aware towards education than the students of government primary schools .

Male Students of private primary schools are more aware towards education than the male students of government primary schools.Female Students of private primary schools are more aware towards education than the female students of government primary schools.

Suggestions For Further Research Studies -

1. A comparative study of academic achievement ,educational awareness of students studying in01.0.government-aided secondary schools and self financed secondary schools .
2. A comparative study of academic achievement ,educational awareness of students studying in CBSE schools and U.P board schools.
3. A comparative study of academic achievement ,educational awareness of students studying in government-aided B.ED colleges and self financed B.ED colleges.
4. A comparative study of academic achievement ,educational awareness of students studying in government medical colleges and private medical colleges .
5. A comparative study of academic achievement ,educational awareness of students studying in aided law colleges and private law colleges .
6. A comparative study of academic achievement,educational awareness of OBC,SC & general caste students.

E-Learning And Hybrid Teaching - A Global Revolution

Bhawna Verma * Kumud Dikshit *

Introduction - In this present scenario technology is so develop that you can learn anything, anywhere, anytime through E-Learning. In education sector various university provides degree through e-learning. Students are get enrolled in various courses, they study through e-learning methods and give their exams online. They need not to attend traditional classroom, it is good for those student who are working and don't have time to go classrooms. According to Andrews Richard and Haythornthwaite Coroline- E-learning is the use of technology in the use of technologies in learning opportunities, encompassing flexible learning as well as distance learning and the use of information and communication technology as a communication and delivery tool, between individuals and groups to support students and improve the management of the learning's-Learning includes use of ICT(Internet,computer,mobile phone and video) to support teaching and learning activities.

E-learning-is generally defined as any form of learning that utilizes a network for delivery, interaction, or facilitation.

Advantages of E-Learning and online teaching -

1. **Online teaching allows for 24x7 access to class materials, online classrooms etc**. - This allows part time instructors with full time jobs the ability to perform their teaching duties at their convenience.
2. **More opportunities to teach -** Using the internal as a classroom provides the instructor the ability to conduct classes with students from across multiple time zones, without having to travel. Because of this, smaller specialized classes are more likely to have enough. Students to be feasible. This allows instructors more opportunities to teach and is especially valuable for training offered by professional organizations.
3. **Indisputable records of class participation-**The online environment aids in some of the more sensitive areas of classroom administration. Online assignment posting areas provides a secure and time documented avenue for turning in assignments. Servers that retain session and newsgroup documentation provides indisputable records of class participation for both volume and quality.
4. **24x7 access to business research, online journals and magazines and often online or e-books -** these are valuable resources, not just for course delivery but also for the instructor's other professional endeavors and personal growth.
5. **Often continuing education session -** Online institutions typically offer continuing education session throughout the year, providing facilitators and trainers opportunities for skill enhancement in areas such as providing feedback, problem based learning handling difficult students.
6. **Keeps faculty on track -** these institutions also hold their faculty meeting online, keeping records in newsgroups that can be accessed after the meeting.
7. **Simplifies the work of the instructor-** for many online institutions the coursework for each class has been standardized and posted on a courses websites. Recommended assignments and grading rubrics are pre-developed as are class overviews/ lectures. This simplifies the work of the instructor a great deal and they can focus on bring practical experience to the class and not worry about lesson plans and reading assignments.

Online teaching tools -

1. **Google Apps-** It is a package of web applications that includes Gmail, Calendar, Drive, Contacts**.**
2. **Digital media projects office** - The DMP provides educational technologies to support faculty and instructors.
3. **Ryecast** - The Ryecast service is provided by Ryerson University's computing and communication services. It can be used to provide live lecture, seminar and event broadcasts as well as host streaming video and audio on demand.
4. **Online grade books -** Online grade provide a web based application to store grades, list assignments and provide many other features that help instructors communicate with and manage their student population.
5. **Share space sites** - These web sites allow users to upload audio files, presentation, word documents and spreadsheet, and store then for free.

Hybrid teaching - Hybrid teaching is the combination of traditional and online classrooms. Hybrid teaching allows the flexibility and efficiency of the online environment students

*Asst. professor, Aravali College Of Advanced Studies in Education, Faridabad (Haryana) INDIA
** Asst. professor, Aravali College Of Advanced Studies in Education, Faridabad (Haryana) INDIA

have access to content and assignments 24x7.Students can communicate with peers and instructors, students can navigate through the course in a more self- directed style, they can find information they need on their own time and in their own way, with the social contact, motivation and support of the traditional classroom.

Many teachers find that given the new medium, students find their own paths and do not follow the set course of study as they would in a face- face course often in the online environment the students seeks to get online, find what they need, submit the required tasks and they get off while in the classroom it is the teacher who sets the time, procedure and method of teaching and imparting information. Teachers in the online environment have less control that in the classroom.

Hybrid teaching allows us to automate the administrative side of teaching and focus on teaching,

Teaching benefits -

1. Staff can teach in new ways.
2. Face to face teaching can be organized around staff strengths.
3. Value of face to face time is maximized.
4. Burden of delivering all information to students is lifted.
5. Opportunity to relate to students as individuals is maximized.
6. Increased opportunity to teach transferable skills.

Conclusion - Developments in flexible modes of course delivery are making increased use of the World Wide Web. While there is much experimentation going on with web based course delivery, there is a need for specifically focused research to develop an appropriate pedagogy for both hybrid and web based modes of delivery .Teachers are just scratching the surface of online learning and factors such as course content, student characteristics and teacher characteristics will no doubt play a significant role in the successful implementation of flexible delivery modes.

References :-

1. How E-Learning Can Increase ROI Training By Thinq's Rsearch Department.
2. Thomas P.Burke " The Impact of E-Learning on Workforce Training"
3. Srivastava Ekta , Aggarwal Nisha (2013) "E-Learning: New trend in Education and training" International Journal of Advanced Studies.

Notes -

4. http://www.wikipedia.com/def of E-Learning.
5. http://www.wikipedia.com/def of Hybrid Teaching.

****

Naveen Shodh Sansar (An International Refereed Research Journal) April to June 2015, Volume - 2
ISSN 2320-8767, E- ISSN 2394-3793, Imapct Factor - 0.715 (2014)

Developmental Trends In Metacognition: A Literature Review

Mathur Rini *

Introduction - Metacognition became a buzzword in education in 1970, which can be closely defined as "thinking about thinking" but it is important not to be superficial about this complex form of higher order thinking. Metacognition involves not only the ability to think about one's cognitions, but also knowing how to analyze, to draw conclusion, to learn from, and to put into practice what has been learned.

Brief History - Strategies for assessing and teaching metacognitive skills were in use long before the term became popular. Metacognitive theory draws on the work of Plato, Aristotle, Confucius, Lace, Tzu, Solomon, Buddha, Lohn, Hocke, Dewey etc. In 1971, Flavell introduced "metamemory" and conducted the first study of children's metamemory. By 1975, the word "metacognition" came had come into common use and it caught the interest of researchers.

Hacker (1998) mentions that Kluwe refined the concept of metacognition by noting two characteristics the thinker knows something about his or her own and others thought processes, and the thinker can notice and change his or her thinking. Kluwe calls this second type of metacognition "executive processes" .

Pointing to the difference between cognitive tasks (remembering things learned earlier that might help with this task or problem) and metacognition (monitoring and regulating the process of problem solving) Hocker stresses the importance of learning more about thinking. He separates metacognitive thinking into three types :-

- Metacognitive knowledge (What one knows about knowing)
- Metacognitive skill (what one is currently doing)
- Metacognitive experience (one's current cognitive or affective state)

  According to Merchant (2001), "Metacognitive skills involve knowing what to do, and how and when to do it". (p.488). Writers must learn how to plan the writing process, to organize, draft, revise and copyedit and to consider audience, purpose and genre.

  Flavell (1987), points out the importance of knowing how the three variables interact:

- Person variables involve the learner's beliefs about how he or she and others think and learn.
- Task variables include how difficult a problem is and how that affects the process the learner uses.
- Strategy knowing how to do a particular task, but higher solution to the problem is correct and that the goal has been reached. Learners have metacognitive experiences often, especially in new situations, where correctness is important and when difficulty develops.

Metacognitive skills and strategies enhance learning - Teaching students with metacognitive principles and techniques can help and encourage them to go deeper into what they learn and imbibe in the course of their learning process. As metacognitive learning is all about learning challenges when a child attempts to fine tune what he learns and absorbs in his classroom and elsewhere. Teachers just need to ask a progressive list of questions that how they proceeded with their thinking process and the range of techniques they used to achieve their goals. When they think about their own thinking process, they easily develop intellect. In fact when children become conscious of their thoughts, opinions and feelings soon after an activity, they can recall with relative easiness all those processes and actions that they took during the learning process. Academicians also believe that it is possible to induce children to learn on a conscious level and assist them in gaining a mastery over the organization of skills and knowledge acquired.

Metacognition improves with age and ability - Successful learning needs a deep understanding of available context and the innate ability to adapt the right type strategy at the right time. Metacognition enables a child's productive learning and problem solving abilities. Young toddlers and children aged two years possess rudimentary metacognition techniques while older children develop the technique slowly over time with the guidance of their parents and children. Children of different age group deal with learning assignments in different ways. Metacognition and its assimilation by these age groups also vary depending on the development of brain and its structure. However, it is possible to teach the techniques of metacognition to children at different age levels. Teaching metacognition to children depends on their age and level of intelligence while the level of introspection about the skills and knowledge learned depends on the genetic makeup of children.

* Research Scholar (Education) Mohan Lal Sukhariya University, Udaipur (Raj.) INDIA

Co-operative and Collaborative Learning approaches improve Metacognition - Over the past decades, there have been two main approaches for teaching metacognition monitoring skills : strategy training and creating social environments to support reflective discourse (Lin, 2001). Many researchers recommended the use of social environments i.e. collaborative and co operative learning structures for encouraging development of metacognitive skills. This recommendation appears to be rooted in Piagetion and Vygotskyian traditions that emphasize the value of social interactions for promoting cognitive development (as summarized by Dillenbourg et al, 1996). Piaget touted the instructional value of cognitive conflict for catalyzing growth, typically achieved by interacting with another person at a higher developmental stage. Along similar lines, Vygotsky identified the zone of proximal development as the distance between what an individual can accomplish alone and what he/she can accomplish with the help of a more capable other (either a peer on adult). Each of these approaches highlights the potential for cognitive and metacognitive improvement when students interact with one another.

Use of Multi Media improves Metacognition - According to Ertmer & Newby (1996), when asked to deal with novel situations, the specific cognitive skills and learning strategies we have available become more critical than the limited content knowledge we may possess. 'Thus' teaching approaches which can assist students to become 'expert learners' are more likely to empower them for life long learning in turbulent and rapidly changing context, such as those involving computer technology. Thus, it is proposed that metacognitive teaching approaches might foster greater and long term learning capability for computer end users. Metacognitive learning means developing a personal understanding based on experiencing things and reflecting on those experiences. These intended changes in education can be better actualized in multimedia classrooms.

Review - Metacognition, or the awareness and regulation of the process of one's thinking, has been recognized as a critical ingredient to successful learning (Brown, Bansford, Ferrara & Campione, 1983; Flavell, 1987; Hacker, Dunlosky & Graesser, 1998; Pressley, Elten, Yokoi, Treebern, & Meter, 1998). Several researchers offer evidence that metacognition is teachable (Cross & Paris, 1988 ; Dignath et al, 2008; Haller et al, 1988; Hennessey, 1999; Kramarshi & Mevarech, 2003). Kuhn (2000) points out that instruction for metacognition should be delivered at the meta level rather than performance level, which means instruction should be aimed at increasing awareness and control of meta task, rather than task, procedures. Schraw (1998) recommends providing explicit prompts to help students improve their regulating abilities.

Many researchers also recommend the use of collaborative or cooperative learning structures for encouraging development of metacognitive skills (Cross & Paris, 1988; Hennessey, 1999; Kramarski & Mevarech, 2003; Kuhu & Dean, 2004; Martinez, 2006; Mc Leed, 1997; Paris & Winograd, 1990; Schraw & Moshman, 1995; Schraw et al., 2006). Cross and Paris (1988), identified group discussions about the use of reading strategies as one of the critical features of the informed strategies for learning curriculum. Hennessey (1999) points out that such techniques promote metacognitive discourse among students and stimulate conceptual conflict. Such conflicts can lead to clarifications of students beliefs and concepts. Kramarski and Mevarech (2003) attribute the superior performance of students working in collaborative group settings to the higher quality of discourse observed among students working together. Schraw and Moshman (1995) note, peer interaction can encourage the construction and refinement of metacognitive theories, which are frameworks for integrating cognitive knowledge and cognitive regulation.

Multimedia or computers have also been successful in modeling metacognitive strategies. For example, they can make often tactic thinking processes overt so they become externalized and accessible as objects of close reflection and evaluation (Lin, Hmelo, Kinzer & sucules, 1999.) Graesser and Mc Namara (2005) used computers as tutors to help students generate questions (eg. why, what – if, how) and develop self explanation strategies while reading text. Other researches use technology to help students develop self–correction skills for problem solving (Mathan & Koedinger, 2005), as well as use effective monitoring strategies in their online scientific (Quintana, Zhang, & Krajcik, 2005).

Multimedia have also been used to facilitate collaborative problem solving and reflection. These include the uses of computers as advisors for science inquiry (White & Frederiksen, 2005) and creating on–line forum that allows learners to share and critique each other's understanding (computer supported International learning Environment SILE), by Scardamalia & Bereiter, 1991; In all these works, the emphasis is on the creation of social support for the adoption of effective metacognitive strategies.

Several early studies conclude, that metacognition is a late developing skill (Tlavel, 1979 ; Schraw & Moshman, 1995 ; Whitebread et al, 2009). Tlavel, 1979 ; urges that young children have difficulty in appraising their own ability to memorize a set of objects and identifying a set of written instructions. Schraw & Moshman (1995) note that young children have difficulty in monitoring their thinking during task performance and constructing metacognitive theories, frameworks that integrate cognitive knowledge and cognitive regulation. However more recent researchers have observed metacognition even in preschool – aged children in the form of planning and monitoring progress towards goals and persistence at challenging tasks (Mc Leod, 1997). Whitebread et al. (2009) found that children as young as 3-5 years old exhibited both verbal and non verbal metacognitive behaviors during problem solving, including articulation of cognitive knowledge, cognitive regulation, and regulation of emotional and affective states. However, results suggest that

metacognitive knowledge improves with age (Schneider (2008)), developmental trends for procedural metacognitive knowledge, particularly as it relates to monitoring task demand in relation to abilities, are still less clear.

Conclusion - Finding of various researches show that the accelerated development of metacognitive skills is very important to children as metacognition is a key parameter in transfer of learning parameters. Metacognitive strategies can help students of all ages to develop highly critical cognitive functions. Collaborative and cooperative learning environments stimulate conceptual and cognitive conflicts which promote metacognitive discourse. Moreover, the use of multimedia including computer in classroom help students to construct conceptual or mental models of the phenomena under study. Construction of such models facilitate conceptual change, produce cognitive disequilibrium or conflicts and promote metacognition. In fact, metacognition is a very fine tuned process that happens along with a number of other bodily activities like cognition, reflex and motor activities that improve with age and instruction.

References :-

1. Schraw, G. & Moshman, D (1995) Metacognitive Theories, Educational Psychology Review, 7 (4), 351-371.
2. Schraw, G-(1998) promoting general metacognitive awareners. Instructional science, 26 (1-2), 113-125.
3. Edison, Carokine (Ph.D), Cunningham, (2000), The development of Metacognitive response in young gifted children, University of Virginia.
4. Sehneider, W. & Locke, K. (2002). The development of Metacognitive knowledge in children and adolesecents. Applied Metacognition. Cambridge, UK: Cambridge University Press.
5. Sperling, R.A., Howard, B.C., Miller, L.A., & Murphy, C. (2002). Measures of Childrens' knowledge and regulation of Cognition. Contemporary Educational Psychology, 27, 51-79.
6. Schraw, G. Crippen, K.J., & Hartley, K.(2006). Promoting self regulation in Science education: Metacognition as part of a broader perspective on learning research in science education, 36, 111-139.
7. Schneider, W. (2008): The development of metacognitive knowledge in children and adolescents: Major trends and implications for education. Mind, Brain and Education, 2(3), 114-121.
8. Ray, K, & Smith, M.C.(2010). The kindergarten child What teachers and administrators need to know to promote academic success in all children Early Childhood Education Journal, 38(1), 5-18.

****

Naveen Shodh Sansar (An International Refereed Research Journal) April to June 2015, Volume - 2
ISSN 2320-8767, E- ISSN 2394-3793, Imapct Factor - 0.715 (2014)

Conservation of Wild Life and Constitutional Provisions

Dr. R. C. Gupta *

Abstract - The need for conservation of wildlife in India is often questioned because of the apparently incorrect priority in the face of dire poverty of the people. However Article 48 of the Constitution of India specifies that "the state shall endeavour to protect and improve the environment and to safeguard the forests and wildlife of the country" and Article 51-A states that "it shall be the duty of every citizen of India to protect and improve the natural environment including forests, lakes, rivers, and wildlife and to have compassion for living creatures."

Introduction - Large and charismatic mammals are important for wildlife tourism in India and several national parks and wildlife sanctuaries cater to these needs. Project Tiger started in 1972 is a major effort to conserve the tiger and its habitats. At the turn of the 20th century, one estimate of the tiger population in India placed the figure at 40,000, yet an Indian tiger census conducted in 1972 revealed the existence of only 1827 tigers. Various pressures in the later part of the 20th century led to the progressive decline of wilderness resulting in the disturbance of viable tiger habitats. Conservation projects have been established to preserve them, but for some species, such as the Indian cheetah, protection has come too late - the Indian cheetah was last seen in 1948.

For conservation of flora and fauna the Government of India has introduced various types of legislation in response to the growing destruction of wildlife and forests. These are:

1. The Wildlife (Protection) Act, 1972 (Last amended in 2006) - The Wildlife (Protection) Act (WLPA), 1972 is an important statute that provides a powerful legal framework for:

1. Prohibition of hunting.
2. Protection and management of wildlife habitats
3. Establishment of protected areas
4. Management of zoos.
5. Regulation and control of trade in parts and products derived from wildlife

The WLPA provides for several categories of Protected **Areas/Reserves -**

1. National Parks
2. Wildlife Sanctuaries
3. Tiger Reserves
4. Conservation Reserves
5. Community Reserves.

2. The Indian Forest Act (1927) and Forest Acts of State Governments - The main objective of the Indian Forest Act (1927) was to secure exclusive state control over forests to meet the demand for timber. Most of these untitled lands had traditionally belonged to the forest dwelling communities. The Act defined state ownership, regulated its use, and appropriated the power to substitute or extinguish customary rights. The Act facilitates three categories of forests, namely

1. **Reserved forests**
2. **Village forests**
3. **Protected forests**

Reserved forests are the most protected within these categories. No rights can be acquired in reserved forests except by succession or under a grant or contract with the government. Felling trees, grazing cattle, removing forest products, quarrying, fishing, and hunting are punishable with a fine or imprisonment. Although the Indian Forest Act is a federal act, many states have enacted similar forest acts but with some modifications.

3. The Forest Conservation Act (1980) - In order to check rapid deforestation due to forestlands being released by state governments for agriculture, industry and other development projects (allowed under the Indian Forest Act) the federal government enacted the Forest Conservation Act in 1980 with an amendment in 1988. The Act made the prior approval of the federal government necessary for de-reservation of reserved forests, logging and for use of forestland for non-forest purposes.

4. The Environment (Protection) Act (1986) The Environment Protection Act is an important legislation that provides for coordination of activities of the various regulatory agencies, creation of authorities with adequate powers for environmental protection, regulation of the discharge of environmental pollutants, handling of hazardous substances, etc. The Act provided an opportunity to extend legal protection to non-forest habitats ('Ecologically Sensitive Areas') such as grasslands, wetlands and coastal zones.

7. National Forest Policy (1998) The National Forest Policy, 1988, (NFP) is primarily concerned with the sustainable use and conservation of forests, and further strengthens the Forest Conservation Act (1980). It marked a significant departure from earlier forest policies, which gave

* **Professor (Commerce) Govt. P.G. College, Bina (M.P.) INDIA**

primacy to meeting government interests and industrial requirements for forest products at the expense of local subsistence requirements. The NFP prioritizes the maintenance of ecological balance through the conservation of biological diversity, soil and water management, increase of tree cover, efficient use of forest produce, substitution of wood, and ensuring peoples' involvement in achieving these objectives. It also includes meeting the natural resource requirements of rural communities as a major objective. The NFP legitimizes the customary rights and concessions of communities living in and around forests, stating that the domestic requirements of the rural poor should take precedence over industrial and commercial demands for forest products.

5. **The Biological Diversity Act (2002) -** India is a party to the United Nations Convention on Biological Diversity. The provisions of the Biological Diversity Act are in addition to and not in derogation of the provisions in any other law relating to forests or wildlife.

6. **National Wildlife Action Plan (2002-2016) -** replaces the earlier Plan adopted in 1983 and was introduced in response to the need for a change in priorities given the increased commercial use of natural resources, continued growth of human and livestock populations, and changes in consumption patterns.

7. **Constitutional Provisions -***Article 48* - Organization of agriculture and animal husbandry.

Article 48-A: The State shall Endeavour to protect and improve the environment and to safeguard the forest and wildlife of the country.

Article 51A (g): to protect and improve the natural environment including forests, lakes, rivers and wild life, and to have compassion for living creatures.

List I (Union List):

Entries -
1. Industries.
2. Regulation and development of oil fields and mineral oil resources.
3. Regulation of mines and mineral development.
4. Regulation and development of inter-State rivers and river valleys.
5. Fishing and fisheries beyond territorial waters.

List II (State List) -

Entries -
1. Public health and sanitation, hospitals and dispensaries.
2. Agriculture, including agricultural education and research, protection against pests and prevention of plant
3. Diseases. 4. Land, colonization, etc.
5. Fisheries.
6. Regulation of mines and mineral development subject to the provisions of list I.
7. Industries subject to the provisions of list I.

List III (Common or Concurrent List) -

Entries -
1. Forests.
2. Protection of wild animal and birds.
3. Population control and family planning.

Model role of Environment protection in Indian Culture

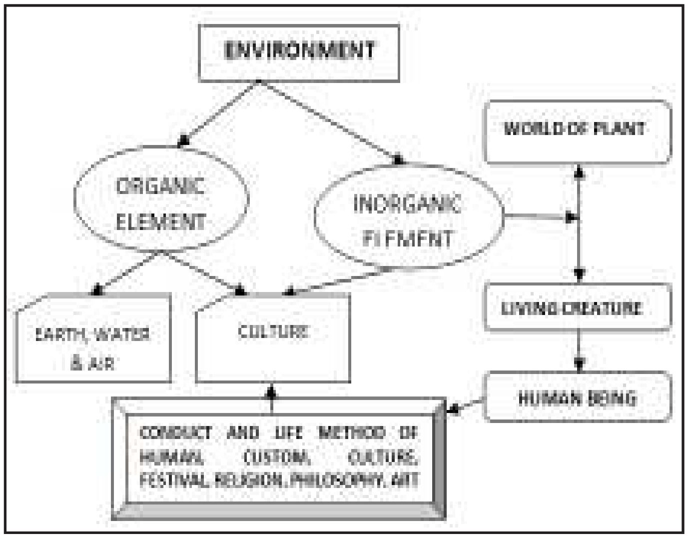

Protection of Wildlife alone is not possible only by laws and Government. Despite all of these laws and efforts, destruction of wildlife, illegal trade and poaching continues. Active cooperation from the common public is also very necessary. It is now high time for us to understand the gravity of the situation and act on its behalf. And this can only be achieved by our awareness and by further stringent laws by the Government. We must not lose the national treasures in our rat race of urbanization and modernization. Celebration of "World Forest Day" "World Water Day" and "World Environment Day" underlines the national concern for creating a healthy environment. But the nation cannot get the rid of this concern, unless and until every citizen is aware of the environmental pollution and its disasters effects and everyone of us share active responsibility to check it. We cannot feel safe depending on the efforts of the government alone because each one of us is a factor for and sufferer of environment pollution.

Suggestions -
1. To protect forest by fire and disease.
2. Plant trees as environmental situation.
3. To stop cutting of trees.
4. For the protection of wild life increase reserved area.
5. To make proper implementation of the law related to flora and fauna.
6. To make promotion of plans, schemes and to educate persons

References :-

1. Bhandari, Narendra singh, "Environment" Page 80-82, 90,118
2. Upphadiya, Jai jai Ram, "Environmental Law" Page 89,222,320,
3. Basu, Durga Das, "Introduction to the constitution of India" Page 136, 145-147
4. Bare Act, "Constitution of India" Page 29-30, 339, 33

Naveen Shodh Sansar (An International Refereed Research Journal) April to June 2015, Volume - 2
ISSN 2320-8767, E- ISSN 2394-3793, Imapct Factor - 0.715 (2014)

ग्रामीण भारत में शिक्षा तथा रोजगार के अवसर एवं चुनौतियां

डॉ. आलोक कुमार यादव *

प्रस्तावना – इस बारे में पहले ही तुलना में कहीं अधिक आशा बढ़ चली है कि भारतीय अर्थव्यवस्था में निकट भविष्य में तथा उससे आगे मध्यावधि में उल्लेखनीय प्रगति होगी तथा आबादी का काफी बड़ा हिस्सा खुशहाल होगा और गरीबी तथा बदहाली में तेजी से कमी आएगी। किन्तु भारत की गरीबी की समस्या का समाधान उस प्रक्रिया की जटिलता में उलझा हुआ है, जिसके तहत हर महीने करीब दस लाख बच्चे मजदूर बन जाते हैं और अगले दस वर्षो तक इस जनसांख्यिक अवस्था का लाभ कैसे उठाया जाये। इन दोनों ही का दीर्घकालिक हल यह है कि नौकरियां और कुशलता का प्रशिक्षण इस तरह हो जो किसी भी अनुदान या छूट के मुकाबले ज्यादा कारगर साबित हो। आर्थिक विकास के लिए शिक्षित और कौशलयुकत कामगारों का होना बहुत आवश्यक है।

किसी भी राष्ट्र की सामाजिक उन्नति में वहां की शिक्षा व्यवस्था का अहम योगदान रहा है। आजादी के बाद भारत में शिक्षा तथा रोजगार के क्षेत्र में लगातार क्रांतिकारी बदलाव हुए हैं लेकिन ग्रामीण रोजगार के महत्वपूर्ण व आकर्षक क्षेत्र होने के बावजूद कृषि क्षेत्र से लोगों का पलायन जारी है। देश के ग्रामीण क्षेत्रों से शहरों की ओर भारी संख्या में पलायन ग्रामीण रोजगार की निराशाजनक तस्वीर प्रस्तुत करते हैं।

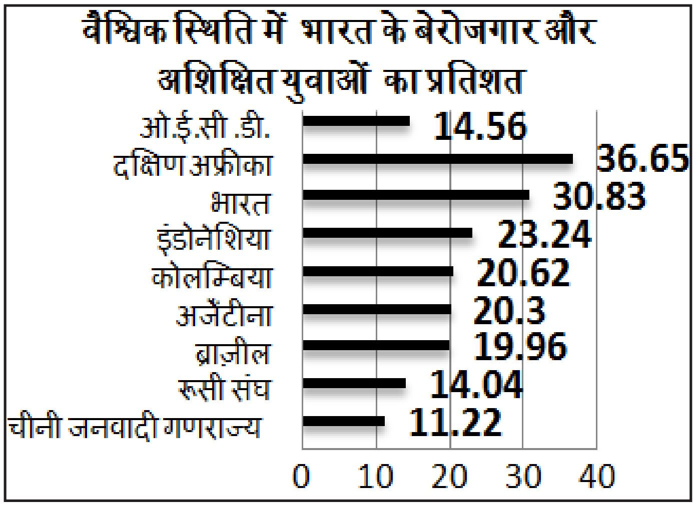

उपरोक्त आंकड़ों के विश्लेषण से स्पष्ट है कि 15-29 वर्ष की उम्र के 30 प्रतिशत से अधिक भारतीय नौकरी में नहीं है और न ही शिक्षा और प्रशिक्षण में है।

भारत में 2011 की जनगणना के पश्चात् 2014 में सोशियों इकोनॉमिक्स एंड कास्टसेंसस-एस.ई.सी.सी. के आंकड़ों से स्पष्ट है कि भारतीय ग्रामीण निरक्षरों की संख्या में 8.6 करोड़ की ओर अधिक वृद्धि हुई हैं एम.ई.सी.सी. द्वारा 2011 के 31.57 करोड़ की गणना ग्रामीण निरक्षर के रूप में भी थी।

साक्षरता का स्तर – महात्मा गाँधी जी ने कहा है कि भारत की आत्मा गाँवों में बसती है। वे ग्रामीण अर्थव्यवस्था की आत्म निर्भरता, स्वशासन भी वकालत किया करते थे। आज की स्थिति में भारत में ग्रामीण साक्षरता का स्तर बहुत कम है। इसमें भी मुख्य तथ्य यह है कि ग्रामीण साक्षर व्यक्तियों को पढ़ना-लिखना अभी-भी कम आता हैं 2015 में किये गये एक सर्वेक्षण के आधार पर स्पष्ट होता है कि ग्रामीण भारत में 14 प्रतिशत (12.3 करोड़) लोगों के पांचवी कक्षा तक की पढ़ाई नही की है, जबकि 18 प्रतिशत (15.4 करोड़) लोगों के प्राथमिक का पांचवी कक्षा तक की पढ़ाई की है।

भारत में साक्षरता की स्थिति

	जनगणना 2011 के आंकड़े	एस.ई.सी.सी. के आंकड़े 2014-15
कुल आबादी	83 करोड़	88 करोड़
साक्षर	48 करोड़	56 करोड़
निरक्षर	22.9 करोड़	31.5 करोड़
साक्षरता दर	23-32%	35-73%

स्त्रोत- जनगणना 2011 एम.ई.सी.सी.

भारत में महिला-पुरूष साक्षरता दर

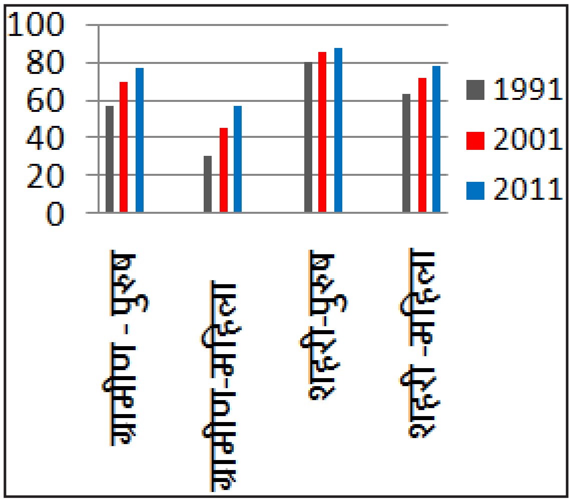

* प्राचार्य, शासकीय पॉलीटेक्निक महाविद्यालय, होशंगाबाद (म.प्र.) भारत

ग्रामीण भारत में आबादी अनुसार साक्षरता प्रतिशत

शिक्षा	आबादी (करोड़ में)	कुल आबादी में प्रतिशत
निरक्षर	31.57	35.73
साक्षर से प्राइमरी तक	12.34	13.97
प्राइमरी	15.71	17.78
मिडिल	11.96	13.53
सेकेण्डरी	8.46	9.57
हायर सेकेण्डरी	4.78	5.41
ग्रेजुएट या उससे ऊपर	3.05	3.45

भारत में ग्रामीण निरक्षरता का प्रतिशत क्षेत्रवार निम्न प्रकार है :-

क्षेत्र	निरक्षरता (प्रतिशत में)
मध्य भारत	39.20
पूर्व भारत	38.79
पश्चिम भारत	35.15
उत्तर भारत	32.85
पूर्वोत्तर भारत	30.93
दक्षिण भारत	29.64
केन्द्र शासित प्रदेश	15.30

भारत के कुछ प्रमुख राज्यों में ग्रामीण निरक्षरता का प्रतिशत निम्न प्रकार है

क्षेत्र	निरक्षरता (प्रतिशत में)
राजस्थान	47.58
मध्यप्रदेश	44.19
बिहार	43.85
तेलंगाना	40.42
जम्मू-कश्मीर	39.31
झारखंड	39.31
अरूणांचल प्रदेश	38.18
उत्तरप्रदेश	37.85
ओडिशा	34.89

स्त्रोत- जनगणना 2011 एम.ई.सी.सी.

उपरोक्त आंकड़ों के विश्लेषण से स्पष्ट है कि पूर्व भारत में निरक्षरता सबसे अधिक 39.79 प्रतिशत है। वहीं मध्य भारत में निरक्षरता 39.20 प्रतिशत, पतिचम भारत में 35.15 प्रतिशत, पूर्वोत्तर भारत में 30.2 प्रतिशत जबकि दक्षिण भारत में 29.64 प्रतिशत निरक्षरता है। केन्द्रशासित प्रदेशों में निरक्षरता कम है, यहां पर 15 प्रतिशत निरक्षरता है।

इसी प्रकार राज्यवार निरक्षरता का आंकलन करने पर आंकड़ों के अनुसार राजस्थान की स्थिति सबसे बुरी है क्योंकि यहां 47.58 लोग निरक्षर हैं मध्यप्रदेश दूसरे क्रम पर है जहां 44.19 प्रतिशत की आबादी निरक्षर है। बिहार में निरक्षरों की संख्या 43.85 प्रतिशत और तेलंगाना में 40.42 प्रतिशत आबादी निरक्षर है। केन्द्रशासित प्रदेशों में दादर और नगर हवेली में 36.29 प्रतिशत निरक्षरता है।

रोजगार का स्तर - सामाजिक बदलाव का सबसे महत्वपूर्ण साधन 'कृषि क्षेत्र' वर्तमान में सबसे जयादा उपेक्षित है। ग्रामीण क्षेत्रों में स्वरोजगार के अवसर कृषि के पिछड़ेपन के कारण सृजित नहीं हो पा रहे है। सम्पूर्ण भारत में भी रोजगार की स्थिति बहुत अच्छी नहीं है। अलग-अलग संस्थानों और सरकारी सर्वेक्षणों से यह तथ्य स्पष्ट हुआ है। श्रमिक ब्यूरों के द्वारा आठ श्रमिक आधारित उद्योगों में किए गए सर्वेक्षण में सामने आया है कि 2011 में जहां नौ लाख रोजगार थे, उसमें 2013 में उन्नीस लाख और 2014 में मात्र 1.35 लाख रोजगार रह गये हैं। इसके विपरीत आंकड़े दिखाते है कि प्रत्येक माह लगभग दस लाख नए लोग रोजगार की तलाश में जुड़ जाते हैं।

अद्यतन रोजगार और बेरोजगारी सर्वेक्षण 2014-15 के आंकड़ों से पता चलता है कि सामान्य सिद्धांत के आधार पर अखिल भारतीय स्तर पर श्रमिक भागीदारी दर (एल.एफ.पी.आर.) 50.3 प्रतिशत रही। एल.एफ.पी.आर. की तुलना पुरूष और महिलाओं तथा राज्यों के मध्य करें तो हम पाते है कि महिलाओं का एल.एफ.पी.आर. 23.7 प्रतिशत पुरूषों के एल.एफ.पी.आर. 75.0 प्रतिशत की तुलना में बहुत कम है और इसमें राज्यवार अंतराल और भी गहरे है। सर्वेक्षण रिपोर्ट से यह भी स्पष्ट होता है कि ग्रामीण और शहरी दोनों ही क्षेत्रों में महिलाओं में अधिक बेरोजगारी है।

भारत बेरोजगारी प्रतिशत

क्षेत्र	प्रतिशत
भारत	4.8
शहरी क्षेत्र	5.3
ग्रामीण क्षेत्र	4.6

स्त्रोत- स्वरोजगार भारत सी.एम.आई.इ.काम

निष्कर्ष एवं सुझाव - उपरोक्त आंकड़ों तथा अन्य तथ्यों के विश्लेषण एवं अध्ययन उपरान्त निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि भारत सरकार द्वारा ग्रामीण ग्रामीण बेरोजगारी एवं शिक्षा सुधार के लिए विभिन्न योजनाओं को क्रियान्वित किया गया है जिनमें- महात्मा गाँधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी अधिनियम (मनरेगा) राष्ट्रीय आजीविका मिशन (एन.आर.एच.एम.) इंदिरा आवास योजना (आई.ए.वाई.) बैकिंग सूचना एवं प्रौद्योगिकी कार्यक्रम ग्रामीण स्वयं रोजगार प्रशिक्षण संस्थान (आरएसइंटीआई) आदि प्रमुख है किन्तु शहरीकरण की व्यापक प्रक्रिया ने ग्रामीण अर्थव्यवस्था के प्रति उदासीनता पैदा की है। शहर न केवल शिक्षा उतदन वितरण और प्रबंधन के केन्द्र बने है बल्कि संपूर्ण अर्थव्यवस्था की दिशा भी तय दर रहे है। वर्तमान संपूर्ण आर्थिक व्यवस्था में ग्रामीण क्षेत्र विगत कई दशक से महज कच्चे माल के स्त्रोत बनकर रह गए हैं। पारंपरिक ग्रामीण अर्थव्यवस्था जो कि कृषि, हस्तशिल्प, लघु-कुटीर शहरीकरण तथा वैश्वीकरण के आगमन के साथ समाप्त सी होती चली गई। भारतीय ग्रामीण अर्थव्यवस्था का आधार कृषि नवीन तकनीकों के इस्तेमाल के उपरान्त भी संकेत का सामना कर रही है। भारत की कुल श्रम शक्ति का 60 प्रतिशत भाग कृषि व सहयोगी कार्यो से आजीविका प्राप्त करता है किंतु इसके बावजूद देश के सकल घरेलू उत्पाद में कृषि क्षेत्र का योगदान केवल 16 प्रतिशत है। निर्माण के मामले में भी इसका हिस्सा मह 10 प्रतिशत ही है।

ग्रामीण भारत में सबसे बड़ी चुनौती शिक्षा व प्रशिक्षण भी है। हमारे शिक्षा तंग में आज भी पारंपरिक शैक्षणिक पद्धति को अपनाया जा रहा है, जबकि वर्तमान प्रतिस्पर्धी युग में व्यावसायिक एवं रोजगार मूलक शिक्षा की नितान्त आवश्यकता है। यही कारण है कि आधुनिक रोजगार हेतु हमारी शिक्षा प्रणाली बेहतर एवं कुशल श्रम बल तैयार नही कर पा रही है। ग्रामीण क्षेत्रों में प्राथमिक और माध्यमिक शिक्षा के पश्चात् 2014 का आर्थिक सर्वेक्षण बताता है कि 15 वर्ष की आयु वाले ऐसे बच्चों की संख्या जो व्यावसायिक प्रशिक्षण ले रहे है या ले चुके है मात्र 8 प्रतिशत है। प्रमुख तथ्य यह है कि शिक्षा विशेषीकृत नही होती। दूसरे अशिक्षित लोगों के लिए वैकल्पिक प्रशिक्षण की व्यवस्था किया जाना चाहिए। ग्रामीण क्षेत्रों के बढ़ती

बेरोजगारी, अशिक्षा एवं कम आमदनी से ग्रामीण व्यक्तियों की क्रय शक्ति कम होती जा रही हे, जो अंतत: उनकी गुणवत्ता को प्रभावित करती है। ग्रामीण क्षेत्रों में शिक्षा तथा रोजगार के क्षेत्र में महत्वपूर्ण परिवर्तन लाने के लिए शिक्षा और रोजगार को जोड़ने की आवश्यकता हैं इसके अतिरिक्त ग्रामीण भारत में एक सुद्दण विकास नीति को आवश्यकता उसके क्रियान्वयन के व्यावहारिक पक्ष के द्दष्टिगत रखते हुए करने की हैं ग्रामीण पर्यटन और सेवा क्षेत्र में छिपी अनन्त संभावनाओं को ध्यान में रखकर हस्तशिल्प, ज्ञान, संस्कृति को बढ़ावा देना आवश्यक है। ग्रामीण क्षेत्रों में सेवा क्षेत्र की महत्ता को सबझाते हुए विभिन्न कार्यक्रमों के द्धारा ग्रामीणों को प्रशिक्षित करना होगा। स्वरोजगार कार्यक्रमों के क्रियान्वयन में आने वाली कठिनाईयों एवं उनके दुरूपयोग को रोककर वास्तविक रूप से आवश्यक व्यक्तियों तक उनका लाभ पहुंचाने की कार्य योजना तैयार करना होगी।

ग्रामीण क्षेत्रों में उपलब्ध सस्ता श्रमबल, सस्ती संरचना, सस्ता परिवहन, कच्चे माल को पर्याप्त स्त्रोत आदि विशेषताओं के कारण उद्योगों को पब्लिक प्राइवेट साझेदारी और निजी दोनों रूपों में अधिकारिक सुविधाऐं प्रदान कर गांवों को औद्योगिकीकृत करने होंगे।

गांवों में प्राथमिक से ही व्यवसाय केन्द्रित शिक्षण पद्धति अपनाने के प्रति प्रयास होने चाहिए। औद्योगिक प्रशिक्षण, गैर कृषिगत कार्यो का प्रशिक्षण, सूचना प्रौद्योगिकी, सेवा क्षेत्र आदि से जुड़े रोजगार हेतु आवश्यक कौशल विकास के लिए शिक्षण प्रशिक्षण का प्रयास करना होगा।

ऊर्जा उपलब्धता की बाधा को दूर करने के लिए ऊर्जा के वैकल्पिक स्त्रोतों पर निर्भरता बढ़ाने के प्रति गंभीर होकर सौर ऊर्जा, पवन ऊर्जा जेसे विकल्पों के प्रचार प्रसार को गति देनी चाहिए।

ग्रामीण क्षेत्रों में संरचना निर्माण पर अब भी काफी काम होना शेष है। नक्सलवाद जैसी विघटनकारी प्रवृत्तियों को रोकने के लिए एक सुद्दण रणनीति की आवश्यकता है, तथा इसको क्रियान्वित करने की कार्ययोजना भी बनाई जाये जिससे पलायन प्रवृत्ति को रोका जासके तथा उद्यमियों को सुरक्षात्मक वातावरण प्रदान किया जा सके ।

ग्रामीण क्षेत्र में रोजगार व शिक्षा के अवसर बढ़ाने व चुनौतियों का सामना करने के लिए जहां एक ओर विभिन्न कार्यक्रमों को व्यावहारिक स्तर पर लागू करने की योजनाओं का निर्धारण आवश्यक है, वहीं उससे कहीं अधिक उन योजनाओं के क्रियान्वयन के पश्चात् उनका मूलयांकन व प्रभावी कानून द्धारा उन योजनाओं की वास्तविक लाभोत्पादकता ग्रामीणों को प्रदान करने की आवश्यकता है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. जनगणना 2011 एम.ई.सी.सी.
2. स्वरोजगार भारत सी.एम.आई.इ.काम

****

उच्च शिक्षा का निजीकरण - वरदान या अभिशाप

डॉ. सुरभि सिंघल*

शोध सारांश - शिक्षा के निजीकरण का अर्थ शिक्षा के क्षेत्र में निजी संस्थाओं, कंपनियों के प्रवेश से है। स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद शिक्षा में सुधार, विकास व विस्तार के उद्देश्यों को ध्यान में रखते हुए निजीकरण को अनुमति दी गयी थी। तब से आज तक निजी क्षेत्र शिक्षा के क्षेत्र में अपना कभी न समाप्त होने वाला अस्तित्व स्थापित कर चुका है।

यह सत्य है कि कोई भी नीति या योजना अच्छे उद्देश्य से लागू की जाती है, परन्तु उस योजना से जुडे व्यक्ति सामाजिक कल्याण को भूल कर स्वाहितों की पूर्ति में लग जाते हैं। यहीं स्थिति निजीकरण को लेकर हुई। यद्यपि निजीकरण ने शिक्षा के स्तर में सुधार, विकास व फैलाव में बहुत मद्द की है, परन्तु इसकी सफलता ने शिक्षा को मात्र आर्थिक रूप से समृद्ध वर्ग व अंग्रेज**ह** शिक्षा विस्तार का रूप प्रदान किया है, परन्तु अधिकांश जनसंख्या तक इसकी पहुँच बहुत सीमित है जिसमें सुधार की आवश्यकता है।

निजीकरण की आवश्यकता - आजादी के बाद पिछले छ: दशकों में देश में उच्च शिक्षा के क्षेत्र में उल्लेखनीय प्रगति हुई है।

आजादी से पहले देश में मात्र 3 विश्वविद्यालय थे वहीं अब उनकी संख्या 450 के आस-पास पहुँच चुकी है। इन संस्थानों में प्रतिवर्ष लगभग 75 लाख विद्यार्थी प्रवेश पाते है, फिर भी कई युवक-युवतियाँ उच्च शिक्षा से वंचित रह जाते है। उच्च शिक्षा के लिए उच्च संसाधनों की कमी हमेशा बनी रही है। सरकार द्वारा उच्च शिक्षा पर किए जा रहे व्यय की ओर देखा जाए, तो यह स्पष्ट होता है कि सरकार का अधिक ध्यान देश की जनसंख्या को शिक्षित करने अथवा प्राथमिक शिक्षा पर ही अधिक केन्द्रित है। उच्च शिक्षा के लिए उच्च संसाधनों की कमी हमेशा से बनी रही है। चौथी पंचवर्षीय योजना के बाद से उच्च शिक्षा पर भारी कटौती की जा रही है। चौथी योजना के दौरान उच्च शिक्षा पर कुल व्यय का 25 प्रतिशत खर्च किया गया वहीं नौवीं योजना में मात्र 12 प्रतिशत रह गया। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 के आरंभ से ही शिक्षा में निजीकरण के प्रवेश के संकेत प्राप्त होने लगे थे। इस नीति में उच्च शिक्षा संस्थानों के बेहतर रूप से संचालित करने के लिए चन्दा इकट्ठा करना तथा इमारतों के रख-रखाव एवं रोजमर्रा के काम में आने वाली वस्तुओं की पूर्ति में स्थानीय लोगों की सहायता की बात कही गयी।

इस बीच विश्व बैंक द्वारा विकासशील देशों में शिक्षा के खर्च के पैटर्न पर एक रिपोर्ट जारी की गई, जिसमें सलाह दी गई कि आर्थिक संसाधनों की कमी को देखते हुए शिक्षा पर आने वाले खर्च का एक बड़ा हिस्सा अभिभावकों पर डाला जाए। वर्ष 1991 में ढाँचागत समायोजन के अन्तर्गत नरसिम्हाराव सरकार ने आर्थिक उदारीकरण को आगे बढ़ाया, जिसमें स्पष्ट हो गया कि उच्च शिक्षा को विश्व बैंक के सुझावों के अनुरूप ढ़ाला जाएगा।

स्वतंत्रता के उपरान्त भारतीय शिक्षा के स्तर को उच्च करने के लिए आयोंगों, समितियों द्वारा दिये गये अनेकों सुझाव,'पॉलिसी फ्रेमवर्क फॉर रिमार्क्स इन एजुकेशन' नाम से मुकेश अम्बानी तथा कुमार मंगलम बिड़ला द्वारा व्यापार और उद्योग पर गठित प्रधानमंत्री की सलाहकार परिषद् को सौंपी गई। उच्च शिक्षा पर इस रिर्पोट को आधार मानते हुए निजीकरण का फैसला लिया गया। रिर्पोट के अनुसार 42 हजार करोड़ का खर्च उच्च शिक्षा के क्षेत्र में आना तय था। नये संस्थानों के निर्माण में 11 हजार करोड का व्यय होने की बात कहीं गई।

इस सारी समितियों की रिपोर्टों का सार यही है कि उच्च शिक्षा का खर्च वर्तमान आर्थिक परिप्रेक्ष्य में कीमती राष्ट्रीय संसाधनों का उपव्यय है। इस प्रकार अब एक ही विकल्प बचा कि निजी क्षेत्र के लिए उच्च शिक्षा के दरवाजे खोज किए जाएँ ताकि सरकार के पीछे हटने से होने वाली क्षति भरपाई हो सके। सबको शिक्षा के अवसर प्रदान करना तथा बढ़ते तकनीकी क्षेत्र में कुशल मानव संसाधन की पूर्ति करना सरकार द्वारा सम्भव न होने के कारण निजीकरण के क्षेत्र को चुनना पड़ा।

उच्च शिक्षा की वर्तमान स्थिति - किसी भी शैक्षिणिक संस्थान को उच्च स्तरीय मानने के लिए जिन मापदड़ों को माना जाता है उनमें मुख्यतय उच्च शिक्षा की गुणवत्ता, शिक्षा का न्याय संगत होना एवं उच्च शिक्षा तक युवाओं की पहुँच हैं, परन्तु कुछ संस्थान उपरोक्त मापदडों के निकट से होकर भी गुजरते प्रतीत नहीं होते हैं।

योजना आयोग द्वारा जारी रिर्पोट में मात्र 17 प्रतिशत स्नातक युवाओं को ही रोजगार के योग्य माना गया है।

इसके साथ-साथ ही रोजगार के अवसर उपलब्ध नहीं होने के कारण अनके युवा दिशाहीन होकर गैरकानूनी कामों में लिप्त हो जाते हैं। चतुर्थ श्रेणी के पद हेतु आवेदन करने वालों में उच्च शिक्षा धारकों के अतिरिक्त पीएच0डी0, एम0बी0ए0 डिग्री धारकों की संख्या बेरोजगारी का वर्णन करने के लिए पर्याप्त है।

उपरोक्त तथ्य ये दर्शाते है कि हमारी उच्च शिक्षा की गुणवत्ता वैश्विक स्तर पर किस स्थान पर है। अब प्रश्न यह है कि क्या शिक्षा के निजीकरण का फैसला सही है? यदि हम कुछ गिने चुने संस्थानों को छोड दें तो शेष बचें अधिकांश संस्थान मानकों को पूर्ण किये बिना संचालित हो रहे हैं। ऐसा भी नहीं है कि शिक्षा के इस स्तर के लिए केवल प्रबन्धक तंत्र, प्रशासनिक तंत्र ही उत्तरदायी है, इसमें छात्रों एवं अभिभावकों की भी पूर्ण सहभागिता है। ऑल इण्डिया सर्वे ऑफ हॉयर एजुकेशन (AISHE) 2013-14 के अनुसार भारत में निजी एवं सरकारी शिक्षण संस्थाओं की कुल संख्या इस प्रकार है।

* असि0 प्रो0 (भौतिक विज्ञान) महामाया राजकीय महाविद्यालय, शेरकोट, बिजनौर (उत्तर प्रदेश) भारत

तालिका 1 – (अगले पृष्ठ पर देखे)

शिक्षा क्षेत्र मे निजीकरण का प्रभाव – निजीकरण के फैसले के बाद उद्योगपतियों एवं राजनीतिक रसूखदार लोगों द्वारा शिक्षा क्षेत्र में अकूत मुनाफे के आधार पर निजी संस्थानों की स्थापना से महाविद्यालय, मेडिकल कालेज, इंजीनियरिंग कॉलेज की संख्या में वृद्धि तो हुई परन्तु गुणवत्ता का स्तर विपरीत दिशा की ओर अग्रसर हुआ है। जहाँ एक ओर नये संस्थानों को मान्यता देते समय राजनीतिक दबाव एवं दलीय हितों को सर्वोपरि रखा गया वही दूसरी ओर निरीक्षण समिति के सदस्यों द्वारा मानकों की अनदेखी को उच्च शिक्षा के गिरते स्तर का जिम्मेदार माना जा सकता है। यही यह वर्तमान में संचालित अधिकांश स्ववित्तपोषित महाविद्यालय, मेडीकल कॉलेज, इंजीनियरिंग कॉलेजों में ना ही आवश्यकता के अनुरूप साधन है और ना ही शिक्षक।

ऐसी स्थिति में सरकार का भारत को विश्वगुरू बनाने के सपने पर प्रश्न चिन्ह लगाता यह वाक्य 'कक्षा में नहीं गुरू कैसे बनेगा भारत विश्वगुरू'? हमें सोचने पर मजबूर करता है।

शिक्षकों की अनुपरिस्थति के कारण कक्ष संचालन पर प्रभाव पड़ना स्वभाविक है, ऐसी स्थिति में छात्रों के पाठ्यक्रम को पूरा कराने में असमर्थ विद्यालय नकल के सहारे रिजल्ट सुधारने का प्रयास करते है।

निजीकरण के लाभ – स्ववित्तपोषित उच्च शिक्षा संस्थानों के कुछ लाभ इस प्रकार हैं :

1. ये संस्थाएं उच्च शिक्षा के क्षेत्र में सरकार का सहयोग करते हुए सरकारी एवं अनुदान प्राप्त गैर सरकारी संस्थानाओं में छात्रों के प्रवेश के दबाव को कम करती है तथा सामान्य छात्रों को भी उच्च शिक्षा के अवसर प्रदान करती हैं।
2. इन संस्थानों में कुछ संस्थानों की संरचना उत्तम कोटि की है। जिनमें काम के बदले दाम का सिद्धान्त लागू है, जिस कारण शिक्षक परिश्रम से पढ़ाते हैं और सामान्य छात्र भी अच्छा परीक्षाफल देते है।
3. जो लोग प्रतियोगी परीक्षाओं में असफल रह जाते है वे अधिक धन व्यय कर वांछित शिक्षा प्राप्त कर सकते है।
4. योग्य व्यक्ति को अपनी प्रतिभा का विकास करने के अवसर प्राप्त होते हैं।
5. बेरोजगारी किसी सीमा तक दूर हो रही है।

निजीकरण की हानियां :

1. एकाधिकारी प्रबन्धन के कारण शिक्षकों का शोषण होता है उन्हें पूरा वेतन तथा शैक्षिक सुविधाएं प्राप्त नहीं होता।
2. बडे–बडे उद्योगपतियों नें शिक्षा संस्थाओं को सहयोगी उद्योग के रूप में स्थापित किया है जिस कारण ये अधिकतर शिक्षण संस्थाएं भ्रष्टाचार की नींव पर खड़ी है।
3. निजीकरण के कारण वे लोग शिक्षा से वंचित रह जाते है जो निर्धनता के कारण प्रतिभावान होते हुए भी प्रवेश नहीं ले पाते हैं।
4. इन संस्थाओं से निकलने वाले उपाधि–धारकों का मूल्यांकन अपेक्षाकृत कम किया जाता है।

सुधार की आवश्कयता – शिक्षा के स्तर को सुधारने के लिए निम्न बिन्दुओं पर ध्यान केन्द्रित करना होगा–

1. शिक्षकों की कमी को पूरा करना।
2. नकल पर पूर्ण अंकुश लगाना।
3. पुस्तकालयों में अच्छी और पर्याप्त–पुस्तकों की पूर्ति करना।
4. कमजोर वर्ग के योग्य और मेधावी विद्यार्थियों को इन संस्थानों में शुल्को में पुरी छूट मिलनी चाहिए। इन संस्थानों में प्रवेश का आधार केवल 'मैरिट' ही रहना चाहिए।
5. निजी क्षेत्रों को मान्यता देते समय इस बात का सुनिश्चय हो कि केवल ख्याति प्राप्त सस्थाओं को ही मान्यता मिले ताकि उसमें वाणिज्यिक तौर पर कमाई का साधन बनाने की प्रवृत्ति न पैदा हो।
6. संस्थाओं द्वारा संचालित पाठ्यक्रमों तथा शिक्षण कार्य की प्रभावशीलता की नियमित जांच हो।
7. निजी क्षेत्र के शिक्षा संस्थानों की गुणवता और उनके उत्पाद की प्रभावशीलता की जांच के लिए भी अलग से नियमित जांच की व्यवस्था हो, ताकि वे अपनी गुणवतत्ता के प्रति सजग रहें।
8. छात्रों एवं शिक्षकों की उपस्थिति बायोमैट्रिक द्वारा कराने का प्रावधान
9. तकनीकी ज्ञान देने पर जोर।
10. नैतिक शिक्षा अनिवार्य करना।

निष्कर्ष – अब समय आ गया है कि सभी शिक्षा के महत्व को समझे और शिक्षा की गरिमा को कायम रखते हुए शिक्षा सुधार में सरकार के प्रयासों में सहयोग करें। शिक्षा के स्तर को सुधारने के लिए सरकार द्वारा समय–समय पर प्रयास करने की जिम्मेदारी केवल सरकार और शिक्षकों की ही नहीं है। शिक्षा को गुणवत्ता प्रदान करने की जिम्मेदारी केवल सरकार और शिक्षकों की ही नहीं है कुछ दायित्व छात्रों का भी बनता है। यदि छात्र जागरूक होगा तो निश्चित रूप से शिक्षा के स्तर में परिवर्तन आयेगा।

वर्तमान उदारीकरण के इस युग में आर्थिक स्थिति को देखते हुए उच्च शिक्षा में नीजीकरण की भागीरदारी को नकारना व्यावहारिक नहीं लगता। हाँ, इसके जिनीकरण की प्रक्रिया को अपनाते समय इस बात पर जरूर ध्यान रखा जाना चाहिए कि निजीकरण से इस पर कोई दृष्प्रभाव न पड़े।

सरकार का भी दायित्व बनता है कि शिक्षा वे व्यवसायीकरण को रोकने के लिए कठोर कानून बनाये। जिससे शिक्षा के स्तर में सुधार हो सके जिससे शिक्षा के पावन उद्देश्यों को प्राप्त किया जा सके और देश को सही दिशा मिल सके।

संदर्भ ग्रंथ सूची :–

1. drishtllas.com
2. मुक्त ज्ञानकोष विकीपीडिया।
3. S. priyadershem.www.essayshindicom/education.
4. वार्शिक रिर्पोट AISHE 2013-14.

तालिका 1 – निजी, गैर सरकारी (अनुदान प्राप्त) एवं सरकारी कॉलेजों की राज्यवार संख्या (वास्तविक प्रतिक्रिया के आधार पर)

राज्य	निजी कॉलेज	गैरसरकारी (अनुदान प्राप्त)	कुल	सरकारी कॉलेज	कुल
अंडमान और निकोबार द्वीप समूह	–	–	–	05	05
आंध्र प्रदेश	1375	132	1507	154	1661
अरूणाचल प्रदेश	04	03	07	11	18
असम	41	11	52	385	437
बिहार	54	55	109	477	586
चंडीगढ़	01	07	08	16	24
छत्रीसगढ़	278	66	344	328	652
दादर और नगर हवेली	03	01	07	02	06
दमन और दीव	03	01	04	02	06
दिल्ली	61	14	75	86	161
गोवा	10	20	30	21	51
गुजरात	891	478	1369	457	1826
हरियाणा	485	101	586	155	741
हिमाचल प्रदेश	125	15	140	123	263
जम्मू कश्मीर	137	15	152	133	285
झारखंड	59	26	85	130	215
कर्नाटक	2057	410	2467	606	3073
केरल	497	191	688	162	850
मध्य प्रदेश	1080	206	1286	583	1869
महाराष्ट्र	2735	919	3654	795	4449
मणिपुर	20	14	34	48	82
मेघालय	12	12	24	16	40
मिजोरम	01	00	01	28	29
नागालैंड	07	32	39	21	60
ओड़िशा	294	394	688	365	1053
पुडूचेरी	46	02	48	26	74
पंजाब	423	131	554	146	700
राजस्थान	946	70	1016	335	1351
सिक्किम	05	–	05	07	12
तमिलनाडू	1831	253	2084	329	2413
तेलंगाना	1324	103	1427	169	1596
त्रिपुरा	04	02	06	40	46
उत्तर प्रदेश	2455	439	2894	585	3479
उत्तराखंड	95	50	145	98	243
पश्चिम बंगाल	362	206	568	406	974
कुल	17721	4379	22100	7230	29330

****

वेदिक साहित्य मे पर्यावरण की भूमिका

दुर्गेश लता भगत*

प्रस्तावना – संस्कृत साहित्य में प्रकृति को अत्यंत महत्वपूर्ण माना गया है, संस्कृत साहित्य प्रकृति और प्राणी का अत्यंत शाश्वत सम्बन्ध है। संस्कृत के समस्त ग्रन्थों में प्रकृति का विस्तृत रूप में वर्णन किया है। विश्व की सबसे प्राचीनतम ग्रन्थ ऋग्वेद में प्रकृति तत्वों को मूर्ति रूप देकर विविध विषयों का वर्णन किया है, जो बैदिक काल में भी लोगों की आस्था के रूप में प्रकृति प्रेम को दर्शाता है। शास्त्रों के अनुसार सृष्टि की उत्पत्ति पंच महाभूतों के समूह से मानी गई हैं। ये तत्व है– पृथ्वी, जल, अग्नि आकाश और वायु। जब प्रकृति विनिष्ट होती है तब अनेक विकृतियों के साथ प्राणी का भी विनाश होता है, इसलिए प्रकृति ही पर्यावरण है। पर्यावरण शब्द दो शब्दों (परि+आवरण) से मिलकर बना है परि का अर्थ चारों ओर व आवरण का अर्थ घेरा होता है यानि कि पर्यावरण का मतलब हमें 'चारों ओर से घेरने वाला वातावरण' होता है इसमें सजीव निर्जीव स्थल मण्डल जलमण्डल, वायुमण्डल सभी शामिल होते हैं।

ऋग्वेद में ऋषियों वृक्ष को परमात्मा के विभिन्न गुणों का प्रतीक माना है ऋग्वेद के इस मंत्र के अनुसार–

आप औषधीरूप नोऽवस्तु
दयोबिना गिरयो वृक्ष केशा:।
श्रणोत न ऊर्जा पतिगिरं:
स नमस्तरीयां इविर: परिज्मा।
शृन्वन्तवाय: पुरान शुभ्रा:
परि स्त्रुचो बवृहाग स्याद्रे:।   ऋग्वेद 5.41, 11-12

अर्थात् 'वनस्पतियां जल धाराएं आकाश वन और वृक्षादित पर्वत हमारी रक्षा करें ताजगी से भर देने वाला पवन जो आकाश के बादलों में तेजी दौड़ता है हमारे गान को सुने और छिन्न-भिन्न पर्वतों में आगे बढ़ती स्फटिक सी स्वच्छ जल धाराएं हमारी प्रार्थना सुने।'

अथर्ववेद में कहा है–

अग्नि बूमो वनस्पतिनोषधीरूत वीरूध।
इन्द्र वृहस्पति सूर्य ते नो मुंचन्त्वहंस।।

अर्थात् हम परिमात्मा की शरण में जाते हैं, हम वन देवता, वृक्षों, पौधों और औषधियों की शरण में जाते हम इन्द्र, वृहस्पति और सूर्य की शरण में जाते हैं।

अश्वस्थमेक पिचुमिन्द मेकं न्याग्रोधमेकं दश पुण्य जाती।
द्वे द्वे तथा दाडिममातुलगे पंचाम्ररोपी नरक नयाति।।
बारह पुराण 172, 39।

जो कोई एक पीपल, एक बरगद, दस फूलों के पौधे या लताएँ, दो अनार, दो नारंगी और पांच आम के वृक्ष लगाता है, वह कभी नरक में नहीं जाता है।

शां नो द्यावापृथ्वी पूर्वहूतौ शमन्तरिक्षं दृश्यते नो अस्तु।
शंन औषधिर्वनिनो भवन्तु शं नो रजसस्पतिरस्तु जिष्णु:।।
ऋग्वेद 7/35/5

अर्थात् है प्रभु! प्रात: काल जब हम आँखें खोले तब पृथ्वी व द्युलोक हमारे लिये सुख कारी हो। जब हम आँखें उठाकर देखे तो अन्तरिक्ष हम पर सुख की वर्षा करें। पृथ्वी की सम्पूर्ण वनस्पति हमारे लिये लाभ कारी हो। हे- विश्वपते! आपकी कृपा हमारे ऊपर ऐसी ही कि हम भी शुभ कार्य करें एवं हमारे चारों ओर सुखों की वर्षा होती रहे।

यजुर्वेद में भी पर्यावरण सन्तुलन का उल्लेख किया गया है।

द्यौ: शान्तिरन्तरिक्षँ शान्ति: पृथिवीशान्तिराप्र:
शान्तिरोषधय: शान्ति: वनस्पथ: शान्तिर्विश्वे देवा:
शान्तिब्रह्म शान्ति: सर्वँ शान्ति: शान्तिरेव शान्ति: सा मा
शान्तिरेधि।
यजुर्वेद 36/17

अर्थात् जल, वायु, वनस्पतियों और पृथ्वी आदि सभी में शान्ति मिलती रहे। तात्पर्य है कि पर्यावरण के सभी अवयवों में सन्तुलन बना रहे।

यजुर्वेद के अन्य मंत्र के अनुसार–

मापो औषधीहि ऊँ सीर्धाम्नो: धाम्नो
राजेंस्ततो वरूण नो मुच।
यजुर्वेद 6/22

अर्थात् हे राजन् आप अपने राज्य के स्थनों में जल और वनस्पतियों को हानि मत पहुँचाओं ऐसा उद्यम करो जिससे हम सभी होती रहे। अथर्ववेद में भी वनस्पतियों को सम्पूर्ण प्राणी जगत के लिये मंगलकारी होने की प्रार्थना की है।

गिरस्यते पर्वता हिमवन्तोउरण्यं ते पृथ्वी स्योनमस्तु।
अथर्ववेद 12/1/11

अथर्ववेद में पृथ्वी को माता के समान मान कर पवित्र भावना से उसकी सेवा व रक्षा करने की बात कही गयी है–

माता भूमि: पुत्रो5अहं पृथिव्या:।
अथर्ववेद 12/1/12

श्रीमद् भागवत में भी वनस्पतियों को मानव की सभी कामनाओं को पूरा करने वाला माना गया है अर्थात् उसके औषधि गुण मानव के समस्त रोगों को दूर करने वाला माना है।

पुत्र पुष्प-फल छाया-मूल-वल्कम दारूमि:।
गन्ध निर्यास अस्मास्थि तौक्मै: का मान् दितन्वते।।

* असि0 प्रो0 (संस्कृत) पंचायत राज राजकीय महिला स्नातकोत्तर महाविद्यालय, इटावा (उत्तर प्रदेश) भारत

अहोएशां वरं जन्म सर्वं प्राण्युपजीवनम।
सुजनस्ये के धन्या महोरूहायेभ्या निराशायन्ति नार्थिन:।।

गीता में श्रीकृष्ण ने वृक्षों को मानव के लिये कल्याणकारी कहा है।

पश्यैतान् महाभागान् परार्थेकान्त: जीवितम्।
वातवर्षातप: हिमान् सहन्ते वारयान्ति न:।

अर्थात् ये वृक्ष कितने सौभाग्यशाली है जो परोपकारी के लिये जीते हैं। इनकी महानतायें हैं कि ये धूप-ताप, आँधी व वर्षा को सहन करके भी हमारी रक्षा करते हैं।

चरक सहिता में वनों का विनाश राष्ट्र एवं व्यक्ति के कल्याण के लिये सबसे भयावह माना है।

वि गुणोश्वपितृ खलु एतेशु जनपदोध्वंशन।
करेपुभावेशु जेनापपाय मानाना न मयं भवति रोगभ्यशति।
चरक संहिता विमान स्थान 3.11

यानि जंगलो का विनाश राष्ट्रों के लिये तथा मानव जाति के लिये सबसे खतरनाक है। समाज का कल्याण वनस्पतियों पर निर्भर है प्रकृति पर्यावरण के प्रदूषण का कारण और वनस्पति के विनाश के कारण राष्ट्र को बर्बाद करने वाली अनेक बिमारियों पैदा हो जाती है। तब चिकित्सीय गुण युक्त वनस्पति ही प्रकृति की अभिवृद्धि करके मानवीय रोगों को ठीक कर सकती है।

प्राचीन ग्रन्थों में अनेक वनस्पतियों को उपयोगी मानते हुये उनके औषधियों गुणों का भी वर्णन किया है। इनमें से कुछ प्रमुख वृक्ष है- विल्प पत्र, केला, नारियल, रूद्राक्ष, तुलसी, पीपल, धतूरा, आक, भाग, कमल, अशोक, कदम्ब, चन्दन, बरगद, हल्दी, कपूर आदि। ये वृक्ष प्राचीन काल से लेकर आज तक मानव द्वारा पूजनीय रहे है क्योंकि ग्रन्थों में इनके औषधियों गुणों की व्याख्या कर संरक्षित करने को कहा गया है।

अत: कह सकते हैं कि पर्यावरण संरक्षण में हमारे चारों ओर रहने वाले वन्य जीवों, पेड़-पौधों आदि सभी का विशेष योगदान है। मानव, प्रकृति और जीव जन्तु परस्पर एक दूसरे के पूरक हैं। पर्यावरण के प्रत्येक तत्व को देव आदि के रूप में सम्मानित कर प्राकृतिक संसाधनों का उपयोग मानव का आभार के भाव से करना चाहिये। संस्कृत साहित्य से जन-मानस को प्राकृतिक संसाधनों के अति दोहन से बचा सकते हैं तथा जन मानस को इसके संरक्षण हेतु प्रेरित कर सकते हैं।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. व्यक्तिगत शोध के आधार पर।

****

जीवन का सार-शिक्षा एवं संस्कार

डॉ. सोनम शर्मा *

शोध सारांश – शिक्षा और संस्कार के बिना धन दौलत, जमीन-जायदाद और मान-मर्यादा सब बेकार है। जितनी सभी के लिए शिक्षा जरूरी है उतना ही संस्कार हमारे लिए जरूरी है। शिक्षा और संस्कार हमारे लिए बहुत ही महत्त्वपूर्ण विषय है, इन दोनों के बिना हम जीवन की कल्पना नहीं कर सकते। शिक्षा और संस्कार दोनों एक ही सिक्के के दो पहलू है मतलब ये दोनों एक-दूसरे के बिना नहीं रह सकते। हर व्यक्ति के लिए शिक्षा और संस्कार दोनों ही महत्त्वपूर्ण है। हर माता और पिता का सपना होता है कि उनके बच्चे शिक्षा के साथ-साथ संस्कारों में भी निपुण हो। शिक्षा के साथ-साथ संस्कार प्राप्त करना प्रत्येक प्राणी का अधिकार है। शिक्षा देने की अधिकारी सबसे पहली गुरू हमारी माँ ही होती है जो हमें शिक्षित करने का धर्म अपनाती है। माँ ही हमारी प्रथम गुरू और प्रथम पाठशाला होती है। शिक्षा ही वह हथियार है जिससे हम बड़ी-बड़ी समस्याओं का हल कर सकते है। शिक्षा ही वह हथियार है जिससे यह सीख सकते है कि हर समस्याका कैसे कुशलता से सामना करसकते है।

शब्द कुंजी – संस्कार, भारतीय संस्कृति, सम्पूर्ण विकास, प्रथम पाठशाला।

प्रस्तावना – मनुष्य का सर्वांगीण विकास ही शिक्षा का मुख्य उद्देश्य है, शारीरिक, मानसिक, चारित्रिक, संवेदनात्मक, सामाजिक विकास से मनुष्य के व्यक्तित्व का पूर्ण निर्माण होता है। इस निर्माण की दिशा में हमारे संस्कार अत्याधिक महत्वपूर्ण है। शिक्षा की सहायता से हम अपने सपनों जान डाल सकते हैं और सपने को पूरा कर सकते है। संस्कार ही हर जीवन के लिए आभूषण के समान है कहने का तात्पर्य जीवन के शुरूआती दिनों में जिन संस्कारों की नींव डाली जाती है उसका जीवन उसी अनुरूप बन जाता है। या यूं कहे कि मनुष्य में जितने अधिक संस्कार होंगे उसका चरित्र उतना ही अच्छा बन जाता है। मनुष्य को सही पथ या राह पर चलाने के लिए संस्कार की भूमिका महत्वपूर्ण है। संस्कार मनुष्य को आदर्श बनाती है और ये हमें ज्ञानवान भी बनाती है और इसी के माध्यम से मानव अपने जीवन को सुव्यवस्थित तरीके से जी पाता हैं।शिक्षा को पाना और हासिल करना सभी मनुष्यों का अधिकार है। भारत में शिक्षा पर कानून बना है। नि:शुल्क एवं अनिवार्य बाल शिक्षा अधिनियम के नाम से यह कानून 2009 में लाया गया। गाँधी जी द्वारा दी गयी नयी तालीम को इसलिए ही बुनियादी शिक्षा भी कहा जाता है क्योंकि बचपन से ही अगर बच्चों को अच्छी शिक्षा और संस्कार मिले, उन्हें अच्छे-बुरे की पहचान सिखायी जाये हो तो हमें स्वस्थ और सशक्त देश निर्माण करने से दुनिया की कोई ताकत नहीं रोक सकती। मनुष्य के दुर्गुणों को निकाल कर उसमें सद्गुण को रोपित करने की प्रक्रिया का नाम ही संस्कार है। संस्कारों से युक्त व्यक्ति सुसंस्कृत, चरित्रवान हो जाता है वहीं जिसमें संस्कार न हो वो पतन की तरफ चला जाता है। भारतीय संस्कृति में संस्कार का महत्व सर्वोपरि है। मनुस्मृति में कहा गया है कि संस्कार व्यक्ति की अशुद्धियों का नाश कर उसके शरीर को पवित्र बनाता है। बिना शिक्षा और संस्कार के व्यक्ति पशुओं की तरह ही होता है। इसलिए व्यक्ति को शिक्षा और संस्कारों का समावेश अच्छे ढंग से करना चाहिए और यह शिक्षा और संस्कार हमे अपने घर और परिवार के सदस्यों माता-पिता आदि से ही मिलती है और जीवन भर हमें सम्मान के साथ जीना सिखाती है।

क्योंकि मनुष्य की प्रथम पाठशाला घर और प्रथम गुरू माता-पिता होते है, फिर स्कूल और महाविद्यालय के शिक्षक और शिक्षिकाएं, बच्चों में संस्कार पैदा करने के लिए परिवार के साथ ही शिक्षक भी जिम्मेदार हैं। इसलिए हमारी सबसे पहली जिम्मेदारी है कि हम अपनी संतानों को शिक्षा के साथ-साथ संस्कार युक्त बनाए ताकि वह देश के विकास में अपनी योग्यता को हासिल कर सके। जिस प्रकार से बिना कोई हथियार के कोई युद्ध नहीं जीत सकता, उसी प्रकार बिना शिक्षा और संस्कार के जीवन में अच्छा मानव नहीं बन सकता। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि शिक्षा और संस्कार जीवन की नींव हैं।

शिक्षा और संस्कार जिस व्यक्ति में है वो महान् बन जाता है। इसलिए समाज के सम्मानित प्रत्येक घर-परिवार के बच्चे को शिक्षित होना चाहिए जिससे कि देश को उन्नत किया जा सके। देश के हर नागरिक का दायित्व होना चाहिए कि वो अपनी संतान को शिक्षित बनाए ताकि वो देश का अच्छा नागरिक बन देश के विकास में अपनी भागीदारी निभाए और अपनी दायित्व को अच्छे तरह से निभा और गर्व से ये कह सके कि हम भारतीय है। शिक्षा में ही संस्कार समाया हुआ है क्योंकि भारतीय संस्कृति, परम्पराएँ, भारतीय जीवन मूल्य शिक्षा के आधार है। शिक्षा और संस्कार से ही हमारी पहचान बनती है, अगर किसी व्यक्ति ने अच्छी षिक्षा हासिल किया है लेकिन उसमें संस्कारों की कमी हैं तो फिर जो शिक्षा प्राप्त है वह कोई काम की नहीं है।

शिक्षा संस्कार की जननी है। बच्चे की प्रथम पाठशाला परिवार ही है तथा माता-पिता उसके शिक्षक, परिवार से ही बच्चे संस्कार और शिक्षा दोनों सीखते हैं। शिक्षा एवं संस्कार दोनों एक-दूसरे के पूरक हैं। शिक्षा और संस्कार दोनों मनुष्य के लिए जरूरी हैं। जहाँ संस्कार मानव और मानवता के लिए जरूरी है, तो शिक्षा मानव जीवन को ज्ञानी, शिक्षित और हर दौर में आगे बढ़ाता है, जो देश की तरक्की में सहायक होते हैं, जैसे जल का जीवन में महत्त्व है, वैसे ही जीवन में शिक्षा और संस्कार का बच्चों की परवरिश में शिक्षा और संस्कार दोनों की बहुत आवश्यकता है क्योंकि

* सविंदा प्रवक्ता (शिक्षाशास्त्र) कु. मायावती राजकीय महिला स्ना. महाविद्यालय, बादलपुर, गौतमबुद्धनगर(उत्तर प्रदेश) भारत

बिना शिक्षा के उन्हें किसी भी चीज की जानकारी नहीं होती और बिना संस्कार के वो किसी भी मनुष्य का सम्मान करना भूल जाता है। और ये दोनों शिक्षा और संस्कार बच्चों की परवरिश के लिए अति आवश्यक है। शिक्षा से व्यक्ति हर क्षेत्र को जानने लगता है और संस्कार से वह समाज में जीवने का तरीका भी जान लेता है। इसलिए शिक्षा और संस्कार दोनों जरूरी है तभी व्यक्ति एक अच्छा नागरिक और अच्छा इंसान बन सकता है। बच्चे का मन एक कोरे कागज के समान है जिसको हम जिस आकार में ढालेंगे उसी अनुरूप वह हो जाता है। हर छोटे बच्चे की जिंदगी में शुरूआत से ही शिक्षा और संस्कार को देना हर माता-पिता का कर्त्तव्य होता है। सभी बच्चों को घर पर ही सबसे पहला संस्कार दिया जाता है जो उसके चरित्र का निर्माण और अच्छा इंसान बनाता है। जो उसे उज्ज्वल भविष्य और समाज में सर उठाकर जीना और साथ ही साथ सम्मान भी दिलाता है। बच्चों में शिक्षा और संस्कार दोनों चीजों का होना आवश्यक है। जहाँ शिक्षा उनको अध्यापक देते है लेकिन संस्कार केवल परवरिश से ही आते हैं। इसलिए जरूरी है कि माता-पिता अपने बच्चे को संस्कारी बनाएं। संस्कार किताबों में पढ़ने की चीज नहीं है। यह समय के अनुभव और समाज के चलन में मिलता है। निष्कर्ष के तौर पर यह कह सकते हैं कि माता-पिता और शिक्षक दोनों को ही अपनी जिम्मेदारियों को समझते हुए बच्चे का भविष्य सँवारकर उसे शिक्षित और संस्कारवान बनाना चाहिए।

स्वामी विवेकानन्द के अनुसार, शिक्षा व्यक्ति में अंतर्निहित पूर्णता की अभिव्यक्ति है। अरस्तु के अनुसार,'शिक्षा मनुष्य की शक्तियों का विकास करती है, विशेष रूप से मानसिक शक्तियों का विकास करती है ताकि वह परम् सत्य, शिव एवं सुंदर का चिंतन करने योग्य बन सके।'

संस्कार ही मनुष्य को मनुष्य बनाता है, संस्कार इस दुनिया को खूबसूरत बनाते हैं। संस्कार भी पानी, धूप, हवा आदि की तरह हैं जो पुरानी होने के बाद भी अपनी महत्ताा नहीं खोती है।शिक्षा और संस्कार हम सभी के उज्ज्वल भविष्य के लिए आवश्यक उपकरण है, हम जीवन में शिक्षा और संस्कार उपकरण का प्रयोग करके कुछ भी अच्छा हासिल या प्राप्त कर सकते है। जैसे अंधेरे का अनुभव करने पर प्रकाश का महत्तव बढ़ जाता है तो उसी प्रकार शिक्षा और संस्कार के अभाव में ही इसे और अच्छे तरह से समझा जा सकता है। शिक्षा और संस्कार हमारे जीवन की सफलता की कुंजी और बेहतर जीने का तरीका हो सकता है। शिक्षा और संस्कार आत्मविश्वास और ऊँची उड़ान भरने और सपनों में जान डालने जैसे है। शिक्षा और संस्कार व्यक्ति के जीवन स्तर को उच्च करता है। अगर व्यक्ति के अंदर शिक्षा और संस्कार है तो वो उन्नति करेंगे और अगर लोग बढ़ेंगे तो देश भी उन्नति की दिशा को बढ़ेगा। शिक्षा और संस्कार से युक्त व्यक्ति जिंदगी में अच्छे मुकाम पाने में सहायता करता है। एक आदर्श, सभ्य, सजग समाज वही है जहाँ के लोग शिक्षा और संस्कार से युक्त हो, शिक्षा और संस्कार से ही मनुष्य मान-प्रतिष्ठा, आर्थिक उन्नति और जीवन के हर लक्ष्य को प्रदान करता है।

शिक्षा और संस्कार के बिना हमारा जीवन निरर्थक है। इन दोनों के बिना सब बेकार है। शिक्षा और संस्कार दोनों जीवन का एक अच्छा दिशा दिखलाती है। ये दोनों जीवन के मूलभाग है। शिक्षा और संस्कार के माध्यम से व्यक्तित्व का निर्माण एवं विकास होता है। व्यक्ति में सम्पूर्ण विकास के लिए केवल शिक्षा का ही नहीं, उससे भी कहीं ज्यादा संस्कारों की जरूरत है। इन दोनों से हमारे ज्ञान, कुशलता, व्यक्तित्व के विकास में और आत्मविश्वास में वृद्धि होती है। एक अच्छे जीवन जीने के लिए शिक्षा एवं संस्कार दोनों ही अनिवार्य है।इस प्रकार हम कह सकते हैं कि शिक्षा एवं संस्कार एक-दूसरे से जुड़े हुए हैं।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. वी0डी0 महाजन, प्राचीन भारत का इतिहास, एल0 चन्द एण्ड कम्पनी प्रा.लि., प्रथम संस्करण, 1962
2. गोविन्द चन्द्र पाण्डेय, वैदिक संस्कृति, लोक भारती प्रकाशन।
3. किरण त्रिपाठी, वैदिक साहित्य, जानकी प्रकाशन।
4. सच्चिदानन्द शुक्ल, हिन्दू धर्म के सोलह संस्कार, प्रभात प्रकाशन।
5. रामधारी सिंह दिनकर, संस्कृति के चार अध्याय, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 1998

****

राजस्थान की हिन्दी-कहानी : विकास यात्रा भाग - 2

डॉ. राजकुमार चौधरी *

प्रस्तावना - कथा-लेखन परम्परा

द्वितीय चरण - (स्वतन्त्रता पूर्व काल) - राजस्थान की हिन्दी कहानी के विकास का द्वितीय चरण 'स्वतंत्रता पूर्व काल' के नाम से जाना जाता है। इस काल के कथाकारों में **मोहनसिंह सेंगर** तथा **रांगेय राघव** प्रमुख हैं। सेंगर की कहानियों के विषय में डॉ. रामचरण महेन्द्र ने लिखा है:- 'कहानीकार सेंगर सामाजिक क्रान्ति के दूत हैं। उन्होंने एक कुशल शिल्पी की भाँति राजस्थानी कला को संवारा है और दृष्टिकोण, विचारधारा, जीवन-दर्शन में नवीनता से काम किया है।'[1]

सेंगर की कहानियों के विषय में श्री राजेन्द्र शर्मा ने कहा है:- 'सेंगर की कहानियों में समस्याओं की प्रधानता और विद्रोह का स्वर है। यह स्वर काफी नग्न और यथार्थवादी है। प्रगतिशील विचारधारा और सामाजिक समस्याओं से संयुक्त इनकी कहानियाँ समाज, परिवार, सेक्स, राजनीति आदि समस्याओं से जुड़ी हैं लेकिन उनकी कहानियाँ उनकी अपनी संकुचित विचारधारा में बंध कर रह गई हैं।'[2]

सेंगर वस्तुत: प्रगतिशील विचारधारा के कथाकार थे। वस्तुत: मार्क्सवादी सिद्धान्तों का उनकी कहानियों में ज्यों का त्यों आरोप होने के कारण ही वे आलोचना के शिकार हुए हैं; पर इससे इनकी कहानियों का महत्तव नकारा नहीं जा सकता। 'अन्नदाता की जीत', 'दूसरा विवाह', 'हवेली की मौत', 'शहनाई का स्वर', 'सूरज', 'अर्थ-अनर्थ', 'जमील खाँ', 'नरक का न्याय', 'हत्यारा', आदि इनके प्रमुख कहानी-संग्रह हैं।

सेंगर के बाद रांगेय राघव का पदार्पण हुआ; अल्पायु में ही इनका अवसान हो गया था किन्तु इन्होंने विपुल मात्रा में कहानियों का प्रणयन किया। इनकी कहानियाँ गुणात्मकता में भी श्रेष्ठ हैं। इनकी कहानियों की संख्या लगभग 200 (दो सौ) हैं, जो बारह कथा-संकलनों में उपलब्ध है। यथा- 'देवदासी', 'तूफानों के बीच', 'ऐय्याश मुर्दे', 'अंगारें न बुझे', 'इंसान पैदा हुआ', 'साम्राज्य का वैभव', 'समुद्र का फेन', 'पाँच गधे', 'जीवन के दानेय, 'अधूरी मूरत', 'एक छोड़ एक' और 'मेरी प्रिय कहानियाँ' आदि।

प्रगतिशील चेतना रांगेय राघव की कहानियों की मुख्य विशेषता है। 'घिसटता कम्बल', 'प्रवासी', 'गूंगें', 'नयी जिन्दगी के लिए' आदि कहानियाँ इस दृष्टि से बहुत प्रभावपूर्ण हैं; किन्तु इनकी 'गदल' कहानी कालजयी कहानी है, जिसकी गणना हिन्दी की श्रेष्ठ कहानियों में की जाती है। इस संदर्भ में यह कथन दृष्टव्य है :- 'यह कहानी एक नाटकीय कथानक को लेकर भी मानवीय सम्बन्धों के सूक्ष्म चित्रण के लिए 'गदल' और 'डोढ़ी' के भावात्मक लगाव के लिए हिन्दी की क्लासिक कहानियों में से एक है।'[3]

स्वयं रांगेय राघव की यह टिप्पणी उनको कहानियों की विशेषताओं के लिए दृष्टव्य है:- 'समाज की विभीषिकाएँ हमें चारों ओर से घेरे हुए हैं और उनसे हम निरन्तर संघर्ष करते हैं। यह संघर्ष एक सौन्दर्य को जीवित रखने की अखण्ड लालसा है और सदैव ही साहित्य में उसे उतारने की चेष्ठा की है।'[4]

हेतु भारद्धाज ने रांगेय राघव के बारे में लिखा है :- 'रांगेय राघव राजस्थान के लेखकों में प्रमुख हैं। वस्तुत: वे कथाओं के माध्यम से ही मानव संस्कृति के विकास का इतिहास लिख गये। इसलिए उन्होंने अपनी कहानियों के बारे में नयी से नयी समस्याओं को छुआ . . . . गुलेरी जी के बाद रांगेय राघव ने ही हिन्दी कथा-साहित्य में राजस्थान का गौरव बढ़ाया है।'[5]

डॉ. दुर्गाप्रसाद अग्रवाल ने सेंगर एवं रांगेय राघव की कहानियों पर टिप्पणी प्रस्तुत करते हुए उनके कृतित्त्व पर प्रकाश डाला है। यथा- 'प्रारम्भिक दौर से आगे बढ़े तो हमारे सामने आते हैं- मोहनसिंह सेंगर और रांगेय राघव के नाम। सेंगर जी में प्रसाद और प्रेमचन्द का मणिकांचन संयोग मिलता है तो रांगेय राघव स्पष्टत: प्रेमचंद की धारा से जुड़े जाते हैं। 22 वर्षो के लेखन काल में लगभग 200 (दो सौ) कहानियों की रचना करने वाले 'गदल' जैसी अमर कहानी के रचनाकार रांगेय राघव यदि असमय काल कवलित न हो गये होते तो हिन्दी-साहित्य को कितना अधिक समृद्ध कर पाते, कल्पना की जा सकती है।'[6]

राजस्थान के हिन्दी कथाकारों में सेंगर और रांगेग राघव की कहानियों के बारे में यह स्पष्ट है कि इन्होंने सौद्देश्यता, दृष्टि सम्पन्नता और पक्षधरता का विचार एवं आचरण लेकर आये और यहां की कहानी को रूमानी भावुकता और सामन्ती मूल्यों के गुणगान की प्रवृत्ति से मुक्त कराने का प्रयत्न करते रहे हैं।

डॉ. सुधाकर गोकाककर के अनुसार 'परसाई, सेंगर, यशपाल, अमृतराय आदि की सचेत सामाजिक चेतना, सामाजिक विकृतियों एवं उनके व्यावहारिक स्वरूपों को यथार्थ परिप्रेक्ष्य में परखने एवं कठोर आलोचना तथा सवाल व्यंग्य के माध्यम से चित्रित करने में हमेशा अग्रसर रही है।'[7]

तृतीय चरण - (स्वातंत्र्योत्तर काल) - राजस्थान की हिन्दी-कहानी के विकास में **तृतीय चरण-स्वातंत्र्योत्तर** काल के नाम से अभिहित किया गया है। यह काल अपना विशिष्ट महत्त्व रखता है। इस काल के वातावरण में नये बदलाव से जीवन के सभी क्षेत्रों को नये आयाम प्रदान किये हैं। संकीर्णता से मुक्त होकर प्रगतिशील दृष्टि के विकास में कहानी की लोकप्रियता के क्षेत्र में श्री वृद्धि हुई है। इस काल के कहानीकारों में सर्व श्री

* एसोसिएट प्रोफेसर, राजकीय महाविद्यालय, राजसमंद (राज.) भारत

यादवेन्द्र शर्मा 'चन्द्र', सुमेरसिंह दइया, बंशीलाल यादव, परदेशी, मन्नू भण्डारी, शरद देवड़ा, ईश्वर चन्दर आदि प्रमुख हैं। इनके अतिरिक्त कुछ कथाकार सन् साठ के बाद भी रचनारत रहे, जिनके कारण उनका एक विशिष्ट स्थान बन पाया। इनमें नृसिंह राजपुरोहित, दयाकृष्ण विजय, मालसिंह चौधरी, आचार्य सर्वे, ओमानन्द सरस्वती, चिरंजीलाल माथुर, गिरधर चौधरी, भगवान दत्त गोस्वामी, कृष्ण वल्लभ शर्मा, पंकज आदि के नाम गिनाये जा सकते हैं। इनकी रचनाएँ बहुत कम है, फिर भी इनका नाम अवश्य लिया जा सकता है।

इस काल के प्रमुख कथाकार **श्री यादवेन्द्र शर्मा 'चन्द्र'** का कथा-लेखन सामाजिक यथार्थ को आदर्श बनाकर चलता है। इन्होंने राजस्थानी जन-जीवन की सजीव अभिव्यक्ति अपनी कहानियों में की है। रोचकता और सौद्देश्यता ही उन्हें काम्य है। इनकी कुछ कहानियाँ तो उत्कृष्ट बन पड़ी हैं परन्तु अनेक कहानियों में कथानक दोहराने लगे हैं। यह उनकी कहानी कला की एक सीमा है। सामन्ती पृष्ठभूमि पर लिखी हुई कुछ कहानियों में भूखमरी, अकाल की विभीषिका आदि विषय बनाकर प्रगतिशील विचाराधारा को प्रकट किया है। विषय-वैविध्य उनकी प्रखर रचनाशीलता को उजागर करता है।

ऐतिहासिक और हास्य-व्यंगयात्मक कहानियों लिखने में भी 'चन्द्र' सिद्धहरत हैं। इनके कहानी-संग्रह इस प्रकार है :- 'दिल्ली कब्र बन गई', 'ये बदरंग क्षण', 'राम की हत्या', 'एक देवता की कथा', 'लाश का बयान', 'अपनी धरती अपना त्याग', 'सम्बन्धों के बीच', 'एक इन्सान की मौत : एक इन्सान का जन्म', 'क्षणभर की दुल्हन', 'खेल' और 'पीटर बहुत बोलता है' आदि।

यादवेन्द्र शर्मा 'चन्द्र' प्रगतिशील विचारधारा के रचनाकार हैं, जिनकी सर्जना प्रगतिशील समाजवादी या साम्यवादी जीवन मूल्यों के प्रचार में नहीं, अपितु सामन्तवादी मूल्यों के विरोध में, मानव द्वारा मानव के शोषण के खिलाफ और जन-जीवन के स्वस्थ तत्त्वों की सहज-सरल पहचान और पसन्दगी में अभिव्यक्त होता है। अपने लम्बे रचनाकाल में 'चन्द्र' ने ऐतिहासिक एवं हास्य-व्यंग्य प्रधान रचनाएँ लिखी हैं।

डॉ. दुर्गाप्रसाद अग्रवाल ने 'चन्द्र' के कृतित्त्व पर प्रकाश डालते हुए 'राजस्थान प्रदेश का हिन्दी-साहित्य' नामक आलेख में लिखा है :- 'राजस्थान के जन-जीवन की झांकी जिन कथाकारों के वहाँ मिलती हैं, 'चन्द्र' उनमें प्रमुख हैं। वे अपनी कहानियों में रोचकता और सोद्देश्यता को महत्तव देते हैं और सजीव एवं मानवीय संवेदना से लबरेज पात्रों के माध्यम से जीवन के विविध आयामों को उजागर करते है।'[8]

'चन्द्र' के कथा संसार पर रामदेव आचार्य ने सही एवं स्पष्ट लिखा है :- 'चन्द्र' के लिए कहानी लिखना कोई औपचारिकता नहीं है, बल्कि उनके कलाकार मन का रचनात्मक धर्म है। न तो व्यावसायिक चोंचलें बाजी से वे क्षतिग्रस्त हुए न उन्होंने जिन्दगी का समझौता परस्त नक्शा रचा। अपनी बुनियादी आस्थाओं से कभी विरक्त न होने वाले 'चन्द्र' जीवन के सन्धि प्रस्तावों के समक्ष कभी समर्पित नहीं हुए।'[9] 'चन्द्र' बेहद सक्रिय लेखक हैं और उन्होंने खूब लिखा है।

'चन्द्र' की पीढ़ी के दूसरे कथाकार हैं :- **'परदेशी'**। अभी तक इनके कहानी-संग्रह परिमाण की दृष्टि से भले ही कम हों पर उनका प्रभाव अधिक परिलक्षित होता है। यथा 'सन्देह का सिन्दूर', 'चम्पा के फूल', 'देवता हो तो पाषाण बनोय' आदि।

'चन्द्र' के समकालीन ही शीर्षस्थ कहानी लेखिका **मन्नू भण्डारी** का नाम भी राजस्थान के स्वातंत्र्योत्तर कालीन कथाकारों में शामिल किया जाता है। उनका अधिकांश लेखन राजस्थान के बाहर ही हुआ है तथापि वे राजस्थान की ही है। मन्नू भण्डारी का पहला कहानी संग्रह 'मैं हार गयी' (सन् 1957) प्रकाशित हुआ। उसके बाद 'आँखों देखी घूँट', 'त्रिशंकु और अन्य कहानियाँ', 'श्रेष्ठ कहानियाँ' आदि कथा-संग्रह प्रकाशित हुए हैं। सन् 1957 से अब तक मन्नू भण्डारी का लेखन कार्य निरन्तर प्रगति पर है।

डॉ. दुर्गाप्रसाद अग्रवाल ने 'राजस्थान प्रदेश का हिन्दी साहित्य' नामक आलेख में मन्नू भण्डारी का स्थान निर्धारित करते हुए लिखा है :- 'मन्नू भण्डारी का नाम किसी परिचय का आकांक्षी नहीं है। समाज में आ रहे मूल्यगत बदलाव और तज्जन्य संघर्ष को सूक्ष्मता किन्तु सहजता से कथाबद्ध करने में मन्नूजी बेजोड़ हैं।'[10]

शरद देवड़ा भी 'चन्द्र' के समकालीन कहानीकारों में प्रमुख हैं। 'ज्ञानोदय' के भूतपूर्व सम्पादक के रुप में ज्ञेय शरद देवड़ा ने कम कहानियाँ लिखकर भी अपना नाम प्रान्त के महत्त्वपूर्ण हिन्दी-कहानीकारों में जोड़ दिया है। 'पत्थर का लेम्पपोस्ट' उनकी कहानियों का संकलन है। शरद देवड़ा ने जीवन के विभिन्न स्तरों-परिस्थितियों को पैनी नजर से देखा-समझा है और लेखन के माध्यम से उसमें खुद को शामिल करते हुए लिखा है। 'खिड़की और चौखट' कहानी की युवती जीवनयापन के लिए शरीर बेचने को विवश हो जाती है, तो 'मास्टरनी आई' बड़ी कुशलता से ढोंग और दिखावे का पर्दाफाश करती हैं। 'भूख' शरद देवड़ा की एक सशक्त कहानी है जिसमें प्रतीकों के माध्यम से भूख से उत्पन्न दारुण स्थिति का चित्रण किया गया है। 'अनकहा' (रेखान्तर) भी शरद देवड़ा की एक अच्छी कहानी है जिसमें सुविधाजीवी वर्ग द्वारा कामकाजी महिला के शारीरिक शोषण, प्यार संबंधी उनके मूल्य और भद्रलोक के आचरण के पीछे छिपी सच्चाई को बहुत खूबसूरती के साथ उघाड़ा गया है।

शरद देवड़ा के पश्चात् प्रमुख कहानीकार के रुप में **ईश्वरचन्दर** का नाम आता है। ईश्वरचन्दर मूलत: सिंधी भाषा के कथाकार हैं, किन्तु हिन्दी-कथा जगत में भी उन्हें सशक्त कृतिकार के रुप में माना जाता है। इनकी अब तक 200 (लगभग दो सौ) से अधिक कहानियाँ प्रकाशित हो चुकी हैं और लगभग हर भारतीय भाषा में उनकी कहानियाँ अनुदित भी हुई हैं। उनकी अनेक कृतियाँ पुरस्कृत भी हुई हैं। अभी तक चार कथा-संकलन प्रकाशित हो चुके हैं। यथा - 'न मरने का दु:ख', 'आतंक', 'अन्दर का बौनापन' और 'कसम कुरान की' आदि।

राजस्थान के प्रसिद्ध कवि एवं साहित्य मर्मज्ञ प्रो. नन्द चतुर्वेदी के शब्दों में कहा जा सकता है - 'ईश्वरचन्दर की कहानियों की बुनावट एक भिन्न तरीके की है जिसका विस्तार अन्दर ही अन्दर होता है। 'बाहर से गुंबज', 'मीनार कुछ भी उठे हुए नज़र नहीं आते', कहानी बहुत मामूली जगह से शुरु होगी, फिर एक आन्तरिक रचावट के जरिये फैलती जाएगी। मेरी दृष्टि में यह विशिष्टता ईश्वरचन्दर की ही है और इसी तरह वे एक कतार में खड़े कहानीकारों से भिन्न भी होते हैं और महत्तवपूर्ण भी।'[11]

सन् 1950 में **मालसिंह चौधरी** का पहला कहानी-संग्रह 'लादेवाला' प्रकाशित हुआ। इनके साथ ही **डॉ. दयाकृष्ण** विजय का कहानी-संग्रह 'उलझन' जिसमें पात्रों की कोमल भावनाओं की अभिव्यक्ति केन्द्र में हुई है। जीवन की उलझनें परिधि पर जिन्हें अपरिपक्व निष्कर्षों का स्पर्श देकर छोड़ दिया है, फिर भी 'होड़', 'पगला', 'चरवाहा' आदि कहानियाँ पठनीय हैं।

सुमेरसिंह दइया के 'दो भाई' (सन् 1953) एवं 'प्यास की प्यास' (सन् 1966) में प्रकाशित कथा-संग्रह है। दइया ने अपनी कहानियों में

राजस्थानी जन-जीवन को चित्रित किया है और यहाँ के निम्न वर्गों-जातियों जैसे हरिजन, सांसी, नायक, दरोगा, नाई आदि की सामाजिक समस्याओं के चित्रण में ख्याति प्राप्त की। दइया ने न केवल इन जातियों में व्याप्त रुढ़ियों और अन्धविश्वासों पर से परदा उठाया बल्कि उच्च जातियों और वर्गों द्वारा किये जा रहे इनके शोषण को भी बेनकाब किया। इनकी प्रभावशाली भाषा में इस सामाजिक अन्याय के विरुद्ध संघर्ष का आह्वान किया है और समाज के सड़े-गले अंगों को अपनी रचनाओं में उघाड़कर रखा है। ये उसी सामाजिक चेतना, मानवीय करुणा और जुझारु विचारधारा के वाहक और वारिस है, जिनके अग्रदूत मोहनसिंह सेंगर और रांगेय राघव थे।

दइया के साथ-साथ ही **बिशन सिन्हा** का नाम कथा-लेखन में लिया जा सकता है, उनके कहानी-संग्रह - 'तैरते सपने : टूटा शीशा' एवं 'मैं हार गयी' प्रकाशित हुए हैं। इनके पश्चात् **बंसीलाल यादव** के पाँच कथा-संकलन प्रकाशित हुए हैं - 'भीगी पलकें', 'उसासें', 'सितारे', 'क्षीर फेन' और 'टीसें'। यादव ने प्राय: सामाजिक समस्याओं पर कहानियाँ लिखी हैं और यह प्रयत्न किया है कि रचना के माध्यम से वर्तमान व्यवस्था की गलाजत और सड़ांध का अंकन किया जाए और एक नये समाज की रचना का आह्वान किया जाए। मनोवैज्ञानिक विश्लेषण और भावों की सुन्दर, सजीव अभिव्यक्ति इनकी कहानियों की विशेषता है। इनकी कुछ ऐतिहासिक एवं व्यंग्य प्रधान कहानियाँ प्रकाशित हुई हैं।

इस दौर में जो अन्य कहानीकारों के कथा-संकलन प्रकाशित हुए हैं। ये हैं - परदेशी, लक्ष्मीकान्त शर्मा, कृष्णवल्लभ शर्मा, गोपालकृष्ण निर्मोही, चिरंजीलाल माथुर, जीवनसिंह चौधरी, जुगमन्दिर तायल, जैनेन्द्र कुमार ढोषी, त्रिलोकीप्रसाद, ढीपसिंह बड़गुजर, मालचन्द गोस्वामी, मंगल सक्सेना, मोहनलाल जिज्ञासु, रमेशकुमार शील, राजानन्द, रामकुमार ओझा, रामजन्म चतुर्वेदी, शील भटनागर, श्री गोपाल पुरोहित आदि।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. 'राजस्थान के कहानीकार' - डॉ. रामचरण महेन्द्र - भूमिका
2. 'स्वातंत्र्योत्तर राजस्थान का हिन्दी-साहित्य' - सं. राजेन्द्र शर्मा - पृष्ठ 105
3. 'राजस्थान में हिन्दी कथा व नाटक साहित्य के सौ वर्ष' - डॉ. नवलकिशोर एवं रामचरण महेन्द्र - पृष्ठ 14
4. 'मेरी प्रिय कहानियाँ' - डॉ. रांगेय राघव - पृष्ठ 58.
5. 'स्वातंत्र्योत्तर राजरथान का हिन्दी साहित्य' - डॉ. हेतु भारद्धाज - पृष्ठ 106
6. 'मधुमती' - नवम्बर-दिसम्बर 1987 - पृष्ठ 183
7. 'मार्क्सवाद और हिन्दी कहानी' - डॉ. सुधाकर गोकाककर - पृष्ठ 203.
8. 'मधुमती' - दिसम्बर 1989 पृष्ठ 35
9. 'मधुमती' - दिसम्बर 1989 पृष्ठ 35
10. 'मधुमती' - दिसम्बर 1989 पृष्ठ 35
11. 'राजस्थान के कृतिकार - मोनोग्राफ क्र. 04 'ईश्वरचन्दर' - पृष्ठ 82

****

अभिज्ञानशाकुन्तलम् में राजधर्म

डॉ. आशा उपाध्याय *

प्रस्तावना – भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति के प्रतीक महाकवि कालीदास को राष्ट्रकवि की उपाधि से विभूषित किया गया है। विशाल एवं विराट भारत वर्ष की महान संस्कृति कालिदास की रचनाओं में प्रतिबिम्बित होती है हमारी राष्ट्रीय भावना में विश्व कल्याण की भावना में कोई विरोधाभास नहीं है। कालिदास के काव्यों में यह सामंजस्य सुष्ठुरूपेण दृष्टिगोचर होता है। कालिदास ने अपने ग्रंथों में राजा और राजधर्म का अत्यन्त ऐकान्तिक एवं विशद विवेचन किया है। कालिदास का प्रत्येक श्लोक जीवन के विराट् स्वरूप की सूक्ष्म अभिव्यक्ति करता है। 'अविश्रमो हित लोकतन्त्राधिकार:' तथा

'राज्यं स्वहस्तधृतदंडमिवातपत्रं
प्रवर्ततां प्रकृति हिताय पार्थिव:'

के रूप में राजधर्म का निर्देश है।

महाकवि कालिदास ने अपनी कालजयी रचनाओं में राजा एवं राजधर्म की अत्यन्त विस्तार से वर्णन किया है 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' में यद्यपि राजा दुष्यन्त एक प्रेमी एवं कामुक राजा के रूप में कालिदास द्वारा चित्रित किया गया है तथापि वह कभी भी राज धर्मो से मुंह मोड़ता हुआ नजर नहीं आता है। दुष्यंत ने समस्त राजधर्मों का यथानियम समयापूर्वक पालन कर एक आदर्श राजा के रूप में अपने को स्थापित किया है।

कालिदास ने 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' में राजा के कर्त्तव्यों का प्रतिपादन करते हुए कहा है कि राजा में रक्षण, पालन, प्रजा को अभय प्रदान करना आदि धर्मनिर्वाह के गुण होने चाहिए। राजा को व्यक्तिगत हितों एवं सुखों की अपेक्षा जनहित का विशेष ध्यान रखना चाहिए। जिस प्रकार वृक्ष सूर्य की प्रखर किरणों को अपने मस्तक पर सहन करता हुआ छाया द्वारा आश्रित व्यक्तियों को सन्ताप से मुक्त रखता है उसी प्रकार राजा दुष्यन्त अपने सुख की अभिलाषा न करते हुए प्रजा के लिए प्रतिदिन कष्ट उठाते है।

स्वसुखनिरभिलाष: खिद्यते लोकहेतो:।
प्रतिदिनमथवा ते वृत्ति रेवं विधेव।।[1]

एक स्थल पर शकुन्तला की सखी प्रियंवदा राजा को धर्म से अवगत कराती हुई कहती है – राजा को अपने राज्य में रहने वाले आपत्ति में पडे हुए व्यक्ति के कष्टों को दूर करने वाला होना चाहिए, यह राजा का धर्म है। तब राजा दुष्यन्त स्वयं इसको स्वीकार कर पालन करते है।[2]

प्रजापालक राजा का वर्णन करते हुए कंचुकी कहता है – अपनी सन्तान के समान प्रजा का पालन करके, अशांत चित्त हुए राजा दुष्यन्त एकान्त का सेवन कर रहे है। जैसे कि दिन में अपने हाथियों के झुण्ड का नेतृत्व करके सूर्य से तपा हुआ गजराज किसी शीतल स्थान का सेवन करता है।[3]

कालिदास ने अभिज्ञानशाकुन्तलम् के भरत वाक्य में भी राजा के लिए प्रजापालन धर्म की ओर संकेत किया है – राजा प्रजा के हित के लिए प्रयत्नशील होवे 'प्रवर्ततां प्रकृति हिताय – पार्थिव:'[4]इससे स्पष्ट होता है कि प्रजापालन राजा का प्रमुख धर्म था तथा नाटक का नायक दुष्यन्त इस कसौटी पर खरा उतरता है।

राजा दुष्यन्त कुमार्ग पर चलने वाले प्रजाजनों को नियंत्रित करके विवाद को शांत करके प्रजा की रक्षा करता है। विपुल सम्पत्ति होने पर भले ही बंधु बांधव हो जाते परन्तु प्रजा जनों के बंधुजनों द्वारा किये जाने वाले कार्य की पूर्णता तो प्रजारक्षक राजा द्वारा ही सम्पन्न होती है।[5] ऋषि लोग कहते है – सज्जनों की रक्षा करने वाले आपके विद्यमान होते हुए धर्माचरण में विघ्न कैसे हो सकता है? जिस प्रकार सूर्य के तपते हुए अंधकार नहीं हो सकता ठीक उसी प्रकार दुष्यन्त के रहते हुए कष्ट क्यों?[6]

राजा दुष्यन्त षष्ठ अंक में रक्षा की पुकार को सुनकर धनुष बाण चढ़ा लेता है और कहता है – यह दुष्यन्त वध करने योग्य को मार देगा तथा रक्षा के योग्य ब्राह्मण की रक्षा करेगा क्योंकि हंस दूध को पी लेता है और उसमें मिश्रित पानी को त्याग देता है।[7] यहां स्पष्ट है कि 'नीर क्षीर न्याय' की तरह ही राजा राजधर्म का निर्वाह करता है।

दुष्यन्त अपने दायित्वों के प्रति कितना सजग है इसका दृष्टान्त प्रथम अंक में मिलता है जब वह आश्रम के भ्रमर प्रसंग में आक्रान्त शकुन्तला को अभय देने हेतु प्रकट होकर कहता है – अविनयी दुष्टों का शासन करने वाले पुरूवंशोत्पन्न पृथिवी की शासन करने वालो होने पर कौन यह भोली–भाली तपस्वी कन्याओं के साथ धृष्टता पूर्वक आचरण कर रहा है।[8]

कालिदास के मत में राजा को शासन में मध्यम मार्ग का अवलंबी होना चाहिए। राजा की नीतियां न तो अत्यन्त कठोर होनी चाहिए, न अत्यन्त मृदु। इस नीति के द्वारा वह राजाओं का नाश किए बिना उन्हें उसी प्रकार झुका सकेगा। जिस प्रकार मध्यम गति से बहने वाला पवन वृक्षों को आंधी की तरह उखाडे बिना उन्हें हिला झुका दिया करता है। –

न खरो न च भूयसा मृदु: पव मान: पृथिवीरूहामिव।
स पुरस्कृतमध्यमक्रमो नमयामास नृपाननुद्धरन्।।

कालिदास ने दुष्यन्त के माध्यम से राजपद की प्राप्ति तथा तदन्तर उत्पन्न होने वाले क्लेशों का यथार्थवादी चित्रण प्रस्तुत किया है। राजपद प्राप्त करने की उत्सुकता में ही सुख है, उसकी प्राप्ति के बाद नहीं क्योंकि राजपद का परिपालन अत्यन्त क्लेषकर होता है। राज्य उसी छतरी के समान

* व्याख्याता (संस्कृत) से.मु.मा. राज. कन्या महाविद्यालय, भीलवाड़ा (राज.) भारत

है जिसकी मूठ अपने हाथ में लेने से थकावट ही अधिक होती है सुख की प्राप्ति कम ही होती है :-

प्रजा: प्रजा: स्वा इव तंत्रयित्वा,
निषेवतेऽषान्तमना विविक्तम्।
यूथानि संचार्य रविप्रतप्त:
शीतं दिवा स्थानमिव द्विवेन्द्र:।।[9]

इन उदाहरणों से स्पष्ट प्रतीत होता है कि राजा का धर्म प्रजापालन रक्षण ही नहीं वरन् इनके साथ ही पृथिवी एवं धर्म की रक्षा करना भी है। राज दुष्यन्त ने इन सभी धर्मों एवं कर्तव्यों का पालन स्वयं के दु:ख प्रेम व स्वार्थ की उपेक्षा करके भी किया है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. अभिज्ञानशाकुन्तलम् - 5.7
2. अभिज्ञानशाकुन्तलम् - पृष्ठ -104
3. अभिज्ञानशाकुन्तलम् - 5.5
4. अभिज्ञानशाकुन्तलम् - 7.34
5. अभिज्ञानशाकुन्तलम् - 5.8
6. अभिज्ञानशाकुन्तलम् - 5.14
7. अभिज्ञानशाकुन्तलम् - 6.28
8. अभिज्ञानशाकुन्तलम् - 1.21
9. अभिज्ञानशाकुन्तलम् - 5.5

****

राव चांद सिंह जी का स्मारक

डॉ. अमित मेहता*

प्रस्तावना – सीकर नगर की स्थापना मुगल सम्राट औरंगजेब के समय 1687 ई. (वि.सं. 1744) में हुई। ऐसा कहा जाता है कि जिस स्थान पर आज सीकर शहर बसा है वहाँ कभी वीरभान का बास था।

ऐतिहासिक दृष्टि से देखा जाये तो सीकर (शेखावाटी) जयपुर रियासत का ही एक भाग था और गनेड़ी इसी सीकर का एक व्यापारिक केन्द्र था। पुराने समय में यह जयपुर, जोधपुर व बीकानेर रियासत का एक कोना था और गनेड़ी के पास ही नेछवा, शाहपुरा, सिंगरावट आदि में सुरक्षा चौकियां बनी हुई थी।

सीकर शेखावाटी का एक मुख्य भाग है जो अपनी स्थापत्य के लिए प्रसिद्धहै। यहाँ न केवल हवेलियाँ हैं बल्कि छतरियां, बावड़ियां आदि भी बनी हुई हैं, जिन पर चित्रकारी की गई है। इन्हीं छतरियों में स्थापत्य का एक बेजोड़ नमूना गनेड़ी की छतरी भी है।

गनेड़ी सीकर जिले के पश्चिम में स्थित है, जो सीकर से 43 कि.मी. दूर व प्रमुख धार्मिक आस्था के केन्द्र सालासर से 13 कि.मी. दूर है। इसकी उत्तरी सीमा चूरू से व पश्चिम सीमा नागौर से सटती है।

गनेड़ी को एक व्यापारिक केन्द्र मानने के पीछे सबसे बड़ा तर्क यही दिया जा सकता है कि गनेड़ी के निवासी गनेड़ीवाल, चितलांगिया आदि परिवार ऐसे थे जो फतेहपुर नवाब व हैदराबाद निजाम के मुख्य खजांची थे।

गनेड़ी से जो व्यापारी (गनेड़ीवाल) निकले, वर्तमान में इन्हीं व्यापारियों की फतेहपुर में हवेलियाँ है।[1] (रामचन्द्र गनेड़ीवाल की हवेली आदि)

छतरी स्थापत्य कला का एक हिस्सा है। शेखावाटी क्षेत्र में विशिष्ट स्थापत्य है। इन स्मारकों में साधु सन्यासियों, धनपतियों पर बने स्मारकों के साथ-साथ राजाओं, रानियों, ठाकुरों आदि पर बने स्मारक भी हैं। प्राचीन काल में मृत व्यक्तियों की स्मृति में स्मारक, चबूतरा आदि बनाने की प्रथा थी जो मृत व्यक्ति के वैभव व गौर गाथा को दशाते थे। इस प्रथा का प्रारम्भ वैदिक काल से ही हो चुका था और आगे चलकर इसी परम्परा में अनेक भव्य स्मारक बने। स्मारकों के इतिहास को देखने से यही ज्ञात होता है कि प्राचीन भारत में मृत व्यक्तियों की स्मृति में छतरियाँ बनाने की प्रथा थी।

भास के प्रतिमा नाटक के अनुसार रघुवंश के राजाओं की प्रतिमाएं एक मन्दिर में प्रतिष्ठित थी। वस्तुत: ये छतरियाँ बौद्ध स्तूपों का ही विकसित रूप हैं और ये बौद्ध स्तूप वैदिक टीलों के ही प्रतिमाह हैं।[2]

शेखावाटी क्षेत्र में भी इन छतरियों का स्थापत्य विशिष्ट है। सीकर में अनेक विशाल एवं कलात्मक हवेलियों के साथ-साथ शासकों की छतरियाँ बनी हुई हैं। यहाँ राव देवी सिंह, राव राजा लक्ष्मण सिंह, राव राजा प्रतापसिंह, माधोसिंह तथा भैरोसिंह की विशाल छतरियाँ बनी हुई हैं जो बड़ी आकर्षक है। मुकन्द सिंह की छतरी बाजार में स्थित है। ये छतरियाँ कला की अन्यतम धरोहर हैं।[3]

इन्हीं स्मारकों, छतरियों में गनेड़ी की छतरी भी विशेष स्थान रखती है। गनेड़ी की यह छतरी सीकर के राजा राव चांद सिंह की स्मृति में बनाई हुई है। राव चांद सिंह ने अयोग्य शासक नाहरसिंह से सवंत् 1813 वि. में राज्य हस्तगत किया। ये एक शूरवीर शासक था जिसने मराठों से युद्ध में जयपुर का साथ दिया तथा रींगस का इलाका अपने राज्य में मिला लिया। उन्होंने कासली क्षेत्र के चोर डाकुओं का दमन भी किया। इसी सन्दर्भ में किसी कवि ने कहा है।

'चुगि-चुगि चांदै, मारिया चौरासी का चोर
शत्रु सबै कांपन लाग्या पड़यों कासली सोर।'

सवंत् 1820 में बीदावतों के उपद्रव से सीकर की प्रजा को सुरक्षित रखने के लिए उन्होंने अन्तिम सीमा के गांव 'गनेड़ी' में चुने हुए वीरों के साथ छावनी डालकर रहने लगे और वहीं पर वो परलोक सिधार गये। यह प्रवाद भी है कि उन्हें किसी गुप्त शत्रु ने विष खिला दिया और यहीं गनेड़ी में उनका दाह कर्म किया गया व उनके नाम की छतरी बना दी गई।[4]

राव चांद सिंह की छतरी बारहस्तम्भी है जो चूने के पत्थर से निर्मित है। इस छतरी के अन्दर व बाहर चित्रकारी की गई है परन्तु समय बीतने के साथ ही बाहर की चित्रकारी मिट गई है परन्तु छतरी के भीतर के चित्र आज भी सुरक्षित हैं।[5]

इस छतरी में भित्ति चित्रकला की परिपोषणीय धरोहर है जिसमें अनेक रंगों में चित्रित विविध दृश्य अतीव आकर्षक हैं। मुख्य रूप से इस छतरी में लाल-पीला, भूरा, काला व कहीं-कहीं पर हरे रंग का प्रयोग किया गया है।[6]

लगभग 180 साल पुरानी इस छतरी में फ्रेस्कोसेको पद्धति के चित्र बनाये गये हैं जिसमें सतह के सूख जाने पर गोंद आदि अनुबन्ध सामग्रियों से चित्रांकन किया गया है। ये चित्र अधिक स्थायी नहीं होते और कालान्तर में सूर्यताप और वर्षा से इनका रंग धूमिल हो जाता है।[7]

राव चांद सिंह की छतरी के अन्दर बने विविध विषयों से संबंधित है मोटे रूप से इसे दो भागों में विभक्त किया जा सकता है – धार्मिक या दैविक विषय और दूसरा लौकिक जीवन।[8]

धार्मिक जीवन के अन्तर्गत राधाकृष्ण लीला, रामायण, महाभारत की कथाओं से सम्बन्धित चित्र, द्रौपदी चीरहरण, देवासुर संग्राम, शिव की जटाओं से गंगा का निकलना, मां दुर्गा, राम एवं रावण के मध्य युद्ध, हनुमान द्वारा भगवान राम के चरणास्पर्श, अशोक वाटिका में माता-सीता व हनुमान

* व्याख्याता (इतिहास) श्री कल्याण राजकीय महाविद्यालय, सीकर (राज.) भारत

के मिलन का दृश्य, माता सरस्वती का बड़ा ही सुन्दर एवं मनमोहक चित्रांकन किया गया है। ये चित्र जहाँ एक ओर परम्परा का प्रदर्शन कर रहे हैं वहीं दूसरी ओर इस क्षेत्र की धार्मिक भावना के भी परिचायक हैं।[9]

लौकिक चित्रों के चित्रण में इस क्षेत्र के कलाकारों की प्रतिभा बहुमुखी है। उनके द्वारा निर्मित कला संसार विविध रूप रंगों वाला है। नायक-नायिका, ढ़ोला-मारू, राजा द्वारा शेर का शिकार एवं हिरण का शिकार, तांत्रिक, राजा द्वारा पण्डित से हवन करवाना आदि के चित्र इस छतरी के गुम्बद पर अलंकृत हैं।[10] छतरी के नीचे एक तहखाना बना हुआ है जिसमें राव चांद सिंह की बग्घी आदि रखे हुए हैं। वहीं छतरी के पास ही हनुमान मंदिर का निर्माण किया हुआ है। इसी मन्दिर के बाहर प्रांगण में एक स्तम्भ लेख स्थित है जो इस छतरी के निर्माण कार्य की जानकारी देता है व राव चांद सिंह जी की गौर गाथा को दर्शाता है।[11]

इसी छतरी के पूर्व दिशा में दो चबूतरे बने हुए हैं। स्थानीय परम्परा के अनुसार जहाँ दाह संस्कार होता है वहाँ चबूतरा बना दिया जाता है परन्तु इस चबूतरे पर किसी तरह का कोई लेख अंकित नहीं है।[12]

गनेड़ी की यह छतरी सीकर के शाही शमशानों से अलग हटकर स्थापत्य कला का एक बेजोड़ नमूना है। वर्तमान में गनेड़ी छतरी को पुरातत्व विभाग ने संरक्षित स्मारक घोषित कर दिया है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची:-

1. महावीर पुरोहित : सीकर की आत्म कथा, पृ. 21 राहुल प्रकाशन, सीकर 2000
2. रतन लाल मिश्र : शेखावाटी का नवीन इतिहास, पृ. 280, कुटीर प्रकाशन, मंडावा (झुंझुनू), 1998
3. डॉ. गोपाल राम स्वामी : शेखावाटी सांस्कृतिक केन्द्र, नगर एवं कस्बे, पृ. 233, प्रकाशन, 2006, सीकर
4. पं. झाबरमल शर्मा : सीकर का इतिहास, पृ. 87, राजस्थान एजेन्सी प्रकाशन, कलकत्ता, 1979
5. वही : पृ. 88
6. रतन लाल मिश्र : शेखावाटी का नवीन इतिहास, कला समाज, पृ. 281, कुटीर प्रकाशन, मंडावा (झुंझुनू), 1998
7. वही : पृ. 286-287
8. कर्नल टॉड : राजस्थान का इतिहास, भाग-द्वितीय, पृ. 159 साहित्यगार प्रकाशन, चौड़ा रास्ता, जयपुर, 2008
9. मोहनलाल गुप्ता : राजस्थान-जिलेवार सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक अध्ययन, पृ. 236, राजस्थानी ग्रन्थागार, जोधपुर, 2004
10. कैप्टन वैब : सीकर की कहानी, कैप्टन वैब की जुबानी, शान्ति पब्लिकेशन, सीकर, 2009
11. पं. शास्त्री : शेखावाटी प्रकाश, पृ. 4
12. इले कूपर : द पैन्टेड टाउन्स ऑफ शेखावाटी, पृ. 22, गिरिश चन्द्र शर्मा एण्ड सन्स पब्लिकेशन, चूरू

****

Naveen Shodh Sansar (An International Refereed Research Journal) April to June 2015, Volume - 2
ISSN 2320-8767, E- ISSN 2394-3793, Imapct Factor - 0.715 (2014)

Urdu Language Through the Ages & Periods of History

Dr. Arshad Siraj*

Abstract - Urdu body of work that encompasses poetry, prose, and drama in the Urdu language. Urdu is a language that has its roots in the Indian subcontinent and is heavily influenced by Persian, Arabic, and Turkish languages.The essence of Urdu literature lies in its ability to express complex emotions, ideas, and themes through its use of language, imagery, and symbolism. It is characterized by its lyrical and musical quality, which is deeply rooted in the Indian classical music tradition.

The themes of Urdu literature often explore the human condition, including love, loss, beauty, and spirituality. Urdu poetry, in particular, is renowned for its ability to capture the nuances of human emotions and the intricacies of relationships. Many famous Urdu poets, such as MirzaGhalib and Faiz Ahmed Faiz, have explored these themes in their work.Urdu literature also has a strong tradition of social and political commentary, with writers often using their work to comment on contemporary issues and challenge the status quo. This can be seen in the work of writers such as SaadatHasanManto and IsmatChughtai, who tackled controversial issues such as sexuality, gender, and politics in their writing.

In summary, the essence of Urdu literature lies in its ability to express complex emotions and ideas through its lyrical and musical quality, while exploring themes that are deeply rooted in the human condition.

Designed under a self developed design, secondary data available on the various sites of internet, study of the various books on the History of Urdu, the present research paper is an interpretative work which seeks to interpret the essence of the Urdu literature in the context of the genres of the Urdu literature.

Keywords-design, secondary, primary, genres, context.

Introduction -

"Urdu hai jiska naam , hum hi jaante hain' Daagh',
Saare jahaan mein dhoom humari zaban ki hai"
Another one:
"Yaqeen an meri baaton me ye khushboo na Hoti,
agar meri zabaan Urdu na Hoti"
"Nahi khel hai ye daagh yaron se keh do,
Keaati hai urdu zubaan aate aate"

It all started when an incident in the 7th century triggered the merging of most known medieval civilizations.A man from Arabia but not your typical tribal Arab started imagining a world created by a single God instead of many as believed by members of his clan and almost everybody everywhere. There were people before him who had come up with similar ideas such as the Egyptian King Akhenaton or the Jews or even Iranic Zoroastrians but in every instance, the oneness of God was conditional to either a solar deity as in case of Akhenaton, or a sky patriarch in the case of Jews or as the lord of all 'good' people versus all 'bad' people in Iran, where 'good' almost always meant Iranics.

Considering that the prophet was quite unique in his stubbornness to worship the 'one' and creating a world based on unity, the civilizational conception he triggered, ofcourse with the help of time and over centuries, was one that was always keen at combining things and trying to find a 'theory of everything' for almost everything. They tried to blend Hellenic philosophy with Iranic mysticism and Indian metaphysics. They learnt how to use Indian concept of Zero and turn it into rational numbers in Central Asia, yet let them be known as Arabic in history. They were Spaniards and Greeks, Persians, Arabs, Indians, Chinese and Turks, Blacks and Berbers and yet they had found ways of communicating in common tongues and within understandable frameworks. True that such dogmatic belief in oneness meant hegemony but it also allowed co-existence in ways human beings hadn't imagined before.

Urdu was a product of that civilization and that culture. While Persian, Arabic and Turkic have been prey to nationalistic hegemonies of the past century, Urdu is a living and breathing example of how Islamic civilization was able to bridge cultures. Imagine a language whose name is Turkic, whose vocabulary is overwhelmingly Semitic and Iranian and whose grammar is completely Indo-Aryan. I bet it's hard to find many parallels.

The history of Urdu is the history of cultural exchange between Central Asians, Iranians, Anatolians, Arabs and South Asians. It is the soft side of the harsh story of invasions and loots, plunders and miseries which had

*Lecturer & HOD (Urdu) SK Govt. College, Sikar (Raj.) INDIA

plagued South Asia for millennia. While the political history of India's relationship with its Central Asian and Middle Eastern neighbors is that of massacre, genocide and religious persecution; the birth of Urdu is proof that there is always a yang in every yin, a silver lining on the face of a dark history.To put it short, Mughals left in India three everlasting memories. TajMahal, Urdu and Ghalib.

Facts about Urdu:

- During the 10th century AD, the common people of Hindustan (the landmass that lies east of river Indus, comprising of parts of modern day Uttar Pradesh, Bihar, Delhi, Rajasthan, Haryana, Punjab and Pakistan) used to speak various versions of Prakrit and corrupted Sanskrit. The Hindu priests would mostly use Sanskrit to maintain their status in the society.
- The Islamic invasion of Hindustan took place in the 11th century and the Delhi Sultanate was established. The sultans from central Asia and middle east had brought Turkish, Arabic and Persian language into the subcontinent.
- At that time Persian was a revered language in the Islamic world and it was soon made the court language. The Hindustanis who wanted to join the government also started learning Persian (Farsi).

Very soon, during the 13th-14th Century, a time came when:Persian was used by the people associated with government; Sanskrit was used by Hindu Brahmins for their daily rituals; Arabic was used by Muslim clerics for the reading of Quran.

- The rest of the people were mostly illiterate and they continued to speak a mixture of Prakrit and corrupted Sanskrit with a few words derived from Persian in a typical speaking style called Khariboli.
- The Sultanate was interested in expanding their territories therefore, they started recruiting huge number of people in the army and started army camps at various places of Hindustan.
- These people of Army camps acted like a middleman between the government and the people and they started speaking a language which was a nice blend of Persian and the language of common people. This language came to be known as Zaban-e-Ordu (Language of army camp).
- This language influenced the people living in the northern plains between Delhi and Lucknow to a great extent. Thus, the vocabulary of the common people changed a lot between 14th century and 16th century. This language now came to be known as Hindustani language or Hindavi or Delhavi (as it was spoken by people near Delhi). Hindustani language was a blend of Persian, Prakrit, corrupted Sanskrit and regional languages like Awadhi and Vrajbhasha.
- Time passed on and the Mughal Empire overtook the Sultanate. Their reign was more peaceful than that of the Sultans.
- At this time,Persian continued to be court language; Sanskrit continued to be the language of Hindu priests; Arabic continued to be used by the Muslim clerics; Hindustani language was adopted by the common people alongside the regional languages.

This condition continued for a long time from 16th century to 18th century. During this time, a lot of music, art, poetry and literature flourished under the patronage of Mughals.Vedic education, Sanskrit and Devanagari script was exclusively kept for the Brahminical use and very few people had access to it. Lower caste people were denied such education. So, the common people started using the Nasta'liq (Perso-Arabic) script to write the Hindustani language.

The 17th and 18th centuries saw the uprising of Hindu rulers like Shivaji which attempted to overthrow the Mughals. After the death of Aurangzeb, many small Hindu kingdoms were established and the British base started expanding in India. In many small kingdoms, Hindu rulers were merely puppet rulers under the British government. The upper caste Hindu Brahmins were so influenced by the British that they started to give up their Brahminical culture and Sanskrit legacy to recieve western education. Thus, they became more liberal and accepted the Hindustani language. But, they started writing it in the Devnagari script instead of the Nasta'liq script. This version of Hindustani came to be known as Hindi. The original version of Hindustani was then renamed as Urdu (modified version of Zaban-e-Ordu). At that time, in the 1800s, Urdu and Hindi were one and the same with only difference being their script.

There was a time in the 1800s when everyone from Nawabs to common people (both Hindus and Muslims) used Urdu in the daily life. Most of the Hindustani poets and writers of this time used Urdu. A vast body of Urdu literature came into being in the early 19th century. Even the most revered Hindi writers like MunshiPremachand initially started writing in Urdu. Hindi literature flourished only in the next century.

In the 20th century, the condition of Muslims became very poor. As they had refused to accept western education, they lagged behind in jobs and all government programmes.Some Muslim leaders were struck with wonder to the see the condition of Hindus and muslims going topsyturvy. Hindus were the downtrodden class and Muslims were rulers for 600–700 years but their social condition went upside down just within 60–70 years of British rule.

The British were clever enough to draw religious line between Hindus and Muslims which gave birth to fanatics in both the religions. Muslims started feeling insecure and they claimed their legacy over Urdu. Hindus were saddened and frustrated to learn this and thus, they give up Urdu and accepted Hindi as their main language.The two scripts were drawn apart on religious lines and two different languages were formed. Urdu speaking Muslims discontinued speaking the Sanskrit words present in Urdu and thus refined the language a bit. Same happened with Hindi. The Hindi speakers dropped most of the Persian words and adopted

Sanskrit words in its place. Thus two different languages were formally created to be written in entirely different scripts although 80% of their vocabulary were exchangeable.

Hindi came to be associated with Hindus and Urdu came to be associated with Muslims causelessly.Thus, Urdu which was synthesized entirely in India, became the official language of Pakistan and Hindi, which was an unknown language till 18th century became the official language of India, pretty ironically.

Objectives of the Study:

1. To trace the history of Urdu language
2. To reveal the development of Urdu through the periods of history
3. To highlight how Urdu saw the changing times
4. To reveal the current status of Urdu language.

Related Study Review

'During the very initial stage, the Muslims came to thesub-continent in three capacities, such as traders orbusiness men, as commanders and soldiers or conquerors.The origin of Urdu is related to the arrival and residing ofthe Muslims in the subcontinent, and they did not bring itwith them. It came into being just due to the interaction ofthe conquerors and the conquered, and the heterogeneouslanguage like Urdu arose due to amalgamation of locallanguages with Arabic, Persian and Turkish. In a verypreliminary stage, the early Islamic religious preachersadopted the local dialects as well as contemporary literarytraditions and characteristics to perform their job ofpreaching. Nevertheless, they served a lot in evolving anddevelopment of Urdu while performing the preachingduties. Similarly, role of the Urdu poets who performedthe responsibilities of poetry by writing patriotic poems,prose, novels and fictions, in the evolving anddevelopment of Urdu is the most significant. Furthermore,Urdu song writers and lyricists made it a highly reformedliterary language capable for all types of expressions. Additionally, Urdu writers also wrote humorous columns,essays, articles and debates in different news papers andperiodicals which are available on-line, and contributed alot to mobilize peoples for knowing of this language. This information will be valuable to anyone with an interest incross-cultural communication, language planning and language policy, language development, language relationships, and to all with a general curiosity about languages.[1]

'The earliest linguistic influences in the development of Urdu probably began with the Muslim conquest of Sindh in 711. The language started evolving from Farsi and Arabic contacts during the invasions of the Indian subcontinent by Persian and Turkic forces from the 11th century onward. Urdu developed more decisively during the Delhi Sultanate (1206—1526) and the Mughal Empire (1526—1858). When the Delhi Sultanate expanded south to the Deccan Plateau, the literary language was influenced by the languages spoken in the south, by Punjabi and Haryanvi, and by Sufi and court usage. The earliest verse dates to the 15th century, and the golden period of Urdu poetry was the 18th—19th centuries. Urdu religious prose goes back several centuries, while secular writing flourished from the 19th century onward. Modern Urdu is the national language of Pakistan and is also spoken by many millions of people in India.'[2]

'In the 18th-19th centuries, South Asian communities experienced and participated in a major restructuring of the languages of the subcontinent. Urdu and English were institutionalized as governmental languages and utilized in new literary productions as Persian was gradually marginalized from the centre of literary and governmental polities. Three interrelated colonial policies reshaped the historical consciousness of South Asia and Britain : the production of new Persian histories commissioned under British patronage, the initiation of Urdu historiography through the translation of Persian and English histories, and the construction of the British history of India written in English.'[3]

'Muhammad Sadiq's History of Urdu, first published in 1964, proved itself by superseding practically all histories of the subject. It quickly established itself as the history of Urdu literature.[4]

Hypothesis: Urdu as a language has a history that is traceable through the various periods of History

Methodology: Made under a specific research design, the work falls in the category of descriptive research, and aims at describing the status of Urdu language through the various periods of History.

Findings, Suggestions & Conclusion: Urdu was born in india.Its root belongs to sanskrit and prakrit language. Urdu started evolving after 6th century.Because of persian sultans who came to india made a deep influence on urdu and later arabic words got place in it because of arabs.Urdu is not aislamic language as people think. Its a mixture of cultures on indiansoil.The main essence of Urdu is love. Co ordination, accomodation and co existence. Urdu is a bridge between two or more languages. Where you find no words to explain the complex situations, Urdu is there with all its beauty, softness and ability to communicate. To sum up in the words of Gulzar:

Yeh kaisa ishq hai Urdu zaba anka, Yeh kaisa ishq hai Urdu zaba anka
Mazaa ghulta hai laf zonka zabaan par, ki jaise paan mein mehenga kimaam ghulta hai
Yeh kaisa ishq hai Urdu zabaan ka..
Nasha aata hai Urdu bolne mein
Gilauri ki tarah hai moohlagi sab is talaahe, lutf deti hai
Halaq chhuti hai Urdu toh, halaq se, jaise, maika ghootu tarta hai
Badi aristo cracy hai zabaan mein
Fakiri mein nawabi kamazaa deti hai Urdu
Agar chemaani kam hoti hai Urdu mein
Alfaaz ki yeh farhaat hoti hai
magar phir bhi, Bulund awaaz padhiye toh bahut hee

mohatabar lagti hai baatein
Kahin kuch door se kaano mein padti hai agar Urdu,
Toh lagta hai ke din jaadoke hai, khidki khuli hai, dhoop andar aarahi hai
Ajahai yeh zabaan, Urdu
Kabhi yunhi safar karte, agar koi musafir sherpadh de Meer, Ghalibka
Woh chahe ajnabi ho, yahi lagta hai woh mere watan ka hai
Badish aistaleh jemein kisi se Urdu sun kar
Kyan ahilag takeek tehzeeb ki awaaz hai, Urdu

The beauty of the words mix together into the language, as if, some premium fragrant paste is being mixed into a betel-leaf

What is this love with the Urdu language
There is a feeling of intoxication when speaking Urdu.
Like when a ready made betel-leaf touches the mouth, there is a sense of beauty and grace
When Urdu touches the throat, it is as if, a sip of wine is soothes the throat
There is tremendous aristocracy in the Urdu language
In a state of penury, it gives one a feeling of royalty
In case the words appear meaningless, in Urdu, there is the cheerfulness of the words
Yet still, if one reads it in a loud clear voice, there is a romance to the language
If, from somewhere afar, Urdu words float to one's ears
It seems as if, in days of winter, the windows are open, and the sun is shining through
Mystical is this language, Urdu
Sometime, just like that, one is travelling, and a co-traveller, happens to read some couplets of Meer or Ghalib
Even if he is a stranger, it feels as if he is from my town, my country
In a very polite manner, when you hear someone speak Urdu
Doesn't it feel like the sound of culture, Urdu

References:-

1. Muhammad Shabbir etc.- The History of the Urdu Language Together with ItsOrigin and Geographic Distribution, International Journal of Innovation and Research in Educational Science, 2015, Volume 2, Issue 1, ISSN (Online): 2349–5219
2. Laal, Waaz-The History of the Urdu Language, Delhi, India : Mujtabai Press, 1920
3. Blain Auer-Early Modern Persian, Urdu, and English Historiography and the Imagination of Islamic India under British Rule, 2014
4. AlamgirHashmi-Review: Muhammad Sadiq and the Historiography of Urdu Literature, Modern Asian Studies, Vol. 20, No. 1 (1986), pp. 201-205 (5 pages)

****

Naveen Shodh Sansar (An International Refereed Research Journal) April to June 2015, Volume - 2
ISSN 2320-8767, E- ISSN 2394-3793, Imapct Factor - 0.715 (2014)

Study of Hadoop

Rajesh Soni*

Abstract - Bigdata i.e. huge amount of data very difficult to manage.Hadoop developed in 2006 . Hadoop can be used to manage bigdata. It has lot of new features which enable it to manage big data easily
Key words: Bigdata, Hadoop, HDFS, mapreduce, Yarn.

Introduction - Bigdata means huge amount of data. Bigdata have structured , semistructured and unstructured data and collected from various sources. 3 V of bigdata are Volume , Variety, Velocity of data. This huge amount of data in 30-50 TB to PB required new technology to manage.

Haoop developed in 2006 by Apache Software Foundation. Apache Hadoop is a collection of open-source software utilities that facilitates using a network of many computers to solve problems involving massive amounts of data and computation[1]. It provides a software framework for distributed storage and processing of big data using the MapReduce programming model.

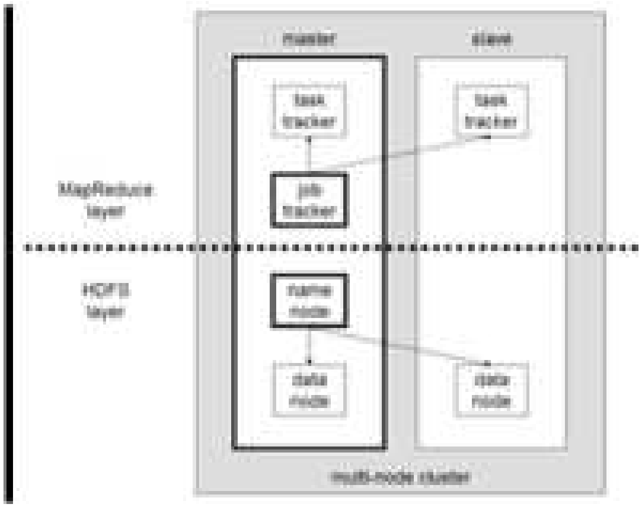

Fig 1: Hadoop Cluster [1]

The Current Appache Hadoop ecosystem consists of the Hadoop Kernel, MapReduce, HDFS ,Yarn and numbers of various components like Apache Hive, Base and Zookeeper. The Hadoop framework is mostly written in the Java[2].

Hadoop Distributed File System (HDFS): The Hadoop distributed file system (HDFS) is a distributed, scalable, and portable File system written in Java for the Hadoop framework.[3].

HDFS has services as follows:

1. Name Node
2. Secondary Name Node
3. Job tracker
4. Data Node
5. Task Tracker

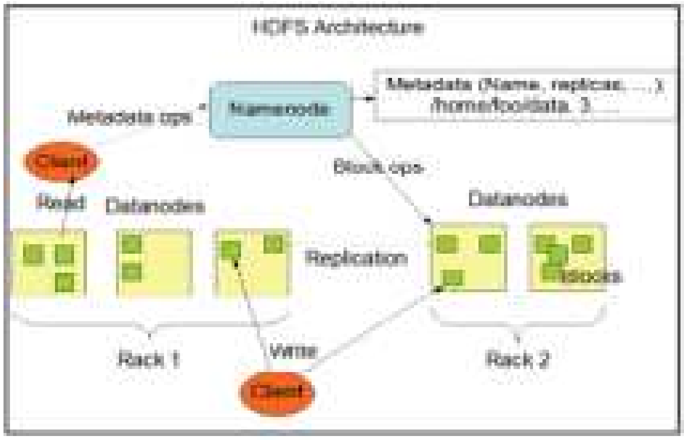

Fig 2: HDFS Architecture

Hadoop creates clusters of machines and coordinates work among them. Clusters are inexpensive computers. If one fails, Hadoop continues to operate the cluster without losing data or interrupting work, by shifting work to the other machines in the cluster. HDFS manages storage on the cluster by breaking incoming files into pieces, called "blocks," and storing each of the blocks redundantly across the pool of servers. In the common case, HDFS stores three complete copies of each file by copying each piece to three different servers .

Map Reduce Architecture: MapReduce is a programming model and an associated implementation for processing and generating big data sets with a parallel , distributed algorithm on a cluster.

A MapReduce framework (or system) is usually composed of three operations (or steps)

1. Map:
2. Shuffle:
3. Reduce:

Map Reduce allows for the distributed processing of the map and reduction operations. Maps can be performed

*Lecturer, B.N.P.G.Girls' College, Udaipur (Raj.) INDIA

in parallel, provided that each mapping operation is independent of the others .

Yarn: YARN[4] is essentially a system for managing distributed applications. It consists of a central **ResourceManager**, which arbitrates all available cluster resources, and a per-node **Node Manager**, which takes direction from the ResourceManager and is responsible for managing resources available on a single node.

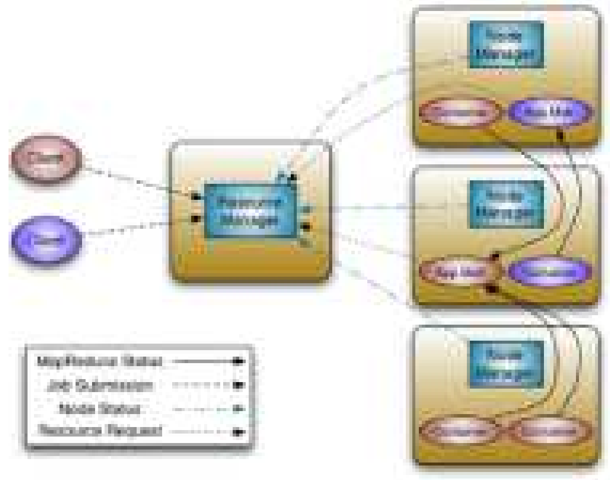

Fig 3: Yarn System

Conclusion: We have studied about Hadoop. In this paper we describe Hadoop along with HDFS , Map reduce and Yarn. Traditional data management systems have some issues to handle the big data due to lack of accuracy, lack of integrity, lack of privacy, etc .To overcome these issues Hadoop used for the processing of large data sets. Hadoop provides excellent scalability such that we can scale from a single server to thousands of machines according to our requirements. Map Reduce is a tool which was developed by Google initially to handle big data sets internally at its organization.

References:-

1. https://en.wikipedia.org/wiki/Apache_Hadoop
2. Harshawardhan S. Bhosale, Prof. Devendra P. Gadekar “A Review Paper on Big Data and Hadoop” in International Journal of Scientific and Research Publications, Volume 4, Issue 10, October 2014
3. Apache Hadoop Project, http://hadoop.apache.org/, 2013.
4. Mrigank Mridul, Akashdeep Khajuria, Snehasish Dutta, Kumar N “ Analysis of Bidgata using Apache Hadoop and Map Reduce” in International Journal of Advance Research in Computer Science and Software Engineering, Volume 4, Issue 5, May 2014.
5. Vidyasagar S. D, A Study on “Role of Hadoop in Information Technology era”, GRA - GLOBAL RESEARCH ANALYSIS, Volume : 2 | Issue : 2 | Feb 2013 • ISSN No 2277 – 8160.
6. BIG DATA: Challenges and opportunities, Infosys Lab Briefings, Vol 11 No 1, 2013.

****

रामकिंकर बैज का कला संसार

डॉ. राजीव शर्मा *

शोध सारांश – रामकिंकर बैज (1906-1980) भारतीय आधुनिक कला के एक युगप्रवर्तक कलाकार थे, जिन्होंने पारंपरिक शिल्प और पश्चिमी आधुनिकतावाद के मध्य सेतु का कार्य किया। उनका कला संसार गहरे मानवीय सरोकारों, सामाजिक यथार्थ और सृजनात्मक स्वतंत्रता से ओत-प्रोत है। वे न केवल एक मूर्तिकार थे, बल्कि चित्रकला, रेखांकन और प्रयोगधर्मी अभिव्यक्तियों में भी समान रूप से निपुण थे। शांतिनिकेतन स्थित विश्वभारती विश्वविद्यालय में रवींद्रनाथ ठाकुर, नंदलाल बोस और बिनोद बिहारी मुखर्जी जैसे गुरुओं के सान्निध्य में उन्होंने अपनी कला दृष्टि को गहराई प्रदान की।

रामकिंकर की कलाकृतियाँ आम जनजीवन से प्रेरणा लेती थीं – खेतों में काम करते किसान, मेहनतकश मजदूर, झारखंड और बंगाल के आदिवासी, उनकी मूर्तियों और चित्रों के प्रमुख पात्र रहे। उनकी प्रसिद्ध मूर्तियाँ जैसे 'सांतरों', 'हल जोतते किसान', और 'सुवणरिखा' केवल रूपाकार की दृष्टि से ही नहीं, बल्कि सामाजिक दृष्टिकोण से भी अत्यंत महत्वपूर्ण हैं। उन्होंने लोकसंगीत, प्रकृति और मानवीय संवेदना को मूर्त रूप देते हुए आधुनिक भारतीय मूर्तिकला को एक नई पहचान दी। बैज की शैली अभिव्यक्तिवादी और गतिशील थी, जिसमें मिट्टी, सीमेंट, पत्थर और धातु जैसे विविध माध्यमों का सृजनात्मक उपयोग देखने को मिलता है। उनकी कला किसी रूढ़ि में बंधी नहीं थी – वह स्वत: प्रवाहित होती रही, जैसे जीवन की सहज धारा। रामकिंकर बैज का कला संसार न केवल सौंदर्य की अनुभूति कराता है, बल्कि समाज, श्रम और मानवीय गरिमा की गहरी समझ भी प्रस्तुत करता है। उनकी कला आज भी प्रेरणा का स्रोत है और भारतीय आधुनिकता की आत्मा का प्रतिनिधित्व करती है।

शब्द कुंजी – रामकिंकर बैज, आधुनिक भारतीय कला, मूर्तिकला, चित्रकला, शांतिनिकेतन, रवींद्रनाथ ठाकुर, नंदलाल बोस, सामाजिक यथार्थ, आदिवासी जीवन, ग्रामीण भारत, लोक संस्कृति, श्रम, मानवीय संवेदना, अभिव्यक्तिवाद, प्रयोगधर्मी शैली, सांतरों, सुवणरिखा, हल जोतते किसान, सीमेंट मूर्ति, प्रकृति प्रेरणा, भारतीय आधुनिकता, कला आंदोलन, आत्म-अभिव्यक्ति, विश्वभारती विश्वविद्यालय, समकालीन दृष्टिकोण, जनजीवन चित्रण, क्रांतिकारी कलाकार।

प्रस्तावना – रामकिंकर बैज का जन्म वर्ष 1906 में पश्चिम बंगाल के बाँकुरा जिले के जौंरा गाँव में हुआ था। उनका जन्म एक साधारण परिवार में हुआ, जहाँ आर्थिक संसाधनों की कमी थी, लेकिन कलात्मक अभिरुचि प्रारंभ से ही उनमें विद्यमान थी। बाल्यकाल में वे मिट्टी से खिलौने और मूर्तियाँ बनाते थे, जो उनकी रचनात्मकता और कला के प्रति प्रारंभिक आकर्षण को दर्शाते हैं। प्रारंभिक शिक्षा के दौरान ही उनकी चित्रकारी और शिल्पकला में प्रतिभा स्पष्ट रूप से सामने आने लगी थी। उनके शिक्षक और आसपास के लोग उनकी इस प्रतिभा से प्रभावित हुए और उन्हें आगे बढ़ने के लिए प्रोत्साहित किया। यही प्रोत्साहन उन्हें शांतिनिकेतन ले गया, जहाँ उन्होंने विश्वभारती विश्वविद्यालय में कला शिक्षा प्राप्त की। शांतिनिकेतन में रामकिंकर को रवींद्रनाथ ठाकुर, नंदलाल बोस और बिनोद बिहारी मुखर्जी जैसे महान कला गुरुओं का सान्निध्य मिला। इन गुरुओं ने न केवल उनके कला कौशल को निखारा, बल्कि उनकी सोच को भी एक व्यापक दृष्टि दी। रवींद्रनाथ ठाकुर के उदार विचारों और ग्रामीण जीवन के प्रति प्रेम ने रामकिंकर की विषयवस्तु को गहराई प्रदान की।

रामकिंकर की प्रारंभिक पृष्ठभूमि में न केवल उनकी सामाजिक स्थिति, बल्कि बंगाल की सांस्कृतिक और लोकपरंपराओं का भी गहरा प्रभाव दिखाई देता है। उनकी कला में बंगाल की मिट्टी, वहां का जीवन, लोककथाएँ और श्रमिक वर्ग की पीड़ा तथा संघर्ष झलकता है। उनके जीवन की यही जड़ें आगे चलकर उनकी कलाकृतियों की आत्मा बनीं। इस प्रकार, रामकिंकर बैज का जीवन एक साधारण ग्रामीण बालक से लेकर एक अंतरराष्ट्रीय ख्याति प्राप्त कलाकार बनने तक की प्रेरणादायक यात्रा है, जो भारतीय कला के इतिहास में स्वर्णाक्षरों में दर्ज है।

शांतिनिकेतन और कलात्मक विकास – रामकिंकर बैज के कलात्मक जीवन में शांतिनिकेतन की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण रही। शांतिनिकेतन केवल एक शिक्षण संस्थान नहीं था, बल्कि वह एक सांस्कृतिक और बौद्धिक प्रयोगशाला थी, जहाँ कला, साहित्य, संगीत और प्रकृति का समन्वय किया जाता था। जब रामकिंकर ने शांतिनिकेतन में कला भवन में प्रवेश लिया, तब वहाँ रवींद्रनाथ ठाकुर की विचारधारा और नंदलाल बोस जैसे कला आचार्यों का गहरा प्रभाव वातावरण में व्याप्त था। यह वही वातावरण था जिसने रामकिंकर की कला को परंपरागत सीमाओं से मुक्त कर आधुनिकता की ओर प्रवाहित किया।नंदलाल बोस की कला में भारतीय परंपरा की गूंज थी, जबकि रवींद्रनाथ ठाकुर के विचारों में स्वतंत्रता, मानवीय गरिमा और प्रकृति से जुड़ाव की चेतना थी। इन दोनों व्यक्तित्वों से रामकिंकर ने कलात्मक अनुशासन, भावनात्मक गहराई और प्रयोगधर्मिता सीखी। शांतिनिकेतन में रहकर उन्होंने सीखा कि कला केवल सजावट या दिखावे का माध्यम नहीं है, बल्कि यह समाज, मनुष्य और प्रकृति के बीच संवाद का सशक्त साधान है। रामकिंकर ने शांतिनिकेतन के खुले परिवेश में ग्रामीण जीवन, श्रमिकों की दिनचर्या और प्राकृतिक परिवेश का गहन अवलोकन किया। इन अनुभवों ने उनकी कला को विषयवस्तु और अभिव्यक्ति दोनों

* व्याख्याता (चित्रकला) राजकीय महाविद्यालय, खेरवाड़ा, उदयपुर (राज.) भारत

ही स्तरों पर समृद्ध किया। उन्होंने सीमेंट, लोहे, मिट्टी और पत्थर जैसे परंपरागत और अप्रचलित माध्यमों का प्रयोग करते हुए मूर्तिकला को एक नई भाषा दी। उनकी कलाकृतियों में लोकजीवन की सादगी, श्रम की गरिमा और जीवन की गतिशीलता दिखाई देती है। उदाहरण स्वरूप, 'हल जोतते किसान' जैसी मूर्तियाँ केवल दृश्य कला नहीं हैं, बल्कि वे सामाजिक जीवन के संघर्ष और सौंदर्य का गहरा चित्रण हैं।

संथाल परिवार और मिल की पुकार – मूर्तिशिल्प, शांतिनिकेतन, पश्चिम बंगाल

मूर्तिकला में योगदान – रामकिंकर बैज का भारतीय मूर्तिकला में योगदान अत्यंत क्रांतिकारी और युगप्रवर्तक रहा है। उन्होंने मूर्तिकला को पारंपरिक बंधनों से मुक्त कर एक नए सामाजिक, भावनात्मक और सौंदर्यात्मक आयाम में परिवर्तित किया। उनके पूर्व की भारतीय मूर्तिकला या तो धार्मिक प्रतीकों तक सीमित थी या औपनिवेशिक अकादमिकता से बंधी हुई। रामकिंकर ने इस प्रवृत्ति को तोड़ते हुए मूर्तिकला को आम जनमानस, श्रमिक वर्ग और ग्रामीण जीवन की जीवंत अभिव्यक्ति बना दिया।

उनकी सबसे उल्लेखनीय विशेषता यह रही कि उन्होंने मूर्तिकला को केवल 'सजावटी' कला के रूप में नहीं देखा, बल्कि उसे सामाजिक यथार्थ और श्रम की गरिमा का दस्तावेज बनाया। उदाहरण के लिए, उनकी प्रसिद्ध मूर्ति 'हल जोतते किसान' में खेत में काम करते बैल और किसानों की आकृतियाँ केवल दृश्य नहीं हैं, वे मेहनतकश जीवन के संघर्ष और सामूहिक श्रम की महत्ता को मूर्त रूप देती हैं। यह मूर्ति न केवल तकनीकी दृष्टि से सशक्त है, बल्कि यह भारत के ग्रामीण जीवन की आत्मा को प्रकट करती है। रामकिंकर बैज ने पारंपरिक सामग्री जैसे पत्थर और धातु के साथ-साथ सीमेंट और कंक्रीट जैसे नवीन माध्यमों का प्रयोग भी किया। यह प्रयोगशीलता उन्हें अपने समय से आगे ले गई और भारतीय मूर्तिकला को आधुनिकता की ओर उन्मुख किया। उनकी एक और प्रसिद्ध कृति 'संथाल परिवार', जो शांतिनिकेतन के पास काम करने वाले आदिवासी श्रमिकों की स्मृति में बनाई गई थी, मानवीय करुणा और सामाजिक चेतना की अनूठी मिसाल है। उन्होंने मूर्तियों में केवल स्थिरता नहीं, बल्कि गति और जीवंतता भी उत्पन्न की। उनके द्वारा बनाए गए पात्र चेहरे के भाव, अंगों की मुद्रा और गति में जैसे जीवित हो उठते हैं। उनकी मूर्तियाँ अकसर सार्वजनिक स्थलों में लगाई गईं, जिससे कला आम जनता तक पहुंच सकी – यह भी उनके योगदान का एक बड़ा पक्ष है। अतः रामकिंकर बैज ने भारतीय मूर्तिकला को सामाजिक यथार्थ, जनसंघर्ष, प्रयोगधर्मिता और अभिव्यक्तिवादी दृष्टिकोण के माध्यम से एक नई चेतना प्रदान की। वे केवल मूर्तिकार नहीं थे, बल्कि वे समाज के गूढ़ प्रश्नों को अपनी कला के माध्यम से उठाने वाले सच्चे कलाकार और चिंतक थे। उनकी मूर्तिकला आज भी भारतीय आधुनिक कला की दिशा और दर्शन को गहराई से परिभाषित करती है।

यक्षी मूर्तिशिल्प, भारतीय रिजर्व बैंक मुख्यालय, भारत

चित्रकला और रेखांकन – रामकिंकर बैज को सामान्यतः मूर्तिकला के क्षेत्र में उनके क्रांतिकारी योगदान के लिए जाना जाता है, किंतु उनकी चित्रकला और रेखांकन भी समान रूप से सशक्त, अभिव्यंजक और महत्वपूर्ण हैं। उन्होंने चित्रों के माध्यम से न केवल सौंदर्य का सृजन किया, बल्कि समाज, प्रकृति और मानवीय अनुभूतियों की गहन पड़ताल भी की। उनकी चित्रकला में रंगों की स्वतंत्रता, रूपों की सजीवता और रेखाओं की अनौपचारिक गति प्रमुख विशेषताएँ थीं। वे किसी भी विषय को बाँधने या उसे पूर्णतः सुसंगठित करने की प्रवृत्ति से बचते थे, जिससे उनकी कला में

उनकी पेंटिंग्स में पश्चिमी आधुनिक कला के प्रभाव के साथ-साथ भारतीय लोकजीवन और प्रकृति की संवेदनशील उपस्थिति देखी जा सकती है। रामकिंकर के चित्रों में आदिवासी जीवन, श्रमिकों की थकान, ग्रामीण स्त्रियों की चेष्टाएँ, पशु-पक्षियों की आकृतियाँ और पेड़ों की विविध रूपाकारियाँ बार-बार सामने आती हैं। उनका ब्रश इन दृश्यों को केवल रूपात्मक नहीं, बल्कि भावात्मक स्तर पर भी पकड़ता है। उनकी चित्रशैली में गतिशीलता और आंतरिक ऊर्जा स्पष्ट झलकती है। रेखांकन (ड्राइंग) में भी रामकिंकर की पकड़ अत्यंत सशक्त थी। उनके रेखाचित्रों में बिना रंगों के भी चरित्रों की आत्मा बोलती है। उन्होंने त्वरित रेखाओं के माध्यम से जीवन के क्षणों को कैनवास पर उतारा – जैसे कोई कवि तात्क्षणिक अनुभूतियों को शब्दों में बाँधता है। उनके ड्रॉइंग्स में आकृतियों की अनगढ़ता

ही उनकी ताकत बन जाती है, जो रेखा की स्वाभाविकता और भाव की तीव्रता को दर्शाती है। रामकिंकर की चित्रकला न तो सौंदर्य के पारंपरिक खाँचों में बंधी थी, न ही केवल कलावादी आग्रहों से प्रेरित। उनकी कला आत्म-अभिव्यक्ति का माध्यम थी, जिसमें एक कलाकार की आंतरिक संवेदना, सामाजिक चेतना और रचनात्मक ऊर्जा पूरी तरह प्रतिबिंबित होती थी।

कलात्मक शैली और अभिव्यक्ति – रामकिंकर बैज की कलात्मक शैली विशिष्ट, स्वाभाविक और अभिव्यक्तिवादी थी, जिसने भारतीय आधुनिक कला को एक नई दिशा दी। उनकी कला में पारंपरिक भारतीय लोक कला और पश्चिमी आधुनिकता का सुंदर समन्वय देखने को मिलता है। वे न तो केवल शास्त्रीय औपचारिकताओं में बंधे रहे और न ही अंधानुकरण में उलझे; उनकी शैली ने जीवन की सच्चाई, संघर्ष और भावनाओं को सजीव रूप में प्रस्तुत किया।रामकिंकर की मूर्तियाँ और चित्र जीवंतता, गतिशीलता और प्रकृति के साथ गहरे जुड़ाव का परिचय देती हैं। उन्होंने आकृतियों में ऐसे अंगों और मुद्राओं का प्रयोग किया, जो न केवल स्थिर नहीं बल्कि गतिशील प्रतीत होते हैं, मानो वे सांस ले रही हों।

उनकी कला में शारीरिक बनावट की बजाय भावनात्मक और आध्यात्मिक अभिव्यक्ति पर अधिक जोर था।उनकी अभिव्यक्ति में सामाजिक चेतना स्पष्ट रूप से झलकती है। वे आम जनता, खासकर किसान, मजदूर, आदिवासी और ग्रामीण जीवन के संघर्षों को कला के माध्यम से उकेरते थे। उनके काम में श्रम की गरिमा, प्रकृति की सादगी और मानवीय संबंधों की गहराई प्रमुख थी। रामकिंकर की कला में यथार्थवाद का प्रभाव जरूर है, लेकिन वह यथार्थ का केवल अनुकरण नहीं, बल्कि उसका आंतरिक सार प्रकट करती है। कलात्मक दृष्टि से, वे प्रयोगधर्मी थे – मिट्टी, पत्थर, सीमेंट, लोहे जैसे विभिन्न माध्यमों का स्वतंत्र प्रयोग करते हुए उन्होंने कला को सीमाओं से परे ले जाकर नवीनता दी। उनकी रेखाएं तेज, सहज और कभी-कभी अधूरी रह जाती थीं, जिससे दर्शक के मन में कल्पना की जगह खुलती थी। उनकी कलाकृतियाँ देखने में सरल लगती हैं, किंतु उनमें गहरी दार्शनिकता और मानवीय संवेदना छिपी होती है।

आलोचनात्मक मूल्यांकन और प्रभाव – रामकिंकर बैज की कला को भारतीय आधुनिक कला के इतिहास में एक क्रांतिकारी और प्रेरणादायक मोड़ के रूप में माना जाता है। आलोचकों ने उनकी कला को सामाजिक यथार्थ, मानवीय संघर्ष और लोक जीवन की अभिव्यक्ति के संदर्भ में अत्यंत महत्वपूर्ण बताया है। उनकी मूर्तिकला और चित्रकला ने केवल कला की सीमाओं को ही नहीं बढ़ाया, बल्कि भारतीय कला की संवेदनशीलता और विषय-वस्तु को भी विस्तृत किया।

आलोचनात्मक दृष्टि से, रामकिंकर की कला में एक विशिष्ट अभिव्यक्तिवाद पाया जाता है, जो भावनाओं और जीवन के यथार्थ को प्रभावशाली रूप में प्रस्तुत करता है। उनकी कलाकृतियाँ रूढ़िवादी या औपचारिक रूपरेखाओं से परे थीं, जिससे कला में नवीनता और सजीवता आई। आलोचकों ने उनकी प्रयोगधर्मी तकनीक, जैसे सीमेंट और कंक्रीट के प्रयोग को भारतीय मूर्तिकला में नवाचार के रूप में स्वीकारा। रामकिंकर बैज ने ग्रामीण और आदिवासी जीवन की कठिनाइयों को एक सामाजिक दस्तावेज के रूप में प्रस्तुत किया, जिससे उनकी कला में सामाजिक सरोकारों की गहराई झलकती है। उनके विषयों की सार्वभौमिकता और मानवीयता ने न केवल भारतीय दर्शकों को प्रभावित किया, बल्कि विश्व स्तर पर भी उनकी पहचान बनाई।उनके प्रभाव की बात करें तो, रामकिंकर बैज ने भारतीय मूर्तिकला को पारंपरिक धार्मिक विषयों से हटाकर आधुनिक, सामाजिक और मानवीय विषयों की ओर मोड़ा। उनकी शैली ने कई युवा कलाकारों को प्रेरित किया कि वे अपनी जड़ों से जुड़कर नई रचनाएँ करें। साथ ही, उन्होंने सार्वजनिक कला की महत्ता को भी स्थापित किया, जिससे कला का दायरा केवल संग्रहालयों या निजी संग्रह तक सीमित नहीं रहा। अंतरराष्ट्रीय स्तर पर भी रामकिंकर की कला को सराहा गया, जिससे भारतीय आधुनिक कला की विश्व मान्यता बढ़ी। उनकी कृतियाँ आज भी प्रमुख कला संग्रहालयों में संग्रहित हैं और कला शिक्षा में उनका योगदान अनमोल माना जाता है। इस प्रकार, रामकिंकर बैज का कला संसार न केवल कलात्मक नवाचार का प्रतीक है, बल्कि सामाजिक जागरूकता और मानवीय संवेदना का भी उत्कृष्ट उदाहरण है, जिसने भारतीय कला के स्वरूप और दिशा दोनों को स्थायी रूप से प्रभावित किया।

पुरस्कार और मान्यताएँ – रामकिंकर बैज को उनके अभूतपूर्व कलात्मक योगदान के लिए अनेक प्रतिष्ठित पुरस्कारों और मान्यताओं से सम्मानित किया गया। उन्होंने भारतीय आधुनिक कला में जो नवाचार और सामाजिक चेतना प्रदर्शित की, उसे राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय स्तर पर सराहा गया। उनमें से सबसे प्रमुख सम्मान था पद्म भूषण, जो भारत सरकार द्वारा कला के क्षेत्र में उत्कृष्ट सेवा देने वाले व्यक्तियों को प्रदान किया जाता है। यह सम्मान रामकिंकर बैज की मूर्तिकला और समग्र कलात्मक कृतित्व की प्रशंसा का प्रतीक था।

इसके अतिरिक्त, उन्हें ललित कला अकादमी फेलोशिप से भी नवाज़ा गया, जो देश की सर्वोच्च कला संस्थान द्वारा दी जाने वाली उच्चतम मान्यता है। इस फेलोशिप के माध्यम से उनके कार्यों को कला जगत में विशिष्ट स्थान मिला। रामकिंकर बैज को भारतीय कला विश्वविद्यालयों में मानद डॉक्टरेट की उपाधि से भी सम्मानित किया गया, जिससे उनके विद्धत्ता और कला के प्रति समर्पण को औपचारिक रूप मिला। उन्होंने विश्वभारती विश्वविद्यालय में कला शिक्षा के प्रचार-प्रसार में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई, जहाँ उन्हें अनेक बार विशेष सम्मानित किया गया। अंतरराष्ट्रीय स्तर पर भी उनकी कृतियों को प्रमुख कला संग्रहालयों में प्रदर्शित किया गया और कला सम्मेलनों में उनकी कलात्मक दृष्टि की प्रशंसा हुई। यह उनकी कला की सार्वभौमिकता और मानवीय संवेदना को दर्शाता है। इस प्रकार, रामकिंकर बैज को प्राप्त पुरस्कार और मान्यताएँ न केवल उनके व्यक्तिगत सम्मान के प्रतीक हैं, बल्कि भारतीय आधुनिक कला के विकास में उनके अमूल्य योगदान का भी प्रमाण हैं। उनका नाम कला के इतिहास में सदैव गौरवपूर्ण स्थान पर रहेगा।

निष्कर्ष – रामकिंकर बैज का कला संसार भारतीय आधुनिक कला की आत्मा को अभिव्यक्त करता है, जहाँ लोकजीवन, प्रकृति और मानवीय श्रम के चित्र गहरे संवेदनात्मक रूप में प्रकट होते हैं। उनकी कलाकृतियाँ केवल सौंदर्य नहीं, बल्कि समाज की चेतना को भी उकेरती हैं। परंपरा और नवाचार का संगम उनकी कला को विशिष्ट बनाता है। वे न केवल मूर्तिकला के पुनर्निर्माता थे, बल्कि भारतीय कला को एक नई दिशा देने वाले दृष्टा भी थे। रामकिंकर की कला आज भी प्रेरणा का स्रोत है और भारतीय सांस्कृतिक विमर्श में उनका योगदान अमिट और युगांतरकारी माना जाता है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. नेहरू, एस. (2004). रामकिंकर बैज, ललित कला अकादमी, नई दिल्ली, पृष्ठ: 15-38 (जीवन और कला यात्रा), 72-85 (प्रमुख मूर्तियाँ)

2. मुखर्जी, समर. (1990). Modern Indian Sculpture, प्रकाशक: मैपिन पब्लिशिंग, अहमदाबाद। पृष्ठ: 102–118 (रामकिंकर बैज की मूर्तिकला)
3. कैलाश, बासु. (2006). रामकिंकर: एक युगद्रष्टा कलाकार, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली। पृष्ठ: 45–59 (शांतिनिकेतन काल), 88–95 (कलात्मक दृष्टिकोण)
4. शिव कुमार, के. (1981). The Art of Ramkinkar Baij, ललित कला अकादमी, नई दिल्ली। पृष्ठ: 23–37 (अभिव्यक्तिवाद और शैली)
5. दत्त, अशोक. (2012). भारतीय आधुनिक कला का विकास, राष्ट्रीय आधुनिक कला संग्रहालय, दिल्ली, पृष्ठ: 61–70 (रामकिंकर बैज का योगदान)

****

भारतीय मानवाकृतियों का अद्‌भुत सौंदर्यीकरण- 'अजंता'

डॉ. रेखा पंचोली*

प्रस्तावना – बौद्ध कला की महान थाती का समृद्ध केन्द्र 'अजंता' है, जिसमें मानवाकृतियों का भावपूर्ण अंकन एवं विकास दिखाई पड़ता है। कलाकारों ने मानवाकृतियों के अंकन में काफी सर्तकता बरती है। तकनीकि एवं भावनात्मक दृष्टि से मानवाकृतियाँ इतनी उच्च कोटि की बनाई गई हैं कि देखने वाला हर व्यक्ति कलाकारों के हस्तकौशल की प्रशंसा किये बिना नहीं रहता। इन भावनात्मक मानवाकृतियों को चित्रित करने के पीछे कलाकारों की धार्मिक, आस्था जुड़ी हुई है। यदि कलाकारों को आस्था ने न जोड़ा होता तो इन पर शताब्दियों तक अनवरत् काम न हुआ होता।

इन मानवाकृतियों में शैलीगत परिवर्तन दिखाई देता है, चूंकि काल शताब्दियों तक फैला था। इसलिए इन मानवाकृतियों के सौंदर्य बोध के स्तर में उतार-चढ़ाव दृष्टिगोचर होता है, इन सबके बावजूद भी ये मानवाकृतियाँ कलात्मक दृष्टि से उच्चकोटि की हैं। भारतीय चित्रकला में मानवाकृतियों का सर्वोन्नमुख विकास अंजता के भित्ती चित्रों में परिलक्षित हुआ है, वहाँ का सौंदर्य दर्शकों का मन मोह लेता है। अजंता में कुल '29 गुफायें हैं। जिनमें मूल रूप से 16 गुफाओं में चित्र बनाये गये हैं। अजंता के ये चित्र जीवंत प्रतीत होते हैं। पहली और दूसरी गुफाओं के आस-पास बनी मानवाकृतियाँ अत्यंत दक्ष आचार्यों द्वारा बनाई प्रतीत होती हैं। इन मानवाकृतियों के रंग विन्यास, मुख मुद्रा, भाव-भंगिमा आदि तत्वों को बड़ी सुंदरता से चित्रित किया गया है ये मानवाकृतियाँ दर्शक की सौंदर्यानुभूति पर स्थाई प्रभाव अंकित करती हैं। अजंता की ये मानवाकृतियाँ पाश्चात्य चित्रकला की मानवाकृतियों की तरह रूप प्रधान न होकर, भाव प्रधान है।

अजंता के अधिकांश चित्र मध्य और उत्तर मध्यकाल के हैं, जब अजंता की चित्रकला अपने शिखर पर थी। कुछ कलाकृति में मानवाकृतियों को उभारने के लिए रेखाओं में लयात्मकता का समावेश दिखाई देता है। जिसका अर्थ वातावरण और आकृति के स्थान के अनुसार बदलता जाता है। 'कलाकार ने इच्छित प्रभाव देने के लिए, कूची पर दवाब देकर रेखा पतली या मोटी बनाई है, मोटी, चौड़ी तथा गहरी रेखाएं अपने आप में चना-विन्यास बन जाती है, यहाँ तक कि रेखाओं के रंग में भी विभिन्न आभायें आ जाती हैं।' जो अजंता के मानवाकृतियों में स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ता है।

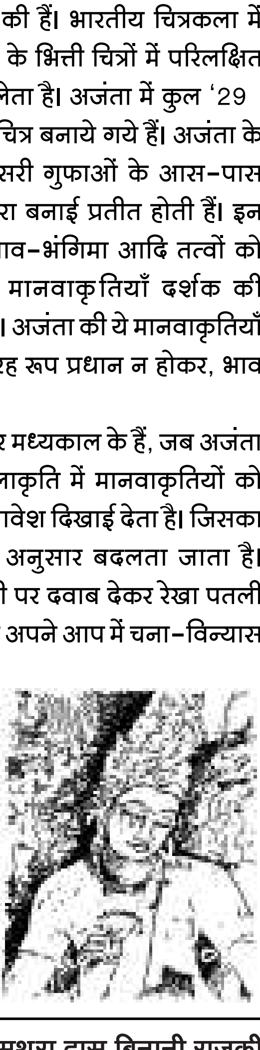

मानवाकृति के रूप में बुद्ध की छवि –

'जब बुद्ध को चित्रित करने की बारी आई, तो शायद कलाकार की बुद्धि चकरा गई होगी। उसे ऐसे व्यक्ति को चित्रित करना था जो उसकी पहुँच और चित्रण से ही बाहर था। उसने समस्या का हल ऐसे निकाला कि अमूर्त बुद्ध की कल्पना को मूर्ति-विज्ञान और मूर्ति-भित्ति शास्त्र में निर्धारित विवरणों के आधार पर प्रस्तुत किया जाये। इसी का परिणाम है कि बुद्ध की आकृति को या तो अक्सर दोहराय गये रूपों या फिर एक आदर्श छवि को व्यक्त करने वाले सामान्य रूपों में पाते हैं। महान बुद्ध का प्राकट्य धर्म चक्र, ध्यान, अभय अथवा भू-स्पर्श की स्थितियों में होता है, और इन भावपूर्ण स्थितियों को विभिन्न मुद्राओं अर्थात हाथों की भंगिमाओं के माध्यम से व्यक्त किया गया है। उसे जब कूची के काम तक सीमित किया गया, तब उसने बुद्ध को मूर्तिवत् आकार दिया-सौम्य और गतिशील।'

अजंता के चित्रों के सभी पात्रों की मुख मुद्रा से ही यह अनुमान हो जाता है कि वह किस रस को व्यक्त करता है, जैसे-गुफा क्रं. 01 में बुद्ध के चेहरे में असीम शांति है। पद्म पाणि बोधिसत्व का एक व्यक्ति चित्र है जो कि सातवीं शताब्दि के पूर्वाद्ध में बना। यह चित्र अद्वितीय है, चित्रकार ने उनके चेहरे पर गहन चिंतन के भावों को भर दिया है, ऐसा लगता है, मानों वे ऊँचाई से दुखी, पीड़ित मानव को देख रहे हैं, और उनके कष्टों को कैसे दूर किया जाये, इस गहन चिंतन में डूबे हुए हैं। आंतरिक और मानसिक भावों को व्यक्त करने में चित्रकार प्रवीण था। अंजता के कुछ चित्रों में मानवाकृतियों को इतना, अधिक भाव-भंगिमा से पूर्ण दर्शाया गया है कि चित्रित स्त्री-पुरूषों की मानसिक दशा का प्रत्यक्ष दिग्दर्शन होता है वे कैमरे से खींची हुई फोटो के समान सही अनुकृति नहीं है, किन्तु निर्जीव प्रतीत नहीं होती। उनके मुख को देखने से ऐसा प्रतीत होता है, जैसे उनमें रक्त प्रवाहित हो रहा है, उनके चेहरे पर अलग-अलग भाव देखने मिलता है।

एक अन्य चित्र जिसमें यशोधरा और उनका पुत्र राहुल, बुद्ध से मिलते हैं, ऐसे दृश्य में आमतौर पर एक भावुकता से भरी नाटकीयता आ सकती थी, कि इतने वर्षो बाद पति अपनी पत्नी से मिल रहा है। सन्यास की पुष्टि करने वाले प्रसिद्ध दृश्य जिसमें बुद्ध भिक्षापात्र लिये खड़े हैं, पत्नी एक मात्र पुत्र राहुल को आगे बढ़ाकर उनका स्वागत कर रही है। वह अपने गृह स्वामी और अब जगत के भी स्वामी को दुहरे रूप में स्वीकारती है। यहाँ मानवाकृतियों की संरचना को दो पिरामिड की तरह से दिखाया गया है, जिनमें से एक पिरामिड की आकृति बड़ी है और दूसरी की छोटी। बड़ी आकृति पृथ्वी की ओर आगे झूकती हुई है, और छोटी आकृति ऊपर की ओर देखती है, तथा द्वार पर खड़े महात्मा के पास पहुँचने के लिए व्याकुल है। ये दो परस्पर विपरीत आकृतियाँ गेरू वस्त्र की चमक को बढ़ाकर दिखाने के लिए गहरी उदासीन पृष्ठभूमि में चित्रित की गई है, इस चमक में ऐसी दीप्ति है कि चारों तरफ प्रकाश फैल जाता है।

इन चट्टानी दीवारों पर आचार-विचार के माध्यम से निर्माण प्राप्त कराने वाली जातक-कथायें गुथी पड़ी हैं। इन कथाओं के मुख्य चरित्र बोधिसत्व

* सह आचार्य (चित्रकला) सेठ मथुरा दास बिनानी राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, नाथद्वारा, राजसमंद (राज.) भारत

है। जो गौतम बुद्ध के पुनर्जन्म की घटनाओं को विभिन्न चरित्रों के माध्यम से व्यक्त करते हैं। इन चरित्रों में 'अनासक्त महानता की छाप उभारने का अपूर्व कौशल इन चित्रों में हैं। वे भव्य तो हैं लेकिन उनमें दिखावा नहीं है, उनमें वह सब कुछ है जिनसे मानवीय गुण उभरते हैं। लेकिन उसकी अधिकता भी है। बड़ी-बड़ी मानवाकृतियाँ राजसी पोषाक, भारी मुकट, प्रचुर आभूषण, उन्हें अन्य चित्रों की तुलना में अधिक प्रभावशाली बनाते हैं।

अजंता की गुफाओं में चित्रित नारी आकृतियाँ-अजंता के समस्त चित्रों में मानवाकृतियों की भरमार दिखाई पड़ती है, लेकिन इन मानवाकृतियों में पुरूष आकृति की तुलना में नारी आकृतियाँ संख्या में अधिक बनाई गई हैं। अजंता में जहाँ पुरूषों को घुड़सवारी करने, उपदेश सुनने तथा उपदेश देने आदि में व्यस्त दिखाया गया है। वहीं नारी आकृतियाँ आकर्षक हैं और विस्मय, दुख तथा अन्य भावनाओं को प्रदर्शित करती नजर आती हैं। अजंता के समूह दृश्यों में नारी आकृतियाँ पृष्ठ भूमि में दिखाई देती हैं और वह पूरे दृश्य को गरिमामयी बना रही हैं।

'कला के इस चित्र-विचित्र उद्यान में कलाकारों का सौंदर्य केन्द्र स्त्री है, लगता है, वातावरण में सजावट और शोभा उत्पन्न करने के लिए उन्हें स्त्री से अधिक उपयुक्त और कोई भी साधन नहीं मिल सका। सौंदर्य बोध की साधना में उन्होंने नारी आकृतियों का प्रसूनों की तरह उपयोग किया है। राजा हो या युवराज, तथागत बूद्ध हो या भिक्षु, सामंत हो या सामान्य जन सभी के इर्द-गिर्द स्त्री पंक्ति पुष्पहार की भाँति पसरी पड़ी है। आलेखित चित्रों में कहीं वे राजप्रसाद को सुशोभित कर रही हैं, कहीं मार्गदर्शक बन कर चौराहों पर खड़ी हैं, कहीं नगरवासियों के घरों की खिड़कियों में उनके मुखकमल जड़े हुए हैं, कहीं वे भिक्षुओ को उपदेश दे रही हैं, कहीं वे आकाश मार्ग से गमन करती हुई प्रसाद में प्रविष्ट हो रही हैं, कहीं वे जल देवता बनकर नाविकों का मन मोहित करने के लिए मेघ संचय कर रही हैं, और कहीं वे अपने विशुद्ध मानवीय स्वरूप में आनंद-प्रमोद और उल्लास से समय वातावरण को प्रफुल्लित कर रही हैं।'

गुफा सं. 01 में एक बड़े चित्र-फलक का एक अंश जिसमें 'अनावृत' अप्सराओं का एक उदाहरण हैं। कलाकार ने विषय पर बल देने के लिए बारीक से बारीक विवरणों को चित्रित करने के लिए हर संभव प्रयास किये हैं। कांतिमय रंगत वाली, गहनों से लदी एक हृष्ट-पुष्ट सेविका मालकिन की देखभाल कर रही है, एक बीमार राजकुमारी पलंग पर लेटी दिखाई गई है। वहीं एक सेविका हाथों में घड़ा लिये जंगले के सहारे झुकी हुई है। घड़े के बाहरी हिस्से को घेरती गोल रेखायें, देह, मस्तक और वक्ष को रेखांकित करती अन्य सभी गोलाकार रेखायें गहरी और अधोमुखी है। सेविका की चिंतित आँखे आशीर्वाद बरसाती लगती है। अजंता में हम भारतीय नारी की शास्त्रीय धारणा के कई रूप पाते हैं। इन नारी मानवाकृतियों में गोलाकार रेखाओं ने गजब ढ़ाया है। शारीरिक गोलाई हर सांचे में ढलती जाती है - पुष्ट स्तन से लेकर फड़फड़ाते होंठ तक, गोल पुतलियों से लेकर कान कुंडल तक, नाक से लेकर चित्र में प्रभाव बढ़ाने के लिए उसकी पूरी देह पर बनाई गई गोल चित्तियों तक अजंता की मानवाकृतियाँ भले ही वह पुरूष की हो अथवा महिला की, कलाकारों ने उनको बनाने में अपनी निपुणता का परिचय दिया है। इन नारी आकृतियों में अंकित आँखों और होंठों के नमूने वास्तविक जीवन के ही हैं। भावाभिव्यक्ति के अनुरूप उनकी हस्त मुद्रायें तथा हाथों की अंगुलियाँ, कमल की पंखुरियों सी प्रतीत होती हैं। ये भावनात्मक एवं संवेदनशील अंगुलियाँ मानो कलाकार अभिव्यक्ति को व्यक्त करती दिखाई पड़ती हैं। दूसरा मुख्य जोर कलाकारों ने शरीर के ऊपरी अंगों को बनाने में किया है। गर्दन, वक्ष, कमर के साथ नितंब, शरीर के निचले अंगों की अपेक्षा अधिक स्पष्ट एवं बारीक है। विशेष रूप में नारी आकृतियों के स्तन का आकार काफी बड़ा और संवेदनशीलता से भरपूर बनाया गया है। ये नारी आकृतियाँ कमर की तुलना में अविश्वसनीय प्रतीत होती हैं।

अजंता के भित्ति चित्रों में अंकित इन मानवाकृतियों का अवलोकन करने पर अनेक स्थानों पर अंतर देखने मिलता है। इससे स्पष्ट होता है कि एक ही चित्र को बनाने में कई कलाकारों ने साथ-साथ काम किया होगा।

अजंता चित्रित नारी आकृतियों में एक विशेष बात यह देखने मिलती है कि चित्रित नारी-आकृतियों में कमर से ऊपर के सभी अंगों को बड़ी सावधानी पूर्वक एवं संवेदनशीलता से भरपूर बनाया है, लेकिन कमर से नीचे के अंगों में वो बात नजर नहीं आती। ऐसा प्रतीत होता है कि इन नारी आकृतियों में टांगों का चित्रण कलाकार ने बड़ी जल्दबाजी में किया होगा। लेकिन इन मानवाकृतियों को कलाकार ने भावाभिव्यक्ति एवं संवेदनाओं में इस कदर डूबो दिया है कि इन छोटी-मोटी गलतियों पर ध्यान केन्द्रित नहीं होता। 'अजंता गुफा में हम नारी के जिस सौंदर्य का दर्शन करते हैं उसकी दैहिक संरचना के मानदण्ड थे- वर्तुलाकार पुष्ट उरोज, क्षींण मध्य भाग तथा विस्तृत नितम्ब।

बौने की आकृति- कलाकार ने बौने के रूप (मानवाकृति) में कल्पना एवं प्रकृति का इतना सुंदर सामंजस्य बिठाया है कि देखते ही बनता है। एक चित्र में बौने को फूलों के बीच बेल के सहारे बैठा दिखा गया है। ऐसा प्रतीत होता है कि वह किसी फलों से सजे हुए झूले पर बैठा हो। वह उस रंग-बिरंगे सुंदर फूलों एवं पत्तियों के बीच उनका एक हिस्सा दिखाई देता है। उसका दाँया हाथ भी फूलों में डूबा हुआ है, उसकी धोती का आखिरी सिरा तो फूलदार ही चित्रित किया गया है। जिससे वह प्राकृतिक दुनिया के करीब नजर आता है। यहाँ पर यह लघु प्राणी सजावटी बेल-बूटों में खूबसूरती से घुल-मिल गया है, और साथ ही प्रकृति में रहने की सच्ची प्रसन्नता को व्यक्त करता है।

अजंता की इन मानवाकृतियों को बनाने में कलाकार ने अपनी दक्षता का परिचय दिया है। उस समय इन मानवाकृतियों को बनाने का मुख्य उद्देश्य अनुयायी को प्रेरणा देना था। इन मानवाकृतियों के सहारे जिन कथाओं एवं कहानियों को अंकित किया गया वह धर्म के लिए समर्पित थी। उस समय कलाकार की रचना प्रक्रिया का मूल मंत्र था- 'कला की रचना महज कला के लिए मत करो,

बल्कि उसे धर्म के लिए समर्पित कर दो।'

अजंता के भित्ति चित्रों में अंकित आकृतियों का निर्माण करने में कलाकार ने सीमित रंगों का प्रयोग किया है। रंग अधिकांशत: भूरे हैं तथा उनमें विभिन्न रंगतों का प्रयोग हुआ है। कहीं-कहीं आकृति को सुंदर बनाने के लिए हरे, लाल, पीले एवं नीले रंगों का भी प्रयोग किया है। कलाकार ने पूरी तत्परता के साथ विभिन्न रंगतों का प्रयोग कर मानवाकृतियों में त्रि-आयामी प्रभाव की झलक दिखाई है, जो अपने आप में स्मरणीय एवं रोचक है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. ए. घोष - अजंता का वैभव, प्रकाशन विभाग सूचना और प्रसारण मंत्रालय भारत सरकार, वर्ष 1994
2. डॉ. रतनकुमार जैन - अजंता ऐलोरा, विश्व भारती प्रकाशन नागपुर, वर्ष 2004
3. डॉ. कमलेश दत्ता पाण्डे - भारतीय चित्रकला में नारी रूप विन्यास, ए.के.बुक कारपोरेशन नई दिल्ली, वर्ष 1992

Naveen Shodh Sansar (An International Refereed Research Journal) April to June 2015, Volume - 2
ISSN 2320-8767, E- ISSN 2394-3793, Imapct Factor - 0.715 (2014)